योगिनी एकादशी

आषाढ मास की कृष्ण पक्ष की एकादशी को योगिनी एकादशी कहा जाता है। इस एकादशी के व्रत में भगवान नारायण की मूर्ति को गंगा जल से स्नान र भोग लगाकर पुष्पदीप से आरती की जाती है। इस व्रत में गरीब ब्राह्मणों को दान देना चाहिए। इस व्रत के प्रभाव से पीपल का वृक्ष काटने का पाप का विना ाता है और स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है।

श्री जगन्नाथ रथ यात्रा

भगवान् श्रीजगन्नाथजी की द्वादश यात्राओं में गुण्डिचा-यात्रा मुख्य है। इसी गुण्डिचा-मन्दिर में विश्वकर्मा ने भगवान् जगन्नाथजी, बलभद्रजी भद्राजी की दारुप्रतिमाएं बनायी थीं। महाराज इन्द्रद्युम्न ने इन्हीं मूर्तियों को प्रतिष्ठित किया। अत. गुण्डिचा-मन्दिर को ब्रह्मलोक या जनकपुर भी कहते -मन्दिर में यात्रा के समय श्रीजगन्नाथ जी विराजमान होते हैं। उस समय यहां जो महोत्सव होता है, वह गुण्डिचा-महोत्सव कहलाता है। आषाढ मास ुक्ल द्वितीया को जगदीश भगवान् की सुभद्राजी एव बलराम जी सहित रथयात्रा निकाली जाती है। यह उत्सव उड़ीसा के पुरी नामक स्थान में बड़ी ही धूमध नाया जाता है। इस रथ यात्रा में जगन्नाथजी, बलभद्रजी एव सुभद्राजी के रथ शामिल होते हैं। विशेष बात यह है कि भगवान के रथ को स्वयं भक्तगण एव ींचते हैं। यह उत्सव अद्वितीय होता है इस प्रकार बलभद्रजी और सुभद्राजी के साथ भगवान् जगन्नाथ उत्तम रथ पर विराजमान हो चारों दिशाओं को प्र रते हुए और अपने अंगों का स्पर्श करके बहने वाली वायु के द्वारा रामस्त देहधारियों के पापों का नाश करते हुए यात्रा करते हैं। वे बडे दयालु और भक्तों के । जो अज्ञानी और अविश्वासी है, उनके मन में भी विश्वास उत्पन्न करने के लिये भगवान् विष्णु प्रतिवर्ष यात्रा आरम्भ करते हैं। उस समय रथ पर विरा ोकर यात्रा करते हुए श्रीजगन्नाथ जी का जो लोग भक्तिपूर्वक दर्शन करते हैं, उनका भगवान् के धाम में निवास होता है। जिनके नाम का सकीर्तन करने मात्रा न्मों का पाप नष्ट हो जाता है, रथ में स्थित हो महावेदी की ओर जाते हुए उन पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, बलभद्रजी और सुभद्राजी का दर्शन करके मनुष्य अपने न्मों के पापों का नाश कर लेता है।

देवशयनी एकादशी

आषाढ मास की शुक्ल पक्ष की एकादशी को ही देवशयनी एकादशी होती है। इस तिथि को 'पद्मनाभा' भी कहते हैं। इसी दिन से (चतुर्मास) का आरम्भ माना जाता है। इस दिन भगवान् श्री विष्णु क्षीर-सागर में शयन करते हैं। इस दिन उपवास करके श्री विष्णु भग स्वर्ण-रजत, तांबा या पीतल की मूर्ति बनवाकर उसका षोड्शोपचार सहित पूजन करके पीताम्बर आदि से विभूषित कर सफेद चादर से ढके उसे शयन कराना चाहिए। इसके चार माह तक सभी मांगलिक कार्य बन्द रहते हैं। व्यक्ति को चाहिए कि इन चार महिनों के लिए अपनी रुचि अभीष्ट के अनुसार नित्य व्यवहार के पदार्थों का त्याग करें। चतुर्मासीय व्रतों में भी कुछ वर्जनाएं हैं। जैसे पलग पर सोना, भार्या का सग कर बोलना, मास, शहद और दूसरे का दिया दही-भात आदि का भोजन करना, मूली, पटोल एवं बैंगन आदि शाक पत्र खाना त्याग देना चाहिए।

गुरु पूर्णिमा

पाढ मास के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को गुरु की पूजा का विधान है।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुगुरुर्देवो महेश्वरः। गुरु साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

पूर्णिमा अर्थात् सद्गुरु के पूजन का पर्व। गुरु की पूजा-गुरु का आदर किसी व्यक्ति की पूजा नहीं है, व्यक्ति का आदर नहीं है अपितु

है - परब्रह्म परमात्मा है उसका आदर है, ज्ञान का आदर है, ज्ञान का पूजन है, ब्रह्मज्ञान का पूजन है।

इस दिन श्रद्धा भाव से प्रेरित अपने गुरु का पूजन करके अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणा देकर गुरुजी को प्रसन्न करते थे एव अ दिन पूजा से निवृत्त होकर अपने गुरु के पास जाकर वस्त्र, फूल व माला अर्पण करके उन्हें प्रसन्न करना चाहिए। गुरु का आशीर्वाद ही क होता है। चारों वेदों के व्याख्याता व्यास ऋषि थे। हमें वेदों का ज्ञान देने वाले व्यास जी ही हैं। इसलिए वे हमारे आदि गुरु हुए। उनकी स हमें अपने-अपने गुरुओं को व्यासजी का ही अंश मानकर उनकी पूजा करनी चाहिए।

गुरु सर्वेश्वर का साक्षात्कार करवाकर शिष्य को जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त कर देते हैं। अतएव संसार में गुरु का स्थान विशेष । कृपा से वेदव्यास जी का अवतरण इस भारतवसुन्धरा पर आषाढ की पूर्णिमा को हुआ। इसलिये आषाढ शुक्ल पूर्णिमा को सभी अपने- रूप से करते हैं। व्यास देवजी गुरुओं के भी गुरु माने जाते हैं। यह गुरु-पूजा विश्वविख्यात है। इसे व्यास-पूजा का पर्व भी कहते हैं। इस

स्व० मूर्तिदेवी, मातेश्वरी सेठ शान्तिप्रसाद जैन
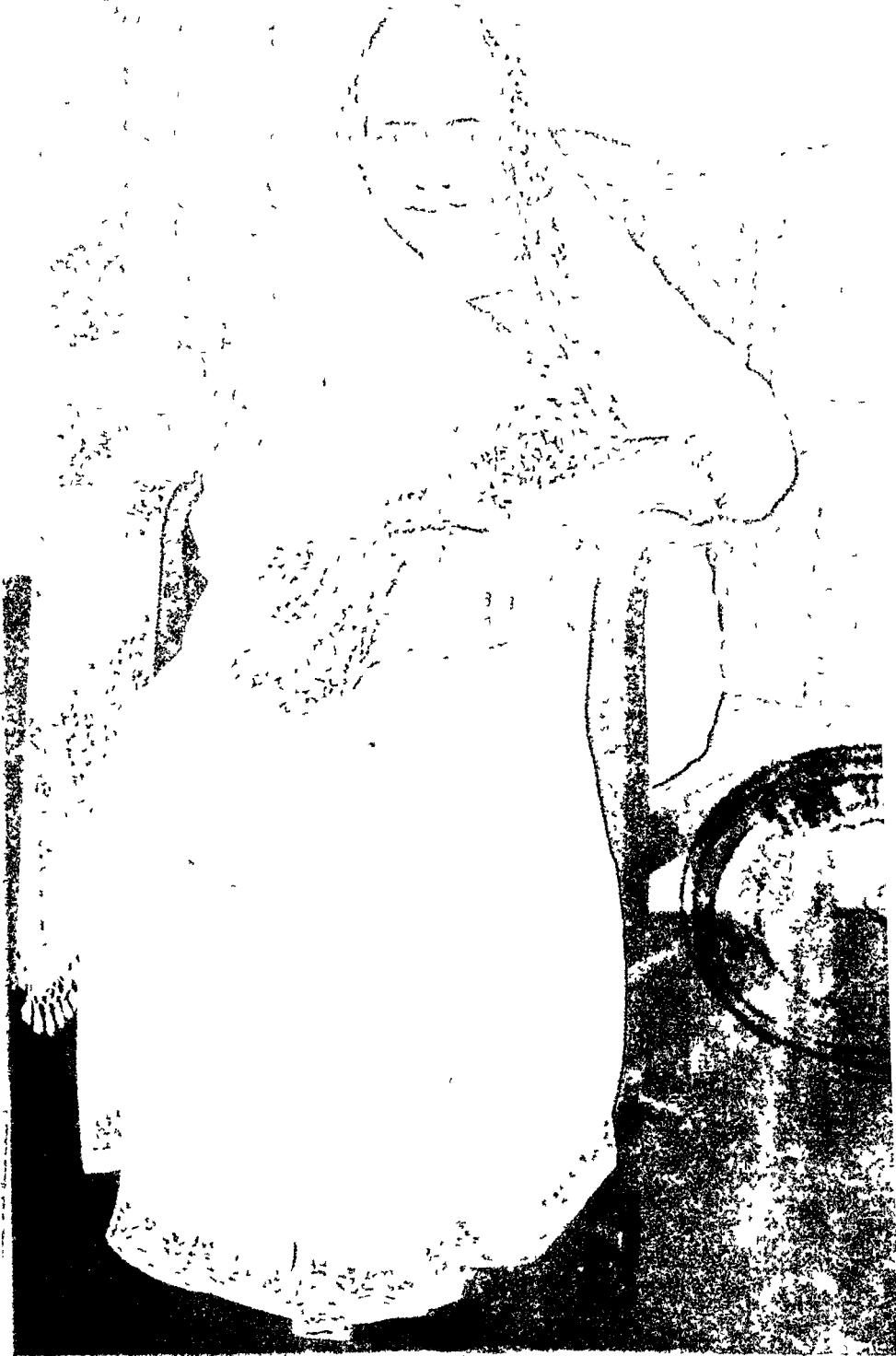
VAḌḌHAMĀṆA-CARIU

of

VIBUHA SIRIHARA

[The First Independent Apabhraṁśa Work of the 12th Century V. S. on the life of Lord Mahāvīra]

Critically Edited from Rare Mss. Material for the First time with an Exhaustive Introduction variant Readings, Hindi Translation, Appendices and Glossary.

by

Dr. RAJA RAM JAIN, M. A.(Double), Ph. D., Jaina Itihāsratna.
[V. N. B. Prize-Winner and Gold-Medalist]
Head of the Deptt. of Sanskrit & Prakrit
H. D. Jain College ARRAH, [Bihar, India]
[Under Magadh University Services]
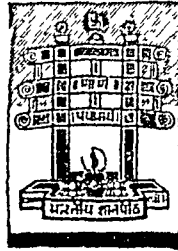
BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪṬHA PUBLICATION

VĪRA SAṀVATA 2501 : V. SAṀVATA 2032 : A. D. 1975
First Edition : Price Rs. 27/-

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪṬHA MŪRTIDEVĪ
JAINA GRANTHAMĀLĀ

FOUNDED BY

SAHU SHANTI PRASAD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE BENEVOLENT MOTHER

SHRĪ MŪRTIDEVĪ

IN THIS GRANTHAMĀLĀ CRITICALLY EDITED JAIN AGAMIC, PHILOSOPHICAL, PAURĀṆIC, LITERARY, HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS AVAILABLE IN PRĀKṚTA, SAMSKṚTA, APABHRAṀŚA, HINDI, KANNAḌA, TAMIL, ETC, ARE BEING PUBLISHED IN THEIR RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR TRANSLATIONS IN MODERN LANGUAGES

AND

CATALOGUES OF JAINA-BHANDĀRAS, INSCRIPTIONS, STUDIES OF COMPETENT SCHOLARS & POPULAR JAINA LITERATURE ARE ALSO BEING PUBLISHED.

General Editors

Dr. A N. Upadhye, M. A., D. Litt.
Siddhantacharya Pt. Kailash Chandra Shastri

Published by

Bhāratīya Jñānapīṭha

Head office : B/45-47, Connaught Place, New Delhi-110001
Publication office · Durgakund Road, Varanasi-221005.

Founded on Phalguna Krishna 9, Vira Sam. 2470, Vikrama Sam. 2000, 18th Feb., 1944

समर्पण

जिनका सारा जीवन शौरसेनी-प्राकृतागमोंके उद्धार तथा प्रकाशनका
सजीव इतिहास है,

जिनके निर्भीक व्यक्तित्वमें श्रमण-संस्कृतिको निरन्तर
अभिव्यक्ति मिलती रही है,

जिनका रोम-रोम श्रमण-साहित्यकी सेवामें समर्पित रहा है,

जो नवीन पीढ़ीके साधन-विहीन उज्ञिनीपुओंके लिए सतत
कल्पवृक्ष रहते आये हैं,

—भारतीय-वाङ्मयके गौरव तथा बुन्देल-भूमिके उन्हीं यशस्वी सुत,
श्रद्धेय पूज्य **पण्डित फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्रीकी**
पुनीत सेवा में
भ. महावीरके २५००वे निर्वाण-वर्षमें पुष्पित यह
प्रथम श्रद्धा-सुमन
सादर समर्पित है।

विनयावनत—
राजाराम जैन

श्रद्धांजलि

'वड्ढमाणचरिउ'की इस अन्तिम सामग्रीको प्रेसमें भेजते समय हमारा हृदय शोक-सागरमें डूबा हुआ है, क्योंकि इस ग्रन्थके मूल-प्रेरक प्रो. डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्येका दिनाक ८-१०-७५ की रात्रिमें लगभग ९॥ बजे उनके निवासस्थल कोल्हापुरमें दुःखद निधन हो गया। इस दुर्घटनासे हम किंकर्तव्यविमूढ हैं। डॉ. उपाध्येने बडे ही स्नेहपूर्वक मुझे उत्साह एवं साहस प्रदान कर उक्त ग्रन्थको तैयार करनेकी आज्ञा दी थी, हमने भी उसे अपनी शक्ति भर प्रामाणिक और सुन्दर बनानेका प्रयास किया है। उन्होने अस्वस्थावस्थामें भी उसका General Editorial लिखा। वह 'वड्ढमाणचरिउ'का ऐतिहासिक मूल्यांकन तो है ही, साथ ही मेरे लिए भी उनका वह अन्तिम आशीर्वाद और मेरी साहित्यिक-साधनाके लिए सर्वश्रेष्ठ प्रमाण पत्र है। रइधू-ग्रन्थावली (१६ खण्डोमें प्रकाश्यमान) के साथ-साथ वे विबुध-श्रीधर ग्रन्थावली (३ खण्डोंमें) को भी अपने जीवन-कालमें ही प्रकाशित देखना चाहते थे। उन्होंने बडे विश्वास-पूर्वक यह भार मुझे सौंपा था। मैं भी उनकी उस अभिलाषाको पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा कर उन कार्योमें जुटा हुआ था, किन्तु कौन जानता था कि कलिकालका वह श्रुतधर विना किसी पूर्व-सूचनाके अकस्मात् ही हमसे छीन लिया जायेगा। उनके वियोगमें आज जैन-विद्या तो अनाथ हो ही गयी प्राच्य-विद्याका क्षेत्र भी सूना हो गया है। अपने शोकको शब्दोंमें बाँध पाना हमें सम्भव नही हो पा रहा है। काश, वे इस ग्रन्थको प्रकाशित रूपमें देख पाते। दिवंगत आत्माको हमारे शत-शत नमन।

—राजाराम जैन
सम्पादक

GENERAL EDITORIAL

The Bhāratīya Jñānapīṭha is a preeminent academic Institute of our country. It has achieved, during the last quarter of a century, quite worthy results in the form of learned publications in Sanskrit, Pāli, Prākrit, Apabhraṁśa, Tamiḷ and Kannaḍa. Most of them are equipped with critical Introductions embodying original researches which shed abundant light on many a neglected branch of Indian literature. The number of such publications, included in its Mūrtidevī and Mānikacandra Granthamālās, is more than one hundred and fifty. Most of these works are brought to light for the first time; and thus, some of them are rescued from oblivion. It has also published in its Lokódaya and Rāṣṭrabhāratī Granthamālās nearly four hundred titles in Hindi comprising almost all literary forms like novels, poems, short stories, essays, travels, biographies, researches, critical estimates etc. Through these literary pursuits, the Jñānapīṭha aims at giving impetus to creative writings in modern Indian languages. By their quality as well as by their appearance the Jñānapīṭha publications have won approbation and appreciation everywhere.

The Jñānapīṭha gives, every year, an Award to the outstanding literary work in the various recognised languages of India which is chosen to be the best creative literary piece of the specific period; and its author gets a prize of one lakh of rupees at a festive function.

The Jñānapīṭha which is so particular about the publication of ancient Indian literature and also in encouraging the progress of modern Indian literature cannot but take into account the 2500th Nirvāṇa Mahotsava of Bhagavān Mahāvīra, one of the greatest sons of India and one of the outstanding humanists the civilised world has ever produced. Naturally the Jñānapīṭha, among its plans to celebrate the occasion, has undertaken the publication of the biographies of Mahāvīra composed by earlier authors in different languages wherever possible even along with Hindi translation etc.

As a part of this programme have already been published a few works dealing with the biography and teachings of Bhagavān Mahāvīra : i) the *Vīrajiṇiṁda-cariu* (in Apabhraṁśa, edited by the late Dr. H. L. Jain); ii) the *Vīravardhamāna-carita* (in Saṃskrit, edited by Pt. Hiralal); iii) the *Vardhamāna-carita* (in Kannaḍa) of Padmakavi (A. D. 1528) edited by Shri B. S. Sannaih, Mysore; and iv) the *Vardhamāna*-purāṇa (in Kannaḍa) by Ācaṇṇa (*c.* 1190) along with the paraphrase in modern Kannaḍa and a learned Introduction by the well-known Kannaḍa scholar, Prof. T. S. Sham Rao, Mysore. Some monographs dealing with the biography of Mahāvīra, both in English and Hindi, have also been published.

The Jñānapīṭha is presenting here the *Vaḍḍhamāṇa-cariu* (VC)in Apabhraṁśa of (Vibudha) Śrīdhara who is to be distinguished from some other authors of the

same name. This topic is duly discussed by the editor in his Introduction, pp. 4 ff. Two of his works in Apabhraṁśa, the *Pāsaṇāhacariu* (PC) and *Vaddhamāṇacariu* are available; but his *Caṁdappahacariu* and *Saṁtiṇāha-cariu* (I. 2. 6) have not been discovered so far. Two other works, the *Bhavisayattakahā* and *Sukumāla-cariu* are also attributed to his authorship.

Vibudha Śrīdhara was born in the Agrawāla-kula; his mother was Vīlhā-devī and his father, Budha Golha Originally he lived in Hariyāṇā, and from there he migrated to Yoginīpura or Delhi. He composed his PC at the instance of Sāhu Naṭṭala of Delhi during the reign of Anaṅgapāla (III) of the Tomara dynasty, in the year *c.* 1132 A D. Sāhu Naṭṭala was a generous, pious and prominent Śrāvaka. He built a Jina-mandira in Delhi. He had business connections all over the country.

Śrīdhara composed his VC next year, i.e., in 1133 A.D. His patron Nemicandra was a resident of Vodāuva. He belonged to the Jāyasavāla-kula. He hailed from a pious family, and occupied a respectable position in the state. One day he requested Śrīdhara to compose for him the biography of Mahāvīra, the last Tīrthaṁkara like those of Candraprabha and Śāntinātha. That is how Śrīdhara undertook and completed the VC. At the close of each Saṁdhi, Nemicandra is complimented or blessed in a Saṁskrit verse; and the colophons at the close of the Saṁdhis specify his name (*siri-Nemicanda-aṇumannie*).

This VC is divided into 10 Saṁdhis and covers the earlier lives as well as the present life of Mahāvīra. The special features of this VC are its dignified descriptions, as in a Mahākāvya, of the Town, Battle etc. Śrīdhara's style is spiced with poetic flavours and with various sentiments, and his expression is quite fluent.

The editer of this poem, Dr. Rajaram Jain, has added a learned and exhaustive Introduction (in Hindi) in which most of the aspects of this poem are exhaustively covered, such as, the sources of the story, influence of earlier authors on Śrīdhara, the Mahākāvya characteristics of the poem, the poetic embellishments and flavours found in it, peculiaritis of the language, proverbs etc. used in the poem, and the socio-cultural, administrative, religious and historical data found in the poem.

Dr. Rajaram Jain is specialised in Apabhraṁśa. He has studied Raidhū and his Apabhraṁśa works quite exhaustively; and his doctoral dissertation on the same is published by the Vaishali Institute, Vaishali (Bihar). He has on hand an edition of all the works of Raidhū in Apabhraṁśa; and the Raidhū Granthāvali, Vol. I, would be out soon from Sholapur Maharastra, India in the Jīvarāja Jaina Granthamālā.

Dr. Rajaram, has edited this work quite carefully utilising the material available to him from three Mss., so far known. More attention, of course, was needed in presenting the compound expressions precisely either by joining the words or by separating them with short hyphens (See, for instance, I. 3.14, III, 1.3-5; V.5.8, V.23 (*puṣpikā* and the Sanskrit verse); VI.19 (*puṣpikā* and the Sanskrit verse); VII. 17 (*puṣpikā* and the Sanskrit verse), VIII. 17 (as above). etc. These would be duly attended to in the next edition.

Dr. Rajaram has not only brought out an unpublished Apabhraṁśa text, but has also equipped it with a learned Introduction, a careful Hindi Translation and other useful accessories. The General Editors are very thankful to him. It is hoped

that he would bring out editions of many more Apabhraṁśa works which are still lying in Mss.

We are very grateful to the authorities of the Bhāratīya Jñānapīṭha especially to its enlighted President, the late Smt. Ramadevi Jain and to its benign Patron, Shriman Sahu Shanti Prasadaji for arranging the publication of this work during the 2500th Nirvāṇa Mahotsava year in honour of Bhagavān Mahāvīra. It is through their generosity that a number of rare works in Sanskrit, Prākrit, Apabhraṁśa etc. have seen the light of day. Our thanks are due to Shri Lakshmi Chandra Jain who is enthusiastically implementing the scheme of publications undertaken by the Jñānapīṭha.

The authorities of the Sanmati Mudranālaya, Vārāṇasi, are doing their best to bring out these works in a neat form; and we owe our thanks to them as well.

Manasa Gangotri
Mysore : 22-9-75

A. N. Upadhye
Kailash Chandra Shastri

Varanasi.

P. S.—It is with a heavy heart that the General Editors remember with gratitude the late lamented Smt. Rama Jain who was the live spirit behind all the activities of the Jñānapīṭha. Her sad demise (22-7-75) is an irreparable loss to the Jñānapīṭha family. May her Soul rest in Peace ! .

A. N. Upadhye

मूल्यांकन

बारहवीं शताब्दीके अपभ्रंश-ग्रन्थ 'वड्ढमाणचरिउ' का सम्पादन और अनुवाद कर डॉ. राजाराम जैनने एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। विबुध श्रीधर विरचित यह ग्रन्थ सम्भवतः महावीर-चरितसे सम्बद्ध पहली स्वतन्त्र रचना है। अतः भाषा, रचना-रीति और अनाविल कथ्यकी दृष्टिसे इतने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थको वृहत्तर पाठक-समुदायके समक्ष प्रस्तुत करनेके इस स्तुत्य प्रयासकी हम सराहना करते हैं और सम्पादक तथा प्रकाशक—दोनों का वर्द्धापन करते हैं।

विद्वान् सम्पादकने सूक्ष्मेक्षिकापूर्ण विस्तृत प्रस्तावनामें 'वड्ढमाणचरिउ'की जो प्रमाणपुष्ट और सारगर्भ विवेचना की है, वह शोधार्थियोंके लिए बहुत उपयोगी है। प्रति-परिचय, ग्रन्थकार-परिचय, काल-निर्णय, आश्रयदाता, मूल कथानक, परम्परा और स्रोत, अलंकार-विधान, रस-परिपाक तथा दर्शन और सम्प्रदायपर प्रभूत सामग्री देकर सम्पादकने पाठ-सम्पादन की उच्चस्तरीय शिल्प-विधिका निर्माण किया है, जो वैदुष्यपूर्ण होनेके कारण अनुकरणीय है।

रचना-रीतिकी दृष्टिसे यह लक्ष्य करने योग्य है कि 'वड्ढमाणचरिउ'की रचना सन्धियोंमें की गयी है तथा इसके छन्दोविधानमें कड़वक-घत्ता-शैली अपनायी गयी है। एक ओर मंगल-स्तुति और ग्रन्थ प्रणयन-प्रतिज्ञासे ग्रन्थ-रचनाके मध्यकालीन-स्थापत्यका पता चलता है, तो दूसरी ओर सितछत्रा नगरके ललित वर्णनसे वर्णक-साहित्य-परम्परामें प्रचलित नगर-वर्णन-प्रणालीका प्रभाव परिलक्षित होता है।

इस प्रकार अनेक दृष्टियोंसे अध्येतव्य ऐसे रोचक ग्रन्थको पाठक-समुदायका स्नेह-समादर मिलेगा—यह मेरा सहज विश्वास है।

१८-९-७५

—*डॉ. कुमार विमल*

भू. पू. हिन्दी विभागाध्यक्ष—पटना कालेज,

तथा

सदस्य—बिहार पब्लिक सर्विस कमीशन—पटना

शुद्धि-पत्र

पृ.	कड.	पं.	अशुद्ध	शुद्ध
१४	१२	१४	समिउ	सामिउ
१७	१४	१४	मं	में
२२	२	७	जिवित्तु	जि वित्तु
२४	२	१०	मज्जए	भज्जए
२४	३	६	वाह	वाहु
२५	३	१	स्वामी	स्वामी के
२८	७	१०	दाढलउ	दाढालउ
३१	९	५	संयत	संजय
३२	११	९	गज्जमाण	गिज्जमाण
३६	१४	११	विरत्तुण	विरत्तु ण
३६	१५	२	जावतओ	जाव तओ
३६	१५	१०	गुरूहविही	गुरु हविही
३६	१५	१२	तित्थुखणे	तित्थु खणे
३८	१६	१०	गेव्हे.	गेण्हे
३८	१७	८	वालुवि.	वालु वि-
३९	—	—	१	२
४०	१९	६	सत्यि.	सत्ति.
४९	अन्तिम पंक्ति		पथिवी	पृथिवी
४८	२	९	जिणुद्धव	जिणुच्छत्व
४८	४	२	भाइहे	भाइह
५०	४	११	जुवराउण	जुवराउ ण
५८	१३	२	पइँसिहुँ	पइँ सिहुँ
६०	१४	२	अव्वरिउ	अच्चरिउ
६०	१४	६	किंकरइ	किं करइ
६३	१७	३	घुन घुन	घुन-घुन
६३	१७	१०	वैरी	वैरी
६७	२२	शीर्षक	विशाखनन्दि	विशाखभूति
६८	२२	७	गौरी	गोरी
६८	२३	१३	वालेणवि	वालेण वि
७०	२५	१३	तार्कि	ता कि
७६	३१	८	इंदुभासिवि	इंदु भासिवि
७८	संस्कृत श्लोक		सङ्का	शङ्का
८८	७	९	रिउण	रिउ ण
८८	८	११	सोमुवि कोविण	सो मुवि को वि ण
९०	९	६	मइजिहँ	मइ जिहँ
९०	९	१२	माकरहिँ	मा करहिँ
९०	१०	४	अकज्जेण	अकज्जे ण
९२	१०	११	णंगिं.	णं गिं.
९६	१५	६	पिनण्णु	पि नण्णु
१००	१७	११	तेणजि	तेण जि
१०२	१९	१२	परिघिवइ	परिछिवइ
१०२	२०	५	नग यणु	न गयणु
१०६	२४	७	परिपाण	परियाण
१०८	२४	१३	मिच्चयणु	भिच्चयणु
११०	२	१	साकुल	सा कुल
११०	२	२	पडि गाहिय	पडिगाहिय
११२	३	१३	विहिएह	विहि एह
११४	५	२	विछडा	वि छडा
११४	५	३	खयरुकेह	खयरु केह
११६	५	१०	ननियइ	न नियइ
११८	७	५	तो लियइ	तोलियइ
१२३	११	शीर्षक	वन्दो	वन्दी
१२६	१४	१२	णासु वारहो	णासुवारहो
१२९	१५	४	भुग्दर	मुद्गर
१२९	१५	८	अस्त्राकार	भस्त्राकार
१३६	२२	२	तहोहुव	तहो हुव
१३८	२३	१६	रेण	रे ण
१३९	२३	२४	चक्रसे	× ×
१४४	५	५	पिवि.	पिहि.
१४४	६	१०	भाउण	भाउ ण

पृ.	कड.	पं.	अशुद्ध	शुद्ध
१५२	—	—	५	६
१५४	१६	२	पविउलुवि	पविउलु वि
१५६	१८	१२	सम्मत्त हो	सम्मत्तहो
१५८	संस्कृत श्लोक	२	सद्वंध	सद्वन्धु
१६०	१	९	विस	वि स
१६०	२	६	तित्थमलि ण मुह	तित्थ मलिणमुह
१६४	४	२	१९	१०
१७०	११	५	तणउं	तणउँ
१७२	१३	३	वण्य	वण्ण
१७७	२	५	अयमहुरत्तणु	अय महुरत्तणु
१८२	५	२	विण	वि ण
१८५	६	१	सुसिर	सुषिर
१९०	१३	१३	पणवे वि	पणवेवि
१९०	१३	१३	पोढिसु	पोढिलु
१९२	१५	८	साहुचंदु	साहु चंदु
१९४	१६	१२	सहइरवि	सहइ रवि
१९६	संस्कृतश्लोक	३	व्योम्नि]	व्योम्नि]पूर्णचन्द्रः
१९६	४		पूर्णचन्द्रः प्रशस्यते	प्रशस्यते
२००	३	६	सह संसु	सहसंसु
२०१	२	१२	शैलीन्द्र	शैलीन्ध्र
२०५	६	१६	नकर	सुनकर
२०६	८	१३	तहेथणइँ	तहे थणइँ
२०८	१०	७	जाणि ऊण	जाणिऊण
२२२	२३	११	गंधउ इहिँ	गंधउहहिँ
२२५	शीर्पक	—	सन्धी	सन्धि
२३२	८	१	कुरिक	कुक्खि
२३३	८	२	गोमिन्	गोभिन्
२३४	८	१२	पंचमेय	पंचभेय
२४०	१२	८	अवजाढउ	अवगाढउ
२४६	१८	१०	१५	१०
२५०	२१	१५	घम्महिँ	धम्महिँ
२५१	२१	२१	घम्मा	धम्मा
२७२	३८	९	नारिस	ना रिस
२७६	४०	१८	सोमिचंद	णेमिचंदु
२७६	४१	८	सएणवहिँ	सएं-णवहिँ
२७७	४१	३	करनेवाले नरश्रेष्ठ	करनेवाली महिलारत्न

विषय-सूची [प्रस्तावना]

वड्ढमाणचरिउ (ब्यावर-प्रति) का प्रथम पत्र

प्रस्तावना

श्रमण महावीरके २५००वें निर्वाण-समारोहके आयोजनकी अग्रिम कल्पना जिन विचारक कर्णधारों-के मनमे उदित हुई वे सचमुच ही साहित्यिक एवं दार्शनिक जगत्‌की प्रशंसाके पात्र हैं। वर्षो पूर्व उन्होने विविध पद्धतियोंसे अनेकविध विचार-विमर्श किये, तत्पश्चात् उक्त आयोजनको उन्होने समयानुसार मूर्तरूप प्रदान कर एक महान् ऐतिहासिक कार्य किया है। इस आयोजनकी अनेक उपलब्धियोमें-से एक सर्वप्रमुख उपलब्धि यह रही कि उसमें भगवान् महावीरके अद्यावधि अप्रकाशित चरित-ग्रन्थोके प्रकाशनकी भी योजनाएँ बनायी गयी। इसके अन्तर्गत कुछ ग्रन्थोका प्रकाशन तो हो चुका है और कुछका मुद्रण-कार्य चल रहा है। प्रस्तुत 'वड्ढमाणचरिउ' उसी योजनाका एक अन्यतम पुष्प है।

प्रति-परिचय

उक्त 'वड्ढमाणचरिउ' की कुल मिलाकर ३ हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं, जो राजस्थानके ब्यावर, झालरापाटन और दूणीके जैन शास्त्र-भण्डारोंमें सुरक्षित हैं। उन्हे क्रमशः V. J. तथा D. संज्ञा प्रदान की गयी है। दुर्भाग्यसे ये तीनों प्रतियाँ अपूर्ण हैं। J. (झालरापाटन) प्रतिका उत्तरार्द्ध एवं बीच-बीचमें भी कुछ अंश अनुपलब्ध हैं। कुछ विशेष कारणोसे उसकी मूल प्रति तो हमें उपलब्ध नही हो सकी, किन्तु उसकी प्रतिलिपि श्रद्धेय अगरचन्द्रजी नाहटाकी महती कृपासे उपलब्ध हो गयी थी, अतः उसी रूपमे उस प्रतिका उपयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त उपर्युक्त V. (ब्यावर) प्रति तथा D. (दूणी) प्रति उपलब्ध हो गयी, जिनका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है—

D. प्रति

प्रस्तुत प्रति अजमेर (राजस्थान) के समीपवर्ती दूणी नामक ग्रामके एक जैन-मन्दिरमें सुरक्षित है। इसकी कुल पत्र-संख्या ९५ है, जिनमें-से ९३ पत्र तो प्राचीन है, किन्तु पत्र-संख्या ९४ एव ९५, नवीन कागज-पर मूल एवं आधुनिक लिपिमें लिखकर जोड़ दिये गये हैं। आदर्श प्रतिमे भी अन्तिम पत्र अनुपलब्ध रहनेसे इसमें प्रतिलिपिकार, प्रतिलिपि-स्थान एवं प्रतिलिपि काल आदिके उल्लेख नही मिलते। इस प्रतिका प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

ॐ नमो वीतरागाय ॥छ॥ परमेट्ठिहे पविमलदिट्ठिहे चलण नवेप्पिणु वीरहो......।

और अन्त इस प्रकार होता है—

विवुह सिरि सुकइ सिरिहर विरइए साहु सिरि णेमिचंद अणुमण्णिए वीरणाह णिव्वाणागम......इसके वादका अंश अनुपलब्ध है।

प्रस्तुत प्रतिके पत्रोकी लम्बाई १०.६" तथा चौड़ाई ४.३" है। प्रति पृष्ठमें १०-१० पंक्तियाँ एवं प्रति पंक्तिमें वर्ण-संख्या ३७ से ४३ के मध्य है।

यह प्रति अत्यन्त जीर्णावस्थामें है और इसमें लिखावटकी स्याही उकरने एवं फैलने लगी है।

इस ग्रन्थका प्रथम पत्र अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण हो जानेके कारण उसे एक सादे कागजपर चिपका दिया गया है। ग्रन्थका मूल-विषय काली स्याही तथा घत्ता एवं उसकी संख्या और पुष्पिका लाल स्याहीमें अंकित है। पत्र-संख्या प्रत्येक 'अ' पत्रकी बायी ओर हाँसियेमें नीचेकी ओर अंकित है।

D. प्रतिकी विशेषताएँ

१. इस प्रतिमें नकारके स्थानपर नकार और णकार दोनोके प्रयोग मिलते है।

२. अशुद्ध मात्राओको मिटानेके लिए सफेद रगका प्रयोग तथा भूलसे लिखे गये अनपेक्षित शब्दोके सिरेपर छोटी-छोटी खडी ३-४ रेखाएँ खीच दी गयी है।

३. भूलसे छूटे हुए पदो अथवा वर्णोको हंस-पद देकर उन्हें हाँसियेमें लिखा गया है तथा वहाँ सन्दर्भ-सूचक पंक्ति-संख्या अंकित कर दी गयी है। यदि छूटा हुआ वह अंश ऊपरकी ओरका है तो वह ऊपरी हाँसियेमें, और यदि नीचेकी ओरका है तो वह नीचेकी ओर, और वहीपर पंक्ति-संख्या भी दे दी गयी है। हाँसियेमे अंकित पदके साथ जोड़ (+) का चिह्न भी अंकित कर दिया गया है। कही-कही किसी शब्दका अर्थ भी हाँसियेमें सूचित किया गया है और उस पदके नीचे सुन्दरताके साथ बराबर (=) का चिह्न अंकित कर दिया है।

४. ढु और नु की लेखन-शैली बडी ही भ्रमात्मक है। वह ऐसी प्रतीत होती है, मानो 'ह' लिखा गया हो।

५. 'घ' में उकारकी मात्रा 'घ' के नीचे न लगाकर उसके बगलमें लगायी गयी है। उदाहरणार्थ 'घुत्तु'के लिए 'घ' में 'उ' की मात्रा इस प्रकार लगायी है जैसे 'र' में 'उ' की मात्रा लगाकर 'रु' बनाते है। (दे. पत्र-सं. ४ अ, पंक्ति ३; १।७)

६. ह्रस्व ओकारको विशिष्ट उकारके रूपमें दर्शाया गया है जो सामान्य उकारसे भिन्न है।

७ संयुक्त णकारको 'ण' के बीचमे ही एक बारीक आडी रेखा डालकर दर्शाया गया है।

V. प्रति-परिचय

यह प्रति ब्यावर (राजस्थान) के श्री ऐलक पन्नालाल दि. जैन सरस्वती भवनमें सुरक्षित है। इसमें कुल पत्र-सं. ८६ है। यह प्रति अपूर्ण है। इसमें अन्तिम पृष्ठ उपलब्ध नही है, इस कारण प्रतिलिपिकार, प्रतिलिपिस्थान एवं प्रतिलिपिकालका पता नही चलता। ग्रन्थका आरम्भ इस प्रकार हुआ है—

"ॐ नमो वीतरागाय ॥छ॥ परमेट्ठिहे पविमलदिट्ठिहे चलण नवेप्पिणु वीरहो.......।"

और इसका अन्त इस प्रकार होता है—

"इय सिरिवड्ढमाणतित्थयरदेवचरिए पवरगुणरयणणियरभरिए विवुहसिरिसुकइसिरिहरविरइए साहु सिरिणेमिचंदअणुमण्णिए वीरणाहणिव्वाणागम......." इसके बाद का अंश J. एवं D. प्रतिके समान इस प्रतिमें भी अनुपलब्ध है।

प्रस्तुत प्रतिमें स्याहियोका प्रयोग D. प्रतिके समान ही प्रयुक्त है। यह प्रति अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण है तथा उसके अक्षर फैलने लगे है। कुछ पत्र पानी खाये हुए है। इस ग्रन्थके बीचोबीच समान रूपसे प्रत्येक पत्रके दोनो ओर कलात्मक-पद्धतिसे चौकोर स्थान रिक्त छोडा गया है, जो सम्भवतः ग्रन्थको सुव्यवस्थित बनाये रखनेके लिए जिल्दबन्दीके विचारसे खाली रखा गया होगा।

उक्त प्रतिके पत्रोकी लम्बाई १०.३" एवं चौडाई ४.४" है। प्रति पृष्ठमें पंक्ति-संख्या ११-११ और प्रति पंक्तिमे वर्ण-संख्या ४५ से ४७ के बीचमें है। ग्रन्थके पत्रोंका रंग मटमैला है।

V. प्रति की विशेपताएँ

१. कही-कहीं पदके आदिमें 'ण'के स्थानमें 'न'का प्रयोग किया गया है।

२. भूलसे छूटे हुए पाठांशोके लिए हंस-पद देकर ऊपर या नीचेकी ओरसे गिनकर पंक्ति-संख्या तथा जोड़ (+) के चिह्नके साथ उसे ऊपरी या निचले हाँसियेमे अंकित कर दिया गया है।

३. अशुद्ध वर्णो या मात्राओको सफेद रंगसे मिटाया गया है।

४. 'क्ख' की लिखावट 'रक' (पत्र-सं. २६ ब, पंक्ति ७) एवं 'ग्ग' को 'ग्र' (पत्र-सं. ४८ अ, पं. ५) के समान लिखा है।

५. अनावश्यक रूपसे अनुस्वारके प्रयोगकी वहुलता है।

६. इस प्रति की एक विशेपता यह है (जो कि प्रतिलिपिकारकी गलतीसे ही सम्भावित है) कि इसमें 'विसाल' के लिए 'विशाल' (पत्र सं. ६३ ब, प. १. ९।४।६) एवं 'पुप्फ' के लिए 'पुष्प' (पत्र-सं ६२ व, पं. ८; ९।५।६) के प्रयोग मिलते है। 'पुष्प' वाला रूप D. प्रतिमे भी उपलब्ध है।

इस प्रकार उपर्युक्त तीनों प्रतियाँ न्यूनातिन्यून अन्तर छोडकर प्रायः समान ही है। तीनो प्रतियोमे अन्तिम पृष्ठ उपलब्ध न होनेसे उनके प्रतिलिपिकाल एवं स्थान आदिका पता नही चलता, फिर भी उनकी प्रतिलिपिको देखकर ऐसा विदित होता है कि वे ४००-५०० वर्ष प्राचीन अवश्य है। उनकी प्रायः समरूपता देखकर यही विदित होता है कि उक्त तीनो प्रतियोमें-से कोई एक प्रति अवशिष्ट प्रतियोके प्रतिलेखनके लिए आधार-प्रति रही है। मेरा अनुमान है कि D. प्रति सवसे वादमें तैयार की गयी होगी क्योंकि उस (के पत्र सं. ४६ व, पं. ८; ५।१६।१२) में 'कज्जिसमण्णु.......अण्णु' के लिए 'कज्जी समण्णु अण्णु' पाठ मिलता है, जवकि V. प्रति (के पत्र-सं. ४० व, पं. ८-९; ५।१६।१२) में वही पाठ 'कज्जी समण्णु...अण्णु' अंकित है। वस्तुतः V. प्रतिका पाठ ही शुद्ध है। D. प्रतिका प्रतिलिपिकार इस त्रुटित पाठ तथा उसके कारण होनेवाले छन्द-दोषको नही समझ सका। इसी कारण वह प्रति अन्य प्रतियोकी अपेक्षा परवर्ती प्रतीत होती है।

ग्रन्थकार-परिचय, नाम एवं काल-निर्णय

'वड्ढमाणचरिउ'में उसके कर्ता विवुध श्रीधरका सर्वांगीण जीवन-परिचय जाननेके लिए पर्याप्त सन्दर्भ-सामग्री उपलब्ध नही है। कविने अपनी उक्त रचनाकी आद्य एवं अन्त्य प्रशस्तिमे मात्र इतनी ही सूचना दी है कि वह गोल्ह[1] (पिता) एवं वील्हा[2] (माता) का पुत्र है तथा उसने वोदाउव निवासी जायस कुलोत्पन्न नरवर एवं सोमा अथवा सुमति के पुत्र[3] तथा वीवा (नामकी पत्नी) के पति नेमिचन्द्रकी[4] प्रेरणासे असुहर ग्राम[5] में बैठकर 'वड्ढमाणचरिउ' की वि. सं. ११९० की ज्येष्ठ मासकी शुक्ला पंचमी सूर्यवारके दिन रचना की है[6]। इस रचनामें उसने अपनी पूर्ववर्ती अन्य दो रचनाओके[7] भी उल्लेख किये है, जिनके नाम है—चंदप्पहचरिउ एवं संतिजिणेसरचरिउ। किन्तु ये दोनो ही रचनाएँ अद्यावधि अनुपलब्ध है। हो सकता है कि उनकी प्रशस्तियोंमें कविका जीवन-परिचय विशेष रूपसे उल्लिखित हुआ हो? किन्तु यह तो इन रचनाओकी प्राप्तिके अनन्तर ही ज्ञात हो सकेगा। प्रस्तुत कृतिमें कविने समकालीन राजाओ अथवा अन्य किसी ऐसी घटनाका भी उल्लेख नही किया कि जिससे उसके समग्र जीवनपर कुछ विशेष प्रकाश पड़ सके।

---

१. वड्ढमाण, १।३।२।
२. वही, १०।४१।५।
३-४. वही, १।२।१-४; १।३।१-३; १०।४१।१-५।
५. वही, १०।४१।४।
६. वही, १०।४१।७-६।
७. वही, १।२।६।

१. श्रीधर नामके ज्ञात आठ कवियोंमे से 'वड्ढमाणचरिउ'का कर्ता कौन ?

प्रस्तुत 'वड्ढमाणचरिउ' के कर्ता विबुध श्रीधरके अतिरिक्त संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश-साहित्यमें श्रीधर नामके ही सात अन्य कवि एवं उनकी कृतियाँ भी ज्ञात एवं उपलब्ध हैं। अतः यह विचार कर लेना आवश्यक है कि क्या सभी श्रीधर एक हैं अथवा भिन्न-भिन्न ? इन सभी श्रीधरोका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है—

१. पासणाहचरिउ (अपभ्रंश) के कर्ता बुध श्रीधर।
२. वड्ढमाणचरिउ (अपभ्रंश) के कर्ता विबुध श्रीधर।
३. सुकुमालचरिउ (अपभ्रंश) के कर्ता विबुध श्रीधर।
४. भविसयत्तकहा (अपभ्रंश) के कर्ता विबुध श्रीधर।
५. भविसयत्तपंचमीचरिउ (अपभ्रंश) के कर्ता विबुध श्रीधर।
६. भविष्यदत्तपंचमी कथा (संस्कृत) के कर्ता विबुध श्रीधर।
७. विश्वलोचनकोश (संस्कृत) के कर्ता श्रीधर।
८. श्रुतावतारकथा (संस्कृत) के कर्ता विबुध श्रीधर।

उक्त आठ श्रीधरोमें-से अन्तिम आठवें विबुध श्रीधरका समय अनिश्चित है। किन्तु उनकी रचना—'श्रुतावतारकथा'[1] भाषा एवं शैलीकी दृष्टिसे नवीन प्रतीत होती है। उनकी इस रचनाके अधिकांश वर्णनोंमें कई ऐतिहासिक त्रुटियाँ भी पायी जाती हैं, जो अनुसन्धानकी कसौटीपर खरी नही उतरतीं[2]। इनका समय १४वी सदीके बादका प्रतीत होता है। अतः ये विबुध श्रीधर 'वड्ढमाणचरिउ' के कर्तासे भिन्न प्रतीत होते हैं।

सातवें 'विश्वलोचनकोश'[3] के कर्ता श्रीधरके नामके साथ 'सेन' उपाधि संयुक्त होनेके कारण यह स्पष्ट है कि वे 'सेन-गण' परम्पराके कवि थे। उन्होने अपनी ग्रन्थ-प्रशस्तिमें अपनेको 'मुनिसेन' का शिष्य कहा है। ये मुनिसेन सेन-गण परम्पराके प्रमुख आचार्य, कवि एवं नैयायिक थे। उनके शिष्य श्रीधरसेन नानां शास्त्रोके पारंगत विद्वान् थे तथा बड़े-बड़े राजागण उनपर श्रद्धा रखते थे[4]। विश्वलोचनकोश अथवा नानार्थकोश श्रीधरसेनकी दैवी प्रतिभाका सबसे बड़ा प्रमाण है। वर्ग एवं वर्णक्रमानुसार वर्गीकृत पद्धति में लिखित यह कोश अपने क्षेत्रमें सम्भवतः प्रथम ही है। दुर्भाग्यसे कविने उसमें अपने जन्मकालादि की सूचना नही दी है। वि. सं. १६८१ में सुन्दरगणि द्वारा लिखित 'धातुरत्नाकर' में 'विश्वलोचनकोश' का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त इसपर विश्वप्रकाश (वि. सं. ११६२), एवं मेदिनीकोश (१२वी सदीका उत्तरार्ध) का प्रभाव लक्षित होता है[5] अतः विश्वलोचनकोशकार—श्रीधर का समय १३-१४वी सदी सिद्ध होता है। इस कारण ये श्रीधरसेन निश्चय ही 'वड्ढमाणचरिउ' के रचयितासे भिन्न हैं।

---

१. माणिकचन्द्र दि० जैन ग्रन्थमाला (सं. २१) बम्बई (१९२२ ई.) की ओरसे प्रकाशित तथा 'सिद्धान्तसारादिसंग्रह'में संकलित पृ. सं. ३१६–१८।
२. जैन साहित्य और इतिहासपर विशद प्रकाश, (जुगलकिशोर मुख्तार) कलकत्ता, (१९५६), पृ. ५९८।
३. नाथारग गाँधी आकलूज द्वारा प्रकाशित (१९१२ ई.)।
४. सेनान्वये सकलसत्त्वसमर्पितश्री' श्रीमानजायत कविर्मुनिसेननामा।
आन्वीक्षिकी सकलशास्त्रमयी च विद्या यस्यासवादपदवी न दवीयसी स्याव् ॥१॥
तस्मादभूदखिलवाङ्मयपारदश्वा विश्वासपात्रमवनीतलनायकानाम्।
श्रीश्रीधर सकलसत्कविगुम्फितत्त्व-पीयूषपानकृतनिर्जरभारतीक' ॥२॥
तस्यातिशायिनि कवेः पथि जागरूक-धीलोचनस्य गुरुशासनलोचनस्य।
नानाकवीन्द्ररचितानभिधानकोशानाकृष्य लोचनमिवायमदीपि कोश' ॥३॥
—विश्वलोचनकोश, भूमिका, पृ. ३।
५. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, ४।६१।

छठी 'भविष्यदत्तपंचमीकथा' एक संस्कृत रचना है। उसकी प्रशस्तिमें कवि-परिचयसम्बन्धी कोई भी सामग्री प्राप्त नही होती। दिल्लीके एक शास्त्र-भण्डारमें इसकी एक अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण प्रतिलिपि प्राप्त हुई है, जिसका प्रतिलिपिकाल वि. सं. १४८६ है[१]। इससे यह तो स्पष्ट है कि ये विबुध श्रीधर वि. सं. १४८६ के पूर्व हो चुके है, किन्तु मूल प्रतिको देखे विना इस रचनाके रचनाकारके विषयमें कुछ भी निर्णय लेना सम्भव नही। फिर भी जबतक इस कविके विपयमें अन्य जानकारी प्राप्त नहीं हो जाती तबतकके लिए अस्थायी रूपसे ही सही, यह अनुमान किया जा सकता है कि चूँकि इस रचनाके रचनाकार संस्कृत-कवि थे अतः वे 'वड्ढमाणचरिउ' के अपभ्रंश-कवि विबुध श्रीधरसे भिन्न है।

पाँचवे विबुध श्रीधरके 'भविसयत्तपंचमीचरिउ' का रचनाकाल ग्रन्थकारने अपनी प्रशस्तिमें स्वयं ही वि. सं. १५३० अंकित किया है,[२] इससे यह स्पष्ट है कि ये विबुध श्रीधर 'वड्ढमाणचरिउ' के १२वी सदीके रचयिता विबुध श्रीधरसे सर्वथा भिन्न है।

चौथे विबुध श्रीधरकी रचना 'भविसयत्तकहा' की अन्त्य-प्रशस्तिमें कविने उसका रचनाकाल वि. सं. १२३० स्पष्ट रूपसे अंकित किया[3] है तथा लिखा है कि—"चन्दवार-नगरमें स्थित माथुरकुलीन नारायणके पुत्र तथा वासुदेवके बड़े भाई सुपट्टने कवि श्रीधर से कहा कि आप मेरी माता रुप्पिणीके निमित्त 'पंचमी-व्रत-फल' सम्बन्धी 'भविसयत्तकहा' का निरूपण कीजिए[४]।"

तृतीय विबुध श्रीधरने अपने 'सुकुमालचरिउ' मे उसका रचना-काल विक्रम संवत् १२०८ अंकित किया है[५] तथा ग्रन्थ-प्रशस्तिके अनुसार उसने उसकी रचना वलडइ नामक नगरमें राजा गोविन्दचन्द्रके समयमें की थी[६]। यह रचना पीथे पुत्र कुमरकी प्रेरणासे लिखी गयी थी[७]। उक्त दोनों ग्रन्थो अर्थात् 'भविसयत्तकहा' और 'सुकुमालचरिउ' में कविने यद्यपि अपना परिचय प्रस्तुत नही किया, किन्तु ग्रन्थोकी भाषा-शैली, रचना-काल एवं कवियोके नाम-साम्यके आधारपर उन दोनोके कर्ता अभिन्न प्रतीत होते है।

द्वितीय विबुध श्रीधरपर इसी प्रस्तावनामें पृथक् रूपसे विचार किया गया है, और उसमें यह बताया गया है कि ये विबुध श्रीधर उपर्युक्त दोनों विबुध श्रीधरोंसे अभिन्न है।

प्रथम रचना—'पासणाहचरिउ' के कर्ता विबुध श्रीधरने इसकी प्रशस्तिमें अपना परिचय देते हुए अपने माता-पिताका नाम क्रमशः वील्हा एवं गोल्ह लिखा है।[८] उसने अपनी पूर्ववर्ती रचनाओंमे 'चन्द्रप्रभ-चरित[९]' का भी उल्लेख किया है। ये तीनो सूचनाएँ उक्त 'वड्ढमाणचरिउ' में भी उपलब्ध है।[१०] कविने 'पासणाहचरिउ' का रचनाकाल वि. सं. ११८९ (अर्थात् 'वड्ढमाणचरिउ' से एक वर्ष पूर्व) स्वयं बताया है।[११] प्रतीत होता है कि कविने 'संतिजिणेसरचरिउ' की रचना 'पासणाहचरिउ' की रचनाके बाद तथा 'वड्ढमाण-

---

१. सं. १४८६ वर्षे आषाढ वदि ७ गुरु दिने गोपाचल दुर्गे राजा डूँगरसीह राज्य प्रवर्त्तमाने श्री काष्ठासंघे माथुरान्वये पुष्करगणे आचार्यश्रीगुणकीर्तिदेवास्तच्छिष्य श्री यश:कीर्त्तिदेवास्तेन निजज्ञानावरणीकर्मक्षयार्थं इदं भविष्यदत्तपचमीकथा लिखापितं। दिल्ली प्रति।

२. पंचदह जि सय फुडु तीसाहिय……(१।४।७) आमेर प्रति।

३. बारहसय वरिसहिं परिगएहिं दुगुणिय पणरह वच्छर जुएहिं।
फागुण मासम्मि वलक्ख पक्खे दहिमिहि-दिणि-तिमिरुक्कर विवक्खे।
रविवार··· [दे. प्रस्तुत ग्रन्थका परिशिष्ट १ (ग)]

४. भविसयत्तकहा (अप्रकाशित) —१।२. [दे. इसी ग्रन्थका परिशिष्ट सं. १ (ग)]

५. सुकुमालचरिउ—(अप्रकाशित) ६।१३।१४-१५ [दे. इसी ग्रन्थकी परिशिष्ट सं. १ (ख)]

६. दे —वही, १।१।३-४।

७. दे.—वही, १।१।११।

८. पासणाहचरिउ (अप्रकाशित) १।२।३-४ [दे. इसी ग्रन्थकी परिशिष्ट सं. १ (क)]

९. वही, १।२।१।

१०. वड्ढमाण.—१।३।२; १०।४१।५; १।२।६।

११. पासणाह.—१२।१८।१०-१३।

चरिउ' की रचनाके पूर्व की होगी। कुछ भी हो, उक्त उल्लेखोंसे यह स्पष्ट है कि 'पासणाहचरिउ' और 'वड्ढमाणचरिउ' के विबुध श्रीधर एक ही हैं।

उक्त श्रीधरोंकी पारस्परिक-भिन्नता अथवा अभिन्नताके निर्णय करनेमें सबसे अधिक उलझन उपस्थित की है—श्रीधरकी 'विबुध' उपाधि ने। नानवें एवं प्रथम श्रीधरको छोड़कर बाकी सभी श्रीधर 'विबुध' की उपाधिसे विभूषित हैं। प्रथम श्रीधर 'बुध' एवं 'विबुध' दोनों ही उपाधियोंसे विभूषित हैं। अतः मात्र यह उपाधि-साम्यता ही उक्त कवियोंकी भिन्नाभिन्नताके निर्णयमें अधिक सहायक सिद्ध नहीं होती। उसके लिए उनका रचना-काल, भाषा एवं शैली आदिको भी आधार मानकर चलना होगा।

उक्त 'भविसयत्तकहा' और 'भविसयत्तचरिउ' के रचना-कालमें ३०० वर्षोंका अन्तर है। जैसा कि पूर्वमें कहा जा चुका है कि 'भविसयत्तकहा' का रचना-काल वि. सं. १२३० तथा 'भविसयत्तचरिउ' का रचनाकाल वि. सं. १५३० है। इन दोनोंके प्रणेताओंके नाम तो एक समान हैं ही, दोनोंके आश्रयदाताओंके नाम भी एक समान हैं। वह निम्न मानचित्रसे स्पष्ट है—
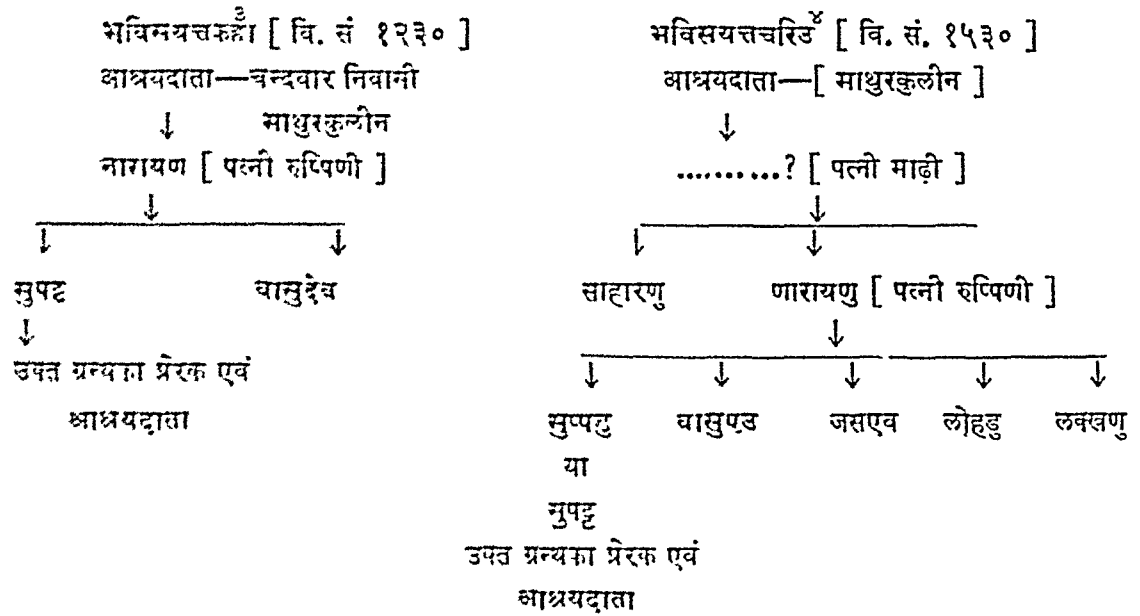
उक्त दोनों रचनाओंके शीर्षक एवं प्रशस्ति-खण्डोंके तुलनात्मक अध्ययनसे निम्न तथ्य सम्मुख आते हैं—

१. कथावस्तु दोनोंकी एक है। दोनों ही रचनाएँ अपभ्रंश-भाषामें हैं। मात्र शीर्षकमें ही आंशिक परिवर्तन है—एक 'भविसयत्तकहा' है तो दूसरी 'भविसयत्तचरिउ'।

२. दोनों रचनाओंके ग्रन्थ-प्रेरक एवं आश्रयदाता एक ही हैं। अन्तर केवल इतना है कि एकमें केवल दो पीढ़ियोंका संक्षिप्त परिचय तथा दूसरीमें तीन पीढ़ियोंका संक्षिप्त परिचय दिया गया है। जो उक्त मानचित्रसे स्पष्ट है।

३. कविका परिचय दोनों ही कृतियोंमें अनुपलब्ध है।

१-२. ये दोनों प्रतियाँ आमेर शास्त्र भण्डार जयपुरमें सुरक्षित हैं।
३. देखिए, इस ग्रन्थकी परिशिष्ट सं. १ (क)
४. देखिए, जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह (सम्पा. पं. परमानन्द जी शास्त्री) द्वि. भा., पृ. १२६-१२८।

४. "भविसयत्तकहा' में कविके लिए 'कवि'[1] और 'विवुध'[2] ये दोनो उपाधियाँ मिलती है तथा 'भविसयत्तचरिउ' में कवि[3] व विबुध[4]के साथ-साथ 'मुनि'[5] विशेषण भी मिलता है।

उक्त दोनों रचनाओकी उक्त साम्यताओंको ध्यानमें रखते हुए इस विषयमें गम्भीर शोध-खोजकी आवश्यकता है। मेरी दृष्टिसे उक्त दोनों ही रचनाओंकी आश्रयदाताओं तथा उनकी वंश-परम्पराओंकी सादृश्यताको एक विशेष संयोग (Accident) मात्र कहकर टाला नही जा सकता। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी लिपिकके प्रमाद अथवा भूलसे रचना-कालके उल्लेखमें कुछ गडबड़ी अथवा परिवर्तन हुआ है। चूँकि ये दोनों मूल-रचनाएँ मेरे सम्मुख नही है, अतः इस दिशामें तत्काल कुछ विशेष कह पाना सम्भव नही, किन्तु यदि भविसयत्तचरिउ १२३० वि. सं. की सिद्ध हो सके तो 'भविसयत्तकहा' के कर्ताके साथ उसकी संगति बैठायी जा सकती है। यद्यपि उस समय यह प्रश्न अवश्य ही उठ खड़ा होगा कि एक ही कवि एक ही विषयपर एक ही भाषामें एक ही आश्रयदाताके निमित्तसे दो-दो रचनाएँ क्यो लिखेगा ? किन्तु उसके समाधानमें यह कहा जा सकता है कि ऐसा कोई नियम नही है कि कोई कवि एक ही विषयपर एक ही रचना लिखे। एक ही कवि विविध समयोमें एक ही विषयपर एकाधिक रचनाएँ भी लिख सकता है क्योकि यह तो वहुत कुछ कवियोंकी अपनी क्षमता-शक्ति, श्रद्धा एवं नवीन-नवीन साहित्य-विधाओके प्रयोगोके प्रति उत्कट-इच्छापर निर्भर करता है। 'भविसयत्तकहा' में श्रीधरको विवुध एवं कवि कहा गया है तथा 'भविसयत्तचरिउ' मे उसे विवुधके साथ-साथ मुनिकी उपाधि भी प्राप्त है। हो सकता है कि 'भविसयत्तकहा' की रचना उसने अपने आश्रयदाताकी प्रेरणासे मुनि वननेके पूर्व की हो तथा 'भविसयत्तचरिउ' की रचना उसने अपनी प्रतिभा-प्रदर्शन-हेतु तथा 'पंचमीव्रतकथा' को और भी अधिक सरस एवं मार्मिक वनाने हेतु कुछ परिवर्तित शैलीमें उसी आश्रयदाताकी प्रेरणासे मुनिपद धारण कर लेनेके वाद की हो। वस्तुतः इन तथ्योंका परीक्षण गम्भीरताके साथ किये जाने की आवश्यकता है।

२. रचनाकाल

उक्त तथ्योंको ध्यानमें रखते हुए यदि विवादास्पद समस्याओंको पृथक् रखकर चलें, तो भी यह निश्चित है कि उक्त पासणाहचरिउ, वड्ढमाणचरिउ, सुकुमालचरिउ एवं भविसयत्तकहा [तथा अनुपलब्ध चंदप्पहचरिउ एवं संतिजिणेसरचरिउ] के कर्ता अभिन्न है और उक्त उपलब्ध चारों रचनाओंमें निर्दिष्ट कालोंके अनुसार विवुध श्रीधरका रचनाकाल वि. सं. ११८९ से १२३० निश्चित होता है।

३. जीवन-परिचय एवं काल-निर्णय

'वड्ढमाणचरिउ' की आद्य एवं अन्त्य प्रशस्तियोंमे कविका उपलब्ध संक्षिप्त जीवन-परिचय पूर्वमें लिखा जा चुका है। चंदप्पहचरिउ एवं संतिजिणेसरचरिउ नामकी रचनाएँ अनुपलब्ध ही है, अतः उनका प्रश्न ही नही उठता। सुकुमालचरिउ और भविसयत्तकहामें भी कविका किसी भी प्रकारका परिचय नही मिलता। संयोगसे कविने अपने 'पासणाहचरिउ' में 'वड्ढमाणचरिउ' के उक्त जीवन-परिचयके अतिरिक्त स्वविषयक कुछ अन्य सूचनाएँ भी दी है जिनके अनुसार वह हरयाणा-देशका निवासी[6] अग्रवाल जैन[7] था। वह वहाँसे यमुना

---

१. भविसयत्तकहा (अप्रकाशित)—१।२।६, [दे. प्रस्तुत ग्रन्थकी परिशिष्ट सं. १ (ग)]

२. दे. भविसयत्तकहाकी पुष्पिकाएँ। यथा—विवुह सिरि सुकइ सिरिहर विरइए...

३-५. भविसयत्तचरिउ (आमेर प्रति)—अब्भत्थिवि सिरिहरु कइगुण सिरिहरु·· १।३।११।
मुप्पट्टु अहिणंदउ जिण-पय वंदउ तव सिरिहर मुणि भत्तउ। १।४।१५
[सन्दर्भोंके लिए दे. जै. ग्र. प्र. सग्रह, द्वितीय भाग, पृ. १४६]

६ पासणाह, १।२।१४ ७. पासणाह, १।२।३

नदी पार करता हुआ ढिल्ली आया था।[१] उस समय ढिल्लीमें राजा अनंगपालका राज्य था।[२] अनंगपाल द्वारा सम्मानित अग्रवाल कुलोत्पन्न नट्टल साहूकी प्रेरणासे कविने 'पासणाहचरिउ'की रचना की थी।[३]

पासणाहचरिउ एवं वड्ढमाणचरिउमें विबुध श्रीधरका जितना जीवन-परिचय मिलता है, उसे मिलाकर भी अध्ययन करनेसे यह पता नहीं चलता कि कविकी मूल वृत्ति क्या थी तथा उसका पारिवारिक-जीवन कैसा था? जैसा कि पूर्वमें कहा जा चुका है कि उसके नामके साथ 'विबुध' एवं 'बुध' ये दो विशेपण मिलते हैं, किन्तु वे दोनो पर्यायवाची ही हैं। इन विशेपणोंसे उसके पारिवारिक-जीवनपर कोई प्रकाश नही पडता। प्रतीत होता है कि कवि प्रारम्भसे ही संसारके प्रति उदासीन जैसा रहा होगा। गृह-परिवारके प्रति उसके मनमें विशेष मोह-ममताका भाव नही रहा होगा, अन्यथा वह अपना विस्तृत परिचय अवश्य देता।

विबुध श्रीधरने स्वरचित प्रत्येक कृतिमें उसका रचनाकाल दिया है, इस कारण उसका रचनाकाल तो वि. सं. ११८९ से १२३० के मध्य निश्चित है ही। कविकी अन्य जो दो रचनाएँ अनुपलब्ध हैं, उनके विपयमें यदि यह मान लिया जाय कि उनके प्रणयनमें कविको लगभग १० वर्ष लग गये होंगे तथा यदि यह भी मान लिया जाय कि उसने अपने अध्ययन, मनन एवं चिन्तनके बाद लगभग २५ वर्षकी आयुमें ग्रन्थ-प्रणयनका कार्य प्रारम्भ किया होगा तब विबुध श्रीधरका जन्म वि. सं. ११५४ के आसपास तथा उसकी कुल आयु लगभग ७६ वर्षकी सिद्ध होती है।

४. आश्रयदाता

विबुध श्रीधरकी उपलब्ध रचनाओंमें साहू नट्टल, साहू नेमिचन्द्र, साहू, साहू सुपट्ट एवं पीथे पुत्र कुँवरके उल्लेख एवं संक्षिप्त परिचय प्राप्त होते हैं। कविने उनके आश्रयमें रहकर क्रमश. पासणाहचरिउ, वड्ढमाण-चरिउ, भविसयत्तकहा और सुकुमालचरिउ नामक ग्रन्थों की रचना की थी।

वड्ढमाणचरिउके आश्रयदाता साहू नेमिचन्द्रके विषयमें कविने लिखा है कि वे जायस (जैसवाल) कुलावतंस थे[४]। वे वोदाउव के निवासी थे[५]। कविने उनके पारिवारिक-जीवनका मानचित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

उक्त वोदाउव नगर कहाँ था, इसकी सूचना कविने नही दी है। किन्तु अध्ययन करनेसे विदित होता है कि वह आधुनिक वदायूँ (उत्तर प्रदेश) नगर रहा होगा। वदायूँ नगर जैंसवालोंका प्रधान केन्द्र भी माना जाता रहा है। उक्त नेमिचन्द्रने कवि श्रीधरसे 'वड्ढमाणचरिउ' के प्रणयनकी प्रार्थना की जिसे उसने सहर्ष स्वीकार किया[११]।

---

१. पासणाह १।२।५-१६
२. पासणाह, १।४।१
३. पासणाह, १।६।११-१४
४. वड्ढमाण, १।२।३; १०।४१।३।
५ वड्ढमाण., १०।४१।१।
६. वही, १।२।१; १०।४१।३।
७. वही, १।२।४, १।३।३; १०।४१।३; १०।४१।१५।
८. वही, १०।४१।११।
९. वही, १०।४१।१२।
१०. वही, १०।४१।१३।
११. वही, १।२।४-१२; १।३।१-३; १०।४१।३-४।

कविने 'वड्ढमाणचरिउ' की प्रत्येक सन्धिके अन्तमें आश्रयदाताके लिए आशीर्वादात्मक ९ संस्कृत श्लोकोंकी रचना की है[1], जिनमें उसने नेमिचन्द्रको सुश्रुतमति,[2] साधुस्वभावी,[3] भव, भोग और क्षण-भंगुर शरीर इन तीनोंसे वैराग्य-भाववाला,[4] सुकृतोंमें तन्द्राविहीन,[5] गुणीजनोंकी संगति करनेवाला[6] तथा शुभ मतिवाला[7] कहा है।

कविने उसके जीवन-संस्कारों एवं आध्यात्मिक वृत्तिका संकेत करते हुए कहा है कि "श्री नेमिचन्द्र प्रतिदिन जिन-मन्दिरमें मुनिजनोंके सम्मुख धर्म-व्याख्या सुनते हैं, सन्त एवं विद्वान् पुरुषोंकी कथाकी प्रस्तावना-मात्रसे प्रमुदित होकर नतमस्तक हो जाते हैं, शम-भाव धारण करते हैं, उत्तम बुद्धिसे विचार करते हैं, द्वादशानुप्रेक्षाओं को भाते हैं[8] तथा विद्वज्जनोंमें अत्यन्त लोकप्रिय हैं[9]।"

उक्त उल्लेखोंके अनुसार श्री नेमिचन्द्र स्वाध्याय-प्रेमी एवं विद्वान्-सज्जन तो थे ही, वे श्रीमन्त तथा राज्य-सम्मानित पदाधिकारी भी थे। कविने उन्हें 'अखिल-जगत्के वस्तु-समूहको प्राप्त करनेवाले'[10] (अर्थात् श्रेष्ठ व्यापारी एवं सार्थवाह) तथा 'लक्ष्मी-पुत्रों द्वारा सम्मान्य'[11] कहा है। वे साधर्मी जनोंको विपत्तिकालमें आवश्यकतानुसार भरपूर सहायता किया करते थे, इसीलिए कविने उन्हें 'प्रजनित जन-तोष'[12], 'जगदुपकृति'[13], 'सुकृतकृत-वितन्द्रो'[14], 'सर्वदा तनुभृता जनितप्रमोदः'[15], 'सद्बन्धुमानससमुद्भवतापनोदः'[16] आदि कहा है।

कवि श्रीधरने नेमिचन्द्रको दो ऐसे विशेषणोंसे विभूषित किया है, जिससे स्पष्ट है कि वे राज्य-सम्मानित अथवा न्याय-विभागके कोई राज्य-पदाधिकारी अथवा दण्डाधिकारी रहे होंगे। इसीलिए कविने उन्हें 'वन्दिदत्तो तु चन्द्र'[17] तथा 'न्यायान्वेषणतत्परः'[18] कहा है।

इसी प्रकार एक स्थान पर उन्हें 'ज्ञाततारादिमन्द्रः'[19] कहा गया है। इससे प्रतीत होता है कि वे ज्योतिषी एवं खगोल-विद्याके भी जानकार रहे होंगे।

५. रचनाएँ

जैसा कि पूर्वमें कहा जा चुका है, विबुध श्रीधरने अपने जीवन-कालमें ६ ग्रन्थों की रचना की—(१) चंदप्पहचरिउ, (२) पासणाहचरिउ, (३) संतिजिणेसरचरिउ, (४) वड्ढमाणचरिउ, (५) भविसयत्तकहा एवं (६) सुकुमालचरिउ। कविकी इन रचनाओंमें-से ४ रचनाएँ ४ तीर्थंकरोंसे सम्बन्धित हैं—चन्द्रप्रभ, शान्तिनाथ, पार्श्वनाथ एवं महावीर। श्रमण-साहित्यमें इन ४ तीर्थंकरोंके जीवन चमत्कारी घटनाओंसे ओत-प्रोत रहनेके कारण वे सामाजिक-जीवनमें बड़े ही लोकप्रिय रहे हैं। विविध भाषाओंमें, विविध कालोंमें, विविध कवियोंने विविध शैलियोंमें उनके चरितोंका अंकन किया है। 'सुकुमालचरिउ' घोर अध्यात्मपरक तथा एकनिष्ठ तपश्चर्या एवं परीषह-सहनका प्रतीक ग्रन्थ है, जबकि 'भविसयत्तकहा' अध्यात्म एवं व्यवहारके सम्मिश्रणका अद्भुत एवं अत्यन्त लोकप्रिय सरस काव्य। इस प्रकार कविने समाजके विभिन्न वर्गोंको प्रेरित करने हेतु तीर्थंकर चरित, अध्यात्मपरक-ग्रन्थ तथा अध्यात्म एवं व्यवहार-मिश्रित ग्रन्थोंकी रचना कर साहित्य-जगत्को अमूल्य दान दिया है।

---

१. एकसे लेकर ९वीं सन्धिके अन्तमें देखिए।
२. दे. नौवीं सन्धिके अन्तका आशीर्वचन।
३ वही।
४ वही, दे सातवीं सन्धिके अन्तका आशीर्वचन।
५. वही, दे. पाँचवी सन्धिके अन्तमें आशीर्वचन।
६. दे. चौथी सन्धिके अन्तमें आशीर्वचन।
७. दे. तीसरी सन्धिके अन्तमें आशीर्वचन।
८. दे. दूसरी सन्धिके अन्तमें आशीर्वचन।
९. दे. पहली सन्धिके अन्तमें आशीर्वचन।
१०. दे. वही।
११. दे सातवीं सन्धिके अन्तमें आशीर्वचन।
१२. दे. तीसरी सन्धिके अन्तमें आशीर्वचन।
१३. दे पाँचवीं सन्धिके अन्तमें आशीर्वचन।
१४ दे, वही।
१५-१६. दे छठीं सन्धिके अन्तमें आशीर्वचन।
१७ दे. पाँचवीं सन्धिके अन्तमें आशीर्वचन।
१८. दे. सातवी सन्धिके अन्तमें आशीर्वचन।
१९. दे. पाँचवी सन्धिके अन्तमें आशीर्वचन।

कविके उक्त ६ ग्रन्थोंमें-से प्रथम एवं तृतीय ग्रन्थ तो अद्यावधि अनुपलब्ध हैं। उनके शीर्षकोंसे यह तो स्पष्ट ही है कि वे आठवें एवं सोलहवें तीर्थंकरोंके जीवन-चरितोंसे सम्बन्धित हैं, किन्तु उनके रचनाकाल, आश्रयदाता, प्रतिलिपिकाल, प्रतिलिपि-स्थान तथा उनकी पूर्ववर्ती रचनाओंके विषयमें कोई भी जानकारी उपलब्ध नहीं होती। फिर भी ये दोनों रचनाएँ देहली-दीपक-न्यायसे पूर्ववर्ती एवं परवर्ती 'चन्द्रप्रभ-चरितों' एवं 'शान्तिनाथ-चरितों' को आलोकित करनेवाली प्रधान रचनाएँ हैं, इसमें सन्देह नहीं। श्रीधरके पूर्व चन्द्रप्रभ-चरित एवं शान्तिनाथचरितकी अपभ्रंश-भाषामें महाकाव्य-शैलीमें कोई भी स्वतन्त्र-रचनाएँ नहीं लिखी जा सकी थी। संस्कृतमें महाकवि वीरनन्दिका चन्द्रप्रभचरित[1] (वि. सं. १०३२ के आसपास) एवं महाकवि असग (वि. सं. १०वीं सदी) कृत शान्तिनाथ चरित पर्याप्त ख्याति अर्जित कर चुके थे। और प्रासंगिक रचनाओंमें महापुराणान्तर्गत पुष्पदन्त[2] एवं गुणभद्र[3]की उक्त विषयक रचनाएँ आदर्श थीं। विबुध श्रीधरने उनसे प्रभावित होकर अपभ्रंशमें तद्विषयक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखकर सर्वप्रथम प्रयोग किया तथा आगेके अपभ्रंश कवियोंके लिए एक परम्परा ही निर्मित कर दी, जिसमें रइधू[4] एवं महिन्दु[5] प्रभृति कवि आते हैं। यदि श्रीधर कृत उक्त दोनों रचनाएँ उपलब्ध होतीं, तो उनका तुलनात्मक अध्ययन कर संक्षेपमें उनकी विशेषताओं पर प्रकाश डालनेका प्रयास किया जाता। अस्तु, कविकी अन्य चार रचनाएँ उपलब्ध तो हैं, किन्तु वे अभी तक अप्रकाशित ही हैं। उनका मूल्यांकन संक्षेपमें यहाँ किया जा रहा है:—

(३) पासणाहचरिउ[6]

प्रस्तुत हस्तलिखित ग्रन्थ आमेर-शास्त्र-भण्डार जयपुरमें सुरक्षित है। कविके उल्लेखानुसार यह २५०० ग्रन्थ-प्रमाण विस्तृत है[7]। इसमें कुल १२ सन्धियाँ एवं २३८ कडवक हैं।

कविने इस रचनामें भ. पार्श्वनाथके परम्परा-प्राप्त चरितका अंकन किया है। इस दिशामें यह रचना वि. सं. की १०वीं सदीसे १५वीं सदी तकके पार्श्वनाथचरितोंके कथानककी शृंखलाको जोड़ने वाली एक महत्त्वपूर्ण कड़ी मानी जा सकती है।

विबुध श्रीधरके 'पासणाहचरिउ' की आद्यप्रशस्तिके अनुसार वह 'चन्द्रप्रभचरित' की रचना करनेके बाद अपने निवास-स्थान हरयाणासे जब यमुनानदी पार करके ढिल्ली आया[8] तब उस समय वहाँ राजा अनंगपालका शासन था[9]। इस अनंगपालने हम्मीर-जैसे वीर राजाको बुरी तरह परास्त किया था[10]। इसी राजा अनंगपालके राजदरबारमें जिनवाणी-भक्त अल्हण नामके एक साहूसे श्रीधरकी सर्वप्रथम भेंट हुई[11]। साहूने जब कवि श्रीधर द्वारा रचित उक्त चन्द्रप्रभ-चरित सुना तो वह झूम उठा। उसने कविकी बड़ी प्रशंसा की[12] तथा उसी समय उसने कविको ढिल्लीके अग्रवाल-कुलोत्पन्न जेजा नामक साहू तथा उसके परिवारका प्रशंसात्मक परिचय देते हुए, तीसरे पुत्र नट्टल साहूकी गुण-ग्रहणशीलता, उदारता एवं साहित्य-रसिकताकी विस्तृत चर्चा की, तथा कविसे अनुरोध किया कि वह साहू नट्टलसे अवश्य मिले[13]।

---

१. निर्णय सागर प्रेस बम्बई (१९१२, १९२६ ई.) से प्रकाशित।
२ माणिकचन्द्र दि. जैन ग्रन्थमाला बम्बई (१९३७-४७) से तीन खण्डोंमें प्रकाशित। [उसमें देखिए ४९वीं सन्धि]
३. भारतीय ज्ञानपीठ काशी (१९५१-५४) से तीन खण्डोंमें प्रकाशित। [उसमें देखिए ५४ वाँ पर्व]
४ दे. रइधू साहित्यका आलोचनात्मक परिशीलन [—डॉ. राजाराम जैन] पृ. ५५१।
५ वही दे पृ ११६।
६ इसकी पाण्डुलिपि मुझे श्रद्धेय अगरचन्द्रजी नाहटासे प्राप्त हुई थी। उसके लिए मैं उनका आभारी हूँ।
७ पासणाह, १२।२८।१४ [दे. परिशिष्ट सं. १ (क)]
८ वही, १।२।५-१६।
९. वही, १।४।१।
१०. वही, १।४।२।
११ वही, १।४।६।
१२ वही, १।४।७।
१३ वही, १।४।८-१२ तथा १।५-७; १।८।१-६ तथा अन्त्य प्रशस्ति।

साहू नट्टल राजा अनंगपालके परम स्नेह-भाजन तथा एक सम्मानित नागरिक थे। अर्थनीतिमें कुशल एवं व्यस्त होनेपर भी वे जिनवाणीके नियमित स्वाध्याय, प्रवचन-श्रवण तथा विद्वज्जनो एवं कवियोंकी संगतिके लिए समय अवश्य निकाल लेते थे। विद्वानों एवं कवियोका उनके यहाँ पर्याप्त सम्मान होता था[1]। किन्तु नट्टल साहूसे अपरिचित रहनेके कारण कवि उसके पास जानेको तैयार नही हुआ। वह अल्हण साहूसे कहता है कि—"हे साहू, आपने मुझसे जो कुछ कहा है, वह ठीक है, किन्तु यहाँ दुर्जनोंकी कमी नहीं है। वे कूट-कपटको ही विद्वत्ता मानते हैं। वे सज्जनोसे ईर्ष्या एवं विद्वेष रखते हैं, तथा उनके सद्गुणोंको असह्य मानकर उनके प्रति दुर्व्यवहार करते हैं। कभी मारते हैं, तो कभी टेढ़ी आँखें दिखाते हैं और कभी हाथ-पैर अथवा सिर ही तोड़ देते है। मै ठहरा सीधा-सादा सरल स्वभावी, अतः मैं तो अब किसीके पास भी नहीं जाना चाहता[2]।" तब अल्हण साहूने कविसे पुनः पूछा कि—"तुम क्या वास्तवमे नट्टलको नही जानते ? अरे, जो धर्म-कार्योमें धुरन्धर है, उन्नत कान्धोंवाला है, सज्जन-स्वभावसे अलंकृत है, प्रतिदिन जो निश्चल मन रहता है, तथा जो बन्धु-बान्धवोके लिए स्नेहका सागर है, जो भव्य-जनोकी सहायता करनेमे समर्थ है,[3] जो कभी भी अनावश्यक वचन नही बोलता, जो दुर्जनोंको कुछ नही समझता, किन्तु सज्जनोको सिरमौर समझता है, जो उत्तम-जनोके संसर्गकी कामना करता है, जो जिन-भगवान्का पूजा-विधान कराता रहता है, जो विद्वद्-गोष्ठियोके आयोजन कराता रहता है, जो निरन्तर शास्त्रार्थोके हितकारी अर्थ-विचार किया करता है, उसकी इससे अधिक प्रशंसा क्या उचित प्रतीत होती है ? वह नट्टल मेरा वचन कभी भी टाल नही सकता, मैं उसे जो कुछ कहता हूँ, वह अवश्य ही उसे पूरा करता है। अतः आप उसके पास अवश्य जायें।"[4]

साहू अल्हणके उक्त अनुरोधपर कवि श्रीधर नट्टल साहूके आवासपर पहुँचे[5]। नट्टल ने कविको आया देखकर शिष्टाचार-प्रदर्शनके बाद ताम्बूल प्रदान कर आसन दिया। उस समयका दृश्य इतना भव्य था तथा श्रीधर एवं नट्टल दोनोके मनमें एक ही साथ यह भावना उदित हो रही थी कि—"हमने पूर्वभवमें ऐसा कोई सुकृत अवश्य किया था, जिसका फल हमें इस समय मिल रहा है[6]।" एक क्षणके बाद कवि श्रीधरने नट्टल साहूसे कहा कि—"मैं अल्हण साहूके अनुरोधसे आपके पास आया हूँ। हे नट्टल साहू, अल्हण साहूने आपके गुणोकी चर्चा मुझसे की है। मुझे आपके विषयमें सब कुछ ज्ञात हो चुका है[7]। आपने एक 'आदिनाथ-मन्दिर' का निर्माण कराकर उसपर 'पचरंगे झण्डे' को भी चढाया है। आपने जिस प्रकार उस भव्य मन्दिरकी प्रतिष्ठा करायी है, उसी प्रकार आप एक 'पार्श्वनाथ-चरित' की रचना भी करवाइए, जिससे कि आपको पूर्ण सुख-समृद्धि मिल सके तथा जो कालान्तरमें मोक्ष-प्राप्तिका कारण बन सके। इसके साथ ही आप चन्द्रप्रभ स्वामीकी एक मूर्ति अपने पिताके नामसे उस मन्दिरमें प्रतिष्ठित कराइए[8]।"

श्रीधरका कथन सुनकर शेफाली (सइवाली)के पति साहू नट्टलने कहा—"हे कविवर, सुखकारी रसायनका एक कण भी क्या कृशकायवाले प्राणीके लिए बडा भारी अवलम्ब नही होता[9]? अतः आप 'पासणाहचरिउ' की रचना अवश्य कीजिए।" कवि साहू नट्टलके कथनसे बडा प्रसन्न हुआ तथा उसके निमित्त कवि ने 'पासणाहचरिउ' की रचना की[10]। 'पासणाहचरिउ' की अन्त्य-प्रशस्तिमें उसकी आद्य-प्रशस्तिकी ही पुनरावृत्ति है। इन प्रशस्तियोसे निम्न तथ्योपर प्रकाश पड़ता है—

---

१. पासणाह.—१।४।८–१२; १।५।१-४, १।५।१४; तथा अन्त्य प्रशस्ति।
२. पासणाह.—१।७।२-८, तथा अन्त्य प्रशस्ति।
३. पासणाह.—१।७।६-१२; १।८।१-६; तथा अन्त्य प्रशस्ति।
४. पासणाह.—१।८।१-६ तथा अन्त्य प्रशस्ति। [देखिए परिशिष्ट सं. १ (क)]
५. वही, १।८।७।
६. वही, १।८।८-६।
७. वही, १।८।१०-१२।
८. पासणाह. १।६।१, ४।
६. वही, १।६।७।
१०. वही, १।६।१३-१४।

१. 'वड्ढमाणचरिउ' एवं 'पासणाहचरिउ' का कर्ता विबुध श्रीधर जातिका अग्रवाल जैन था, तथा वह हरयाणा देशका निवासी था।

२. वह अपनी प्रथम रचना—'चन्द्रप्रभचरित' की रचना करनेके बाद ही यमुना नदी पार करके 'ढिल्ली' आया था तथा उसने अपनी उक्त रचना सर्वप्रथम अल्हण साहूको ढिल्लीमें ही सुनायी थी।

३. आधुनिक 'दिल्ली'का नाम कवि-कालमे 'ढिल्ली' था।

४. 'ढिल्ली' का तत्कालीन शासक अनंगपाल था।

५. जिनवाणी-भक्त अल्हण साहू राजा अनंगपालका एक दरबारी व्यक्ति था। राज-दरबारमें कवि श्रीधरको उसीने सर्वप्रथम नट्टल साहूका परिचय दिया तथा उसके अनुरोधसे वह नट्टल साहूसे भेंट करने गया।

६. नट्टल साहू राजा अनंगपालका एक सम्मानित नगरसेठ तथा सुप्रसिद्ध वणिक् अथवा सार्थवाह था, राजमन्त्री नही।

७. अल्हण साहू नट्टल साहूका प्रशंसक था, वह उसका कोई पारिवारिक व्यक्ति नही था।

८. नट्टल साहूके पिताका नाम जेजा साहू तथा माताका नाम मेमडिय था। जेजा साहूके तीन पुत्र थे—राघव, सोटल एवं नट्टल (दे. पास. १।५। १०-१३ तथा अन्त्य प्रशस्ति)।

९. नट्टल साहूने ढिल्लीमें एक विशाल आदिनाथ-मन्दिरका निर्माण करवाया था[1] तथा श्रीधरकी प्रेरणासे उसने उसमें अपने पिताके नामसे चन्द्रप्रभ-जिनकी एक मूर्ति भी स्थापित की थी।

१०. जिन-भवनो पर 'पंचरंगा झण्डा' फहराया जाता था[2]।

कुछ विद्वानोने नट्टल साहूके पिताका नाम अल्हण साहू माना है,[3] जो सर्वथा भ्रमात्मक है। उसी प्रकार नट्टलको राजा अनंगपालका मन्त्री भी मान लिया है।[4] किन्तु पासणाहचरिउकी प्रशस्तिमें इसका कही भी उल्लेख नही है। हाँ, एक स्थानपर उसे 'क्षितीश्वरजनादपि लब्धमानः'[5] तथा 'क्षपितारिदुष्ट.'[6] अवश्य कहा गया है, किन्तु इससे यह सिद्ध नही होता कि वह कोई राज्यमन्त्री रहा होगा। यदि वह राज्य-मन्त्री होता तो कवि श्रीधरको नट्टलका परिचय देते समय अल्हण साहू उस पदका उल्लेख अवश्य ही करते। किन्तु ऐसा कोई उल्लेख उक्त प्रशस्तिमे उपलब्ध नही होता। मूल ग्रन्थका सावधानीपूर्वक अध्ययन किये विना किसी निष्कर्षको निकाल लेनेमें इसी प्रकारके भ्रमात्मक तथ्य उपस्थित हो जाते है, जिनके कारण अनेक कठिनाइयाँ उठ खड़ी होती है।

कविका आश्रयदाता नट्टल ढिल्ली-राज्यका सर्वश्रेष्ठ समृद्ध, दानी, मानी एवं धर्मात्मा व्यक्ति था[7]। वह अपने गुणोके कारण ढिल्ली के अतिरिक्त अंग, वंग, कलिंग, गौड, केरल, कर्णाटक, चोल, द्रविड, पांचाल, सिन्ध, खस, मालवा, लाट, जट्ट, भोट, नेपाल (णेवाल), टक्क, कोकण, महाराष्ट्र, भादानक, हरियाणा, मगध, गुर्जर, सौराष्ट्र आदि देशोमें भी सुप्रसिद्ध तथा वहाँके राजाओ द्वारा ज्ञात था[8]। इस प्रशस्ति-वाक्यसे

---

१ पासणाह १।८।१ तथा पाँचवीं सन्धिकी पुष्पिका—यथा— ......जैनं चैत्यमकारि सुन्दरतर जैनी प्रतिष्ठा तथा।
इसके अवशेष आज भी दिल्लीकी कुतुबमीनार तथा उसके आस-पास देखे जा सकते है। कुछ विद्वान् उसे पार्श्वनाथ-मन्दिरके अवशेष मानते है किन्तु पासणाहचरिउके अनुसार वह आदिनाथका मन्दिर है।

२. पासणाह.—१।८।९—इस उल्लेखसे प्रतीत होता है कि ११-१२वी सदीमें जैन-सम्प्रदायमें पँचरंगे झण्डेके फहराये जानेकी प्रथा थी। भ. महावीरके २५०० वें निर्वाण समारोह (१९७४-१९७५ ई.) में भी पचरंगा झण्डा स्वीकार किया गया है जो सभी जैन-सम्प्रदायकी एकताकी प्रतीक है।

३-४. दे. जैन ग्रन्थ प्रशस्ति सग्रह, द्वि. भा. (दिल्ली, १९६३) भूमिका—पृ. ८४ तथा तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा ४।१३८।

५-६ पासणाहचरिउ—अन्त्य प्रशस्ति [दे.—परिशिष्ट १ (क)]

७. वही।

८. वही।

यही विदित होता है कि नट्टल साहू अपने व्यापारिक प्रतिष्ठानों अथवा अनंगपालके सन्देशवाहक राजदूतके रूपमें उक्त देशोंमे प्रसिद्ध रहा होगा। नट्टलका इतने राजाओ द्वारा जाना जाना स्वयं एक वड़ी भारी प्रतिष्ठाका विपय था। कवि श्रीधर नट्टलसे इतना प्रभावित था कि उसने उसे जलधिके समान गम्भीर, सुमेरुके समान धीर, निरभ्र आकाशके समान विशाल, नवमेघके समान गम्भीर गर्जना करनेवाला, चिन्तकोंमे चिन्तामणि-रत्न, सूर्यके समान तेजस्वी, मानिनियोके मनको हरण करनेवाले कामदेवके समान, भव्यजनोके लिए प्रिय तथा गाण्डीवके समान गुण-गणोंसे सुशोभित कहा है[1]।

कविने दिल्लीके जिस राजा अनंगपालकी चर्चा की है, उसे पं. परमानन्दजी शास्त्रीने तोमरवंशी राजा अनंगपाल तृतीय माना है।[2] कविने उसके पराक्रमकी विस्तृत चर्चा अपनी प्रशस्तिमें की है।

'पासणाहचरिउ' भाषा, भाव एवं शैलीकी दृष्टिसे वड़ी प्रौढ़ रचना है। कविने उसकी विषय वस्तुका वर्गीकरण इस प्रकार किया है—

सन्धि १. वैजयन्त विमानसे कनकप्रभ देवका चय कर वामादेवीके गर्भमे आना।

सन्धि २. राजा हयसेनके यहाँ पार्श्वनाथका जन्म एवं वाल-लीलाएँ।

सन्धि ३. हयसेनके दरवारमें यवन-नरेन्द्रके राजदूतका आगमन एवं उसके द्वारा हयसेनके सम्मुख यवननरेन्द्रकी प्रशंसा।

सन्धि ४. राजकुमार पार्श्वका यवननरेन्द्रसे युद्ध तथा रविकीर्ति द्वारा पार्श्व-पराक्रमकी प्रशंसा।

सन्धि ५. संग्राममे पार्श्वकी विजयसे रविकीर्तिकी प्रसन्नता तथा अपनी पुत्रीके साथ विवाह कर लेनेका आग्रह। इसी वीच वनमे जाकर जलते नाग-नागिनीको अन्तिम वेलामे मन्त्र-प्रदान एवं वैराग्य।

सन्धि ६. हयसेनका शोक-सन्तप्त होना, पार्श्वकी घोर तपस्याका वर्णन।

सन्धि ७. पार्श्वकी तपस्या और उनपर उपसर्ग।

सन्धि ८. केवलज्ञान-प्राप्ति एवं समवसरण।

सन्धि ९. समवसरण एवं धर्मोपदेश।

सन्धि १०. धर्मोपदेश एवं रविकीर्ति द्वारा जिनदीक्षा-ग्रहण।

सन्धि ११. धर्मोपदेश।

सन्धि १२. पार्श्वके भवान्तर तथा हयसेन द्वारा दीक्षा-ग्रहण। प्रशस्ति-वर्णन।

कलापक्ष एवं भावपक्ष दोनों ही दृष्टियोसे 'पासणाहचरिउ' एक उत्कृष्ट कोटिकी रचना है। कविको महाकविकी उच्चश्रेणीमें स्थान प्राप्त करानेके लिए 'पासणाहचरिउ'-जैसी अकेली रचना ही पर्याप्त है।

'पासणाहचरिउ'के योगिनीपुर-नगर (ढिल्ली या दिल्ली) का वर्णन[3], यमुना नदी-वर्णन[4], संग्राम-वर्णन[5], जिन-भवन-वर्णन[6], तथा प्रसंग प्राप्त देश[7], नगर[8], वन-उपवन[9], सन्ध्या[10], प्रभात[11], आदिके आलंकारिक-वर्णन द्रष्टव्य है। इनके अतिरिक्त षट्-द्रव्य[12], सप्त-तत्त्व[13], नौ-पदार्थ[14], तप[15], ध्यान[16] आदि सिद्धान्तोंका वर्णन, भाग्य एवं पुरुषार्थका समन्वय आदिपर भी सुन्दर प्रकाश डाला गया है। व्यावहारिक ज्ञानोमें भी कविने अपनी वहुज्ञताका अच्छा प्रमाण दिया है। देखिए, उसने अपने समयके भारतीय-राज्योका कितना अच्छा परिचय दिया है—

---

१ पासणाहचरिउ—अन्त्य प्रशस्ति—दे. परिशिष्ट सं. १ (क)
२. दे जैन ग्रन्थ प्रशस्ति सग्रह, द्वि. भा.—भूमिका-प. ८४।
३. पासणाह., १।२।१४–१६; १।३।१–१७।
४. पासणाह., १।२।६–१३।
५. वही, ४।१२, ५।११, ७।१०; [दे, परिशिष्ट–१ (क)]।
६. वही, १।११।११–१२।
७. वही, १।११।
८. वही, ११।४।
९. वही, ७।१–२; ७।१४
१०. वही, ३।१७–१८।
११. वही, ३।५।
१२–१६. दे. ८–११ सन्धियाँ।

भगवान् पार्श्वनाथका जन्मोत्सव मनाया जा रहा है, सभी देशोंमें उसका शुभ-समाचार जा चुका है। नरेशोने जैसे ही उसे सुना, वे नरेशोचित तैयारियोके साथ प्रभु-दर्शनकी उत्कण्ठासे वाराणसीकी ओर चल पडते है। जिन २६ देशोके नरेश वहाँ पधारे उनकी नामावली निम्न प्रकार हैः—

कण्णाड-लाड-खस-गुज्जरेहिँ मालव-मरहट्टय-वज्जरेहिं।
वंगंग-कलिंग-सु मागहेहिँ पावइय-टक्कं-कच्छावहेहिं।
चंदिल्ल-चोड-चउहाणएहिँ सेंधव-जालधर-हूणएहिं।
रट्ठउड-गउड-मायासाएहि कलचुरिय-हाण-हरियाणएहि।
एयहि णाणाविह णरवरेहिँ करवाल-लया-भूसिय करेहिँ।

—पास. २।१८।९।१३।

उक्त उल्लेखसे १२-१३वी सदीके राजनीतिक भारतका अच्छा चित्र मिल जाता है। उल्लिखित देश, नगर तथा राजवंश उस समय पर्याप्त ख्याति एवं प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके थे।

राजकुमार पार्श्व जब युद्धमें जानेकी तैयारी करते है, तो उनकी सहायताके लिए सारे राष्ट्रसे जयघोप होता है। विविध देशोके पुरुपोने तो उन्हें तन-मन एवं धनसे सहायता की थी, महिलाएँ भी दान देनेमें पीछे न रही। १२वी सदीमे किस देशकी कौन-कौन सी वस्तुएँ विशिष्ट मानी जाती थी, उसपर भी अच्छा प्रकाश पडता है। देखिए, कविने उस प्रसंगका कितना अच्छा वर्णन किया है—

सम्माणइँ दाणेँ णिवसमूह चंडासि-विहंडिय कुंभि-जूह।
हारेण कीरु मणि-मेहलाएँ पंचालु-टक्कु-संकल-लयाएँ।
जालंधरु पालवेण सोणु मउडेण णिवद्ध सवाण-तोणु।
केऊरे सेधव कंकणेहिँ हम्मीरराउ रंजिय-भणेहिँ।
मालविउ पसाहिउ कुंडलेहिँ णिज्जिय णिसि-दिणयर मंडलेहिँ।
खसु णिवसणेहिँ णेवालराउ चूडारयणेण गहीरराउ।
कासु वि अप्पिउ मयमत्तु दंति णं जंगमु महिहरु फुरियकंति।
कासु वि उत्तुगु तरलु तुरंगु णावइ खय-मयरहरहो तरंगु।
कासु वि रहु करहु विइण्णु कासु जो जेत्थ दच्छु तं दिण्ण तासु।

—पास. २।५।३–११

राजा हयसेन जब राजा शक्रवर्माकी सहायता हेतु यवननरेन्द्रसे युद्धके लिए जानेकी तैयारी करते है और कुमार पार्श्वको इसका पता चलता है, तो वे पिता हयसेनसे कहते है कि आप युद्धमें स्वयं न जाकर मुझे जानेका अवसर दें। हयसेन जब उन्हे सुकुमार एवं अनुभवविहीन बालक कहते है, तो बालक पार्श्वका पौरुष जाग उठता है तथा वे अपने पितासे निवेदन करते हुए कहते है—

जइ देहि वप्प तुहुँ महु वयणु बंधव-यण-मण सुह जणण।
ता पेक्खंतहँ तिहुयण जणहँ कोऊहलु विरयमि जणणा।

—पास. २।१४।१५–१६

णहयलु तलि करेमि महि उप्परि वाउ वि बंधमि जाइणं चप्परि।
णाय-पहार गिरि संचालमि णीरहि णीरु णिहिल पच्चालमि।
इंदहो इंद धणुहु उद्दालमि फणिरायहो सिरि सेहरु टालमि। आदि।

—पास. ३।१५।१–१२

छन्द, अलंकार एवं रसकी दृष्टिसे यह रचना वडी समृद्ध है। छन्दोंमें उसने पद्धडिया, घत्ता, द्विपदी, वस्तु, दोधक, स्रग्विणी, भुजंगप्रयात, मदनावतार, त्रोटक, रथोद्धता प्रभृति छन्दोका प्रयोग किया है। छन्द-प्रयोगमें उसने प्रसंगानुकूलताका ध्यान अवश्य रखा है। छन्द-विविधताकी दृष्टिसे चौथी सन्धि विशेष महत्त्वपूर्ण है। अलंकारोमें उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, रूपक आदि अलंकारोंकी वहुलता है।

रसोंमें शान्त-रस, अंगी-रसके रूपमें प्रस्तुत हुआ है। गौण-रूपमें शृंगार, वीर, भयानक एवं रौद्र रसोंका परिपाक द्रष्टव्य है। इतिहास, संस्कृति एवं मध्यकालीन भूगोलका तो यह ग्रन्थ कोष-ग्रन्थ कहा जा सकता है। पासणाहचरिउमें प्राप्त ऐतिहासिक सामग्रीपर अगले 'ऐतिहासिक तथ्य' प्रकरणमें कुछ विशेष प्रकाश डाला जायेगा।

कविने उक्त ग्रन्थकी रचना वि. सं. ११८९ में की थी[१]। इस प्रकार विवुध श्रीधरकी उपलब्ध रचनाओमे यह रचना प्रथम है।

(४) वड्ढमाणचरिउ

विबुध श्रीधर की दूसरी रचना प्रस्तुत 'वड्ढमाणचरिउ' है जिसका मूल्याकन आगे किया जा रहा है।

(५) सुकुमालचरिउ

श्रमण-संस्कृतिमें महामुनि सुकुमाल एकनिष्ठ तपस्या तथा परीषह-सहनके प्रतीक साधक माने गये है। जैन-दर्शनमें पुनर्जन्म, कर्म-सिद्धान्त एवं निदान-फल-निर्देशनके लिए यह कथानक एक आदर्श उदाहरण रहा है। समय-समय पर अनेक कवियोंने विविध-भाषाओंमें एतद्विषयक कई रचनाएँ की है। प्रस्तुत ग्रन्थके आधार पर सुकुमाल अपने पूर्व-भवमें कौशाम्वी-नरेशके एक विश्वस्त-मन्त्रीका वायुभूति नामक पुत्र था। उसका स्वभाव कुछ उग्र था। किसी कारण-विशेषसे उसने एक वार अपनी भाभीके मुँहमें लात मार दी। देवरके इस व्यवहार पर भाभीको असह्य क्रोध उत्पन्न हो आया। उसने उसी समय निदान वाँधा कि मैंने अभी तक जो भी कर्म किये है, उनका अगले भवमें मुझे यही फ़ल मिले कि मैं इस दुष्टकी टाँग ही खा डालूँ।

पर्यायें वदलते-वदलते अगले भवमें उक्त भाभी तो शृगालिनी हुई तथा वायुभूति-मन्त्रीका वह पुत्र मरकर उज्जयिनीके नगरसेठका सुकुमाल नामक अत्यन्त सुकुमार पुत्र हुआ। सांसारिक भोग-विलासोके वाद दीक्षित होकर वह साधु बन गया। उसी स्थितिमें जव एक वार वह घोर-तपश्चर्यामें रत था, तभी उक्त भूखी शृगालिनीने आकर पूर्व-निदानके फलस्वरूप उस साधुकी टाँगे खा डाली। उसी स्थितिमें सुकुमालका स्वर्गवास हुआ और वह कठोर तपके प्रभावसे सर्वार्थसिद्धि-देव हुआ।

उक्त कथानकका स्रोत हरिषेण कृत बृहत्कथा-कोष[२] है। कविने उससे कथावस्तु ग्रहण कर उसे अपने ढंग से सजाया है। इस ग्रन्थका विस्तार ६ सन्धियों एवं २२४ कडवक-प्रमाण है। कविने इसकी रचना वि. सं. १२०८ मगशिर कृष्ण तृतीया चन्द्रवारके दिन वलडइ नामक ग्राममें राजा गोविन्दचन्द्रके कालमें पुरवाड कुलोत्पन्न पीथे साहूके पुत्र कुमरके अनुरोध पर की थी।[३]

कविने उक्त आश्रयदाता कुमरकी वंशावली इस प्रकार प्रस्तुत की है[४]—

---

१. पासणाह.—१२।१८।१०-१२।

२ सिंघी जैन सीरीज, भारतीय विद्याभवन बम्बईसे प्रकाशित तथा प्रो डॉ. ए. एन उपाध्ये द्वारा सम्पादित।

३. सुकुमाल० ६।१३—दे. इसी ग्रन्थकी परिशिष्ट स १ (ख)

४. वही, ६।१२-१३।
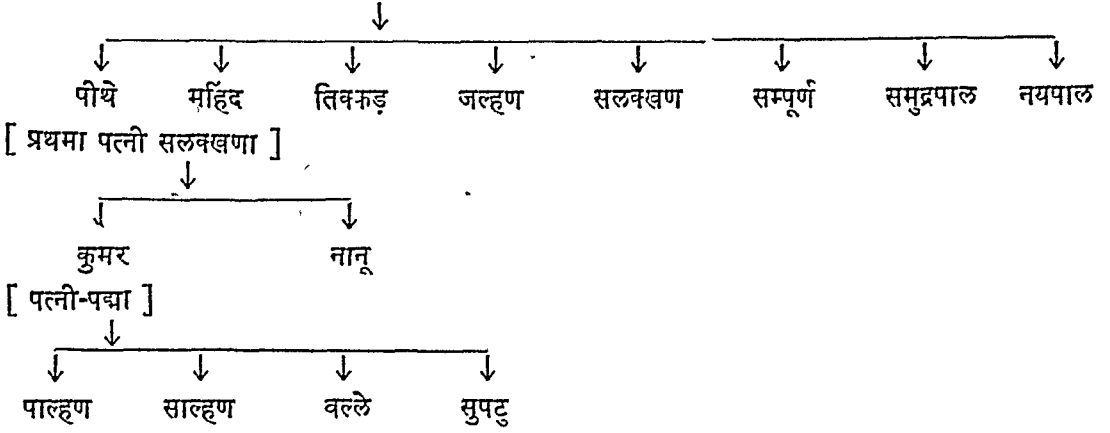
कविने अपनी ग्रन्थ-प्रशस्तिमें इस रचनाके विषयमें लिखा है कि 'वलडइ-ग्रामके जिनमन्दिरमें पद्मसेन नामके एक मुनिराज अनेक शास्त्रोंका सरस वाणीमें प्रवचन किया करते थे। उसी प्रसंगमें उन्होंने मुझे सुकुमालस्वामीका सुन्दर चरित बतलाया। कविको तो वह सरस लगा ही, किन्तु श्रोताओंमें पीथेपुत्र कुमरको उसने इतना आकर्षित किया कि उसने मुनिवर पद्मसेनसे तत्सम्बन्धी चरित अपने स्वाध्याय-हेतु लिख देनेकी प्रार्थना की। तभी पद्मसेनने कुमरको कवि श्रीधरका परिचय दिया और कहा कि वे इसकी रचना कर सकते हैं।[1] कुमर अगले दिन ही कवि श्रीधरके पास पहुँचा और उनसे 'सुकुमालचरिउ'के प्रणयन हेतु प्रार्थना की। कविने उसे स्वीकार कर लिया तथा उसीके निमित्त उसने प्रस्तुत सुकुमालचरितकी रचना की।[2] कविने स्वयं ही इस रचनाका विस्तार १२०० ग्रन्थ-प्रमाण कहा है।[3]

प्रशस्तिमें प्रयुक्त वलडइ-ग्रामकी स्थितिके विषयमें कविने कोई सूचना नही दी। हो सकता है कि वह दिल्लीके आस-पास ही कही रहा हो। राजा गोविन्दचन्द्र भी, हो सकता है कि, उसी ग्रामका कोई मुखिया या छोटा-मोटा जमीदार या राजा रहा हो। 'पृथिवीराजरासो' में एक स्थानपर उल्लेख आया है कि अनंगपाल तोमरका दौहित्र पृथिवीराज चौहान जब दिल्लीका सम्राट् बना तब उसके वाम-पार्श्वमें गोइन्दराय, निड्डुरराय और लंगरी राय बैठते थे।[4] हो सकता है कि यही गोइन्दराय विबुध श्रीधर द्वारा उल्लिखित राजा गोविन्दचन्द्र रहा हो? मुनि पद्मसेनके गच्छ, गण अथवा परम्पराका कविने कोई उल्लेख नही किया, अतः यह कह पाना कठिन है कि ये मुनि पद्मसेन कौन थे? हो सकता है कि काष्ठासंघ-पुन्नाट-लाडवागड गच्छके भट्टारक-मुनि रहे हो, जो कि भट्टारक विजयकीर्ति (वि. सं. ११४५) की परम्परामें एक साधकके रूपमें ख्याति प्राप्त थे।[5] इन पद्मसेनके शिष्य नरेन्द्रसेनने किसी आशाधर नामक एक विद्वान्‌को शास्त्र-विरुद्ध उपदेश करनेके कारण अपने गच्छ अर्थात् संघसे निकाल बाहर किया था, जैसा कि निम्न उल्लेखसे विदित होता है :—

तदन्वये श्रीमत्लाटवर्गटप्रभावश्रीपद्मसेनदेवाना तस्य शिष्यश्री नरेंद्रसेनदेवैः किंचिदविद्यागर्वत असूत्रप्ररूपणादाशाधरः स्वगच्छान्निःसारितः कदाग्रहग्रस्तं श्रेणिगच्छमशिश्रियत्[6] ॥

वस्तुतः इन पद्मसेन तथा उनकी परम्परा पर स्वतन्त्ररूपेण खोज-बीन करना अत्यावश्यक है।

---

१. वही, १।२।
२. सुकुमाल०–१।३ दे. इस ग्रन्थकी परिशिष्ट स. १ (ख)।
३. वही.–६।१३।१४।
४ पृथिवीराजरासो मोहनलाल विष्णुदास पंड्या आदि द्वारा सम्पादित तथा काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित [१९०६]
५. भट्टारक सम्प्रदाय (शोलापुर), पृ. २५८-२५९।
६. वही प. २५२।

रचना-शैलीकी दृष्टिसे सुकुमालचरिउ, पासणाहचरिउ एवं वड्ढमाणचरिउके समान ही है। उसने आश्रयदाताकी प्रशंसामें प्रत्येक सन्धिके अन्तमें आशीर्वादात्मक विविध संस्कृत-श्लोक लिखे हैं। इन पद्योंकी संस्कृत-भाषा एवं रूप-गठन देखकर यह स्पष्ट विदित होता है कि कवि श्रीधर अपभ्रंशके साथ-साथ संस्कृत-भाषाके भी अधिकारी विद्वान् थे। 'कुमर' विषयक उनका एक पद्य यहाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जाता है—

यः सर्व्ववित्पद-पयोज-रज-द्विरेफः सद्दृष्टिरुत्तममतिर्म्मदमानमुक्तः
श्लाघ्यः सदैव हि सतां विदुषां च सोऽत्र श्रीमत्कुमार इति नन्दतु भूतलेऽस्मिन्।

—दे. प्रथम सन्धि का अन्तिम श्लोक

कविकी यह रचना साहित्यिक गुणोसे युक्त है। विविध अलंकारों एवं रसोकी छटा तथा छन्द-वैविध्य दर्शनीय है। कविने रानीके नख-शिख वर्णनमें किस कुशल सूझ-बूझका परिचय दिया है वह द्रष्टव्य है—

तहेँ णरवइहेँ घरिणि मयणावलि पहय-कामियण-मण-गहियावलि।
दंत-पंति-णिज्जिय मुत्तावलि नं महहेँ करि वाणावलि।
सयलंतेउरि मज्झेँ पहाणी उच्छसरासण मणि सम्माणी।
जहिँ वयण-कमलहेँ नउ पुज्जइँ चंदु वि अज्जु विवट्टइ खिज्जइँ।
कंकेल्ली-पल्लव सम पाणिहिँ कल-कलयंठि वीणणिह वाणिहिँ।
णिय सोहग्ग परज्जिय गोरिहि विज्जाहर सुरमण-घण-चोरिहि।
अहर-लच्छि परिभविय पवालहे परिमिय चंचल अलिणिह वालहे।
सुर-नर-विसहर पयणिय कामहे अमरराय-कर-पहरण खामहे।
णयणोहामिय सिसु सारंगहे सुंदर सयलावखयवहि चंगहे।
जाहि नियंकु णिहाणु अकायहे सोहइ जिय तिहुअण-जण गामहे।
थव्वड वयण सिहिणजुअलुल्लउ अह कमणीय कणय-वड तुल्लउ।
रहइ जाहेँ कसण-रोमावलि नं कामानल-धण-धूमावलि।—सुकु.

(६) भविसयत्तकहा[1]

कवि श्रीधरकी चौथी रचना भविसयत्तकहा है। भविष्यदत्तका कथानक प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत एवं हिन्दी कवियोका बड़ा ही लोकप्रिय विषय रहा है। उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसका नायक परम्परा-प्राप्त क्षत्रिय-वंशी न होकर वैश्य या वणिक् जातिका है। इस कथानकके सर्वप्रथम कविने परम्परा-प्राप्त नायककी जातिका सहसा ही परिवर्तन कर सचमुच ही बड़े साहसका कार्य किया था। कवि-सम्प्रदाय एवं प्राच्य-परम्परा-भोगियोके लिए यह एक बड़ी भारी चुनौती थी। सम्भवतः उसका प्रतिरोध भी अवश्य हुआ होगा। किन्तु हमारे सम्मुख उसके प्रमाण नही है। इन साहसी कवियोमें धर्कटवंशी महाकवि धनपाल सर्वप्रमुख हैं, जिन्होने १०वी सदीके आस-पास "भविसयत्तकहा"[2] का सर्वप्रथम प्रणयन किया था। उसके बाद उस कथानकको आधार मानकर कई कवियोने विविध भाषा एवं शैलियोंमें इसकी रचना की।

---

१. आमेरशास्त्र भण्डार,जयपुर प्रति। [दे. जै. ग्र. प्र. सं. द्वि. भा. पृ. ५०]
२. गायकवाड ओरियण्टल सीरीज बडौदा (१९३७ ई.) से प्रकाशित।

विवुध श्रीधरने भी वि. सं. १२३० के फाल्गुण मासके शुक्ल पक्ष १०वी रविवारको 'भविसयत्तकहा' को लिखकर समाप्त किया[1] था। उसने अपनी प्रशस्तिमें ग्रन्थ-रचनाका इतिहास लिखते हुए बताया है कि "चन्द्रवार नगरके माथुर-कुलोत्पन्न नारायण एवं उनकी पत्नी रुप्पिणीके दो पुत्र थे—सुपट्ट एवं वासुदेव। उनमेंसे सुपट्टने कवि श्रीधरसे प्रार्थना की कि—'हे कविवर, मेरी माताकी सन्तान जीवित न रहनेसे वह अत्यन्त दुखी, चिन्तित एवं अर्धमृतक सम रहती है। अतः उसके निमित्त आप पंचमीके उपवासके फलको प्रदान करनेवाले वणिक्पति भविष्यदत्तके चरितका प्रणयन कर देनेकी कृपा कीजिए।' कविने उसका अनुरोध स्वीकार कर प्रस्तुत ग्रन्थकी रचना की[2]।"

प्रस्तुत 'भविसयत्तकहा'में ६ सन्धियाँ एवं १४३ कडवक हैं। इसका कथानक संक्षेपमें इस प्रकार है—

कुरुजांगल देशके गजपुर नगरमे भूपाल नामक राजा राज्य करता था। वहाँके नगरसेठका नाम धनपति था, जिसकी पत्नीका नाम कमलश्री था। चिरकाल तक सन्तान न होनेसे कमलश्री उदास बनी रहती थी। संयोगसे एक बार वहाँ सुगुप्त नामक मुनिराज पधारे और उनके आशीर्वादसे उन्हें भविष्यदत्त नामके एक सुन्दर एवं होनहार पुत्रकी प्राप्ति हुई। [प्रथम सन्धि]

पूर्व भवमें मुनिनिन्दाके फलस्वरूप धनपतिने कमलश्रीको घरसे निकाल दिया। कमलश्री रोती-कलपती हुई अपने पिताके यहाँ पहुँची और पिताने सारा दुःखद कारण जानकर उसे घरमें रख लिया। इधर धनपतिने स्वरूपा नामकी एक अन्य सुन्दरी कन्याके साथ अपना दूसरा विवाह कर लिया। समयानुसार उससे बन्धुदत्त नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वयस्क होनेपर जब बन्धुदत्त अपने पाँच सौ साथियोंके साथ व्यापार-हेतु स्वर्ण-दीप जानेकी तैयारी करता है, तभी भविष्यदत्तको इसकी सूचना मिलती है। वह भी अपनी माताकी अनुमति लेकर उसके साथ विदेश-यात्राकी तैयारी करता है। स्वरूपाको जब यह पता चला तो उसके मनमें सौतेले-पनकी दुर्भावना जाग उठी और बन्धुदत्तको कहती है कि परदेशमें तुम ऐसा उपाय करना कि भविष्यदत्त परदेशसे वापस ही न लौट सके। शुभ मुहूर्तमें बन्धुदत्तने सदल-बल जल-यान द्वारा प्रस्थान किया और सबसे पहले वे लोग तिलकद्वीप पहुँचे। कपट-वृत्तिसे बन्धुदत्त भविष्यदत्तको उसी अपरिचित द्वीपमें अकेला छोड़कर आगे बढ गया। [दूसरी सन्धि]

भविष्यदत्त एकाकी रहनेके कारण दुखी अवश्य हो गया, किन्तु शीघ्र ही उस द्वीपमें भ्रमण करनेमें उसका मन लग गया। वहाँ चन्द्रप्रभ भगवान्‌के मन्दिरमें विद्युत्प्रभ नामक देव अपने अवधिज्ञानके बलसे भविष्यदत्तको अपने पूर्वभवका महान् हितैषी जानकर उसके पास आया तथा उसने उसे उसी द्वीपका परिचय देकर वहाँकी सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी राजकुमारी भविष्यरूपाके साथ उसका विवाह करा दिया। इधर भविष्यदत्तकी माँ कमलश्री पुत्र-वियोगमें बड़ी व्याकुल रहने लगी। उसने अपने मनकी शान्ति हेतु सुव्रता नामक आर्यिकासे श्रुत-पंचमी-व्रत ग्रहण कर लिया। [तीसरी-सन्धि]

भविष्यदत्त भविष्यरूपाके साथ स्वदेश लौटनेके उद्देश्य से अनेकविध मोती, माणिक्य एवं समृद्धियों सहित समुद्री-तटपर आया। संयोगसे बन्धुदत्त भी अर्जित सम्पत्ति लेकर मित्रोंके साथ उसी समुद्र-तटपर आया। भविष्यरूपाके साथ भविष्यदत्तको देखकर वह भौचक्का रह जाता है। पूर्वापराधकी क्षमायाचना कर बन्धुदत्त उसे अपने जलयानमे बैठा लेता है। संयोगसे उसी समय भविष्यरूपाको स्मरण आया कि उसकी नागमुद्रिका तो मदन-द्वीप स्थित तिलका-नगरीके शयनकक्षमें ही छूट गयी है। अतः भविष्यदत्त जब वह मुद्रिका उठाने हेतु जाता है, तभी कपटी बन्धुदत्त अपने जलयानको रवाना करा देता है। बेचारी भविष्यरूपा

१. भविसयत्त. अन्त्य प्रशस्ति [—दे. इसी ग्रन्थकी परिशिष्ट सं. १ (ग)]।

२. भविसयत्त,—१।२-३। [—दे. इसी ग्रन्थकी परिशिष्ट स० १ (ग)]

भविष्यदत्तके वियोगमें दुःखी हो जाती है तथा उसकी कुशलताके हेतु निर्जल व्रत धारण कर देवाराधन करती है। बन्धुदत्त अवसर देखकर भविष्यरूपाको नये-नये प्रलोभन देकर फुसलाता है, किन्तु उसमें उसे सफलता नही मिलती। बन्धुदत्तकी दुष्प्रवृत्तिसे वह समुद्रमें कूदनेका विचार करती है, किन्तु एक देवी उसे स्वप्न देकर आश्वासन देती है तथा कहती है कि "निर्भीक रहो, भविष्यदत्त सुरक्षित है। वह एक माहके भीतर ही तुम्हे मिल जायेगा।"

जब बन्धुदत्तका जलयान गजपुर पहुँचा, तब वहाँ उसने भविष्यरूपाको अपनी पत्नी घोषित कर दिया। उधर पूर्वभवका परिचित वही विद्याधर देव उदास एवं निराश भविष्यदत्तके पास आया और उसने निवेदन किया कि "गजपुर चलनेके लिए विमान तैयार है।" अनेक धन-सम्पत्तिके साथ भविष्यदत्त उसमें बैठकर गजपुर आया और सीधा माँके पास गया। अगले दिन वह हीरा-मोतियोंसे भरे थाल लेकर भेंट करने राजाके यहाँ पहुँचा। वहाँ उसने अपने पिता सेठ धनपति एवं बन्धुदत्तके, अपनी माँ एवं अपने प्रति किये गये दुर्व्यवहारोंकी चर्चा की तथा भविष्यरूपाके साथ बन्धुदत्तके द्वारा किये गये घृणित व्यवहारके विषयमें शिकायत की। राजा भूपाल यह सुनकर बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने उन दोनोंको दण्डित कर भविष्यरूपाके साथ भविष्यदत्तके विवाहकी अनुमति प्रदान की तथा उसे अपना आधा राज्य प्रदान कर अपनी पुत्री सुमित्राका विवाह उसके साथ कर दिया। [चौथी सन्धि]।

राजा वन जानेके बाद भविष्यदत्त और भविष्यरूपाका जीवन सुखपूर्वक व्यतीत होने लगा। कुछ समय बाद भविष्यरूपा गर्भवती हुई। उसे दोहलेमें अपनी जन्मभूमि तिलकद्वीप जानेकी इच्छा हुई। संयोगसे उसी समय तिलकद्वीपका एक विद्याधर वहाँ आया तथा भविष्यदत्तसे बोला कि "उसकी (विद्याधरकी) माँ भविष्यरूपाके गर्भमें आयी है, अतः वह भविष्यरूपाको तिलकद्वीपकी यात्रा कराना चाहता है।" यह कहकर वह अपने विमानसे भविष्यरूपाको तिलकद्वीप ले गया। वहाँसे लौटनेके बाद ही उसे सोमप्रभ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। तदनन्तर उसे क्रमशः कंचनप्रभ (पुत्र) तथा तारा और सुतारा नामकी दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। इसी प्रकार सुमित्रा नामक दूसरी पत्नीसे भी धरणीपति (पुत्र) एवं धारिणी (कन्या) का जन्म हुआ। भविष्यदत्तने अपने पुरुषार्थ-पराक्रमसे सिंहलद्वीप तक अपना साम्राज्य बढ़ाकर पर्याप्त यशका अर्जन किया। इसी बीचमें चारणऋद्धि-धारी मुनिराज वहाँ पधारे और भविष्यदत्तने उनसे दीक्षा ग्रहण कर ली।

[पाँचवीं सन्धि]

घोर तप करनेके बाद भविष्यदत्तको निर्वाण-लाभ हुआ। कमलश्री, धनपति और भविष्यरूपाने भी दीक्षा धारण कर घोर तपस्या की और स्वर्ग प्राप्त किया। [छठी सन्धि]

विबुध श्रीधरकी यह रचना बड़ी मार्मिक है। सामाजिक-जीवनमें सौतेली माँकी कपट वृत्ति, उपेक्षिता एवं परित्यक्ता महिलाके इकलौते पुत्रका समयपर परदेशसे वापस न लौटना, तथा सौतेले पुत्रका कपट-भरा दुर्व्यवहार मानव-जीवनके लिए अभिशाप बन जाता है। कविने इस विडम्बनाका मार्मिक चित्रण इस रचनामे किया है। परदेश गये हुए पुत्रके समयपर वापस न लौटनेसे माँ कमलश्री निरन्तर रो-रोकर आँसुओंके पनाले बहाती रहती है। उसे न भूख लगती है और न प्यास। कविने उसका चित्रण निम्न प्रकार किया है—

ता भणइँ किसोयरि कमलसिरि ण करमि कमल मुहल्लउ।
पर सुमरंति हे सुउ होइ महु फुट्ट ण मण हियउल्लउ ॥३।१६

रोवइ धुवइ णयण चुव अंसुव जलधारहिँ वत्तओ।
भुक्खइँ खीणदेह तण्हाइय ण मुणइँ मलिण गत्तओ ॥४।५

कवि श्रीधर हृदयमें समाहित घोर विषादका मनोहारी चित्रण करनेमें भी कुशल हैं। वे सन्तप्त मनको

आश्वस्त कर उसे प्रतिबोधित भी करते हैं। भविष्यरूपासे वियुक्त होनेके वाद भविष्यदत्त अत्यन्त निराश एवं दुखी रहता है, यह देखकर कवि कहता है—

मा करहि सोउ णियमणि मइल्ल   जिणधम्मकम्म विरयण छइल्ल।
संजोय विओयइ हंतु जाणु,   सव्वहिँ जणाहिँ मा भंति आणु ॥४।६

रूप-सौन्दर्यके स्वाभाविक वर्णनमें कविने अपने साहित्यिक चातुर्यका अच्छा परिचय दिया है। भविष्यदत्तके वालरूपका वर्णन कविने इस प्रकार किया है—

सो कविल-केस जड कलिय सीसु   धूली उद्धूलिय तणु विहीसु।
कर-जुवल कडुल्ला सोहमाणु   पायहि णेउर रंखोलमालु ॥

इसी प्रकार वह भविष्यरूपाके सौन्दर्यका वर्णन करते हुए कहता है—

वालहरिणि चंचलयर णयणी   पुण्णिम इंद-विंव-सम वयणी।
रायहंसगामिणि ललियंगी   अवयवेहिँ सव्वेहि वि चंगी ॥

नगर-वर्णनमें कविकी सूक्ष्म दृष्टिके चमत्कारसे वहाँकी छोटी-छोटी वस्तुएँ भी महानताको प्राप्त हो जाती हैं। गजपुरका वर्णन करते हुए वह कहता है—

तहिँ हत्थिणावरु वसइ णयरु   पवरावण दरिसिय रयण पवरु।
जहिँ सहलइ सालु गयणग्ग लग्गु   हिमगिरि व तुंगु विच्छिण्ण मग्गु।
परिहा सलिलंतरे ठियमरालु   णाणामणि णिम्मिय तोरणालु।
सुरहर धय-वय चुंचिव णहग्गु   पर-चक्क-मुक्क-पहरण अभग्गु।
कवसीसय पंतिय सोहमाणु   मणिगण-जुइ अमुणिय सेयमाणु।
मंगल-रव विहिरिय दस-दिसासु   वुहयण धणड्ढमाण वणिवासु
जहिँ मुणिवरेहिँ पयडियइ धम्मु   परिहरियइँ भव्वयणेहिँ छम्मु।
जहिँ दिज्जइ सावय-जणहिँ दाणु   विरएविणु मुणिवर पयहिँ माणु।
जहिँ को वि ण कासु वि लेइ दोसु   ण पियइ धज-घण्ण कएण कोसु।
मणि को वि ण खणु वि धरेइ रोसु   मणि दित्तिए ण वियाणियहँ गोसु।
जहिँ कलहु कहिं वि णउ करइ कोवि   मिहुंणईं रइ कालि-भिडंति तो वि।—भविस. १।५

प्रकृति-चित्रणमें कविने गीति-शैलीके माध्यमको अपनाया है। भविष्यदत्त दीक्षा-ग्रहण करनेके वाद अटवीमें तप हेतु जाता है। वहाँ भविष्यदत्तने जो दृश्य देखा, कविने उसका चित्रण निम्न प्रकार किया है—

दिट्ठाइँ तिरियाइँ   वहुदुक्ख भरियाइँ।
गयवरहँ जंतासु   मय-जल-विलित्तासु।
कित्थु वि मयाहीसु   अणुलग्गु णिरभीसु।
कित्थु वि महीयाहँ   गयणयलु वि गयाहँ।
साहसु लोडंतु   हरिफलइँ तोडंतु।
केत्थु वि वराहाहँ   वलवंत देहाहँ।
महवग्घु आलग्गु   रोसेण परिभग्गु।
केत्थु वि विरालाइँ   दिट्ठइँ करालाइँ।
केत्थु वि सियालाइँ   जुज्झंति थूलाइँ।
तहँ पासँ णिज्झरइ सरंतइँ   किरिकंदर विवराइँ भरंतइँ।—भविस. ५।१०

कविने जहाँ-तहाँ अपने कथनके समर्थनमे सूक्तियोंके भी प्रयोग किये हैं, जो अँगूठीमें नगीनेके समान मनोहारी एवं सुशोभित होती है। कवि उद्यमके प्रसंगमें कहता है—

'विणु उज्जमेण णउ किंपि होइ' इसी प्रकार कवि पूर्वजन्मके पुण्यके विना लक्ष्मीका आगमन सम्भव नहीं मानता। अतः वह कहता है कि

जो पुण्णेण रहिउ सिरि चहइ सो धणेण विणु सत्तु पसाहइ।—भवि. २।१९

भापा, शैली, रस एवं अलंकारोंकी दृष्टिसे भी यह रचना अपना विशेप महत्त्व रखती है। इसके प्रकाशनसे अनेक नवीन तथ्योंके प्रकाशमें आनेकी सम्भावनाएँ है।

वड्ढमाणचरिउ : समीक्षात्मक अध्ययन

१. मूल कथानक तथा ग्रन्थ-संक्षेप

कविने वड्ढमाणचरिउकी १० सन्धियोंमे वर्धमानके चरितका सांगोपांग वर्णन किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ-की मूल कथा तो अत्यन्त संक्षिप्त है। उसके अनुसार कुण्डलपुर-नरेश राजा सिद्धार्थके यहाँ श्रावण शुक्ल छठीके दिन वर्धमानका बड़ा ही समारोहके साथ गर्भ-कल्याणक मनाया गया। चैत्र शुक्ल त्रयोदशीके दिन उनका जन्म हुआ। अगहन मासकी दशमीके दिन नागवनखण्डमें उन्होने दीक्षा धारण की। वैशाख शुक्ल दशमीको ऋजुकूला तटपर केवलज्ञानकी प्राप्ति तथा उसी समय सप्त-तत्त्व और नव-पदार्थ सम्बन्धी उनके धर्मोपदेश तथा कार्तिक-कृष्ण अमावस्याके दिन पावापुरीमें उन्हे मोक्ष प्राप्त हुआ। वड्ढमाणचरिउकी मूल कथा वस्तुतः ९वीं सन्धिसे प्रारम्भ होती है तथा १०वी सन्धिमे उन्हे निर्वाण प्राप्त हो जाता है, बाकीकी प्रथम आठ सन्धियोमे नायकके भवान्तरोंका वर्णन किया गया है। उक्त ग्रन्थका सन्धि एवं कडवकोके अनुसार सारांश निम्न प्रकार है:—

कविने सर्वप्रथम काम-विजेता एवं चतुर्विध गतियोके निवारक २४ तीर्थंकरोको नमस्कार कर (१) ग्रन्थ-प्रणयनका संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया है और कहा है कि जैसवाल-कुलावतंस सेठ नरवर एवं सोमा माताके सुपुत्र नेमिचन्द्रके आग्रहसे उसने प्रस्तुत 'वड्ढमाणचरिउ' की रचना की है। इस प्रसंगमें कविने अपनी पूर्व-रचित 'चन्द्रप्रभचरित' एवं 'शान्तिनाथचरित' नामक रचनाओंके भी उल्लेख किये है (२)। ग्रन्थके आरम्भमें कविने भरतक्षेत्र स्थित पूर्वदेशकी समृद्धिका वर्णन करते हुए (३) वहाँकी सितछत्रा नामकी नगरीकी आलंकारिक चर्चा की तथा वहाँके राजा नन्दिवर्धन, रानी वीरमति एवं उनके पुत्र राजकुमार नन्दन-का सुन्दर वर्णन किया है। जब वह कुछ बड़ा हुआ तब एक दिन अपने पिताकी आज्ञा लेकर वह क्रीड़ा-हेतु विविध प्राकृतिक-सौन्दर्यसे युक्त नन्दन वनमें गया (४-८)। संयोगवश उस वनमें उसने मुनिराज श्रुतसागरके दर्शन कर भक्तिपूर्वक उनका उपदेश सुना और उनसे गृहस्थ-व्रत धारण कर वह घर वापस लौटा।

शुभ-मुहूर्तमें राजा नन्दिवर्धनने राजकुमार नन्दनको युवराज-पदपर प्रतिष्ठित किया (९-१०) और युवराजको संसारके प्रति उदास देखकर उसका प्रियंकरा नामकी एक सुन्दरी राजकुमारीसे विवाह कर दिया (११)।

युवराज नन्दन जब सासारिकतामे उलझते हुए-से दिखलाई दिये तभी राजा नन्दिवर्धनने एक भव्य समारोहका आयोजन किया और उसमें उसे राजगद्दी सौप दी (१२) तथा वे स्वयं गृह-विरत रहकर सम्यक्त्व-की आराधना करने लगे। **एक दिन** जब राजा नन्दिवर्धन अपनी अट्टालिकापर बैठे हुए थे, तभी उन्होने

आकाशमें मेघोंके एक सुन्दर कूटको देखा। उसी समय वे जब अपने सिरका एक पलित केश देख रहे थे कि तभी आकाशमें वह मेघकूट विलीन हो गया (१३)। मेघकूटको सहसा ही विलीन हुआ देखकर राजा नन्दिवर्धनको संसारकी अनित्यताका स्मरण होने लगा। वे विचार करने लगे कि विषके समान सांसारिक सुखोंमें कौन रति बाँधेगा? संसारके सभी सुख जलके बुदबुदेके समान हैं। यह जीव भोग और उपभोगकी तृष्णामें लीन रहकर मोहपूर्वक गृह एवं गृहिणीमें निरन्तर आसक्त बना रहता है और इस प्रकार दुस्सह एवं दुरन्त दुःखोंवाले संसाररूपी लौह-पिंजड़ेमें वह निरन्तर उसी प्रकार डाल दिया जाता है, जिस प्रकार सुईके छिद्रमें तागा। इस प्रकार विचार करके उन्होंने नन्दनको अनेक व्यावहारिक शिक्षाएँ देना प्रारम्भ किया और स्वयं तपोवनमें जानेकी तैयारी करने लगे (१४-१५)। किन्तु नन्दन स्वयं ही संसारके प्रति उदास था, अतः वह पिताके समक्ष तपस्या हेतु वनमें साथ ले चलनेका आग्रह करने लगा (१६)। नन्दिवर्धनने उसे जैसे-तैसे अपने कर्तव्यपालनका उपदेश दिया एवं स्वयं ५०० नरेशोंके साथ मुनिराज पिहिताश्रवसे जिन-दीक्षा धारण कर ली (१७)। [पहली सन्धि]

पिताके दीक्षा ले लेनेके कारण राजा नन्दन अत्यन्त किंकर्तव्यविमूढ हो गया, किन्तु शीघ्र ही मनका समाधान कर वह राज्य-संचालनमें लग गया। उसने अपने प्रताप एवं पराक्रमके द्वारा 'नृपश्री' का विस्तार किया। इसी बीच रानी प्रियंकराने गर्भ धारण किया (१-२) और उससे नन्द नामक एक सुन्दर पुत्रकी प्राप्ति हुई। किसी एक समय ऋतुराज वसन्तका आगमन हुआ और वनपालने उसी समय राजा नन्दनको प्रोष्ठिल नामक एक मुनिराजके वनमें पधारने की सूचना दी। इस सूचनासे राजा नन्दनने अत्यन्त प्रसन्न होकर सदलबल उन मुनिराजके दर्शनोंके हेतु वनमें प्रस्थान किया (३-५)। वनमें मुनिराजको देखते ही उसने विनय प्रदर्शित की तथा अपने भवान्तर पूछे (६)।

प्रोष्ठिल मुनिने राजा नन्दनके भवान्तर सुनाने प्रारम्भ किये और बताया कि वह ९वें भवमें गौरवरांग नामक पर्वतपर एक रौद्र रूपवाले भयंकर सिंहके रूपमें उत्पन्न हुआ था, किन्तु अमितकीर्ति और अमृतप्रभ नामक दो चारण मुनियोंके धर्मोपदेशसे उसे मनुष्यगति प्राप्त हुई और पुष्कलावती देश स्थित पुण्डरीकिणी नगरीमें पुरुरवा नामक शबर हुआ तथा वहाँसे भी मरकर मुनिराज सागरसेनके उपदेशसे वह सुरौरव नामक देव हुआ (७-११)। उसके बाद कविने विनीता नगरीका वर्णन कर वहाँके सम्राट् ऋषभदेव तथा उनके पुत्र भरत चक्रवर्तीका वर्णन किया है (१२-१३)। आगेके वर्णन-क्रममें कविने भरतपुत्र मरीचिका वर्णन किया है, जिसमें उसने बताया है कि मरीचिने अपने पितामह ऋषभदेवसे जिनदीक्षा ग्रहण की। प्रारम्भमें उसने घोर-तपस्या की, किन्तु बादमें वह अहंकारी हो गया। अतः जैन-तपस्यासे भ्रष्ट होकर उसने सांख्य-मतकी स्थापना की (१४-१५)। कविने मरीचिके भवान्तर-वर्णनोंके प्रसंगमें उसके निम्न भवान्तरोंकी चर्चा की है—

१. कौशलपुरीके ब्राह्मण कपिल भूदेवके यहाँ जटिल नामक विद्वान् पुत्रके रूपमें,
२. सौधर्म देवके रूपमें (१६),
३. स्थूणागार ग्रामके विप्र भारद्वाज तथा उनकी पत्नी पुष्यमित्राके यहाँ पुष्यमित्र नामक पुत्रके रूपमें,
४. ईशानदेव,
५. श्वेतानगरीके द्विज अग्निभूति तथा उसकी भार्या गौतमीसे अग्निशिख नामका पुत्र,
६. सानत्कुमार देव,
७. मन्दिरपुर निवासी विप्र गौतम तथा उसकी पत्नी कौशिकीसे अग्निमित्र नामक पुत्र (१७-१८),
८. माहेन्द्र देव,
९. शक्तिवन्तपुरके विप्र संलंकायन तथा उसकी पत्नी मन्दिरासे भारद्वाज नामका पुत्र,

१०. माहेन्द्रदेव (१९-२१),

११. राजगृहके साण्डिल्यायन विप्र तथा उसकी पत्नी पारासरीसे स्थावर नामका पुत्र, एवं

१२. ब्रह्मदेव (२२)। [दूसरी सन्धि]

मरीचिका वह जीव ब्रह्मदेव मगधदेश स्थित राजगृहके राजा विश्वभूतिके यहाँ विश्वनन्दि नामक पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुआ। राजा विश्वभूतिका छोटा भाई विशाखभूति था, जिसके विशाखनन्दि नामका पुत्र हुआ (१-४)।

राजा विश्वभूतिने अपने पुत्र विश्वनन्दिको युवराज-पद देकर तथा अपने अनुज विशाखभूतिको राज्य सौंपकर जिनदीक्षा ग्रहण कर ली (५)।

विश्वनन्दिने अपने लिए एक सुन्दर उद्यानका निर्माण कराया और उसमें वह विविध क्रीड़ाएँ कर अपना समय व्यतीत करने लगा। इधर एक दिन विशाखनन्दिने उस उद्यानको देखा तो वह उसपर मोहित हो गया और उसे हड़पनेके लिए लालायित हो उठा। उसने अपने माता-पितासे कहा कि जैसे भी हो, विश्वनन्दिका यह उद्यान मुझे मिलना चाहिए (६)। राजा विशाखभूति अपने पुत्रके हठसे बड़ा चिन्तित हुआ। जब वह स्वयं उसपर कुछ न सोच सका तो उसने अपने कीर्ति नामक मन्त्रीको बुलाया और उसके सम्मुख अपनी समस्या रखी। मन्त्रीने विशाखभूतिको न्यायनीति पर चलनेकी सलाह दी और आग्रह किया कि वह विशाखनन्दिके हठाग्रहसे विश्वनन्दिके उपवनको लेनेका विचार सर्वथा छोड़ दे (७-९)। किन्तु विशाखभूतिको मन्त्रीकी यह सलाह अच्छी नहीं लगी, अतः उसने उसकी उपेक्षा कर छल-प्रपंचसे युवराज विश्वनन्दिको तो कामरूप नामके एक शत्रुसे युद्ध करने हेतु भेज दिया और इधर विशाखनन्दिने अवसर पाते ही उस नन्दनवन पर अपना अधिकार जमा लिया। जब विश्वनन्दिने अपने एक सेवकसे यह वृत्तान्त सुना, तो वह उक्त शत्रुको पराजित करते ही तुरन्त स्वदेश लौटा और निरुद्ध नामक अपने मन्त्रीकी मन्त्रणासे उसने विशाखनन्दिसे युद्ध करनेका निश्चय किया (१०-१४)। वह अपने योद्धाओंके साथ विशाखनन्दिके सम्मुख गया और जैसे ही उसे ललकारा, वैसे ही वह डरपोक विश्वनन्दिके चरणोंमें गिरकर क्षमा-याचना करने लगा (१५)। सरल स्वभावी विश्वनन्दिने उसे तत्काल क्षमा कर दिया, फिर विश्वनन्दि स्वयं अपने किये पर पछतावा करने लगा—"मैंने व्यर्थ ही एक तुच्छ उद्यानके लिए इतना बड़ा युद्ध किया और निरपराध मनुष्योंको मौतके घाट उतारा।" यह विचार कर वह संसारके प्रति अनित्यताका ध्यान करने लगा। अवसर पाकर उसने शीघ्र ही जिनदीक्षा ग्रहण कर ली।

इधर जब विशाखभूतिने विश्वनन्दिकी दीक्षाका समाचार सुना तो वह भी अपनी दुर्नीति पर पछताने लगा और शीघ्र ही अपने पुत्र विशाखनन्दिको राजपाट देकर स्वयं दीक्षित हो गया। विशाखनन्दिका जीवन निरन्तर छल-प्रपंचोंसे भरा था। अतः राज्य-लक्ष्मीने उसका साथ न दिया। प्रजाजनोंने उसके अन्याय एवं अत्याचारों से दुखित एवं क्रोधित होकर उसे बलात् राजगद्दी से उतार दिया (१६)।

किसी अन्य समय पूर्वोक्त मासोपवासी मुनि विश्वनन्दि (पूर्व का युवराज) मथुरा नगरीमें भिक्षा हेतु विचरण कर रहे थे कि वहाँ नन्दिनी नामकी एक गायने उन्हें सींग मारकर घायल कर दिया। संयोगसे विशाखनन्दिने उन्हें घायल देखकर पूर्वागत ईर्ष्यावश उनका उपहास किया। विश्वनन्दिको विशाखनन्दिका यह व्यवहार सह्य नहीं हुआ। उन्हें उसपर क्रोध आ गया और उन्होंने तत्काल ही क्षमा-गुण त्याग कर—"यदि मेरी तपश्चर्याका कोई विशिष्ट फल हो तो (अगले भवमें) समरांगणको रचाकर निश्चय ही इस अनिष्टकारी वैरीको मारूँगा।" इस प्रकार कहकर अपने मनमें उसके मारने का निदान बाँधा और तपके प्रभावसे मरकर वह महाशुक्रदेव हुआ (१७)। इधर मुनिराज विशाखनन्दि भी कठोर तपश्चर्याके फलस्वरूप मरकर देव हुआ और वहाँसे चयकर वह विजयार्द्धकी उत्तर-श्रेणीमें स्थित अलकापुरीके विद्याधर राजा मोरकण्ठकी रानी

कनकमालाकी कुक्षिसे अर्धचक्रीके लक्षणोंवाला अश्वग्रीव नामका पुत्र हुआ (१८–१९)। एक वार जव वह गुफा-गृह में ध्यानस्थ था, तभी उसे देवो ने ज्वलन्तचक्र, अमोघशक्ति, झालरवाला छत्र, चन्द्रहास-खड्ग तथा सुप्रचण्ड-दण्ड प्रदान किये (२०)।

कविने इस कथानकमें यहाँ थोडा-सा विराम देकर दूसरा प्रसंग उपस्थित किया है। उसके अनुसार सुरदेश स्थित पोदनपुर नामके नगरमें राजा प्रजापति राज्य करते थे। उनकी जयावती और मृगावती नामकी दो भार्याएँ थी। संयोगसे विशाखभूतिका जीव रानी जयावतीकी कोखसे विजय नामक पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुआ (२१–२२)। और विश्वनन्दिका जीव रानी मृगावतीकी कोखसे त्रिपृष्ठ नामक अत्यन्त पराक्रमी पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुआ (२३)।

एक दिन प्रजाजनों ने राजदरवारमें आकर निवेदन किया कि "नगरमें एक भयानक पंचानन—सिंहने उत्पात मचा रखा है। अतः उससे हमारी सुरक्षा की जाये।" राजा प्रजापति उस सिंहको जैसे ही मारने हेतु प्रस्थान करने लगे, वैसे ही त्रिपृष्ठने उन्हे विनयपूर्वक रोका और उनकी आज्ञा लेकर वह स्वयं वन की ओर चल पड़ा। वनमें हड्डियोके ढेर देखकर त्रिपृष्ठ पंचानन—सिंहके रौद्र रूपको समझ गया और उसे शीघ्र ही मार डालनेके लिए लालायित हो उठा। वनमें जैसे ही सिंह त्रिपृष्ठके सम्मुख आया उसने उसे पकड़कर तथा अपनी ओर खीचकर जमीनपर पटक मारा। देखते ही देखते उसके प्राण-पखेरू उड़ गये (२४–२६)। त्रिपृष्ठ विजेताके रूपमें कोटिशिलाको खेल ही खेलमें ऊपर उठाता हुआ अपनी शक्तिका प्रदर्शन कर अपने नगर लौटा जहाँ उसका भव्य स्वागत हुआ (२८)।

एक दिन विजयाचलकी दक्षिण-श्रेणीमें स्थित रथनूपुरके विद्याधर-नरेश ज्वलनजटीका दूत राजा प्रजापतिके दरवारमें आया। दूतने राजा प्रजापतिको उनके पूर्वज ऋषभदेव, उनके पुत्र वाहुवलि एवं भरतका परिचय देकर कच्छ-नरेश राजा नमि पर सम्राट् ऋषभदेवकी असीम अनुकम्पाका इतिहास वतलाते हुए अपने स्वामी विद्याधर राजा—ज्वलनजटी तथा उनके पुत्र अर्ककीर्ति तथा पुत्री स्वयंप्रभाका परिचय दिया और निवेदन किया कि ज्वलनजटी अपनी पुत्री स्वयंप्रभाका विवाह राजकुमार त्रिपृष्ठके साथ करना चाहता है। ज्वलनजटीका प्रस्ताव स्वीकार कर प्रजापतिने उसे पुत्री सहित अपने यहाँ आनेका निमन्त्रण भेजा। दूत उस निमन्त्रणके साथ वापस चला गया। वहाँ उसने राजा ज्वलनजटीको समस्त वृत्तान्त कह सुनाया (२९–३१)। [तीसरी सन्धि]

राजा प्रजापति द्वारा प्रेपित शुभ-सन्देश एवं निमन्त्रण-पत्र पाकर ज्वलनजटी प्रसन्नतासे भर उठा। वह राजकुमार अर्ककीर्ति एवं स्वयंप्रभाके साथ राजा प्रजापतिके यहाँ पोदनपुर पहुँचा। उसे आया हुआ देखकर राजा प्रजापति भी फूला नही समाया। ज्वलनजटीको वह वहुत देर तक अपने गलेसे लगाये रहा। ज्वलन-जटीके संकेतपर अर्ककीर्तिने भी प्रजापतिको प्रणाम किया (१)। उधर प्रजापतिके दोनो पुत्रो—विजय एवं त्रिपृष्ठने भी ज्वलनजटीको प्रणाम किया (२)। दोनो पक्षोके पारस्परिक स्नेह-मिलनके वाद वैवाहिक तैयारियाँ प्रारम्भ हुईं। घर-घरमें युवतियाँ मंगलगान करने लगी। सामूहिक-रूपसे हाथोके कोनोंसे पटह एवं मृदंग पीटे जाने लगे। मोतियोकी मालाओसे चौक पूरे जाने लगे। चिह्नांकित ध्वजा-पताकाएँ फहरायी जाने लगी और श्रेष्ठ कुल-वधुएँ नृत्य करने लगी (३)। संभिन्न नामक ज्योतिपीने शुभ-मुहूर्तमें दोनोंका विवाह सम्पन्न करा दिया।

विजयार्द्धकी उत्तरश्रेणीमें स्थित अलकापुरीके विद्याधर राजा शिखीगल तथा उसकी रानी नीलांजनाके यहाँ विशाखनन्दिका वह जीव—हयग्रीव नामक पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुआ, जो कि आगे चलकर चक्रवर्तीके रूपमें विख्यात हुआ। उसने जव यह सुना (४) कि ज्वलनजटी-जैसे विद्याधर राजाने अपनी वेटी स्वयंप्रभा एक भूमिगोचरी राजा प्रजापतिके पुत्र त्रिपृष्ठको व्याह दी है, तो वह आग-ववूला हो उठा। उसने अपने भीम,

नीलकण्ठ, ईश्वर, वज्रदाढ, अकम्पन एवं धूम्रालय नामक विद्याधर योद्धाओंके साथ ज्वलनजटी और त्रिपृष्ठको युद्धके लिए ललकारा (५-६)। हयग्रीवके मन्त्रीने उसे युद्ध न करनेके लिए बार-बार समझाया किन्तु वह हठपूर्वक अपनी सेना सहित युद्धके लिए निकल पड़ा और मार्गमें शत्रुजनोंपर आक्रमण करता हुआ एक पर्वतपर जा रुका (७-११)।

इधर राजा प्रजापतिको अपने गुप्तचर द्वारा, हयग्रीव द्वारा आक्रमण किये जानेकी सूचना मिली, तब उसने अपने मन्त्रि-मण्डलको बुलाकर विचार-विमर्श किया (१२)। सर्वप्रथम मन्त्रीवर सुश्रुतने उसे साम-नीतिसे कार्य करनेकी सलाह दी (१३-१५), किन्तु राजकुमार विजयने सामनीतिको अनुपयोगी सिद्ध कर दिया तथा उसने हयग्रीव-जैसे दुष्ट शत्रुसे युद्ध करनेकी सलाह दी। अन्तमें विजयकी सलाहको स्वीकार कर लिया गया। किन्तु गुणसागर नामक अन्य मन्त्रीने कहा कि युद्धमें प्रस्थान करनेके पूर्व युद्ध-विद्यामें सिद्धहस्त होना आवश्यक है। गुणसागरका यह सुझाव स्वीकार कर लिया गया। त्रिपृष्ठ एवं विजय ये दोनो ही विद्या सिद्ध करनेमें संलग्न हो गये। उनके अथक श्रमसे एक ही सप्ताहमें उन्हे हरिवाहिनी एवं वेगवती आदि ५०० विद्याएँ सिद्ध हो गयी। त्रिपृष्ठने अपने भाई विजय एवं सैन्यदलके साथ युद्ध-भूमिकी ओर प्रयाण किया। मार्गमें स्थान-स्थानपर प्रजाजनोंने उनका हार्दिक स्वागत कर उन्हे आवश्यक वस्तुओंका दान दिया (२०-२२) और इस प्रकार चलते-चलते वह ससैन्य रथावर्त-शैलपर पहुँचा। कविने इस प्रसंगमें रथावर्त-शैल तथा वहाँ-पर लगे हुए बाजार आदिका बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है (२३-२४)। [चौथी सन्धि]

हयग्रीव सर्वप्रथम अपने दूतको सन्धि-प्रस्ताव लेकर त्रिपृष्ठके पास भेजता है और कहलवाता है कि यदि आप अपनी कुशलता चाहते है तो स्वयंप्रभाको वापस कर दीजिए। विजय हयग्रीवका शरारत-भरा यह सन्देश सुनकर आग-बबूला हो उठता है और हयग्रीवकी असंगत बातोंकी तीव्र भर्त्सना करता है (१-४)। हयग्रीवका दूत त्रिपृष्ठको पुनः अपनी बात समझाना चाहता है, किन्तु उससे त्रिपृष्ठका क्रोध ही बढता है। अतः उसने उस दूतको तो तत्काल विदा किया और अपनी सेनाको युद्ध-क्षेत्रमे प्रयाण करनेकी आज्ञा दी। रणभेरी सुनते ही सेना युद्धोचित उपकरणोंसे सज्जित होकर त्रिपृष्ठके सम्मुख उपस्थित हो गयी (५-७)। राजा प्रजापतिने आपत्तियोके निवारक पुष्प, वस्त्र, विलेपन, ताम्बूल आदिके द्वारा सभीका सम्मान किया। सर्व-प्रथम हस्तिसेना, फिर अश्वसेना और उसके पीछे बाकीकी सेना चली। युद्ध-क्षेत्रमें त्रिपृष्ठ और हयग्रीवकी सेनाओमें कई दिनो तक भयंकर युद्ध होता रहा और अन्तमें हयग्रीव त्रिपृष्ठके द्वारा मार डाला गया (८-२३)। [पाँचवीं सन्धि]

हयग्रीवके वधके बाद नर एवं खेचर राजाओके साथ विजयने जिनपूजा की और गन्धोदकसे त्रिपृष्ठका अभिषेक किया। त्रिपृष्ठने चक्रकी पूजा की और वह दिग्विजय हेतु निकल पड़ा। सर्वप्रथम उसने मगधदेव, फिर वरतनु और प्रभास तथा अन्य देवोको सिद्ध किया और शीघ्र ही सभी राजाओंको अपने वशमे कर वह पोदनपुर लौटा। त्रिपृष्ठकी इस विजयसे ज्वलनजटी अत्यन्त प्रसन्न हुआ (१)। प्रजापतिने भी त्रिपृष्ठकी योग्यता देख कर उसका राज्याभिषेक कर दिया। कुछ समय बाद ज्वलनजटीने अपने समधी राजा प्रजापतिसे अपने घर वापस लौटनेकी अनुमति माँगी। प्रजापतिने भी उसे भावभीनी विदाई दी और ज्वलनजटी शीघ्र ही रथनूपुर वापस लौटा (२)। त्रिपृष्ठ एवं स्वयंप्रभा सुखपूर्वक समय व्यतीत करने लगे। कालक्रमसे उन्हे दो पुत्र एवं एक पुत्री उत्पन्न हुई (३)। जिनका नाम उन्होने क्रमशः श्रीविजय, विजय और द्युतिप्रभा रखा।

इधर विद्याधर-नरेश ज्वलनजटीने दीक्षा धारण कर ली। जब गुप्तचरके द्वारा राजा प्रजापतिको वह समाचार मिला, तब वह अपनी राज्यलिप्साको धिक्कारने लगा (४)। उसने हरि—त्रिपृष्ठको राज्य सौपकर मुनि पिहिताश्रवके पास जिनदीक्षा धारण कर ली और मोक्ष-लाभ लिया।

इधर द्युतिप्रभाको यौवनश्रीसे समृद्ध देखकर उसका पिता त्रिपृष्ठ योग्य वरकी खोजमें चिन्तित रहने लगा (५)। त्रिपृष्ठने विजय (हलधर) को अपनी चिन्ता व्यक्त की (६)। विजयने उसे स्वयंवर रचने की सलाह दी, जिसे त्रिपृष्ठने स्वीकार कर लिया। शीघ्र ही स्वयंवर का समाचार प्रसारित कर दिया गया और उसकी जोर-शोरके साथ तैयारियाँ प्रारम्भ हुईं। ज्वलनजटीके पुत्र रविकीर्तिने जब यह समाचार सुना तो वह अपने पुत्र अमिततेज तथा कन्या सुताराको साथ लेकर स्वयंवर-स्थलपर आ पहुँचा। सुताराने जैसे ही त्रिपृष्ठके चरण-स्पर्श किये, विजय उसके सौन्दर्यको देखकर आश्चर्यचकित रह गया (७)। रविकीर्ति भी श्रीविजयको देखकर भाव-विभोर हो उठा तथा उसने अपने मनमें सुताराका विवाह उसके साथ कर देनेका निश्चय कर लिया। सुताराके दीर्घ निश्वास एवं उद्वेगने भी श्रीविजयको अपना मनोभाव व्यक्त कर दिया (८)।

अगले दिन स्वयंवर-मण्डपमें द्युतिप्रभाने सखियो द्वारा निवेदित श्रेष्ठ सौन्दर्यादि गुणोवाले राजाओकी उपेक्षा कर अमिततेजके गलेमें वरमाला डाल दी और इधर सुताराने भी अपनी वरमाला श्रीविजयके गलेमें पहना दी। इन दोनो शुभ-कार्योके सम्पन्न होते ही अर्ककीर्ति अपने घर लौट आया। त्रिपृष्ठने पूर्वभवमें यद्यपि कठोर तपस्या की थी, किन्तु निदानवश वह मरकर तैंतीस सागरकी आयुवाले सातवें नरकमें जा पड़ा (९)। त्रिपृष्ठ (हरि) की मृत्युसे विजय (हलधर) अत्यन्त दुखी हो गया। स्थविर-मन्त्रियो द्वारा प्रतिबोधित किये जानेपर जिस किसी प्रकार उसका मोह-भंग हुआ। उसने त्रिपृष्ठकी भौतिक देहका दाह-संस्कार कर तथा श्रीविजयको राज्य-पाट सौंपकर १००० राजाओके साथ कनककुम्भ नामक मुनिराजके पास जिन-दीक्षा ग्रहण की और दीर्घ तपस्याके बाद मोक्ष प्राप्त किया (१०)।

सप्तम नरकमें त्रिपृष्ठ एक क्षण भी सुख-शान्ति न पा सका। जिस किसी प्रकार वह चक्रपाणि (त्रिपृष्ठ) भारतवर्षके एक पर्वत-शिखरपर रौद्रस्वभावी यमराजके समान सिंहके रूपमें उत्पन्न हुआ और फिर वहाँसे अनेकविध दुखोसे भरे हुए प्रथम नरकमें (११-१३)। (यहाँपर कवि पाठकोका ध्यान पुनः पिछले कडवक सं २.१७ के प्रसंगकी ओर आकर्षित करता है तथा कहता है कि—"प्रोष्ठिल मुनि राजा नन्दन की भवावलि सुनाते हुए आगे कह रहे हैं।")

मुनिराजने सिंहको मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय एवं योगरूप कर्मबन्धके कारण बताकर अन्तर्बाह्य परिग्रह-त्यागके फलका वर्णन करके संयम—उत्तम मार्जव, आर्जव एवं शौच धर्म, दुस्सह-परीषह एवं पंचाणुव्रतोका उपदेश दिया तथा त्रिपृष्ठके जीव—सिंहके अगले भवोमें जिनवर होनेकी भविष्यवाणी कर वे (मुनिराज) गगन-मार्गसे वापस लौट गये (१४-१७)। मुनिराजके उपदेशसे प्रभावित होकर वह सिंह एक शिलापर बैठ गया और समवृत्तिसे अनशन करने लगा। तपस्याकालमे वह अत्यन्त पीडा देनेवाली वायुसे आतप एवं शीत-परीषहोको सहता था। दंश-मशकों द्वारा दंशित होनेपर भी वह एकाग्र भावसे तपस्या करता रहता था। शुभ धर्मध्यानके फलसे वह सिंह मरा और सौधर्म-स्वर्गमें हरिध्वज नामका देव हुआ। स्वर्गमें अवधिज्ञान उत्पन्न होनेके कारण उसे पूर्वभवमें उद्धार करनेवाले मुनिराजका स्मरण आ गया। अतः उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करनेके लिए वह उनकी सेवामें उपस्थित हुआ और उसे व्यक्त कर वह वापस लौट गया (१८-१९)। [छठी सन्धि]

वह हरिध्वज देव वत्सा देश स्थित कनकपुर नामके नगरके विद्याधर राजा कनकप्रभकी रानी कनकमालाके गर्भसे कनकध्वज नामक पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुआ। विद्या, कीर्ति एवं यौवनसे सम्पन्न होनेपर राजा कनकप्रभने उसका विवाह एक सुन्दरी राजकुमारी कनकप्रभाके साथ कर दिया (१-३)।

इधर कनकप्रभने कनकध्वजको नृपश्री देकर सुमति नामक मुनिवरके समीप दीक्षा ग्रहण कर ली। कनकध्वजने योग्यतापूर्वक राज्य-संचालन कर पर्याप्त यश एवं लोकप्रियता अर्जित की। समयानुसार उसे हेमरथ नामक एक पुत्ररत्नकी भी प्राप्ति हुई (४)।

एक दिन कनकध्वज अपनी प्रियतमाके साथ नन्दनवनमें गया, जहाँ अशोक-वृक्षके नीचे एक शिलापर सुव्रत नामक मुनिराजके दर्शन किये (५)। मुनिराजने कनकध्वजको सागार एवं अनगार धर्मोका उपदेश दिया। कनकध्वजने उक्त धर्मोंके साथ-साथ मूल-गुणो और उत्तर-गुणोको भी भली-भाँति समझकर उनसे दीक्षा ग्रहण कर ली और कठोर तपस्या करके वह कापिष्ठदेव हुआ (६-८)। वहाँकी आयु भोगकर उसने च्यवन किया और उज्जयिनी नरेश वज्रसेनकी सुशीला नामक रानीकी कोखसे हरिषेण नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। कुछ वर्षोके बाद वज्रसेनने हरिषेणको सारा राजपाट सौपकर श्रुतसागर मुनिराजके पास दीक्षा ग्रहण कर ली (९-११)। राजा हरिषेण अनासक्त-भावसे राजगद्दीपर बैठा। वह निरन्तर धार्मिक कार्योमें ही लीन रहा करता था। अपने कार्यकालमें उसने अनेक विशाल जैन मन्दिरोका निर्माण कराया तथा निरन्तर श्री, चन्दन, कुसुम, अक्षत आदि अष्ट-द्रव्योसे वह पूजा-विधान करता रहता था। किन्तु अपने अपराजेय विक्रमसे राज्यश्रीको निष्कण्टक बनाये रखनेमें भी वह सदा सावधान बना रहा (१२-१६)।

इस प्रकार उसने कई वर्ष व्यतीत कर दिये। एक बार वह प्रमदवनमें मुनिराज सुप्रतिष्ठके दर्शनार्थ गया। वहाँ उनके उपदेशोंसे प्रभावित होकर उसने जिनदीक्षा ले ली। वह घोर तपश्चरण कर मरा और महाशुक्र नामके स्वर्गमें प्रीतिकर देव हुआ (१७)। [सातवीं सन्धि)

पूर्व-विदेह स्थित सीतानदीके किनारे क्षेमापुरी नामकी नगरी थी। जहाँ राजा धनंजय राज्य करते थे। उनकी कामविजयकी वैजयन्ती—पताकाके समान महारानी प्रभावतीकी कोखसे वह प्रीतिकर देवका जीव प्रियदत्त नामक पुत्रके रूपमे उत्पन्न हुआ। जब वह प्रियदत्त युवक हुआ, तभी राजा धनंजयको वैराग्य उत्पन्न हो गया और वह प्रियदत्तको राज्य सौपकर क्षेमंकर मुनिके समीप दीक्षित हो गया (१-२)।

राजा प्रियदत्त एक दिन जब अपनी राज्य-सभामें बैठा था तभी किसीने उसे सूचना दी कि "आपकी प्रहरण-शाला (शस्त्रागार) में शत्रु-चक्रका विदारण करनेवाला सहस्रआरा-चक्र उत्पन्न हुआ है।" इसके साथ ही उसने सर्वश्रेष्ठरत्न—विकर्वुरित दण्ड-रत्न, करवाल-रत्न, चूडामणि-रत्न, श्वेत छत्र-रत्न (३), काकिणी-रत्न, एवं चर्म-रत्न (नामक सात अचेतन रत्न), कन्या-रत्न, सेनापति-रत्न, स्थपति-रत्न (शिल्पी), मन्त्री-रत्न (पुरोहित), गृहपति-रत्न (कोषागारामात्य), तुरंग-रत्न एवं करि-रत्न (नामक सात चेतन रत्नो) के भी प्राप्त होनेकी सूचनाएँ दी। इनके अतिरिक्त राजा प्रियदत्तको कल्पवृक्षके समान नौ निधियाँ भी प्राप्त हुईं। इन सबको भी प्राप्त करके राजा प्रियदत्त निरभिमानी हो बना रहा। वह दस सहस्र राजाओके साथ तत्काल ही प्रहरणशाला गया तथा वहाँ चक्ररत्नकी पूजा की (४)।

कुछ ही दिनोमें राजा प्रियदत्तने उस चक्ररत्नके द्वारा बड़ी ही सरलतासे पृथिवीके छहों खण्डोको अपने अधिकारमे कर लिया। बत्तीस सहस्र नरेश्वरो, सोलह सहस्र देवेन्द्रो एवं मदानलमें झोंक देनेवाली श्रेष्ठ छियानवे सहस्र श्यामा कामिनियोसे परिवृत वह चक्रवर्ती प्रियदत्त उसी प्रकार सुशोभित रहता था, जिस प्रकार कि अप्सराओंसे युक्त देवेन्द्र। चक्रवर्ती प्रियदत्तको वरासन, पादासन एवं शय्यासन प्रदान करने-वाली नैसर्प-निधि, सभी प्रकारके अन्नोंको प्रदान करनेवाली पाण्डु-निधि, सभी प्रकारके आभूषणोको प्रदान करनेवाली पिंगल-निधि, सभी ऋतुओंके फलो एवं फूलोंको प्रदान करनेवाली काल-निधि, सोने एवं चाँदी आदिके बरतन प्रदान करनेवाली महाकाल-निधि, घन, रन्ध्र, तत, वितत आदि वाद्योंको प्रदान करनेवाली शंख-निधि, दिव्य वस्तुओको प्रदान करनेवाली पद्म-निधि, प्रहरणास्त्र आदिको प्रदान करनेवाली माणव-निधि एवं प्रकाश करनेवाले रत्नोंको प्रदान करनेवाली सर्वरत्न नामकी निधि भी उसे प्राप्त हो गयी (५-६)।

चक्रवर्ती प्रियदत्तने चौदह रत्नों एवं नौ निधियोके द्वारा दशांग-भोगोको भोगते हुए भी तथा मनुष्य, विद्याधर और देवों द्वारा नमस्कृत रहते हुए भी अपने हृदयसे धर्मकी भावना न छोड़ी और इस प्रकार उसने तेरासी लाख पूर्व व्यतीत कर दिये।

अन्य किसी एक दिन उसने दर्पणमें अपना मुख देखते हुए कर्णमूलमें केशोंमें छिपा हुआ एक नवपलित केश देखा (७)। उस पलित-केशको देखकर राजा प्रियदत्त सोचने लगा कि "मुझे छोड़कर ऐसा कौन बुद्धिमान् होगा, जो विषम विषयोंमें इस प्रकार उलझा रहता है। सुरेन्द्रो, नरेन्द्रों एवं विद्याधरो द्वारा समर्पित तथा प्राणियोके भवके अत्यन्त प्रिय लगनेवाले भोज्य-पदार्थोंसे भी मुझ-जैसे चक्रवर्तीका चित्त सन्तुष्ट नही होता, तव वहाँ सामान्य व्यक्तियोका तो कहना ही क्या ? यथार्थ सुखके निमित्त न तो परिजन ही है और न मन्त्रिगण ही। ऐन्द्रजालिक मोहमें पड़कर मैं अपना ही अनर्थ कर रहा हूँ। अतः मेरे जीवनको धिक्कार है (८)।" यह कहकर उसने अपनेको धिक्कारा और शीघ्र ही मुनिराज क्षेमंकरके पास जाकर उसने उनका धर्मोपदेश सुनकर अपने अरिंजय नामक पुत्रको राज्य देकर १६ हजार नरेशोंके साथ दीक्षा धारण कर ली (९-१०)। चक्रवर्ती प्रियदत्तने घोर तपस्या की और फलस्वरूप वह मरकर सहस्रार स्वर्गमें सूरिप्रभ नामका देव हुआ। (यह प्रसंग पिछले २।७ से सम्बन्ध रखता है और पाठक कही भ्रममें नही पड़ जायें, इसलिए लेखकने उनका स्मरण दिलाते हुए यहाँ यह कहा है— "वही कमल-पत्रके समान नेत्रवाले तथा नन्दन इस नामसे प्रसिद्ध राजाके रूपमें तुम यहाँ अवतरित हुए हो।" (२।६ से प्रारम्भ होनेवाली राजा नन्दनकी भवावलि ८।११ पर समाप्त) (११-१२)। इस प्रकार मुनिराजका उपदेश सुनकर वह नन्दन नृप भी संशय छोडकर मुनि वन गया (१३)।

मुनिराज नन्दन एकान्तमें कठोर तपश्चर्या करने लगे। उन्होंने द्वादश प्रकारके तपोंको तपकर रत्नत्रयकी आराधना की तथा षडावश्यक-विधिका मनमें स्मरण कर शंकादिक दोषोंका परिहरण करनेमें अपनी वृत्ति लगायी (१४)। घोर तपश्चर्याके वाद राजा नन्दनने पाँच समितियो, तीन गुप्तियों एवं अन्य अनेक गुणोंसे युक्त होकर मनकी चंचल प्रवृत्तियोको रोक दिया। उसने अपने शरीरके प्रति निष्पृह स्वभाव होकर कर्मरूपी शत्रुको नष्ट कर दिया (१५-१६)। इस प्रकार घोर तपश्चर्यापूर्वक प्राण-त्याग किये और वह प्राणत-स्वर्गके पुष्पोत्तर-विमानमें इन्द्र हुआ (१७)। [आठवीं सन्धि]

प्रस्तुत 'वड्ढमाणचरिउ' की प्रथम आठ सन्धियोमे भगवान् महावीरके विविध भवान्तरोका वर्णन कर कवि ९वी सन्धिमें ग्रन्थके प्रमुख नायक वर्द्धमानका वर्णन करता है। उसके अनुसार भारतवर्षके पूर्वमें विदेह नामका एक देश था, जिसकी राजधानी कुण्डपुर थी। उस नगरीके राजा सिद्धार्थ थे। उनकी महारानी-का नाम प्रियकारिणी था (१-४)।

उधर प्राणत-स्वर्ग स्थित राजा नन्दनका वह जीव—इन्द्र अपनी सारी आयु समाप्त कर चुका और जब उसकी आयु केवल ६ माह की शेष रह गयी, तब इन्द्रकी आज्ञासे पुष्पमूला, चूलावती, नवमालिका, नतशिरा, पुष्पप्रभा, कनकचित्रा, कनकदेवी एवं वारुणीदेवी नामकी ८ दिक्कुमारियाँ महारानी प्रियकारिणीकी सेवामें आयी और उन्होने प्रियकारिणीको प्रणाम कर सेवा करनेकी आज्ञा माँगी। इन्द्रकी आज्ञासे कुवेर साढ़े तीन करोड श्रेष्ठ मणिगणांसे युक्त निधि-कलश हाथमें लेकर गगनरूपी आँगनसे कुण्डपुरमें उस समय तक मणियोको वरसाता रहा, जवतक कि ६ माह पूरे न हो गये। इधर प्रियकारिणीने एक दिन रात्रिके अन्तिम प्रहरमें मनके लिए अत्यन्त सुखद एवं उत्तम १६ स्वप्नोको देखा। उसने सवेरे उठते ही उन स्वप्नोको महाराज सिद्धार्थकी सेवामें निवेदन कर उनका फल पूछा (५-६)। महाराज सिद्धार्थने जब त्रिशलाको १६ स्वप्नोका फल सुनाते हुए यह वताया कि उनकी कोखसे शीघ्र ही एक तीर्थंकर-पुत्र जन्म लेगा, तो वह फूली न समायी। इधर जब उस देवराज इन्द्रके छठे महीनेका अन्तिम दिन पूरा हुआ, तभी—प्रियकारिणीको पुनः एक स्वप्न आया जिसमें उसने एक शुभ्र गज अपने मुखमें प्रवेश करते हुए देखा। वह प्राणत-देव प्रियकारिणीके गर्भमें आया। उस उपलक्ष्यमें कुवेर ९ मास तक निरन्तर रत्नवृष्टि करता रहा। गर्भिणी माँकी सेवा हेतु श्री, ह्री, धृति, लक्ष्मी, सुकृति और मति नामकी देवियाँ सेवा हेतु पधारी और निरन्तर उस माताकी सेवा करती रही (७-८)। तेजस्वी वालकके गर्भमें आते ही रानी त्रिशला अत्यन्त कृश-काय हो गयी। उसने ग्रहोंके उच्चस्थलमें

स्थित होते ही मधुमास [चैत्र] की शुक्ल त्रयोदशीके दिन एक तेजस्वी बालकको जन्म दिया (९)। देवेन्द्रोंने तरह-तरहके आयोजन किये और ऐरावत हाथीपर विराजमान कर वड़े गाजे-वाजेके साथ अभिषेक-हेतु सुमेरु-पर्वतपर ले गये। वहाँ पाण्डुक-शिलापर विराजमान कर १००८ स्वर्ण-कलशोंमें भरे क्षीर-समुद्रके जलसे उनका अभिषेक किया। उसके तत्काल वाद ही उस शिशुका नाम 'वीर' घोषित किया। दसवें दिन राजा सिद्धार्थने कुलश्रीकी वृद्धि देखकर उसका नाम वर्धमान रखा तथा आगे चलकर विविध घटनाओंके कारण वे सन्मति एवं महावीरके नामसे भी प्रसिद्ध हुए (१०-१६)।

महावीर वर्धमान क्रमशः वृद्धिगत होकर जव युवावस्थाको प्राप्त हुए, तभी ३० वर्षकी आयुमें उन्हें संसारसे वैराग्य हो गया। जव लौकान्तिक देवोंको अवधिज्ञानसे यह विदित हुआ, तव वे कुण्डपुर आये और चन्द्रप्रभा नामकी एक शिविका तैयार की। महावीर उसपर सवार हुए तथा कुण्डपुरसे निकलकर (१७-१९) नागखण्डवनमें गये। वहाँ षष्ठोपवास-विधि पूर्वक केशलुंच कर उन्होंने जिन-दीक्षा ग्रहण कर ली। कुछ समय वाद वर्धमानको ऋद्धियों सहित मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हो गया। अगले दिन मध्याह्न-कालमें जव सूर्य-किरणें दशों दिशाओंमें फैल रही थी, तभी दयासे अलंकृत चित्तवाले वे सन्मति जिनेन्द्र पारणा के निमित्त कुलपुरमें प्रविष्ट हुए और वहाँ के राजा कुलचन्द्रके यहाँ पारणा ग्रहण की। उसके वाद भ्रमण करते-करते वे एक महा-भीषण अतिमुक्तक नामक श्मशान-भूमिमे रात्रिके समय प्रतिमायोगसे स्थित हो गये। उसी समय 'भव' नामक एक वलवान् रुद्रने उनपर घोर उपसर्ग किया, किन्तु वह भगवान्को विचलित न कर सका। अतः उसने वर्धमानका 'अतिवीर' यह नाम घोषित किया। षष्ठोपवास पूर्वक एकाग्र मनसे वैशाख शुक्ल दशमीके दिन जव सूर्य अस्ताचलकी ओर जा रहा था, तभी महावीरको ऋजुकूला नदीके तीरपर केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई। केवलज्ञान प्राप्त होते ही उन्हें समस्त लोकालोक हस्तामलकवत् झलकने लगा। इन्द्रका आसन जव कम्पायमान हुआ तव अवधिज्ञानके वलसे उसे महावीर द्वारा केवलज्ञान-प्राप्तिका वृत्त अवगत हुआ। उसने शीघ्र ही यक्षको समवसरणकी रचनाका आदेश दिया। उसने भी १२ योजन प्रमाण सुन्दर समवसरणकी रचना की। (कविने समवसरणकी रचनाका वर्णन पूर्वाचार्यों द्वारा प्राप्त परम्पराके अनुसार ही किया है) (२०-२३)।

[नवीं सन्धि]

समवसरण प्रारम्भ हुआ। सभी प्राणी अपने-अपने कक्षोंमें वैठ गये, फिर भी भगवान्की दिव्यध्वनि नहीं खिरी। यह वड़ी चिन्ताका विषय वन गया। इन्द्रने उसी समय अपने अवधिज्ञानसे उसका कारण जाना और अपनी विक्रिया-ऋद्धिसे वह एक दैवज्ञ-ब्राह्मणका वेश वनाकर तुरन्त ही गौतम नामक एक ब्राह्मणके पास पहुँचा (१)। पहले तो गौतमने वड़े अहंकारके साथ उस दैवज्ञ-ब्राह्मणके साथ वार्तालाप किया, किन्तु दैवज्ञ-ब्राह्मणने जव गौतमसे एक प्रश्न पूछा और वह उसका उत्तर न दे सका, तव वह दैवज्ञ-ब्राह्मणके साथ उस प्रश्नके स्पष्टीकरणके हेतु अपने ५०० शिष्योंके साथ महावीरके समवसरणमें पहुँचा। वहाँ सर्वप्रथम मान-स्तम्भके दर्शन करते ही उसका और उसके शिष्योंका मान खण्डित हो गया। गौतम विप्र महावीरके दिव्य-दर्शनसे इतना प्रभावित हुआ कि उसने तत्काल ही जिनदीक्षा ले ली और उत्कृष्ट ज्ञानका धारी वनकर भगवान् महावीरकी दिव्यवाणीको झेलने लगा (२)।

उसके वाद इन्द्रने जिनेन्द्रसे सप्त-तत्त्वों सम्वन्धी प्रश्न पूछा। उसे सुनकर जिनेश्वरने अर्धमागधी भाषामे उत्तर देना प्रारम्भ किया। भगवान् महावीरने सर्वप्रथम जीव तत्त्व—विविध जीवोंके निवासस्थान, उनकी विविध योनियों एवं आयु आदिके वर्णन किये (३)। तत्पश्चात् उन्होंने जिस प्रकार अपना प्रवचन किया उसका वर्गीकरण निम्न प्रकार है—

जीव, जीवोंकी योनियाँ एवं उनका कुलक्रम (४), जीवोंकी पर्याप्तियाँ एवं आयुस्थिति (५), जीवोंके शरीर-भेद (६), स्थाव   विकलत्रय एवं पंचेन्द्रिय-तिर्यंचोंका वर्णन (८), प्राणियोंके

निवासस्थान, द्वीपोंके नाम तथा एकेन्द्रिय एवं विकलत्रय-जीव-शरीरोंके प्रमाण (९), समुद्री जलचरों एवं अन्य जीवों की शारीरिक स्थिति (१०), जीवकी विविध इन्द्रियों एवं योनियोंके भेद-वर्णन (११), विविध जीव-योनियोंके वर्णन (१२), सर्प आदिकी उत्कृष्ट-आयु तथा भरत, ऐरावत क्षेत्रों तथा विजयार्द्धपर्वतका वर्णन (१३), विविध क्षेत्रों एवं पर्वतोंका प्रमाण (१४), पर्वतों एवं सरोवरोंका वर्णन (१५), भरतक्षेत्रका प्राचीन भौगोलिक वर्णन एवं नदियों, पर्वतों, समुद्रों एवं नगरोंकी संख्या (१६), द्वीप, समुद्र और उनके निवासी (१७), भोगभूमियोंके विविध मनुष्योंकी आयु, वर्ण एवं वहाँ की वनस्पतियोंके चमत्कार (१८), भोगभूमियोंमें काल-वर्णन तथा कर्म-भूमियोंमें आर्य, अनार्य (१९), कर्मभूमियोंके मनुष्योंकी आयु, शरीरकी ऊँचाई तथा अगले जन्ममें नवीन योनि प्राप्त करनेकी क्षमता (२०), विभिन्न कोटिके जीवोंकी मृत्युके बाद प्राप्त होनेवाले उनके जन्मस्थान (२१), तिर्यग्-लोक एवं नरक-लोकमें प्राणियोंकी उत्पत्ति, क्षमता एवं भूमियोंका विस्तार (२२), प्रमुख नरकभूमियाँ एवं वहांके निवासी, नारकी-जीवोंकी दिनचर्या एवं जीवन (२३), नरकके दुःखोंका वर्णन (२४-२७), नारकियोंके शरीरोंकी ऊँचाई तथा उनकी उत्कृष्ट एवं जघन्य आयुका प्रमाण (२८), देवोंके भेद एवं उनके निवासोंकी संख्या (२९), स्वर्गमें देव-विमानोंकी संख्या (३०), देव-विमानोंकी ऊँचाई (३१), देवोंकी शारीरिक स्थिति (३२), देवोंमें प्रविचार(मैथुन)-भावना (३३), ज्योतिषी-देवों एवं कल्प-देवों एवं देवियोंकी आयु तथा उनके अवधिज्ञानके द्वारा जानकारीके क्षेत्र (३४), आहारकी अपेक्षा, संसारी-प्राणियोंके भेद (३५), जीवोंके गुणस्थानोंका वर्णन (३६), गुणस्थानारोहण-क्रम एवं कर्म-प्रकृतियोंका नाश (३७)।

सिद्ध जीवोंका वर्णन (३८), जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष-तत्त्वोंका वर्णन (३९)।

भगवान् महावीरका कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीकी रात्रिके अन्तिम प्रहरमें पावापुरीमें निर्वाण (४०), एवं, कवि और आश्रयदाताका परिचय तथा भरत वाक्य (४१)। [दसवीं सन्धि]

२. परम्परा और स्रोत

पुरातन-कालसे ही श्रमण-महावीरका पावन चरित कवियोंके लिए एक सरस एवं लोकप्रिय विषय रहा है। तिलोयपण्णत्ती[१] प्रभृति शौरसेनी-आगम-साहित्यके बीज-सूत्रों के आधारपर दिगम्बर-कवियों एवं आचारांग आदि अर्धमागधी आगम-ग्रन्थों के आधारपर श्वेताम्बर कवियोंने समय-समयपर विविध भाषाओंमें महावीर-चरितोंका प्रणयन किया है।

दिगम्बर महावीर-चरितोंमें संस्कृत-भाषामें आचार्य गुणभद्रकृत उत्तरपुराणान्तर्गत 'महावीरचरित' (१०वीं सदी), महाकवि असगकृत वर्धमानचरित्र[३] (११वीं सदी), पण्डित आशाधरकृत त्रिषष्टिस्मृति-शास्त्रम्[४] के अन्तर्गत महावीर-पुराण, (१३वीं सदी), आचार्य दामनन्दीकृत पुराणसार संग्रह[५] के अन्तर्गत महावीरपुराण, भट्टारक सकलकीर्ति कृत वर्धमानचरित[६] (१६वीं सदी) एवं पद्मनन्दीकृत वर्धमानचरित (अप्रकाशित, सम्भवतः १५वीं सदी) प्रमुख हैं।

---

१. जीवराज ग्रन्थमाला शोलापुर (१९४३,५१ ई.) से दो खण्डोंमें प्रकाशित, सम्पादक : प्रो. डॉ. ए. एन. उपाध्ये तथा डॉ. हीरालाल जैन।
२. भारतीय ज्ञानपीठ, काशी (१९५४ ई.) से प्रकाशित।
३. रावजी सखाराम दोशी, शोलापुर (१९३१ ई.) से प्रकाशित।
४. माणिकचन्द्र दि. जैन ग्रन्थमाला, बम्बई (१९३७ ई.) से प्रकाशित।
५. भारतीय ज्ञानपीठ, काशी (१९५४-५५) से दो भागों में प्रकाशित।
६. भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली (१९७५ ई.) से प्रकाशित।

दाक्षिणात्य[1] कवियोंमें केशव, पद्म, आचण्ण एवं वाणीवल्लभकृत महावीर चरित उल्लेखनीय है।

अपभ्रंश-भाषामें आचार्य पुष्पदन्तकृत महापुराणान्तर्गत वड्ढमाणचरिउ[2] (१०वीं सदी), विबुध-श्रीधरकृत वड्ढमाणचरिउ[3] (वि. सं. ११९०), महाकवि रइधूकृत महापुराणान्तर्गत महावीरचरिउ[4] एवं स्वतन्त्र रूपसे लिखित सम्मइजिणचरिउ[5] (१५वीं सदी), जयमित्रहल्लकृत वड्ढमाणकव्व (अप्रकाशित, १४-१५वीं सदीके आस-पास), तथा कवि नरसेनकृत वड्ढमाणकहा[6] (१६वीं सदी) प्रमुख हैं।

जूनी गुजरातीमें महाकवि पदमकृत महावीर-रास (अप्रकाशित १७वीं सदी) तथा बुन्देली–हिन्दीमें नवलशाहकृत वर्धमानपुराण[7] (१९वीं सदी) प्रमुख हैं।

श्वेताम्बर-परम्परामें अर्धमागधी प्राकृतागमोंमें उपलब्ध महावीर-चरितोंके अतिरिक्त स्वतन्त्र रूपमें प्राकृत-भाषामें लिखित श्री देवेन्द्रगणिकृत 'महावीरचरियं'[8] (१०वीं सदी), श्री सुमतिवाचकके शिष्य गुणचन्द्रकृत 'महावीरचरियं' (१०-११वीं सदी) तथा देवभद्रसूरिकृत 'महावीरचरियं'[9] तथा शीलांकाचार्य कृत 'चउप्पन्नमहापुरिसचरियं'[10] के अन्तर्गत वड्ढमाणचरियं (वि. सं. ९२५) प्रमुख हैं।

अपभ्रंश-भाषामें जिनेश्वरसूरिके शिष्य द्वारा विरचित महावीरचरिउ[11] महत्त्वपूर्ण रचना है।

संस्कृत-भाषामें जिनरत्नसूरिके शिष्य अमरसूरिकृत 'चतुर्विंशति जिनचरित्रान्तर्गत' 'महावीरचरितम्'[12] (१३वीं सदी), हेमचन्द्राचार्यकृत त्रिषष्टिशलाकापुरुष[13] चरितान्तर्गत महावीरचरित (१३वीं सदी) तथा मेरुतुंगकृत महापुराणके अन्तर्गत महावीरचरितम्[14] (१४वीं सदी) उच्चकोटिकी रचनाएँ हैं।

उक्त वर्धमानचरितोंमें-से प्रस्तुत 'वड्ढमाणचरिउ' की कथाका मूल स्रोत आचार्य गुणभद्रकृत उत्तर-पुराणके ७४वें पर्वमें ग्रथित महावीरचरित्र एवं महाकवि असगकृत वर्धमानचरित्र है। यद्यपि विबुध श्रीधरने इन स्रोत-ग्रन्थोंका उल्लेख 'वड्ढमाणचरिउ' में नहीं किया है, किन्तु तुलनात्मक अध्ययन करनेसे यह स्पष्ट है कि उसने उक्त वर्धमानचरित्रोंसे मूल कथानक ग्रहण किया है। इतना अवश्य है कि कवि श्रीधरने उक्त स्रोत-ग्रन्थोंसे घटनाएँ लेकर आवश्यकतानुसार उनमें कुछ कतर-ब्योंत कर मूल कथाको सर्वप्रथम स्वतन्त्र अपभ्रंश-काव्योचित बनाया है। गुणभद्रने मधुवन-निवासी भिल्लराज पुरुरवाके भवान्तर वर्णनोंसे ग्रन्थारम्भ किया है जबकि असगने श्वेतातपत्रा तथा विबुध श्रीधरने सितछत्रा नगरीके राजा नन्दिवर्धनके वर्णनसे अपने ग्रन्थारम्भ किये हैं। गुणभद्र द्वारा वर्णित सती चन्दनाचरित[15], राजा श्रेणिकचरित[16] एवं अभयकुमार-चरित,[17] राजा चेटक[18] एवं रानी चेलनाचरित,[19] जीवन्धरचरित,[20] राजा श्वेतवाहन,[21] जम्बूस्वामी,[22]

---

१. भारतीय ज्ञानपीठसे प्रकाश्यमान।
२. माणिकचन्द्र दि. जै. ग्र., बम्बई (१९३७-४७) से प्रकाशित।
३. भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली (१९७५ ई.) से प्रकाशित (सम्पा. डॉ राजाराम जैन)
४. भारतीय ज्ञानपीठसे प्रकाश्यमान, (सम्पा० डॉ. राजाराम जैन)।
५. रइधू ग्रन्थावलीके अन्तर्गत जीवराज ग्रन्थमाला शोलापुरसे शीघ्र ही प्रकाश्यमान।
६. भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्लीसे शीघ्र ही प्रकाश्यमान।
७. दि. जैन पुस्तकालय. सूरतसे प्रकाशित।
८. जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर (वि. स. १९७३) से प्रकाशित।
९. देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार फण्ड, बम्बई (वि. सं. १९९४) से प्रकाशित।
१०. दे. भारतीय संस्कृतिमें जैनधर्मका योगदान (भोपाल, १९६२ ई.) ले. डॉ. हीरालाल जैन, पृ. १३५।
११. प्राकृत टैक्स्ट सोसाइटी, वाराणसी (१९६१ ई.) से प्रकाशित।
१२. दे. भा. स. में जै. का योगदान, पृ. १५८।
१३. गायकवाड ओरियण्टल सीरीज, बडौदा, (१९३२) से प्रकाशित।
१४. जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर (१९०६-१३ ई.) से प्रकाशित।
१५. दे. भा. सं. में जैन. का योगदान, पृ. १९९।
१६-१८. दे. उत्तरपुराणका ७४वाँ पर्व।
१९-२१. वही, ७५वाँ पर्व।
२२. वही, ७६वाँ पर्व।

प्रीतिंकर मुनि,[1] कल्किपुत्र अजितंजय[2] तथा आगामी तीर्थंकर आदि शलाकापुरुषोंके चरितोंके वर्णन[3] कवि असगकी भाँति ही विवुध श्रीधरने भी अनावश्यक समझकर छोड़ दिये हैं। गुणभद्रने मध्य एवं अन्तमें दार्शनिक, आध्यात्मिक, सैद्धान्तिक एवं आचारमूलक विस्तृत वर्णनोंके लिए पर्याप्त अवसर निकाल लिया है। असगने भी मध्यमें यत्किंचित् तथा अन्तमें उनका विस्तृत विवेचन किया है। किन्तु विवुध श्रीधर ने ग्रन्थके मध्यमें तो उपर्युक्त विषयों सम्बन्धी कुछ .पारिभाषिक नामोल्लेख मात्र करके ही काम चला लिया है तथा अन्तमें भी सैद्धान्तिक एवं दार्शनिक विषयोको संक्षिप्त रूपमें प्रस्तुत किया है। भवावलियोको भी उसने संक्षिप्त रूपमें उपस्थित किया है। इस कारण कथानक अपेक्षाकृत अधिक सरस एवं सहज ग्राह्य बन गया है।

कवि श्रीधरने कथावस्तुके गठनमें यह पूर्ण आयास किया है कि प्रस्तुत पौराणिक कथानक काव्योचित बन सके, अतः उसने प्राप्त घटना-प्रसंगोके पूर्वापर क्रम-निर्धारण, पारस्परिक-सम्बन्ध-स्थापन तथा अन्तर्कथाओका यथास्थान संयोजन कुशलतापूर्वक किया है। विविध पात्रोंके माध्यमसे लोक-जीवनके विविध पक्षोकी सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। कथावस्तुके रूप-गठन में कविने योग्यता, अवसर, सत्कार्यता एवं रूपाकृति नामक तत्त्वोका पूर्ण ध्यान रखा है।

३. पूर्व कवियोंका प्रभाव

विवुध श्रीधर बहुश्रुत एवं पूर्ववर्ती साहित्यके मर्मज्ञ विद्वान् प्रतीत होते हैं। 'वड्ढमाणचरिउ' का अध्ययन करनेसे ज्ञात होता है कि उन्होने महाकवि कालिदास, भारवि, हरिचन्द्र, वीरनन्दि और असग प्रभृति कवियोके ग्रन्थोका अध्ययन ही नही किया था, अपितु उपादान-सामग्रीके रूपमें उनके कुछ अंशोंको भी ग्रहण किया था। प्राचीन-साहित्यमें आदान-प्रदानकी यह प्रवृत्ति प्रायः ही उपलब्ध होती है। इसका मूल कारण यह है कि कवियोमें पूर्वकवियों या गुरुजनोंकी आदर्श-परम्पराओके अनुकरणकी सहज प्रवृत्ति होती है। पूर्वागत परम्पराके साथ-साथ समकालीन साहित्यिक दृष्टिकोण तथा उनमें कविकी मौलिक उद्भावनाओका अद्भुत सम्मिश्रण रहता है। इनसे अतीत एवं वर्तमान साहित्य-परम्पराकी अन्तःप्रवृत्ति एवं सौन्दर्यमूलक भावनाओ का इतिहास तथा उनके भावी-सन्देशके इतिहासका निर्माण अनायास ही होता चलता है। कवि श्रीधरने जिन-जिन पूर्व-रचित ग्रन्थोसे सामग्री ग्रहण की, उसके सादृश्य अथवा प्रभावितांश इस प्रकार है—

कालिदास—अन्येद्युरात्मानुचरस्य....[रघु. २।२६]
विवुध श्रीधर—अण्णेहिं णरिंद सुवेहिं जुत्तु सहयरिहिं....[वड्ढ. १।७।१०]
कालिदास—न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते [कुमार ५।१६]
विवुध श्रीधर—इय वयस-भाउ ण समक्खियए [वड्ढ. ६।६।१०]
कालिदास—पयोधरीभूतचतुःसमुद्रां जुगोप गोरूपधरामिवोर्वीम् [रघु. २।३]
विवुध श्रीधर—चउ-जलहि-पओहर रयण-खीरु-गोदुहिवि लेइ सो गोउ धीरु [वड्ढ. १।१३।१-२]
भारवि—विषयोऽपि विगाह्यते नयः कृततीर्थः पयसामिवाशयः।
स तु तत्र विशेषदुर्लभः सदुपन्यस्यति कृत्यवर्म यः॥ [किरात. २।३]
विवुध.—सो णय-दच्छु बुहेहि समासिउ।
साहिय-सत्थु सवयणु पयासिउ [वड्ढ. ४।१५।१०]
माघ—कान्तेन्दु-कान्तोत्पल-कुट्टिमेषु प्रतिक्षपं हर्म्यतलेषु यत्र।
उच्चैरधःपातिपयोमुचोऽपि समूहमूहुः पयसां प्रणाल्यः॥ [शिशु. ३।४४]
विवुध श्रीधर—गेहग्ग लग्ग चंदोवलेहिं अणवरयमुक्क णिम्मलजलेहिं॥ [९।२।९]

१-३ वही ७६वाँ पर्व।

वीरनन्दि—भङ्गः कचेषु नारीणां वृत्तेषु न तपस्विनाम् [चन्द्र. २।१३९]
विबुध.—कुडिलत्तणु ललणालयगणेसु [वड्ढ. ९।१।१०]
वीरनन्दि—विरस त्वं कुकाव्येषु मिथुनेषु न कामिनाम् [चन्द्र. २।१३९]
विबुध.—किं कुकइ कहइ लइ वप्प जेत्थु [वड्ढ. ९।१।१२]
हरिचन्द्र—असम्भृतं मण्डनमङ्गयष्टेर्नष्टं क्व मे यौवनरत्नमेतत् ।
इतीव वृद्धो नतपूर्वकायः पश्यन्नधोऽधो भुवि बम्भ्रमीति ॥ [धर्मशर्मा. ४।५९]
विबुध श्रीधर—सिढिली भूजुवल णिरुद्ध-दिट्ठी, पइ-पइ खलंतु णावंतु दिट्ठि ।
णिवडिउ महि-मंडलि कह वि णाइँ, णिय-जोव्वणु एहु णियंतु जाइँ ॥
[वड्ढ. ३।४।१०-११]
हरिचन्द—सौदामिनीव जलदं नवमञ्जरीव चूतद्रुमं कुसुमसंपदिवाद्यमासम् ।
ज्योत्स्नेव चन्द्रमसमच्छविभेव सूर्यं तं भूमिपालकमभूषयदायताक्षी ॥ [जीवन्धर. १।२७]
विबुध श्रीधर—पउमरयणु जिह कर-मंजरीए, चूव-द्दुमु जिह नव मंजरीए ।
अहिणव-जलहरु जिह तडिलयाए नियं पिययमु तिह भूसियउ ताए ॥
[वड्ढ. १।६।३-४]
असग—यत्सौधकुड्येषु विलम्बमानानितस्ततो नीलमहामयूखान् ।
ग्रहीतुमायान्ति मुहुर्मयूर्यः कृष्णोरगास्वादनलोलचित्ताः ॥ [वर्धमानचरित्र १।२३]
विबुध.—जहिँ मंदिर-भित्ति-विलंबमाण णीलमणि करोहइ धावमाण ।
माऊर इंति गिल्लण-कएण कसणोरयालि भक्खण रएण ॥ [वड्ढ. १।४।११-१२]
असग—विद्युल्लतेवाभिनवाम्बुवाहं चूतद्रुमं नूतनमञ्जरीव ।
स्फुरत्प्रभेवामलपद्मरागं विभूषयामास तमायताक्षी ॥ [वर्ध. १।४४]
विबुध.—पउमरयणु जिह कर-मंजरीए चूव-द्दुमु जिह नव मंजरीए ।
अहिणव-जलहरु जिह तडिलयाए नियं पिययमु तिह भूसियउ ताए । [वड्ढ. १।६।३-४]
असग—तज्जन्मकाले विमलं नभोभूद्दिग्भिः समं भूरपि सानुरागा ।
स्वयं विमुक्तानि च बन्धनानि मन्दं ववौ गन्धवहः सुगन्धिः ॥ [वर्ध. १।४७]
विबुध.—तहो जम्म कालें णहु स-दिसु जाउ णिम्मलु महिवीढु वि साणुराउ ।
पवहइ सुअंधु गंधवहु मंदु गुत्तिहें पविमुक्कउ वंदि वंदु ॥ [वड्ढ. १।७।१-२]
असग—..................प्रियंकरा मनसिशयैकवागुरां ।
व्रतानि सम्यक्त्वपुरःसराणि पत्युः प्रसादात्समवाप्य सापि ।
धर्मामृतं भूरि पपौ प्रियाणां सदानुकूला हि भवन्ति नार्यः ॥ [वर्ध. १।६६-६७]
विबुध.—णामेण पियंकर पियर-भत्त, णिय-सिरि जिय-तियसंगण सुगत्त ।
सम्मत्त-पुरस्सर-वयइँ पावि, पिययमहो पसाएँ पियइँ सावि ।
धम्मामउ अणु-दिणु पियहँ हुंति, पिययम अणुकूल ण कावि भंति । [वड्ढ. १।११।८-१०]
असग—असक्तमिच्छाधिकदानसंपदा मनोरथानर्थिजनस्य पूरयन् ।
अवाप साम्यं सुमनोभिरन्वितो महीपतिर्जंगमकल्पभूरुहः ॥ [वर्ध. २।३]
विबुध.—इच्छाहिय दाणें कय-सुहाइ, वंदिहु पूरंतु मणोहराइँ ।
तो सुमणालंकिउ वइरि-भीसु, जंगम-सुरतरु-समु हउ महीसु ॥ [वड्ढ. १।१२।५-६]

असग.—सता प्रियः काञ्चनकूटकोटिषु ज्वलज्जपालोहितरत्नरश्मिभिः ।
जिनालयान्पल्लवितांम्बरद्रुमानकारयद्धर्मधना हि साधवः ॥
कपोलमूलस्रुतदानलोलुपद्विरेफमालासितवर्णचामरैः ।
स पिप्रिये प्राभृतमत्तदन्तिभिः प्रिया न केषां भुवि भूरिदानिनः ॥
करान्गृहीत्वा परचक्रभूभृताममात्यमुख्यान् समुपागतान् स्वयम् ।
अनामयप्रश्नपुरःसरं विभुः स संबभाषे प्रभवो हि वत्सलाः ॥ [वर्ध. २।४-६]

विवुध.—सो कणय-कूड-कोडिहि वराइँ कारावइ मणहर जिणहराइँ ।
पोम-मणि करोहहि आरुणाइँ पल्लवियंवर पविउल-वणाइँ ।
अवर वि णर हुंति महंत संत धम्माणुरत्त चिंतिय परत्त ।
अणवरय चलिय सुवि चामरेहिँ तुंगहि विंभिय-खयरामरेहिँ ।
दाणंवु गंध-रय-छप्पएहिँ पाहुड-मय-मत्त-महागएहिँ ।
भाउ व संतोसु ण करहिँ कासु वहु दाणवंत अवर वि जणासु ।
उब्भिवि करु लेविणि असि फरु संभासइ चच्चिय छलु ।
सो सुस्सरु कुसल-पुरस्सरु सामिउ होइ सवच्छलु ॥ [वड्ढ. १।१२।७-१४]

असग—चतुःपयोराशिपयोधरश्रियं नियम्य रक्षायतरश्मिनावनम् ।
उपस्नुतां सन्नयवत्सलालनैर्दुदोह गा रत्नपयांसि गोपकः ॥ [वर्ध. २।७]

विवुध —रक्खा रज्जुए णिम्मियभरेण णिरुवम णएण लालिवि करेण ।
चउ-जलहि-पओहर रयणखीरु गो दुहिवि लेइ सो गोउ धीरु ॥ [वड्ढ. १।१३।१-२]

४. वि. सं. ९५५ से १६०५ के मध्य लिखित कुछ प्रमुख महावीर-चरितोंके घटना-क्रमोंकी भिन्नाभिन्नता तथा उनका वैशिष्ट्य

दि. परम्पराके पूर्वोक्त कुछ प्रमुख महावीर-चरितोका विविध पक्षीय तुलनात्मक अध्ययन करनेसे यह स्पष्ट विदित होता है कि उन कवियोने महावीरके जीवनको अपने-अपने दृष्टिकोणोंसे प्रस्तुत किया है। महाकवि असगको छोडकर वाकीके कवियोने भवावलियोकी कुल संख्या ३३ मानी है जवकि असगने ३१। उनकी कृतिमें २२वें एवं २३वें भवोके उल्लेख नहीं है। श्वेताम्बर-परम्पराके प्रमुख आगम ग्रन्थ—कल्पसूत्रमें[1] महावीरके २७ पूर्व-भव माने गये हैं जिनमें-से दि. मान्यताके ६, २३, २४, २५, २६ एवं २७वें भव उसमें नही मिलते। साथ ही १, ५, ६, ७, ९, १०, ११, १२, १६, १७, २२ एवं २३वें भव में उनके क्रम-निर्धारण अथवा नाम-साम्योमें हीनाधिक अन्तर हैं।[2]

अन्य घटना-क्रमोके वर्णनमें महाकवि असग, रइधू और पदम अपेक्षाकृत अधिक मौलिक एवं क्रान्तिकारी कवि माने जा सकते हैं। प्रथम तो असगने भवावलियोंमें कुछ कमी तथा आचार्य गुणभद्र द्वारा लिखित भव-क्रममें कुछ परिवर्तन किया है। दूसरे, उन्होने तीर्थंकर-माताके प्रसूति-गृहमें सौधर्म-इन्द्र द्वारा मायामयी वालक रखकर तीर्थंकर-शिशुको उठाकर वाहर ले आने तथा अभिषेकके वाद उसे पुनः वापस रख देनेकी चर्चा की है। तीसरे, उन्होने जन्माभिषेकके समय सुमेरु-पर्वतको कम्पित वतलाया है। चौथे, त्रिपृष्ठ-नारायण द्वारा सिंह-वधकी घटनाका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। ये वर्णन देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ अंशोमें उनपर श्वेताम्बर-परम्पराका प्रभाव है[3]।

---

१ आत्मानन्द जैन महासभा, पजाव [अम्वाला शहर, १९४८]से प्रकाशित।
२ भवावलियोंके पूर्ण-परिचय एव सन्दर्भोंके लिए इसी ग्रन्थकी परिशिष्ट स. २ (ख) देखिए।
३ तुलनात्मक विस्तृत जानकारी एवं सन्दर्भोंके लिए इसी ग्रन्थकी परिशिष्ट स. २ (क) देखिए।

महाकवि रइधूने अपने 'सम्मइजिणचरिउ' में महावीरके गर्भ-कल्याणककी तिथि अन्य कवियोसे भिन्न तथा विबुध श्रीधरके समान 'श्रावण शुक्ल षष्ठी' मानी है। इसी प्रकार उन्होने जन्माभिषेकके समय सुमेरु-पर्वतको ही कम्पित नही बतलाया अपितु सूर्य आदिको भी कम्पित बतलाया है। इनके अतिरिक्त पिता सिद्धार्थ द्वारा विवाह-प्रस्ताव तथा महावीरकी अस्वीकृतिपर उनका दुखित होना, त्रिपृष्ठ—नारायण द्वारा सिंह-वध, गौतम-गणधरके निवास-स्थल—पोलाशपुर नगरका उल्लेख, महावीर-समवशरण-वर्णनसे ग्रन्थारम्भ, महावीरके ज्ञातृवंशका उल्लेख, महावीर-निर्वाणके समयसे ही दीपावली-पर्वका प्रचलन आदिके उल्लेख सर्व-प्रथम एवं मौलिक है[1]।

इनके अतिरिक्त रइधूके 'सम्मइजिणचरिउ' की सबसे बड़ी विशेपता यह है कि उसमे 'चाणक्य-चन्द्रगुप्त कथानक' उपलब्ध है, जो दिगम्बर-परम्परामें अद्यावधि उपलब्ध, ज्ञात एवं प्रकाशित अन्य महावीर-चरितोमे उपलब्ध नही है। इस कथानकमें कवि रइधूने भद्रबाहु, नन्दराजा, शकटाल, चाणक्य, चन्द्रगुप्त आदिके जीवन-चरितोका सुन्दर परिचय प्रस्तुत किया है[2]।

'सम्मइजिणचरिउ' में दीक्षा तथा ज्ञान-कल्याणककी तिथियोके उल्लेख नही मिलते, सम्भवतः कविकी भूलसे ही अनुल्लिखित रह गये है[3]।

महाकवि पदमने रासा-शैलीकी कृति—'महावीररास'[4] में महावीरका जितना सरस, रोचक एवं मार्मिक जीवन-वृत्त अंकित किया है, उसकी तुलनामें बहुत कम रचनाएँ आ पाती हैं। उनकी रचनामे दो घटनाएँ मौलिक है। प्रथम तो यह कि महावीर जब वनमें जाने लगते है तब उन्होने सर्वप्रथम अपने माता-पिताको संसारकी अनित्यताका परिचय देकर स्वयं दीक्षा ले लेनेके औचित्यको समझाया तथा वनमें जाने देनेके लिए राजी कर लिया। इसके बाद उन्होने स्वजनोंसे क्षमा माँगी तथा उन्हे भी क्षमा प्रदान की। तत्पश्चात् सिंहासन छोड़कर वनकी ओर चले। किन्तु माताकी ममता नही मानती। अतः वह दहाड मारकर चीख उठती हैं। इतना ही नही वह पुत्रको समझाकर वापस लौटा लाने हेतु वन-खण्डकी ओर रुदन करती हुई भागती है। इस रुदनकी स्वाभाविकता तथा मार्मिकताको देखते हुए अनुभव होता है कि उसका चित्रण करनेमें कविको पर्याप्त धैर्य एवं साहस बटोरनेका प्रयास करना पड़ा होगा[5]।

इसी प्रकार कविने, जो कि अपनेको 'जिन-सेवक' भी कहते है, लिखा है कि महावीर-निर्वाणके समय इन्द्रने पालकीमें महावीरकी एक मायामयी मूर्तिकी स्थापना कर उसकी पूजा की और उसके बाद महावीरके भौतिक-शरीरको दाह-क्रिया की[6]।

गुणभद्र एवं पुष्पदन्तने एक ऐतिहासिक तथ्यका उल्लेख किया है। उन्होने लिखा है कि २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथके परिनिर्वाणके २५० वर्ष बाद तीर्थंकर महावीरका जन्म हुआ[7]। इस उल्लेखसे पार्श्वनाथकी निर्वाण-तिथि एवं जन्मकाल आदिके निर्धारणमें पर्याप्त सहायता मिलती है। यदि इन कवियोने इस उल्लेखकी आधार-सामग्रीका भी संकेत किया होता, तो कई नवीन तथ्य उभरकर सम्मुख आ सकते थे।

५. वड्ढमाणचरिउ : एक पौराणिक महाकाव्य

'वड्ढमाणचरिउ' एक सफल पौराणिक महाकाव्य है। इसमें पुराण-पुरुष महावीरके चरितका वर्णन है। इस कोटिके महाकाव्योमें अनेक चमत्कृत, अलौकिक एवं अतिप्राकृतिक घटनाओके साथ-साथ धार्मिक, दार्शनिक, सैद्धान्तिक एवं आचारात्मक मान्यताएँ तथा धर्मोपदेश, विचित्र स्वप्न-दर्शन आदि सन्दर्भोका रहना आवश्यक है। कुशल कवि उन सन्दर्भोको रसमय बनाकर उन्हे काव्यकी श्रेणीमें उपस्थित करता है। विबुध

१-३. दे. परिशिष्ट सं. २ (क)।

४ यह रचना अप्रकाशित है तथा इन पंक्तियोके लेखकके पास सुरक्षित है।

५-७. दे. परिशिष्ट स. २(क)।

श्रीधरने 'वड्ढमाणचरिउ' में ऐसे कथानकोंकी योजना की है जिनसे महदुद्देश्यकी पूर्ति होती है। इसका कथा-प्रवाह या अलंकृत वर्णन सुनियोजित और सांगोपांग है।

नायक वर्धमानके पुरुरवा शबर (२।१०), सुरीरवदेव (२।११), मरीचि (२।१४-१५), ब्रह्मदेव (२।१६), जटिल (२।१६), सौधर्मदेव (२।१६), पुष्यमित्र (२।१७), ईशानदेव (२।१७), अग्निशिख (२।१८), सानत्कुमार देव (२।१८), अग्निमित्र (२।१८), माहेन्द्रदेव (२।१९), भारद्वाज विप्र (२।१९), माहेन्द्रदेव (२।१९), स्थावर (२।२२), ब्रह्मदेव (३।३), विश्वनन्दि (३।४), महाशुक्रदेव (३।१७), त्रिपृष्ठ (३।२३), सप्तम नारकी (६।९), सिंह (६।११), प्रथम नारकी (६।११), सिंह (६।१३), सौधर्मदेव (६।१८), कनकध्वज (७।२), कापिष्ठदेव (७।८), हरिषेण (७।११), प्रीतिकरदेव (७।१७), प्रियदत्त (८।२), सूर्यप्रभदेव (८।११), नन्दन (८।११), प्राणतदेव (८।१७) एवं महावीर (९।९) रूप भवावलियोंका जीवन विस्तृत कथानक रसात्मकता या प्रभावान्विति उत्पन्न करनेमें पूर्ण समर्थ है। तीर्थंकर महावीरके एक जन्मकी ही नही, अपितु ३३ जन्मोंकी कथा उस विराट्-जीवनका चित्र प्रस्तुत करती है, जिस जीवनमें अनेक भवोंके अर्जित-संस्कार तीर्थंकरत्वको उत्पन्न करनेमें समर्थ होते है। इस काव्यमें महत्प्रेरणासे अनुप्राणित होकर मोक्ष-प्राप्ति रूप महदुद्देश्य सिद्ध होता है। यद्यपि रहस्यमय एवं आश्चर्योत्पादक घटनाएँ भी इस ग्रन्थमें वर्णित है, पर इन घटनाओंके निरूपणकी काव्यात्मक-शैली इतनी गौरवमयी और उदात्त है कि जिससे नायकके विराट्-जीवनका ज्वलन्त-चित्र प्रस्तुत हो जाता है। संस्कृतके लक्षण-ग्रन्थोके अनुसार महाकाव्यमें निम्न तत्त्वोंका रहना आवश्यक माना गया है—

(१) सर्गबन्धता; (२) समग्र जीवन-निरूपण, अतएव इतिवृत्तका अष्ट सर्ग या इससे अधिक प्रमाण; (३) नगर, पर्वत, चन्द्र, सूर्योदय, उपवन, जलक्रीडा, मधुपान या उत्सवोंका वर्णन; (४) उदात्त गुणोंसे युक्त नायक एवं चतुर्वर्ग-प्राप्तिका निरूपण; (५) कथा वस्तुमें नाटकके समान सन्धियोंका गठन; (६) कथाके आरम्भ-में मंगलाचरण एवं आशीर्वाद आदिका रहना तथा सर्गान्तमें आगामी कथावस्तुका सूचन करना; (७) शृंगार, वीर और शान्त इन तीन रसोंमें से किसी एक रसका अंगी रसके रूपमें और शेष सभी रसोंका अंग रूपमें निरूपण आवश्यक है। यतः कथावस्तु और चरित्रमें एक निश्चित एवं क्रमबद्ध विकास तथा जीवनकी विविध सुख-दुखमयी परिस्थितियोंका संघर्षपूर्ण चित्रण रस-परिपाकके बिना सम्भव नही है; (८) सर्गान्तमें छन्द-परिवर्तन, क्योंकि चमत्कार-वैविध्य या अद्भुत-रसकी निष्पत्तिके हेतु एक सर्गमें अनेक छन्दोंका व्यवहार अनिवार्य-जैसा है; (९) महाकाव्यमें विविधता और यथार्थता दोनोंका ही सन्तुलन रहना चाहिए तथा इन दोनोंके भीतर ही विविध भावोंका उत्कर्ष दृष्टिगोचर होता है। यही कारण है कि महाकाव्यके प्रणेता प्राकृतिक सौन्दर्यके साथ नर-नारीके सौन्दर्य-चित्रण, समाजके विविध रीति-रिवाज एवं उसके बीच विकसित होनेवाले आचार-व्यवहारका निरूपण करता है; (१०) महाकाव्यका नायक उच्चकुलोत्पन्न होता है, उसमें धीरोदात्त-गुणोंका रहना आवश्यक है। नायकका आदर्श-चरित्र, समाजमें सद्वृत्तियोंका विकास एवं दुर्वृत्तियों-का विनाश करनेमें पूर्णतया सक्षम होता है[1]। (११) महाकाव्यका उद्देश्य भी महत् होता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिके लिए वह प्रयत्नशील रहता है। संघर्ष, साधना, चरित्र-विकास आदिका रहना अनिवार्य होता है। महाकाव्यका निर्माण युग-प्रवर्तनकारी परिस्थितियोंके बीचमें सम्पन्न किया जाता है[2]।

प्रस्तुत 'वड्ढमाणचरिउ' मे चतुर्विंशति-तीर्थंकरोंकी स्तुति[3] तथा अपने आश्रयदाता साहू नेमिचन्दकी

१. काव्यादर्श—१।१४-२४, तथा साहित्यदर्पण—३।१५-२८, तथा ३५३।
२. काव्यादर्श—१।२।
३. वड्ढमाण—१।१।

प्रशस्ति[1] के अनन्तर कथावस्तुका प्रारम्भ किया गया है। नगर[3], वन[4], नदी,[5] पर्वत[6], सन्ध्या,[7] चन्द्रोदय[8], रात्रि[9], अन्धकार[10], प्रभात[11], सूर्य[12], सैनिक-प्रयाण[13], युद्ध[14], दिग्विजय[15], स्वयंवर[16], दूत-प्रेषण[17] आदिके सुन्दर चित्रण हैं। इस ग्रन्थमें कुल १० सन्धियाँ हैं। शान्तरस अंगी रसके रूपमे प्रस्तुत हुआ है। गौणरूपमें शृंगार, वीर, भयानक एवं रौद्र रसोंका परिपाक हुआ है। पज्झटिका, अडिल्ला, घत्ता, दुवई, मलयविलसिया, चामर, भुजंगप्रयात, मोत्तियदाम, चन्द्रानन, रड्डा आदि विविध अपभ्रंश-छन्दोके प्रयोग कर समस्त काव्यमें महदुद्देश्य—मोक्ष-पुरुषार्थका चित्रण किया गया है। कथाके नायक वर्धमान-महावीर धीरोदात्त है। वे त्याग, सहिष्णुता, उदारता, सहानुभूति आदि गुणोके द्वारा आदर्श उपस्थित करते हैं।

प्रवन्ध-काव्योचित गरिमा, कथानक-गठन तथा महाकाव्योचित वातावरणका निर्माण कविने मनोयोग पूर्वक किया है। अतः इतिवृत्त, वस्तुवर्णन, रसभाव एवं शैलीकी दृष्टिसे यह एक पौराणिक-महाकाव्य है। नख-शिख-चित्रण[18] द्वारा नारी-सौन्दर्यके उद्‌घाटनमें भी कवि पीछे नही रहा। पौराणिक-आख्यानके रहते हुए भी युग-जीवनका चित्रण वड़े ही सुन्दर ढंगसे प्रस्तुत किया गया है। धार्मिक और नैतिक आदर्शोके साथ प्रवन्व-निर्वाहमें पूर्ण पटुता प्रदर्शित की गयी है। पात्रोके चरित्रांकनमें भी कवि किसी से पीछे नही है। मनोवैज्ञानिक-द्वन्द्व, जिनसे महाकाव्यमें मानसिक तनाव उत्पन्न होता है, पिता-पुत्र एवं त्रिपृष्ठ-हयग्रीव-संवादमें वर्तमान है। इस प्रकार उद्देश्य, शैली, नायक, रस एवं कथावस्तु-गठन आदि की दृष्टिसे प्रस्तुत रचना एक सुन्दर महाकाव्य है।

६. अलंकार-विधान

अलंकार-विधान द्वारा काव्यमें सौन्दर्यका समावेश होता है। वामन, दण्डी, मम्मट प्रभृति काव्य-शास्त्रियोंने काव्य-रमणीयताके लिए अलंकारोका समावेश आवश्यकमाना है। यथार्थ तथ्य यह है कि भावानुभाव वृद्धि अथवा रसोत्कर्पको प्रस्तुत करनेमें अलंकार अत्यन्त सहायक होते हैं। अलंकार-विधान द्वारा काव्यगत-अर्थका सौन्दर्य चित्तवृत्तियोंको प्रभावित कर भाव-गाम्भीर्य तक पहुँचा देता है। रसानुभूतिको तीव्रता प्रदान करनेकी क्षमता अलंकारोमें सवसे अधिक होती हैं। अलंकार ही भावोंको स्पष्ट एवं रमणीय वनाकर रसात्मकताको वृद्धिगत करते हैं।

विवुध श्रीधरने ऐसे ही अलंकारोंका प्रयोग किया है, जो रसानुभूतिमें सहायक होते हैं। वड्ढमाण-चरिउमें उन्ही स्थलोपर अलंकृत पद्य आये है, जहाँ कविको भावोद्दीपनका अवसर दिखाई पड़ा है। क्योंकि भावनाओंके उद्दीपनका मूल कारण है मनका ओज, जो मनको उद्दीप्त कर देता है तथा मनमें आवेग और संवेग उत्पन्न कर पूर्णतया उसे द्रवित कर देता है।

शव्दालंकारोंकी दृष्टिसे अपभ्रंश-भाषा स्वयं ही अपना ऐसा वैशिष्ट्य रखती है, जिससे विना किसी आयासके ही अनुप्रासका सृजन हो जाता है। किन्तु कुशल कवि वही है, जो अनुप्रासके द्वारा किसी विशेप भावनाको किसी विशेष रूपसे उत्तेजित कर सके। वड्ढमाणचरिउमें कई स्थलोंपर अनुप्रासकी ऐसी ही योजना

---

१. वड्ढमाण. १।२; १।३।१-३।
२. वड्ढमाण. १।३।४।
३. वही, १।४।
४. वही, २।४।
५. वही, १०।१५।
६. वही २।७, ४।२३-२४, ६।१३-१४, १०।१३-१५।
७. वही, ७।१४-१५।
८. वही, ७।१५।
९. वही, ७।१५-१६।
१०. वही, ७।१५।
११. वही, ७।१६।
१२. वही, ७।१४।
१३ वही, ४।२१-२३।
१४. वही, ५।१०-२३।
१५. वही, २।१३।
१६. वही, ६।७।
१७. वही, ५।१-५।
१८. वही, ६।४।

प्रकट हुई है, जिसने जलमें फेंके हुए पत्थरके टुकड़के समान असंख्यात लहरें उत्पन्न कर भावोंको आस्वाद्य बना दिया है।

अनुप्रास

'वड्ढमाणचरिउ'में व्यंजनवर्णोंकी आवृत्ति द्वारा कविने अनुप्रासालंकारकी सुन्दर योजना की है। देखिए उक्त विधिसे कविने निम्न पद्यांशोंमें कितना सुन्दर संगीत-तत्त्व भर दिया है—

सो कणय-कूड-कोडिहिँ वराइँ कारावइ मणहर जिणहराइँ। (१।१२।७)

उत्तमम्मि वासरम्मि उग्गयम्मि नेसरम्मि (२।३।१)
तं निसुणेप्पिणु मुणि वणि संठिउ...........(२।४।७)
........खयरामर-णर-णयणाणंदिरे (२।११।९)

यमक

'वड्ढमाणचरिउ'में श्रुत्यानुप्रास, वृत्त्यानुप्रास, छेकानुप्रास तथा अन्त्यानुप्रासके साथ-साथ यमकालंकारके प्रयोग भी भावोत्कर्षके लिए कई स्थलोंपर हुए हैं। कविने रूप-गुण एवं क्रियाका तीव्र अनुभव करानेके हेतु इस अलंकारका प्रयोग किया है। यहाँ एक उदाहरण द्वारा प्रस्तुत काव्यकी मार्मिकता पर प्रकाश डालनेका प्रयत्न किया जायेगा। कविने 'नन्द' नामक पुत्रके उत्पन्न होनेपर राजा नन्दन और उनकी पत्नी रानी प्रियंकराके पारस्परिक-स्नेह, सौहार्द एवं समर्पित-भावको मूर्तमान करने हेतु यमकालंकारका प्रयोग किया है। यथा—

सामिणो पियं कराए सुंदरो पियंकराए। २।३।२

उक्त पद्यांशमें 'पियंकराए' पद दो बार भिन्न-भिन्न अर्थोंमें आया है। एक स्थलपर तो उसका अर्थ प्रियकारिणी अर्थात् मन, वचन एवं कार्यसे प्रिय करने एवं सोचनेवाली तथा दूसरा प्रियंकराए पद उसकी रानीका नाम—प्रियंकरा बतलाता है। इसी प्रकार जणणे-जणणे (४।११।९), दीवउ-दीवउ (४।१५।५), करवालु-करवालु (५।७।५), तणउ-तणउ (७।१५।५), भीमहो-भीमहो (५।१७।४), चक्कु-चक्कु (८।३।७), सिद्धत्थु-सिद्धत्थु (९।३।१), सकासु-संकासु (९।३।२), कंदु-कंदु (९।३।५), संसु-संसु (९।३।६), संकर-संकर (१०।३।४) आदि।

श्लेष

श्लेषालंकारमें भिन्न-भिन्न अर्थवाले शब्दोंकी योजना कर काव्यमें चमत्कार उत्पन्न किया गया है। यथा—

लायण्णु चरंतु विचित्तु तं जि अयमहुरत्तणु पाइडइ जं जि।
सव्वित्तु कलाहरु हरिसयारि पुण्णिंदु व सुवणहँ तम-वियारि॥ (८।२।५-६)

उपर्युक्त पद्यांशमें लायण्णु (लावण्य) एवं सव्वित्तु (सद्वृत्त) श्लेषार्थक शब्द हैं। 'लायण्ण'का एक अर्थ है लावण्य अर्थात् सलोनापन—सुन्दर तथा दूसरा अर्थ है खारापन। इसी प्रकार 'सव्वित्तु'का एक अर्थ है सदाचारी तथा दूसरा अर्थ है गोल-मटोल। 'वड्ढमाणचरिउ'में श्लेषालंकारका प्रयोग अल्पमात्रामें ही उपलब्ध है।

कविने अर्थालंकारोंमें उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, स्वभावोक्ति, अर्थान्तरन्यास, काव्यलिंग, समासोक्ति एवं अतिशयोक्ति आदि अलंकारोंके प्रयोग विशेष रूपसे किये हैं। कविने किसी वस्तु की रूप-गुण सम्बन्धी विशेषता-

को स्पष्ट करने और तन्मूलक भावोंको चमत्कृत करनेके लिए उपमालंकारकी योजना की है। कवि राजा नन्दिवर्धनके वीर-पराक्रम, तेज, ओज, गाम्भीर्य आदि गुणोंका वर्णन उपमाओंके सहारे इस प्रकार करता है—

उपमा

णामेण णंदिवद्धणु सुतेउ   दुण्णय-पण्णय-गण-वेणतेउ ।
महिवलइ पयासिय-वर-विवेउ   अरि-वंस-वंस-वण जायवेउ ॥
उदयद्दि पवाय-दिवायरासु   मंभीसणु रणमहि कायरासु ।
णव-कुसुमुग्गमु विणयद्दुमासु   रयणायरु गंभीरिम गुणासु ॥
छणइंदु समग्ग कलायरासु   पंचाणणु पर-वल-णर-मयासु । (१।५)

कवि वीरवतीके सौन्दर्य-चित्रणमें अनेक उपमानो द्वारा भावाभिव्यक्ति करता है। उसके उपमान यद्यपि परम्परा-प्राप्त हैं, तो भी वे प्रसंगानुकूल होनेके कारण चमत्कार उत्पन्न करते हैं।

उत्प्रेक्षा

उत्प्रेक्षाकी दृष्टिसे अपभ्रंश-भापा अत्यन्त समृद्ध है। 'णं' जो कि संस्कृत-भापाके 'ननु' शब्दका प्रतिनिधि हैं, उत्प्रेक्षाको उत्पन्न करनेमें समर्थ है। कवि श्रीधरने 'वड्ढमाणचरिउ'में अनेक स्थलोपर इस अलंकारका प्रयोग किया है—कनकपुरकी श्यामागनाओंका वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

जहिँ सव्वत्थ जंति णिब्भंगउ   कर-करवाल-किरण-सामंगउ ।
दूवियाउ दिवसेवि स-रयणिउ   णहयले मुत्तिमंत णं रयणिउँ ॥ (७।१।८-९)
तहिँ फलिह-सिलायलि सण्णिसण्णु   णं णिय-जस-पुजोवरि णिसण्णु । (१।९।१)
णंदु णाम पुत्तु ताए   जाउ णं महालवाए ।
कंतिवंतु णं णिसीसु   तेयवंतु णं दिणेसु ।
वारिरासि णं अगाहु   वेरिक्खरोह वाहु । (२।३।३,५,६)

रूपक

जहाँ उपमेयमें उपमानका निषेधरहित आरोप किया जाये वहाँ रूपकालंकार होता है। रूपकका तात्पर्य ही रूपको ग्रहण करना है। अतः इस अलंकार मे प्रस्तुत (उपमेय) अप्रस्तुत (उपमान) का रूप ग्रहण कर लेता है। कविके रूपक भावाभिव्यंजनमें पूर्णतया सशक्त है। यथा—

णामेण णंदिवद्धणु सुतेउ   दुण्णय-पण्णय-गण वेणतेउ (१।५।१)
अरि-वंस-वंस-वण-जायवेउ (१।५।३)
पंचाणणु पर-वल-णर-मयासु (१।५।६)

भ्रान्तिमान

प्रस्तुतके दर्शनसे सादृश्यताके कारण अप्रस्तुतके भ्रम-वर्णन द्वारा कविने चमत्कारका आयोजन किया है। यथा—

जहिँ मंदिर भित्ति विलंवमाण   णील-मणि करोहइ धावमाण ।
माऊर इंति गिल्लण कएण   कसणोरयालि भक्खण रएण ॥ (१।४।११-१२)
जहिँ फलिह-वद्ध महियले मुहेसु   णारीयणाहँ पडिविंवएसु ।
अलि पडइ कमल लालसवेउ   अहवा महु वह ण हवइ विवेउ ॥ (१।४।१३-१४)

जहिँ फलिह-भित्ति मडिंविवयाइँ　　णिय रूवइँ णयणहिँ भावियाइँ ।
स-सवत्ति-संक गय-रय-खमाहँ　　जुज्झंति तियउ निय पिययमाहँ ॥ (१।४।१५-१६)

अपह्नुति

उपमेय पर उपमानके निषेध-पूर्वक आरोप अथवा प्रकृतका निषेध कर अप्रकृतकी स्थापना द्वारा इस अलंकारकी योजना की गयी है । यथा—

पहिखिण्णउँ पहिउ निसण्णउँ जहिँ सरेहिँ सद्दिज्जइ ।
दिय सद्दहिं सलिलु राहद्दहिं णं करुणइँ पाइज्जइ ॥ (१।३।१५-१६)

अतिशयोक्ति

किसी वस्तुकी महत्ता दिखानेके लिए उसका इतना बढा-चढाकर वर्णन करना कि जिससे लोक-सीमाका ही उल्लंघन हो जाये । ऐसी स्थितिमें अतिशयोक्ति-अलंकार होता है । कविने देश, नगर एवं राजाओके वर्णन-प्रसंगोमें इस अलंकार का प्रयोग किया है । यथा—

तं अच्चरिउ ण जं पुणु थिरयर　　कित्ति महीयले निज्जिय जसिहर ।
अणु-दिणु भमइ णिरारिउ सुंदर　　तं जि वित्तु पूरिय गिरि-कंदर । (२।२।६-७)
ससियर-सरिस गुणेहिँ पसाहिउ　　महि मंडलु अरिगणु वि महाहिउ । (२।२।९)

दृष्टान्त

जहाँपर उपमेय एवं उपमानके सामान्य धर्मके विम्व-प्रतिविम्व भावका चित्रण किया जाये तथा वाचक शब्दका उल्लेख न हो, वहाँ दृष्टान्त-अलंकार होता है । यथा—

तहो रायहो अइ-पियवायहो पिय वीरवइ वि सिद्धी ।
अणुराएँ नाइविहाएँ मण-वारे सिद्धी ॥ (१।५ घत्ता)
महिराएँ विरइय राएँ तणुरुहु समयण काएँ ।
अरुणच्छवि उप्पाउ रवि णं सुर-दिसिहिँ पहाएँ ॥ (१।६ घत्ता)
ण पयणिय चोज्जु सव्वत्थवि रमणीए ।
सहुँ पवर-सिरीए कोस-दंड धरणीए । (६।३ घत्ता)

विभावना

कारण के विना ही जहाँ कार्य की उत्पत्ति हो जाये, वहाँ विभावना-अलंकार होता है । यथा—

जसभूसिय समहीहर रसेण,　　अवि फुल्ल-कुंदज्जइ-सम-जसेण । (१।५।९)
खुर-धाय-जाउ रउ हयवराहँ　　णव-जलय-जाल सम मणहराहँ ।
दोहं वि वलाहँ हुउ पुरउ भाइ　　रणु वारइ निय-तेएण णाइ ॥ (५।१०।८-९)

अर्थान्तरन्यास

सामान्य या विशेष द्वारा कथनका समर्थन करते समय अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है । कविने इस अलंकारका कई स्थानोपर प्रयोग किया है । यथा—

मणि चिंतिय करुणय-कप्परुक्खु　　अणु जणवयहो विलुत्त-दुक्खु ।
परिविद्धिहे मइ-जल-सिंचणेण　　णिज्जेण विरसु को होइ तेण ॥ (१।५।११-१२)

व्यतिकर

उपमानकी अपेक्षा उपमेयमें गुणाधिक्यताके आरोपकी स्थितिमें व्यतिकर-अलंकार होता है। कवि-प्रियकारिणीके वर्णन-प्रसंगमें उसे 'सरूव जित्त अच्छरा' तथा (९।४।४) 'ससद्द जित्त कोइला' (९।४।६) कहता है।

परिसंख्या

इस अलंकारका प्रयोग उस समय किया जाता है जब किसी वस्तु या व्यापारका कथन अन्य स्थलोंसे निषेध करके मात्र एक स्थानपर ही किया जाये। कवि कुण्डपुरके वर्णनमें परिसंख्या-अलंकारका प्रयोग करते हुए कहता है—

खेत्तेसु खलत्तणु हयवरेसु जहिँ बंधणु मउ मह गयवरेसु।
कुडिलत्तणु ललणालय-गणेसु थड्ढत्तणु तरुणीयण-थणेसु।
पंकट्ठिदि सालि-सरोरुहेसु जड-संगहु जहिँ मह-तरुवरेसु।
वायरण-णिरिक्खय जहिँ सुमग्ग गुण-लोव-संधि-दंदोवसग्ग॥ (९।१।१२-१५)

एकावलि

पूर्व वर्णित वस्तुओंकी जहाँ बादमें वर्णित वस्तुओंसे विशेषण-भावसे स्थापना या निषेध किया जाये वहाँ एकावली अलंकार होता है। कविने इस अलंकारका प्रयोग अवन्ती-देशके वर्णन-प्रसंगमें किया है। यथा—

जहिँ ण कोवि कंचण-धण-धण्णहिँ मणि-रयणिहिँ परिहरिउ खण्णहिँ।
तिण दव्वु व बंधव-सुहि-सयणहिँ जिण-भत्तिए अइ-वियसिय-वयणहिँ।
जहिँ ण रूव-सिरि-विरहिय-कामिणि कल-मयंग-लीला-गइ-गामिणि।
रूव सिरि वि ण रहिय-सोहग्गें आमोइय अमियासण-वग्गें।
सोहग्गु वि णय-सीलु णिरुत्तउ सीलु ण सुअण पसंस वि उत्तउ।
णिज्जल-णई ण जलु वि ण सीयलु अकुसुमु तरु वि ण फंसिय-णहयलु।
तहिँ उज्जेणिपुरी परि-णिवसइ जहिँ देवाहँ मि माणइँ हरसइ॥ (७।९।६-१२)

स्वभावोक्ति

स्वाभाविक स्थिति-वर्णन प्रसंगोंमें स्वभावोक्ति-अलंकारका प्रयोग होता है। कविने प्रियकारिणी—त्रिशलाकी गर्भावस्थाका चित्रण उक्त अलंकारके माध्यमसे इस प्रकार किया है—

हुव पंडु गंड तहेँ अणुकमेण णावइ गब्भत्थ-तणय-जसेण।
चिरु उवरु सहइ ण वलित्तएण तिह जिह अणुदिणु परिवड्ढणेण।
अइ-मंथर-गइ-हुव साभरेण गब्भत्थ-सुवहो णं गुण-भरेण।
सु-णिरंतर सा ऊससइ जेम सहसत्ति पुणुवि णीससइ तेम॥
मेल्लइ णालसु तहेँ तणउ पासु जे भाइ-सहिउँ णाइँ दासु।
तण्हा विहाणु तं सा धरंति गब्भत्थ सुवण माणसु हरंति।
पीडिय ण मणिच्छिय-दोहलेहिँ संपाडिय-सुंदर सोहलेहिँ॥ (९।९।१-७)

विशेषोक्ति

कारणके उपस्थित होनेपर भी कार्यका न होना विशेषोक्ति-अलंकार है। कविने युवराज नन्दनके वर्णन-प्रसंगमें कहा है—

जइविहु णव-जोव्वण-लच्छिवंतु सो सुंदरु तइवि मए विवंतु। (१।११।१)

इस प्रकार कविने प्राय. समस्त प्रधान अलंकारोका आयोजन कर प्रस्तुत ग्रन्थको सरस, सुन्दर एवं चमत्कार-पूर्ण बनाया है।

७. रस-परिपाक

मात्र शब्दाडम्बर ही कविता नही है। उसमें हृदय-स्पर्शी चमत्कारका होना नितान्त आवश्यक है और वह चमत्कार ही रस है। यही कारण है कि शब्द और अर्थ काव्यके शरीर माने गये हैं और रस प्राण। प्राणपर ही शरीरकी सत्ता एवं कार्यशीलता निर्भर है। अतएव रसाभावमें कोई भी काव्य निर्जीव और निष्प्राण ही समझना चाहिए।

कवि श्रीधरने प्रस्तुत रचनामें आलम्बन-एवं आश्रयमें होनेवाले व्यापारोका सुन्दर अंकन किया है, जिससे रसोद्रेकमें किसी प्रकारकी न्यूनता नही आने पायी है। वीणाके संघर्पणसे जिस प्रकार तारोमें झंकृति उत्पन्न होती है, उसी प्रकार हृदयग्राही राग-भावनाएँ भी काव्यके आवेष्टनमें आवेष्टित होकर रसका संचार करती है। यो तो इस काव्यका अंगी रस शान्त है, पर शृंगार, वीर और रौद्र रसोका भी सम्यक् परिपाक हुआ है।

शृंगार रस

साहित्यमें शृंगार रस अपना विशेष स्थान रखता है। अभिनवगुप्तके अनुसार शृंगार-भावना प्रत्येक काल एवं प्रत्येक जातिमें नित्यरूपसे विद्यमान रहती है। यतः उसका मूलभाव 'रति' अथवा 'काम' समस्त विश्वमें व्याप्त है। इसलिए इस भावनाका व्यापक रूपसे चित्रण होना स्वाभाविक ही है। 'वड्ढमाणचरिउ'में भी शृंगारका अच्छा वर्णन हुआ है। कविने नन्दिवर्धन एवं उसकी रानी वीरवती, नन्दन एवं प्रियंकरा, त्रिपृष्ठ एवं स्वयंप्रभा, अमिततेज एवं द्युतिप्रभा तथा सिद्धार्थ एवं प्रियकारिणीके माध्यमसे संयोग-शृंगारकी उद्भावना की है।

द्युतिप्रभा जब अमिततेजका प्रथम बार दर्शन करती है, तभी वह उसपर मुग्ध हो जाती है। कवि उसका वर्णन करते हुए कहता है—

वहु सोक्खयारि पणयट्ठिए सुसयंवरेण विहुणिय-हियए।
चक्कवइ-दुहिय पविउलरमणा हुअ अमियतेय विणिवद्ध-मणा।
णं णिय मायाए सिय-तियहँ मणु मुणइँ पुरा पइरइ गयहँ। (६।८।७-९)

उक्त पद्यांशका अन्तिम चरण बडा ही मार्मिक है। उसपर महाकवि कालिदासकी 'भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि' ('अभिज्ञानशाकुन्तल, ५।२) तथा 'मनो हि जन्मान्तरसंगतिज्ञम्' (रघुवंश, ७।१५) तथा महाकवि असगकी 'मनो विजानाति हि पूर्णवल्लभम्' (वर्धमानचरित्र, १०।७७) का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

उक्त पद्यमे नायिका द्युतिप्रभा आश्रय है और नायक राजकुमार अमिततेज आलम्बन। अमिततेजका लावण्य उद्दीपन विभाव है। द्युतिप्रभाकी हर्ष-सूचक चेष्टाएँ अनुभाव है और चपलता आवेग आदि संचारी-भाव है। स्थायी-भाव रति है।

वीर रस

यहाँ वीर रसका एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है। कवि श्रीधरने त्रिपृष्ठ और हयग्रीवकी सेनाके बीच सम्पन्न हुए युद्धके अवसरपर, युद्धके लिए प्रस्थान, संग्राममें लपलपाती एवं चमकती हुई तलवारें, लडते हुए वीरोंकी हुंकारें तथा योद्धाओके शौर्यका कैसा सुन्दर एवं सजीव चित्रण किया है—

अवरुप्परु हणंति सद्देविणु सुहडइँ सुहड सुंदरा।
णिय-सामिय-पसाय-निक्खय-रय धणु रव-भरिय-कंदरा॥

छिण्णिवि जंघ-जुवलें परेण णिवडिउ ण सूरु भडु असिवरेण।
ठिउ अप्प-सत्तु वर-वंस-जाउ अवलंविय संठिउ चारु चाउ।
आयड्ढिवि धणु फणिवइ-समाणु घण-मुट्ठि-मुक्कु जोहेण वाणु।
भिंदेवि कवउ सुहडहो णिरुत्तु किं भणु न पयासइ सुप्पहुत्तु।
गयवालु ण मुह-वडु घिवइ जाम गय मत्त-मयंगहो सत्ति ताम।
पडिणय जोहें सो णिय-सरेहिं विणिहउ पूरिय गयणोवरेहिं।
पडिगय-मय-पवण कएण भीसु सयरेण रुसंतु महाकरीसु।
मुह-वडु फाडेवि पलंव-सुंडु करिवालु लंघि णिवडिउ पयंडु।
णरणाहहँ सिय-छत्तइँ वरेहिं णिय-णामक्खर-अंकिय-सरेहिं।
सहसा मुणंति संगरे सकोह सिक्खाविसेस वरिसंति जोह। (५।११।१-१२)

त्रिपृष्ठ एवं हयग्रीवका यह युद्ध-वर्णन आगे भी पर्याप्त विस्तृत है। उक्त पद्य तथा आगेके वर्णनोमें त्रिपृष्ठ और हयग्रीव परस्परमे आलम्बन है। उद्दीपन-विभावमें हयग्रीवकी दर्पोक्तियाँ आती है। अनुभावमे रोमांच, दर्पयुक्त-वाणियाँ एवं धनुप-टंकार है। दर्प, धृति, स्मृति एवं असूया संचारीभाव हैं। इस प्रकार कवि श्रीधरने शत्रु-कर्म, योद्धाओकी दर्पोक्तियाँ, आवेग, असूया, रण-कौशल, पारस्परिक-भर्त्सना, तलवारोकी चमक, विविध बाणोकी सन्नाहट, हाथियोकी चिंघाड़, घोड़ोकी हिनहिनाहट आदिके सजीव चित्रण किये हैं।

रौद्र रस

विद्याधर-नरेश ज्वलनजटी द्वारा अपनी कन्या स्वयंप्रभाका विवाह भूमिगोचरी राजा प्रजापतिके पुत्र त्रिपृष्ठके साथ कर दिये जानेपर विद्याधर-राजा हयग्रीवके क्रोधित होनेपर रौद्र रस साकार हुआ है (४।५)। वह अपने योद्धाओंको प्रजापतिके विरुद्ध युद्ध छेडनेको ललकारता है। इस प्रसंगमें हयग्रीवका कुपित होकर काँपने, योद्धाओके क्षुब्ध होने, अधरोके चवाने तथा मुखोके भयंकर हो जानेका वर्णन कविने इस प्रकार किया है—

सो हयगीओ समर अभीओ।
णिय मणे रुट्ठो दुज्जउ दुट्ठो।
आहासइ वइवसु व विहीसणु खय-कालाणल-सण्णिह णीसणु।
अहो खेयरहो एउ किं णिसुवउ तुम्हहँ पायडु जं किउ विरुवउ।
तेण खयर-अहमें अवगण्णेवि तिण-समाण-सव्वे वि मणि मण्णेवि।
कण्णा-रयणु विइण्णउ मणुवहो भूगोयरहो अणिज्जिय-दणुवहो।
तं णिसुणेवि सह-भवण-भडोहइँ संखुहियइँ दुज्जय-दुज्जोहइँ।
णं जणवय-उप्पाइय कलिलइँ खय-मरु-हय लवणण्णव-सलिलइँ।

चित्तंगउ चित्तलिय तुरंतउ हय-रिउ-लोहिएण मय-लित्तउ ।
उट्ठिउ वाम-करेण पुसंतउ दिढ-दसणग्गहिँ अहरु डसंतउ ।
सेय-फुडिंग-भरिय-गंडत्थलु अवलोइउ भुवजुउ वच्छत्थलु ।
रण-रोमंचइँ साहिय-कायउ भीमु भीम-दंसण संजायउ ।

भय भाविय णाविय परवलण कायर-जण मं भीसणु ।
विज्जा-भुव-वल गव्वियउ णीलकंठ पुणु भीसणु ॥

[४।५।१-१४]

उक्त प्रसंगोमें हयग्रीव तथा त्रिपृष्ठ एवं ज्वलनजटी आलम्बन हैं। हयग्रीवकी इच्छाके विपरीत स्वयंप्रभाका त्रिपृष्ठके साथ विवाह, हयग्रीवका तिरस्कार आदि उद्दीपन हैं। आँखें तरेरना, ओठ काटना, शस्त्रोका स्पर्श करना, शत्रुओंको ललकारना आदि अनुभाव हैं। असूया, आवेग, चपलता, मदोन्मत्तता आदि संचारीभाव हैं तथा क्रोध स्थायीभाव है।

भयानक रस

वड्ढमाणचरिउमें भयानक रसके अनेक प्रसंग आये हैं, किन्तु वह प्रसंग सर्वप्रमुख है, जिसमें अपना नन्दन-वन वापस लेने हेतु विश्वनन्दि, विशाखनन्दिसे युद्ध करने हेतु जाता है और विशाखनन्दि उसे कृतान्तके समान आता हुआ देखकर उससे भयभीत होकर कभी तो चट्टानके पीछे छिप जाता है और कभी कैंथके पेड़पर चढता-फिरता है। वह प्रसंग इस प्रकार है—

दूरंतरे णिविवेसिवि स-सिण्णु रणरंग-समुद्धरु वद्ध-मण्णु ।
अप्पुणु पुणु सहुँ कइवय-भडेहिँ भूमिउडि-विहीणउ उब्भडेहिँ ।
गउ दुग्गहो अवलोयण-मिसेण जुयराय-सीहु अमरिस-वसेण ।
तं पाविवि उल्लंघिवि विसालु जल-परिहा-समलंकरिय-सालु ।
विणिवाइवि सहसा सूर विंदु वियसाइवि सुर-वयणारविंदु ।
भग्गइँ असिवरसिहुँ रिउ-चलेण कलयल परिपूरिय-णह-यलेण ।
उप्पडिय सिलमय थंभ पाणि आवंतु कयंतुव वइरि जाणि ।
मलिणाणणु मह-भय-भरिय-गत्तु तणु-तेय-विवज्जिउ हीण-सत्तु ।
दिढयर कवित्थ तरुवरे असक्कु लक्खण गभुब्भव चडिवि थक्कु ।
उप्पाडिए तरुवरे तम्मि णेण गुरुयरे सहुँ सयल-मणोहरेण ।
लक्खण-तणुरुह कंपंत-गत्तु जुवराय-पाय-जुउ सरण-पत्तु ।

तं पेक्खेवि भग्गु पाय-विलग्गु मणि लज्जिउ जुवराउ ।
लज्जए रिउ-वग्गे पणय-सिरग्गे अवरु वि-धीवर-सहाउ ॥

(३।१५।१-१३)

उक्त प्रसंगमें युवराज विश्वनन्दी आलम्बन है, उसके भय उत्पन्न करनेवाले कार्य—जल-परिखासे अलंकृत विशाल कोटको लाँघ जाना, शत्रुके शूरवीरोंका हनन कर डालना, शिलामय स्तम्भ को हाथसे उखाड़कर कृतान्तके समान विशाखनन्दीके सम्मुख आना, कैंथके पेड़को उखाड़ फेंकना आदि भयको उद्दीप्त करते हैं। रोमांच, कम्प, स्वेद, तेजोविहीनता आदि अनुभाव हैं, शंका, चिन्ता, ग्लानि, लज्जा आदि संचारी भाव हैं। भय स्थायी भाव है, जो कि उक्त भावोंसे पुष्ट होता है।

शान्त रस

संसारके प्रति निःसारताकी अनुभूति अथवा तत्त्वज्ञान द्वारा उत्पन्न निर्वेदसे शान्त रसकी सृष्टि होती है। वड्ढमाणचरिउमे यह शान्त रस अंगी रसके रूपमें अनुस्यूत है। राजा नन्दिवर्धन, राजा नन्दन, युवराज विश्वनन्दी तथा राजकुमार वर्धमान आदि सभी पात्र संसारके भौतिक सुखोंकी अनित्यता एवं अस्थिरता देखकर वैराग्यसे भर उठते हैं और उनका निर्वेदयुक्त हृदय शान्तिसे ओत-प्रोत हो जाता है। यह निर्वेद तत्त्वज्ञान-मूलक होता है। अतः राजकुमार वर्धमान संसारकी असारता देखकर ही राजसी सुख-भोगोंका परित्याग कर दीक्षित हो जाते हैं।

कवि श्रीधरने मगधनरेश विश्वभूतिके वैराग्यका वर्णन करते हुए बताया है कि किसी एक दिन उसने एक अत्यन्त वृद्ध प्रतिहारीको देखा तो विचार करने लगा कि—

सो विस्सणंदि-जणणें पउत्तु परियाणिवि णाणा-गुण-णिउत्तु।
लहुभाइहें जाउ विसाहणंदि णंदणु णिय-कुल-कमलाहि णंदि।
एक्कहें दिणि राएँ कंपमाणु पडिहारु देक्खि आगच्छमाणु।
संचिंतिउ णिच्चल-लोयणेण वइराय-भाव-पेसिय-मणेण।
एयहो सरीरु चिरु चित्तहारि लावण्ण-रुव-सोहग्ग-धारि।
माणिज्जंतउ वर-माणिणीहिँ अवलोइज्जंतउ कामिणीहिँ।
तं वलि-पलियहिँ परिभविउ कासु सोयणिउ णं संपइ पुण्णरासु।
जयविहु सयलिंदिय भणिय सत्ति णिण्णासिय-दुट्ठ-जरा-पउत्ति।
मग्गेइ तो-वि णियजीवियास णिरु वड्ढइ वुड्ढहो मणे पियास।
सिढिली भूजुवलु णिरुद्ध दिट्ठि पइ-पइ खलंतु णावंतु दिट्ठि।
णिवडिउ महि-मंडलि कह वि णाइँ णिय-जोव्वणु एहु णियंतु जाइँ।

अहवा गहणम्मि भव गहणम्मि जीवइँ णट्ठ-पहम्मि।
उप्पाइय पेम्मु कहिँ भणु खेमु कम्म-विवाय-दुहम्मि॥ (३।४।१-१३)

इय वइरायल्लें णरवरेण परिणिज्जिय-दुज्जय-रइवरेण।
जाणमि विवाय-दुह-बीउ रज्जु अप्पिवि अणुवहो धरणियलु सज्जु।
जुवराए थवेविणु णिय-तणूउ सुमहोच्छवेण गुण-पत्त भूउ।
पणवेवि सिरिहर-पय-पंकयाइँ विहुणिय-संसार-महावयाइँ।
णिच्चलयरु विरएविणु स-सित्तु अजरामर-पय-संपय-णिमित्तु।
चउसय-णरिंद-सहिएण दिक्ख संगहिय मुणिय-स-समयहो सिक्ख। (३।५।१-६)

उक्त उद्धरणमें सासारिक असारताका वोध आलम्बन है। वृद्ध-प्रतिहारीकी जर्जर-अवस्थाका वीभत्स रूप उद्दीपन है। वृद्धावस्थाके कारण शारीरिक-विकृति, कर्मफलोंकी विविधता तथा सांसारिक सुखोके त्यागकी तत्परता आदि अनुभाव है। मति, धृति, स्मृति, हर्ष, विवोध, ग्लानि, निर्वेद आदि संचारीभाव है। निर्वेद एवं समतावृत्ति स्थायीभाव है।

८. भाषा

विवुध श्रीधर मुख्यतया अपभ्रंश कवि है किन्तु उन्होंने अपनी प्रायः सभी कृतियोंमें सन्ध्यन्त अथवा ग्रन्थान्तमें अपने आश्रयदाताओंके लिए आशीर्वचनके रूपमें संस्कृत-श्लोक भी निवद्ध किये हैं। वड्ढमाणचरिउमें

भी ९ श्लोक प्राप्त हैं उनमें-से ४ शार्दूलविक्रीडित, (दे. सन्धि सं. १,२,७,९) २ मालिनी, (दे. सन्धि सं. ३,५) २ वसन्ततिलका, (सन्धि सं. ४,६) तथा १ उपेन्द्रवज्रा (सन्धि सं. ८) नामक छन्द हैं। ये श्लोक कविने अपने आश्रयदाताके लिए आशीर्वचनके रूपमें प्रत्येक सन्धिके अन्तमें ग्रथित किये हैं।

उक्त श्लोकोंकी भाषा, रूप-गठन, छन्द-वैविध्य आदिके देखनेसे यह स्पष्ट विदित होता है कि कवि संस्कृत-भाषाका अच्छा ज्ञाता था। उसने मधुर एवं ओज वर्णोंका प्रयोग कर कवितामें सुन्दर चमत्कार उत्पन्न करनेका आयास किया है। निम्न पद्यमें उसने सर्वगुणान्वित नेमिचन्द्रके गुणोंकी वैदर्भी-शैलीमें चर्चा करते हुए लिखा है—

> शृण्वन्तो जिनवेश्मनि प्रतिदिनं व्याख्या मुनीना पुरः
> प्रस्तावान्नतमस्तक कृतमुदः सन्तोष्यधुर्यः कथा।
> धत्ते भावय तित्यमुत्तमधिया यो भावयं भावना
> कस्यासावुपमीयते तव भुवि श्रीनेमिचन्द्रः पुमान् ॥२॥

उक्त पद्यमें दीर्घ समासान्त पदोका प्रायः अभाव है। कविने छोटे-छोटे पदोंके चयन द्वारा भावोंको घनीभूत बनानेकी पूर्ण चेष्टा की है। भाषाकी दृष्टिसे उक्त पद्य एक आदर्श पद्य माना जा सकता है।

प्रशस्ति-पद्योंमें कविने प्रायः समस्त धर्मका सार भर दिया है। जिन पद्योंमें उसने धर्म-तथ्योंका आकलन किया है, उन पद्योंकी पदावली समास-बहुला है। आश्रयदाताकी प्रशंसाका चित्रण करते हुए समासान्त पदावलीमें कवि द्वारा धर्म-तथ्योंके चौखटे फिट कर दिये गये हैं। यथा—

> प्रजनितजनतोपस्त्यक्तशङ्कादिदोषो
> दशविधवृषदक्षो ध्वस्तमिथ्यात्वपक्ष.।
> कुल-कमल-दिनेश. कीर्तिकान्तानिवेशः
> शुभमतिरिह कैर्न श्लाघ्यते नेमिचन्द्रः ॥३॥

कवि-विरचित अन्य संस्कृत श्लोकोंमें भी उसकी निरीक्षण-शक्तिकी प्रबलता और उर्वर-कल्पनाओंके सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। उसने प्रसंगानुकूल क्लिष्ट और कोमल शब्दोंको स्थान दिया है तथा आवश्यकतानुसार समासका प्रयोग कर सुकुमार भावोंकी सुन्दर अभिव्यंजना की है ?

जैसा कि पूर्वमें कहा जा चुका है, विबुध श्रीधरकी प्रमुख भाषा अपभ्रंश है। 'वड्ढमाणचरिउ' में उसने परिनिष्ठित अपभ्रंशका प्रयोग किया है, किन्तु उसमें कहीं-कहीं ऐसे भी प्रयुक्त हैं, जो आधुनिक भारतीय भाषाओंसे समकक्षता रखते हैं। 'वड्ढमाणचरिउ'में राजस्थानी, ब्रज, हरियाणवी एवं बुन्देलीके अनेक शब्द तथा कुछ शब्द भोजपुरी और मैथिलीके भी उपलब्ध होते हैं। इन शब्दोंको प्रस्तुत करनेके पूर्व कविकी अपभ्रंश-भाषाके कुछ विशेष ध्वनि-परिवर्तनोंका संक्षिप्त अध्ययन आवश्यक समझ कर उसे प्रस्तुत किया जा रहा है।

वड्ढमाणचरिउमें अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ (इनके अनुनासिक तथा निरनुनासिक दोनों ही रूप हैं) तथा ऍ, ऐं ओं इन ११ स्वरोंके प्रयोग मिलते हैं तथा व्यंजनों में क, ख, ग, घ; च, छ, ज, झ; ट, ठ, ड, ढ, ण; त, थ, द, ध, न; प, फ, ब, भ, म; य, र, ल, व; स, ह के प्रयोग मिलते हैं।

स्वर-वर्ण विकार

१. संस्कृतकी 'ऋ' ध्वनिके स्थानपर 'वड्ढमाणचरिउ' मे अ, इ, उ, ए एवं रि के प्रयोग मिलते हैं। यथा—णच्च < नृत्य (४।३।१३), किमि < कृमि (६।११।८), इड्ढिवंत < ऋद्धिवन्त (१०।१९।७),

गिहवइ < गृहपति (८।४।४), वुड्ढ < वृद्ध (३।४।९), पेक्ख < पृच्छ (११।२।४), रिणु < ऋण (९।१९।१३) रिस < ऋजु (१०।३८।९)।

२. ऐ के स्थानपर ए, अइ एवं इ के प्रयोग। यथा—गेवज्ज < ग्रैवेयक (१०।२०।१६), वेरि < वैरी (२।३।६), वेयड्ढ < वैताढ्य (२।१३।८), वइरि < वैरी (३।१५।७), वइसाह < वैशाख (९।२१।१२) तइलोय < त्रैलोक्य (३।३।९), वइवस < वैवस्वत (६।११।४)।

३. औ ध्वनिके स्थानपर ओ एवं अउ। यथा—कोत्थुह < कौस्तुभ (५।१०।१), कोसल < कौशल (३।१६।६), कोसिय < कौशिक (२।१८।११), पउर < पौर (२।५।२२)।

४. ङ्, ञ्, ण्, न्, एवं म् के स्थान पर अनुस्वार। जैसे—पंकय < पङ्कय (३।३।७), चंचल < चञ्चल (२।२।५), चंदकला < चन्द्रकला (६।६।१२), चंडु < चण्ड (१०।२४।५), सयंपह < स्वयम्प्रभा (५।११।५)।

व्यंजन वर्ण-विकार

५. रकारके स्थानमें क्वचित् लकार। यथा—चलण < चरण (१।१।१) (यह अर्धमागधी प्राकृत-की प्रवृत्ति है)।

६. श, ष एवं स के स्थानमें 'स' होता है। कहीं-कहीं ष् के स्थान में छ भी होता है। यथा—सइ < शचि (१।६।२), सीस < शिष्य (२।१५।१०), सुमइ < सुमति (७।४।८), छप्पय < षट्पद (१।१२।११), छक्कम्म < षट्कर्म (२।१२।६), छट्ठि < षष्ठी (९।७।१४)।

७. स के स्थानपर क्वचित् ह तथा संयुक्त त्स एवं प्स के स्थान पर च्छ।

जैसे—दह < दस (२।१६।४), वच्छा < वत्सा (७।१।४), अच्छरा < अप्सरा (२।१७।११)।

८. ध्वनि-परिवर्तनमे वर्ण-परिवर्तन कर देनेपर भी मात्राओकी संख्या प्रायः समान।

जैसे—धन्न < धन्य (८।८।८), धम्म < धर्म (२।६।९), निज्जिय < निर्जित (२।२।६), दुद्ध < दुग्ध (४।१५।१), लट्ठि < यष्टि (अथवा लाठी) (५।१९।४), अप्प < आत्मन् (२।११।१), दुच्चरु < दुश्चर (८।१७।३), अछरिउ < आश्चर्यम् (१।५।१०, अपवाद), तव < ताम्र (१०।७।४, अपवाद), अकोह < अक्रोध (८।१०।१०, अपवाद), माणथंभु < मानस्तम्भ (१०।२।४, अपवाद), दिक्ख < दीक्षा (११।७।१४, अपवाद)।

९. कुछ ध्वनियोंका आमूल-चूल परिवर्तन तथा उनसे समीकरण एवं विषमीकरणकी प्रवृत्तियाँ परि-लक्षित होती हैं। यथा—

मउड < मुकुट (४।३।७), मउलिय < मुकुलित (२।१३।३), पुग्गल < पुद्गल (७।७।१२), पुहइ < पृथिवी (१०।६।४), मउण < मौन (११।६।१२), पोम < पद्म (१०।१५।३), इल < एला (१।९।१०), चक्कि < चक्री (६।७।११), पुरिस < पुरुष (३।९।११), सग्ग < स्वर्ग (२।७।७), नम्मु < नम्र (२।३।१३)।

१०. स्वरोंका आदि, मध्य एवं अन्त्य स्थानमे आगम। यथा—वासहर < वर्षधर (३।१८।३), सुवण < स्वजन (६।२।९), सच्चरण < सदाचरण (८।३।३), दुज्जय < दुर्जेय (१।१।२), उत्तिम < उत्तम (१०।१८।१३), निसुढ < निषध (१०।१४।१०), वरिसइ < वर्षति (५।५।१४), कसण < कृष्ण (१।५।१०), अग्गिमित्तु < अग्निमित्र (२।१८।१३), सरय < शरद् (१।१०।११), दय < दया (११।६।९)।

११. आद्य एवं मध्य व्यंजन लोप। यथा—थी < स्त्री (१०।१८।४), थंभ < स्तम्भ (३।१५।७), थिरयर < स्थिरता (२।२।६), थण < स्तन (१०।१।२), थवइ < स्थपति (८।४।४), थावर < स्थावर

(२।२२।१०), वायरण < व्याकरण (९।१।१४), सा < श्वान (१०।१८।१), वणसइ < वनस्पति (१०।७।९)।

१२. वर्ण-विपर्यय। यथा—

तियरण < त्रिरत्न अथवा रत्नत्रय (१०।३६।१५, १०।४१।४), सरहसु < सहर्ष (९।१९।८), दीहर < दीर्घ (२।२०।२)।

१३. प्रथमा एवं द्वितीया विभक्तियोके एकवचनमें अकारान्त शब्दो के अन्तिम अकार अथवा विसर्गके स्थानमे प्रायः उकार। कही-कही एँ का प्रयोग मिलता है। यथा—चरित < चरिउ (१।१।२), सग्गु < स्वर्गः (१।१६।१०), सिरिचंदु < श्रीचन्द्र. (१०।४१।१२), संभिण्णु < संम्भिन्न (३।३०।८), हेमरहु < हेमरथः (७।४।१२), दिणिंदु < दिनेन्द्रः (५।६।६), समुद्दु < समुद्रं (५।६।५), खुद्दु < क्षुद्रं (५।६।६), वणवालें < वनपालः (२।३।१८)।

१४. तृतीया विभक्तिके एकवचनमें अन्त्य अकारके स्थानमें 'एँ' का प्रयोग एवं कही-कही 'ह' अथवा 'एण' का प्रयोग। यथा—

परमत्थें < परमार्थेन (४।१२।१२), हयकठें < हयकण्ठेण (५।२२।८), सम्मत्तें < सम्यक्त्वेन (२।१०।१४), पयत्तें < प्रयत्नेन (२।१०।१४), मिच्छादिट्ठिह < मिथ्यादृष्ट्या (२।१६।९), तेण < तेन (६।२।३), विज्जाहरेण < विद्याधरेण (५।२०।९), उवरोहेण < उपरोधेन (१।११।७)।

१५. तृतीयाके वहुवचनमें अन्त्य अकारके स्थानपर एकार तथा हिँ प्रत्यय। यथा—
सव्वेहिँ < सर्वैः (१।७।४), मणोरमेहिँ < मनोरमैः (३।१६।९), जणेहिँ < जनैः (३।१६।११), कुसुमेहिँ < कुसुमैः (१।९।६)।

१६. अकारान्त शब्दोंमें पंचमी विभक्तिके एकवचनमें 'हो' प्रत्यय तथा वहुवचनमें हुँ अथवा हिँ प्रत्यय। यथा—

गेहहो < गृहात् (१।१७।१२), तहो < तस्मात् (२।१।१), मेहहो < मेघात् (२।१।१४), पुरिसहुँ < पुरुषेभ्यः (३।३०।३), सव्वहुँ < सर्वेभ्यः (४।२४।१५), पिययमाहुँ < प्रियतमेभ्यः (१।४।१६), जणवएहिँ < जनपदेभ्यः (३।१।६)।

१७. अकारान्त शब्दोसे परमें आनेवाले षष्ठीके वहुवचनमें हुँ एवं सु प्रत्ययोके प्रयोग। यथा—

मुणीसराहुँ < मुनीश्वराणाम् (१।११।५), जणाहुँ < जनानाम् (१।१४।९), ठियाहुँ < स्थितानाम् (३।१।९), कासु < केषाम् (१।१२।४), रयणायरासु < रत्नाकराणाम् (१।२।८), तिणासु < तृणानाम् (१।२।७)।

१८. स्त्रीलिंगके शब्दोमें पंचमी और षष्ठीके एकवचनमें 'हे' का प्रयोग। यथा—

ताहे < तस्याः (१।६।१०), जाहे < यस्याः (१।६।१०)।

१९. क्रियारूपोंके प्रयोग प्रायः प्राकृतके समान हैं। पर कुछ ऐसे क्रियारूप भी उपलब्ध है, जो कि विकसित भारतीय-भाषाओंका प्रतिनिधित्व करते है और जिनसे आधुनिक भाषाओकी कड़ी जोडी जा सकती है। यथा—

ढोइउ (वुन्देली) = ले जाने के अर्थमें (४।२२।६)
चल्लइ चलनेके अर्थमें (२।१५।१२)
पुच्छिउ पूछनेके अर्थमें (२।१५।६)
मिलइ मिलनेके अर्थमें (४।७।३)

हुवउ होनेके अर्थमें (८।१।५)
लग्गी लगनेके अर्थमें (४।७।४)
सि (हरियाणवी एवं पंजावी), होनेके अर्थमें (१०।२६।८)
वइसइ (मैथिली) वैठनेके अर्थमें (१०।२५।९)
वइठिउ (वुन्देली एवं वघेली) वैठनेके अर्थमें (६।४।५)
लेवि लेनेके अर्थमें (५।१३।३)
जोइ देखनेके अर्थमे (५।१४।१०)
होइ होनेके अर्थमें (६।६।९)

२०. वर्तमान कृदन्तके रूप वनानेके लिए 'माण' प्रत्यय। यथा—

धावमाण (८।११।६), णिव्वमाण (१।४।३), कंपमाण (३।४।३), गायमाण (२।३।१४), आगच्छमाण (३।४।३), णउमाण (२।१४।३) आदि।

२१. पूर्वकालिक क्रिया या सम्वन्धसूचक कृदन्तके लिए इवि, एवि, एप्पिणु और एविणु प्रत्ययोंके प्रयोग। यथा—

√प्र—नम्—पणव + इवि = पणविवि (७।६।१)
√अव + लोक्—अवलो + इवि = अवलोइवि (७।१६।७)
√प्रेक्ष—पेक्ख + इवि = पेक्खिवि (१।४।८)
√प्र + नम्—पणव + एवि = पणवेवि (१।१७।१३)
√श्रु—सुण + एवि = सुणेवि (३।९।९)
√लभ्—लह + एवि = लहेवि (३।३।१२)
√धृ—धार + एवि = धारेवि (९।७।१०)
√प्र + नव = पणव + एप्पिणु = पणवेप्पिणु (२।४।४)
√कृ—कर + एविणु = करेविणु (१।८।१४)
√लभ्—लह + एविणु = लहेविणु (१।७।११)
√नि + सुण + एविणु = णिसुणेविणु (४।४।१६)
√स्मृ—सुमर + एविणु = सुमरेविणु (४।४।७)

२२. अपभ्रंश-व्याकरण सम्वन्धी उक्त विशेषताओंके अतिरिक्त 'वड्ढमाणचरिउ' में, जैसा कि पूर्वमें ही कहा जा चुका है, कुछ ऐसी शव्दावली भी प्रयुक्त है जिसके साथ आधुनिक भारतीय भाषाओंका सम्वन्ध वड़ी सुगमताके साथ जोड़ा जा सकता है। उदाहरणार्थ कुछ शव्द यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं—

चोज (१।५।७, वुन्देली, वघेली, हरियाणवी, पंजावी)=आश्चर्य; पेट्ट (२।२।१२) पेट; रूख (२।३।१२, वुन्देली) वृक्ष; घाम (२।३।१२, वुन्देली)=धूप; ढुक्क (२।२२।१, वुन्देली)=ढूँकना, या झाँकना; कड्ढ (४।१०।५, वुन्देली)=काढना, निकालना; ढोइउ (४।२२।६)=ढोना; गुड़ (४।२४।४)=गुड़; मांगण (५।४।३, हरियाणवी, पंजावी, राजस्थानी)=माँगना; कित्तिउ (५।४।६, हरियाणवी, पंजावी, वुन्देली)= कितना; वप्प (५।५।८)=वाप रे, मुक्ख (५।१२।३, हरियाणवी, पंजावी, वुन्देली आदि)=मुख्य; चप्पि (५।१३।२)=चाँपकर; लेवि (५।१३।३)=लेकर, जोइ (५।१४।१०)=देखना, पलित्त (५।१६।४, वुन्देली) =पलीता, मशाल; कच्छोटी (५।१६।४, वुन्देली—तथा कच्छा—हरियाणवी एवं पंजावी)=लघु अधोवस्त्र; तोडि (५।१९।९)=तोड़कर; चडिउ (५।२३।११)=चढकर; तोलिय (५।२३।१४)=तौलकर; वइठिउ (६।४।५)=वैठा; ढोर (७।३।८)=जानवर; चरुव (७।१३।३ वुन्देली)=चरुवा या कलश; हुवउ (८।१।५)

= हुआ; पुन्न (८।१७।१२) = पुण्य; लिंते (२।९।४) = लेते हुए; पाउ (९।३।१२) = पैर, माइ (९।४।६) माँ, धत्थ (९।४।१०) = तिरस्कारसूचक शब्द; धोरा (९।६।१४, बुन्देली) = धवल; मिस (९।१३।१०) = बहाना; बक्खाण (१०।११।९, हरियाणवी, पंजाबी, राजस्थानी, बुन्देली आदि) = बखान अर्थात् व्याख्यान या कथन; मट्टिय (१०।१८।३) = मिट्टी; तोड (१०।३२।१३) = तोड़ना; दूणु दूंणु (१०।२८।४) = दूना-दूना, वइसइ (१०।१८।३, १०।२४।११, १०।२५।९, भोजपुरी, मैथिली) = वैठने अर्थमें, भक्खिउ (१०।२६।९) = खानेके अर्थमें; बुड्ढ (१०।३८।५) = बुढापा, सारि (१०।२६।१०) = स्मरण; सि (१०।२६।८, हरियाणवी, पंजाबी) = होनेके अर्थमें, चउदह (१०।३४।८) = चौदह; गले लग्गो (४।७।४, बुन्देली) = गलेसे लगना; गहीर (१।८।८) = गहरा; होति (३।९।११) = होती हैं; देक्खण निमित्त (५।९।९, हरियाणवी, पंजावी, राजस्थानी) = देखनेके निमित्त; फाडिउ (५।१७।१७) = फाड़नेके अर्थमे; लट्ठि (५।१९।४) = लाठी; कहार (४।२१।१५) = पालकी ढोनेवाला।

२३. परसर्गोंमें कविने केरउ (४।२२।९), केरी (१।६।६), तणिय (१।६।६), तणउ (३।३०।४, ५।८।१२) के प्रयोग प्रमुख रूपसे किये हैं।

२४. ध्वन्यात्मक शब्दोमे गडयडइ (५।५।१४), घग्घर (घर्घर) (६।११।१०), कलयल (१।८।१०), रणरण (६।८।११), रुणझुण (१।८।१), चिच्चि (१०।२४।९), चिटचिट, झल्लर (९।१४।११), रणझण (९।४।८), रड-आरड (९।९।१२) शब्द प्रमुख हैं। ये शब्द प्रसंगानुकूल हैं तथा अर्थके स्पष्टीकरणमे सहायक सिद्ध हुए है।

२५. प्रस्तुत वड्ढमाणचरिउमे कुछ ऐसे शब्दोके प्रयोग भी मिलते हैं, जो हरयाणा, पंजाव तथा उसके आस-पासके प्रदेशोसे सम्बन्धित या प्रभावित प्रतीत होते है। ये शब्द भाषा-विज्ञानकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण हैं। उनमें-से कुछ शब्द निम्न प्रकार हैं—

तुप्प (४।१६।४) = घी, धविय (३।३१।१) = स्तुत, धुत्त (५।८।७) = कुशल, चतुर, रंधु (५।२०।१०) = अवसर, विहू (७।१।१०) = बहू, लंपिक्क (७।१५।१२) = लम्पट, अकूवार (८।१०।४) = समुद्र, उंदुर (९।११।११) = चूहा, धंघल (४।३।१०) = कलह, तिल्थ (७।२।६) = तीक्ष्ण, धत्त (१०।२४।३) = ध्वस्त, वणम्इ (१०।७।९) = वनस्पति, णिसिय (७।२।५) = न्यस्त, विच्छुल (९।४।५) = विस्तृत, गीढ (९।६।२२) = घटित, पच्छल (९।४।५) = पृथुल, आहुट्ठ (९।६।३) = हूँठा (अर्थात् साढ़े तीनकी संख्या), इयवीर (९।२१।८) = अतिवीर, सा (१०।२८।१) = श्वान, गोलच्छ (४।७।५) = पूँछकटी गाय, णिल्लूर (४।१७।३) = छिन्न, णिवच्छ (४।२८।११) = नि.व्रज, णिक्किव (५।९।१०) = निष्कृप, पवग्ग (५।२०।७) = पराक्रम, णुम (७।२।४) = स्थापन, उड्ढंग (९।२।६) = उन्नत।

९. लोकोक्तियाँ, मुहावरे एवं सूक्तियाँ

'वड्ढमाणचरिउ' में अध्यात्मवादी, व्यावहारिक लोकोक्तियो एवं मुहावरों तथा जनसामान्यके प्रचलित शब्दोंका बाहुल्य पाया जाता है। लोकोक्तियाँ तो बडी ही मार्मिक बन पडी हैं। वर्ण्य प्रसंगोमे गहनता लानेमें वे बडी सहायक सिद्ध हुई हैं। उदाहरणार्थ यहाँ कुछ उक्तियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं।

अध्यात्मपरक

सम्मत्तहो सुंद्धि पयणइँ सोखु न कासु (६।१८।१२)।
(सम्यक्त्व-शुद्धि किसके लिए सुखप्रद नही होती ?)

उण्णइ ण करइ कहो मुणिवयणु (६।१९।११)।
(कहिए कि मुनि-वचन किसकी उन्नति नही करते ?)

कि तरुणो वि ण सो उवसामइ सेय-मग्गे लग्गइ णिरु जसु मइ। (७।११।८)।

(जिसकी बुद्धि श्रेयोमार्गमें निरन्तर लगी रहती है, क्या वह तरुण होनेपर भी उपशान्त नही हो जाता ?)

राइहे कि पि कज्ज ण सिज्झइ चिंतिउ पुरुसहो सुविहि विरुज्झइ (७।१६।१)

(रागी पुरुषका कोई भी कार्य सिद्ध नही होता, बल्कि उसके द्वारा विचारित सुविधि भी विपरीत हो जाती है।)

कि ण लहइ णरु पुन्नेण भव्वु (८।६।२)।

(भव्यजन पुण्य द्वारा क्या-क्या प्राप्त नही कर लेते ?)

जलहि व णव दिण्ण जलेहि भव्वु धीरहँ ण वियार-निमित्तु दव्वु। (८।७।४)

(जिस प्रकार नदियोंका बहकर आया हुआ नवीन भारी जल भी समुद्रकी गम्भीरता को प्रभावित नही कर सकता, उसी प्रकार द्रव्य-सम्पत्ति धीर-वीर जनोके लिए विकारका कारण नही बनती।)

ण मुवइ णिय-चित्तहो धम्म भाव मज्जहिँ विहवहिँ ण महाणुभाव। (८।७।६)

(जो महानुभाव होते है, वे अपने वैभवसे विमूढ (मनवाले) नही होते।)

आरुहिउ पयावइ वारणिंदे सहसत्ति विहिय मंगल अणंदे। (५।१५।६)

(दिनोके पूर्ण हो जानेपर कौन किसको नही मार सकता।)

उवसम विणयहिँ पयणिय पणयहिँ।
भूसिउ पुरिसो विगयामरिसो। (४।१३।१-२)

(उपशम एवं विनय द्वारा प्रकटित प्रेमसे भूपित पुरुप क्रोधरहित हो जाता है।)

ते धन्न भुवणे ते गुण-निहाण ते विवुहाहिल-मज्झिहे पहाण।
णिय-जम्मु-विडवि-फलु लद्धु तेहिँ तन्हा वि सयल णिद्दलिय जेहिँ।
परियणु ण मंति ण सुहिँ णिमित्तु ण कलुत्तु ण पुत्तु ण बंधु वित्तु
अवरोवि कोवि भुव-वल-महत्थु दुव्विसय मुहहो रक्खण-समत्थु। (८।८।८-११)

(भुवनमे वे ही गुणनिधान धन्य है, और अखिल मध्यलोकमें वे ही प्रधान पण्डित है, जिन्होने समस्त तृष्णाभावका निर्दलन कर अपने जन्मरूपी विटपका फल प्राप्त कर लिया है। यथार्थ-सुखके निमित्त न तो परिजन ही है और न मन्त्रिगण और न कलत्र, पुत्र, बन्धु अथवा वित्त ही। अन्य दूसरे महान् भुजबलवाले भी दुर्विपयरूपी मुखसे किसी की भी रक्षा करनेमें समर्थ नही हो सकते।)

व्यावहारिक लोकोक्तियाँ

कि सुह-हेउ ण विलसिउ कंतहे रमणियणहँ अहिमुह परिठंतहे (७।१६।४)।

(सम्मुख विराजमान पति (कान्त) का विलास क्या रमणी-जनोके लिए सुखका कारण नही बनता ?)

इह भूरि पुण्णवंतहँ णराहँ कि पि वि ण असज्झु मणोहराइँ (८।५।२)।

(महान् पुण्यशाली महापुरुषोके लिए इस संसारमें कुछ भी असाध्य नही है।)

किंकरु होइ न अप्पाइत्तउ—(४।२४।१३)।

(सेवकोंका अपने ऊपर कोई अधिकार नहीं होता।)

किं किं ण करइ पवहंतु णेहु (५।१५।६)।

(स्नेह पाकर जीव क्या-क्या नही कर डालता ?)

फल-फुल्ल-णमिउँ किं कालियाए परियइँ ण चूउ अलिमालियाए (८।१७।२)।

(फल-फूलोसे नम्रीभूत आम्रकलियोका क्या भ्रमर-समूह वरण नही करता ?)

उवयायल-कडिणि परिट्ठिओवि रवि परियरियइ तेएँण तोवि (९।८।८)।

(उदयाचलकी कटनी—तलहटीमें स्थित रहने पर भी रवि क्या तेजसे घिरा हुआ नही रहता ?)

सरे सलिलंतरे लीलहो अमेउ किं मउलिय-कमलहो होइ खेउ। (९।८।११)

(सरोवरमे जलके भीतर अमेय लीलाएँ करनेवाले मुकुलित कमलकी क्या खेद होता है ?)

हउँ पुणु एयहो आण-करण-मणु जं भावइ तं भणउ पिसुण-यणु।
पुव्व कम्मु सप्पुरिस ण लंघहिँ कज्ज उत्तरुत्तरु आसंघहिँ॥ (४।३।६-७)

(खलजन तो जो मनमें आता है सो ही कहा करते है, किन्तु सज्जन पुरुष पूर्व-परम्पराका उल्लंघन नही कर सकते। कार्य आ पड़नेपर उनसे तो उत्तरोत्तर घनिष्ठता ही बढती जाती है।)

कढिणहो कोमलु कहिउ सुहावहु णयवंतहि णिय-मणि परिभावहु। (४।१३।९)

(नीतिज्ञो द्वारा कर्कशताकी अपेक्षा कोमलताको ही सुखावह कहा गया है।)

पिय वयणहो वसियरणु ण भल्लउ अत्थि अवरु माणुसइँ रसल्लउ। (४।१३।११)

(मनुष्योके लिए प्रिय वाणी छोड़कर अन्य कोई दूसरा उत्तम रसार्द्र-वशीकरण नही कहा जा सकता।)

जुत्तउ महुरु लवंतउ दुल्लहु परपुट्ठो वि हवइ जणवल्लहु। (४।१३।१२)

(दुर्लभ मधुर वाणी बोलकर परपोषित होनेपर भी कोयल जन-मनोको प्रिय होती है।)

सामणु अण्णु ण णोक्खउ। (४।१३।१४)

(सामनीतिसे बढकर अन्य कोई नीति उत्तम नही हो सकती।)

मणु न जाइ कुवियहो वि महंतहो विक्किरियहे कयावि कुलवंतहो। (४।१४।११)

(कुलीन महापुरुष यदि क्रोधित भी हो जाये, तो भी उनका मन कभी भी विकृति को प्राप्त नही होता।)

जलणिहि-सलिलु ण परताविज्जइ तिण हुउ। (४।१४।१२)

(समुद्रका जल क्या फूसकी अग्निसे उष्ण किया जा सकता है ?)

सिहि-संतत्तउ जाइ मिउत्तणु । (४।१६।७)
(अग्निसे तपाये जाने पर ही लोहा मृदुताको प्राप्त होता है ।)

अणु अंतरुसहो उवसमु पुरिसहो ।
किर एकेणं वप्पणएणं ।। (४।१६।१-२)
(जो पुरुप विना किसी निमित्तके ही हृदयमे रुष्ट हो जाता है उसे किस विशेप नीति से शान्त करना चाहिए ?)]

अहिउ णिसग्गउ वइरे लग्गउ ।
ण समइ सामें पयणिय कामे । (४।१७।१-२)
(स्वभावसे ही अहितकारी तथा शत्रुकर्मोमे लगा हुआ व्यक्ति प्रेम अथवा सामनीति-के प्रदर्शनसे शान्त नही हो सकता ।)

किं तरुणो वि-ण-सो उवसामइ सेयमग्गे लग्गइ णिरु जसु-मइ । (७।१२।८)
(जिसकी वुद्धि श्रेयोमार्गमें निरन्तर लगी रहती है, क्या वह तरुण होनेपर भी उप-शान्त नही हो जाता ?)

१०. उत्सव एवं क्रीड़ाएँ

उत्सव एवं क्रीड़ाएं लोकरुचिके प्रमुख अंग है। 'वड्ढमाणचरिउ'मे इनके प्रसंग वहुत कम एवं संक्षिप्त रूपमें मिलते है। उनका मूल कारण यही है कि कविने पुनर्जन्म, शुभाशुभकर्मफल, भौतिक-जगत्के के विविध दुख तथा सैद्धान्तिक एवं आचारात्मक वर्णनोमे अपनी शक्तिको इतना केन्द्रित कर दिया है कि अन्य मनोरंजनोंके प्रसंगोको वह विस्तार नही दे सका है।

प्रस्तुत रचनामे उपलब्ध उत्सवोमें जन्मोत्सव[1], अभिषेकोत्सव[2], वसन्तोत्सव[3], स्वयंवरोत्सव[4], राज्या-भिपेकोत्सव[5], युवराज-पदोत्सव[6], आदि प्रमुख है। अभिषेकोत्सवको छोड़कर वाकीके उत्सवोका वर्णन अति संक्षिप्त है। यह अभिषेकोत्सव परम्परा प्राप्त है। इस विपयमें कवि अपने पूर्ववर्ती आचार्य गुणभद्र एवं असगसे प्रभावित है।

क्रीडाएँ दैनिक-जीवनके कार्योसे श्रान्त-मनकी एकरसताको दूर करनेके लिए अनिवार्य है। कविने कुछ प्रसंगोमें उनकी चर्चा की है। इनमें राजकुमार नन्दन, राजकुमार नन्द तथा युवराज विश्वनन्दिके वन-विहार[7], पुरुरवा शवर एवं राजकुमार त्रिपृष्ठ द्वारा की जानेवाली आखेट-कीड़ाएँ[8], देवांगनाओ द्वारा माता प्रियकारिणीके सम्मुख प्रस्तुत अनेक क्रीड़ाएँ[9], तथा राजकुमार वर्धमान की वृक्षारोहण क्रीड़ा प्रमुख है।[10]

इन वर्णनोमेंसे नन्दन-वन विहारके माध्यमसे कविने श्रृंगार रसकी उद्भावना तथा त्रिपृष्ठके मृगया-वर्णनसे कविने रौद्र एवं वीर रसकी उद्भावनाका भी सुअवसर प्राप्त कर लिया है।

---

१. वड्ढमाण. १।७, ६।६।
२. ,, ६।१२-१६।
३. ,, २।३।
४. ,, ४।३-४।
५. ,, १।१२, ३।५, ६।१।
६ वड्ढमाण, ३।५।
७. ,, १।७, २।३ ३।६।
८. ,, २।१०, ३।२४-२७।
९. ,, ६।५।
१०. ,, ६।१७।

११. भोज्य एवं पेयपदार्थ

'वड्ढमाणचरिउ' एक तीर्थंकर चरित होनेसे उसमें व्रत एवं उपवास आदिकी ही अधिक चर्चाएँ है, अतः भोज आदिके प्रसंग प्राप्त नही है। युद्ध-प्रसंगों, वन-विहार अथवा अन्य भवान्तर-वर्णन आदि प्रसंगोमें कवि इतना व्यस्त प्रतीत होता है कि वह कोई भोज-प्रसंग उपस्थित नही कर सका है और इस कारण मध्यकालीन भोजन-सामग्री किस-किस प्रकार एवं कितने प्रकारकी होती थी, उनके क्या-क्या नाम होते थे, इनकी विस्तृत जानकारी प्रस्तुत रचनामें नही मिलती। हाँ कुछ उत्सव आदिके प्रसंगोमें भोज्य-सामग्री उपलब्ध है, वह निम्न प्रकार है—

खाद्यान्नोमें—जौ,[१] चना,[२] मूँग,[३] कोदो, गेहूँ,[५] माष,[६] तन्दुल,[७] मसूर,[८] तिल[९] एवं उनसे बने पदार्थो की चर्चा की गयी है।

खाद्य पदार्थोमें—फल[१०], गुड़[११], मधु[१२], खीर[१३]; खार[१४] (पापड़) तथा

पेय पदार्थोमें—दुग्ध[१५] एवं मद्य[१६] की चर्चा आयी है।

व्यंजनोंका निर्माण तुप्प[१७] (घी) से किया जाता था।

पेय पदार्थोमें एकाध स्थान पर मिलावट (Adulteration) का भी उदाहरण मिलता है। उसके अनुसार मद्यमे 'सज्ज' नामका कोई ओछा पदार्थ फेंटकर उसे बेच दिया जाता था।[१८]

खाद्य पदार्थोके तैयार करनेंके लिए चरुआ,[१९] कलश[२०] तथा कड़ाह[२१] आदि एवं भोजन करनेके लिए प्रयुक्त वर्तनोमें स्वर्णपात्र,[२२] रजतपात्र,[२३] ताम्रपात्र[२४] एवं अयसपात्रों[२५] की चर्चा आयी है।

१२. आभूषण एवं वस्त्र

आभूषण एवं वस्त्र मानव-समाज की सौन्दर्यप्रियता, सुरुचिसम्पन्नता, समाज तथा राष्ट्रकी आर्थिक समृद्धि, राजनैतिक स्थिरता, कला एवं शिल्पकी विकसनशीलता तथा देशके खनिज एवं उत्पादन द्रव्योंके प्रतीक होते हैं। इनके अतिरिक्त वे मानव-शरीरके सौन्दर्य बढानेमे विशेष सहायक होते है। अतः कवियोंने अपनी-अपनी कृतियोंमें प्रसंगानुकूल सोने, चांदी, मोती, माणिक्यके बने विविध आभूषणो तथा विविध महार्घ्य वस्त्रोंके उल्लेख किये है। वड्ढमाणचरिउमें भी कविने समकालीन कुछ प्रमुख आभूषणो एवं वस्त्रोके उल्लेख किये हैं। जो क्रमशः निम्न प्रकार है—

आभूषण—मणिजटित केयूर[२६], कनक-कंकण[२७], कनक-कुण्डल[२८], कनक-कटक[२९], रत्नहार[३०], रत्नमुकुट[३१], नूपुर, मेखला[३२]।

१-७. वड्ढमाण. ८।५।१०।
८. „ १०।६।५, १०।११।६।
९. „ ८।५।१०।
१० „ ३।१७।६।
११. „ ४।२४।४।
१२-१४. „ १०।७।५।
१५. „ ४।१५।१।
१६. „ १०।७।५।
१७. „ ४।१६।३।
१८. „ १०।२७।१४।

१९-२१. वड्ढमाण. ४।२१।१३।
२२-२३. „ ८।६।३।
२४-२५. „ ८।६।३।
२६. „ ४।११७, ८।५।१२, १०।३१।१६।
२७ „ ८।३।४, १०।१८।१०।
२८. „ ८।५।१२, १०।१७।१२, १०।१८।१०।
२९. „ १०।१८।१०, १०।३१।१६।
३० „ ८।६।११, ६।४।१, १०।३१।१६।
३१. „ ६।१६।११।
३२. „ ६।४।८।

वस्त्रोंमें कविने दो प्रकारके वस्त्रोंके उल्लेख किये हैं—(१) पहिननेके वस्त्र तथा (२) ओढ़ने-बिछानेके वस्त्र। पहिननेके वस्त्रोंमें परिपट्ट[1] तथा उससे निर्मित वस्त्र और कांची[2] अर्थात् लहंगा, चोली तथा कुरता नामक वस्त्रोंके उल्लेख मिलते हैं। ओढ़ने-बिछानेके वस्त्रोंमें नेत्त[3] (रत्नकम्बल) तथा तूलं[4] अर्थात् रूईसे बने गद्दे एवं तकियो के उल्लेख मिलते हैं।

१३. वाद्य और संगीत

कविने उत्सवो एवं मनोरंजनोंके आयोजनोंके समय विविध प्रकारके वाद्योके उल्लेख किये हैं। उनमें कुछ वाद्योके नाम तो परम्परा प्राप्त हैं और कुछ समकालीन नवीन। प्रस्तुत रचनामें उपलब्ध वाद्योके नाम निम्न प्रकार हैं—तूर्य[5], तुरही[6], मन्दल[7], डमरु[8], पटु-पटह[9], झल्लरि[10], काहल[11], दुन्दुभि[12], शंख[13], वज्रांग[14], घनरन्ध्र[15] एवं वितत-तत[16]।

१४. लोककर्म

लोककर्मके अन्तर्गत शिल्पकार, लुहार, बढ़ई, कहार, उद्यान या वनपालके कार्य आते हैं। यद्यपि यह वर्ग समाजमें युगो-युगोंसे हीन माना जाता रहा है फिर भी उसके दैनिक अथवा नैमित्तिक कार्योंकी सम्पन्नता इस वर्गके बिना सम्भव नही थी। मनोज्ञ जिन-मन्दिर और उनपर करोडो स्वर्णकूट[17], रम्य-वाटिकाएँ[18], रत्नमय कपाट व गोपुर[19], नीलमणियोसे निर्मित भित्तियाँ[20], स्फटिक-मणियोसे विजडित महीतल[21], सुन्दर वृक्षावलियाँ[22], गम्भीर-वापिकाएँ,[23] विशाल परकोट[24], सिंहद्वार[25], उत्तम निवास-भवन[26] एवं प्रासादों आदिके निर्माण-कार्य उक्त वर्गके बिना असम्भव थे। लुहार दैनिक उपयोगमे आनेवाले कडाहे आदि वर्तनो तथा विविध प्रकारके शस्त्रास्त्रोंके निर्माण-कार्य किया करते थे।[27] वे भस्त्रा[28] (धौंकनी) से भट्टीको प्रज्वलित कर लोहेको गलाते थे तथा उससे वे लोहेकी आवश्यक सामग्रियोंका निर्माण करते थे। कहारोंका कार्य पालकी ढोना एवं अन्य सेवा-कार्य था। युद्धोमे अन्तःपुर भी साथमें चला करते थे। उनकी पालकियोको कहार ही ढोया करते थे।[29] उद्यानपाल अथवा वनपाल [आजकलके वनरखा] उद्यानो एवं वनोका रक्षक तो रहता ही था, उसके साथ-साथ वह कुशल गुप्तचर एवं सन्देशवाहक भी होता था।[30]

---

१. वड्ढमाण, ८।६।७।
२. वही, ८।६।७।
३. वही, ८।६।७।
४. वही, ८।५।८।
५. वही, २।१४।१।
६ वही, २।१४।१।
७. वही, ६।११।६।
८. वही, ६।१०।२०।
९. वही, ६।१२।५।
१०. वही, ६।१४।११।
११. वही, ६।१४।११।
१२. वही, ६।२१।४; १०।१।६।
१३. वही, १०।१८।७।
१४. वही, १०।१८।११।
१५. वही, ८।६।५।
१६. वड्ढमाण—८।६।५।
१७ वही, १।१२; ७।१३।
१८. वही, १।३।१०।
१९. वही, १।४।७।
२०. वही, १।४।११।
२१ वही, १।४।१३।
२२. वही, १।८।१२।
२३. वही, १।८।३।
२४. वही, ३।२।१।
२५. वही, ३।२।६।
२६. वही, ६।२।६।
२७-२८. वही, ४।२१, १०।२४।
२९. वही, ४।२१।१५।
३०. वही, २।४।३।

१५. रोग और उपचार

कविने रोगोंमें जरा-वेदना[1], कुक्षि-वेदना[2], नेत्र-वेदना[3], शिरोवेदना[4], अनिवारित ऊर्ध्व-वेदना[5] अर्थात् मरणसूचक उल्टी श्वांस, निद्रा रोग[6], चर्म रोग[7], महामारी[8], लोम-रोग[9], नख-रोग[10], मल-रोग[11], रक्त रोग[12], पित्त-रोग[13], मूत्र-रोग[14], मज्जा-रोग[15], मांस-रोग[16], शुक्र-रोग[17], कफ-रोग[18], अस्थि-रोग[19], ताप-ज्वर[20] आदिके नामोल्लेख किये हैं, कविने इन रोगोके उल्लेख विभिन्न प्रसंगोंमें किये हैं, किन्तु उनके उपचारो की चर्चा नही की है। कविने एक प्रसंगमें यह अवश्य वतलाया है कि निद्राकी अधिकता रोकने के लिए परिमित भोजन करना चाहिए[21]।

१६. कृषि (Agriculture), भवन-निर्माण (Building-construction), प्राणि-विद्या (Zoology) तथा भूगर्भ विद्या (Geology) सम्बन्धी यन्त्र एवं विज्ञान

विवुध श्रीधरने समकालीन कुछ यन्त्रों (Machines) की भी चर्चाएँ की है। वर्तमानकालीन विकसित वैज्ञानिक-युगकी दृष्टिसे उनका महत्त्व भले ही न हो, किन्तु मध्यकालकी दृष्टिसे उनका विशेष महत्त्व है। वर्तमानमें तत्सम्बन्धी जो यन्त्र प्राप्त होते हैं, वस्तुतः वे उन्हींके परवर्ती विकसित रूप कहे जा सकते है। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि १२-१३वी सदीमें उत्तर-भारत कृषि एवं वन-सम्पदासे अत्यन्त समृद्ध था। वहाँ विविध प्रकारके अनाजोंके साथ-साथ गन्नेकी उपज वहुतायतसे होती थी। गन्नेसे गुड भी प्रचुर-मात्रामें तैयार किया जाता था।[22] गन्नेका रस निकालनेके लिए किसी एक यन्त्रका प्रयोग किया जाता था। प्रतीत होता है कि वह यन्त्र चलते समय पर्याप्त ध्वनि करता था। अतः कविने कहा है कि—"गन्नेके खेतोंमें चलते हुए यन्त्रोकी ध्वनियाँ लोगोको वहरा कर देती थी।[23]" इसी प्रकार जीवोंके वध करने अथवा शारीरिक दण्ड देने हेतु पीलन-यन्त्र[24] तथा सुन्दर-सुन्दर भवनो, प्रासादो एवं सभा-मण्डपोके निर्माणमें काम आनेवाले यन्त्रोंकी चर्चा कविने की है।[25] इसी प्रकार एक स्थानपर प्राणि-शरीरको दृढ़-यन्त्रके समान कहा गया है।[26] तात्पर्य यह कि कविकी मान्यतानुसार वाह्य-यन्त्रोके निर्माणका आधार वहुत कुछ अंशोमें शारीरिक यन्त्र-प्रणालीकी नकल थी। इन वर्णनोसे प्रतीत होता है कि उत्तर-भारत विशेष रूपसे हरयाणा, पंजाब, हिमाचल-प्रदेश, राजस्थान, दिल्ली तथा उसके आस-पासके प्रदेशोंमें कृषि (Agriculture), भवन-निर्माण (Building-construction) तथा प्राणि-शरीर-विज्ञान (Sciences relating to Anatomy, Phisiology and Surgery) सम्बन्धी विज्ञान, वैज्ञानिक-क्रियाएँ तथा तत्सम्बन्धी उपकरण पर्याप्त मात्रामें लोक-प्रचलनमें आ चुके थे।

---

१. वड्ढमाण,-१०।२५।२५।
२. वही, १०।२५।२५।
३. वही, १०।२५।२५।
४. वही, १०।२५।२५, १०।३२।४।
५. वही, १०।२५।२५।
६. वही, ८।१४।४।
७. वही, १०।३२।४।
८. वही, ३।१।१३।
९. वही, १०।३२।४।
१०. वही, १०।३२।४।
११. वही, १०।३२।४।
१२. वही, १०।३२।४।
१३. वही, १०।३२।४।
१४. वही, १०।३२।४।
१५. वही, १०।३२।४।
१६. वही, १०।३२।४।
१७. वही, १०।३२।५।
१८. वही, १०।३२।५।
१९. वही, १०।३४।५।
२०. वही, १०।३२।६।
२१. वही, ८।१४।४।
२२. वही, ४।२४।४।
२३. वही, ३।१।५।
२४. वही, ६।१२।५।
२५. वही, ६।२३।४।
२६. वही, ६।११।१-२।

इनके अतिरिक्त कविने अन्य वैज्ञानिक तथ्य भी उपस्थित किये हैं, जो भूगर्भ विद्या (Geology) की दृष्टिसे अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। उदाहरणार्थ—कविने भूमि अथवा पृथिवीके दो भेद किये हैं—(१) मिश्र भूमि तथा (२) खरभूमि। मिश्रभूमि वह कहलाती है जो स्वभावतः मृदु होती है तथा जिसमें कृष्ण, पीत, हरित, अरुण एवं पाण्डुर-वर्ण पाया जाता है। इसके विपरीत खरभूमि वह है, जिसमें शीशा, ताँवा, मणि, चाँदी एवं सोना पाया जाता है।[१] कविने उक्त दोनों प्रकारकी भूमिको एकेन्द्रिय जीव माना है तथा मृदुभूमिकायिक जीवोंकी आयु १२ सहस्र वर्ष तथा खरभूमि कायिक जीवोंकी आयु २२ सहस्र वर्ष मानी है।[२] कविका यह कथन वर्तमान भूगर्भशास्त्रवेत्ताओ (Geologists) की खोजोंसे प्रायः मेल खाता है।

इसी प्रकार कवि द्वारा प्रतिपादित प्राणियोंके विविध स्थूल एवं सूक्ष्म भेद[3] (Kinds), उनका स्वभाव[४] (Nature), आयु[५] (Age) आदि भी अध्ययनीय विषय हैं। यह वर्णन भी वर्तमान प्राणिशास्त्र-वेत्ताओ (Zoologists) की खोजोसे मेल खाता है। वस्तुतः इस दिशामें अभी गम्भीर तुलनात्मक अध्ययन नही हो सका है, जिसकी कि इस समय वड़ी आवश्यकता है।

१७. राजनैतिक-सामग्री

'वड्ढमाणचरिउ' में भगवान् महावीरके जीवन-चरितका वर्णन है, इसके अतिरिक्त उसमें धर्म, दर्शन एवं अध्यात्म सम्वन्धी सामग्रीकी भी प्रचुरता है, किन्तु चूँकि वर्धमान स्वयं क्षत्रियवंशी तथा सुप्रसिद्ध राजघरानेसे सम्वन्ध रखते थे, अतः कविने उनके वर्तमान जीवन तथा पूर्वभवावलीके माध्यमसे राजनीति तथा युद्धनीतिसम्वन्धी सामग्री प्रस्तुत करनेका अवसर प्राप्त कर लिया है। 'वड्माणचरिउ' में राजनीति-सम्वन्धी जो भी सामग्री उपलब्ध है, उसका वर्गीकरण निम्नप्रकार किया जा सकता है—

(१) राजतन्त्रात्मक प्रणाली, उसमे राजाका महत्त्व तथा उसके कर्तव्य।
(२) राज्यके सात अंग।
(३) तीन वल।
(४) दूत एवं गुप्तचर तथा
(५) राजा के भेद

१. राजतन्त्रात्मक प्रणाली, उसमें राजाका महत्त्व तथा उसके कर्त्तव्य

कवि श्रीधर प्रशासनिक-दृष्टिसे राजतन्त्र प्रणालीको सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। राजतन्त्रमें राजा ही उसकी रीढ होता है। अतः कविकी दृष्टिमें योग्य राजाके बिना दुष्ट शत्रु-निग्रह (१।५।६), राष्ट्र-रक्षा (१।५।६, ३।२४।८) नृपश्री-विस्तार (३।७।९) (२।२।१०), प्रजापालन (२।२।४), राष्ट्र-समृद्धिकी वृद्धि (२।२।५), शासन (१।५।१), अनुशासन (१।५।१), शिष्टजनोंका पुरस्कार (१।५।७), दीन-दलित वर्गका उद्धार (१।५।११) एवं समाज-कल्याण (१।५।११, ३।२४।८) सम्भव नही। राजाके अन्य गुणोमें उसे मधुरभाषी (१।५।१३), गम्भीर (१।५।५), विनम्र (१।५।५), चतुर, स्वस्थ और सुन्दर (१।५।२, २।३।४), धर्मात्मा (१।५।२), नीतिवेत्ता (१।५।१), सरस (१।५।९) एवं पराक्रमी (१।५।५, २।३।६) आदिका होना भी आवश्यक वताया गया है। किन्तु विवुध श्रीधरका यह राजतन्त्र निरंकुश न था। जव

१. वड्ढमाण-१०।७।१-४।
२. वही, १०।७।१३।
३. वही, १०।४-८,१७,१८।
४. वही, १०।१८-२१।
५. वही, १०।५।

राजा मनमानी एवं प्रजाजनों पर अत्याचार करता था, तब प्रजा उसकी राजगद्दी छीन लेती थी तथा अन्य योग्य व्यक्तिको उसपर प्रतिष्ठित करती थी (३।१६।९-१२)।

२. राज्यके अंग

मानसोल्लास (अनुक्र० २०) में राज्यके ७ अंग माने गये हैं—स्वामी, अमात्य, सुहृद्, कोष, राष्ट्र, दुर्ग एवं बल। कवि श्रीधरने भी सप्तांग-राज्यकी कल्पना की है। उसके अनुसार राजा ही राज्यका स्वामी कहलाता था। उसके कार्य और गुण पीछे वर्णित हो चुके हैं। अमात्यको उसने स्वर्ग-अपवर्गके नियमोंको जाननेवाला (३।७।६), स्पष्टवक्ता (३।७।१४, ३।८), नय-नीतिका ज्ञाता (३।८।५), भाषणमें समर्थ (३।९।१२), महामतिवाला (३।३।१२), सद्गुणोंकी खानि (३।९।१३), धर्मात्मा (३।१२।११), सभी कार्योंमें दक्ष एवं सक्षम (३।१२।९) एवं धीर (३।१२।११) होना आवश्यक माना है। इस अमात्यके लिए श्रीधरने मन्त्री सामन्त (२।१।५) एवं पुरोहित (२।१।५) शब्दके भी प्रयोग किये हैं।

सुहृद् अथवा सन्मित्रके विषयमें कहा गया है कि उसे गुणगम्भीर तथा विपत्ति कालमें उचित सलाह देनेवाला होना चाहिए। (२।१।५)।

कोषका अर्थ कविने राष्ट्रकी समृद्धि एवं प्रजाजनोके सर्वांगीण सुखोसे लिया है। संचिय पवर-वित्तु (९।३।८), मणिचिन्तिय करुणय कप्परुक्खु (१।५।१०), तं जि वित्तु पूरिय गिरि-कंदर (२।२।७), चचल लच्छी हुव णिच्चल (२।२।५), आदि पदोसे कविका वही तात्पर्य हैं।

कविने राजा नन्दनको शक्तित्रयसे अपनी 'नृपश्री' के विस्तार (२।२।१०) करने सम्बन्धी सूचना दी है। शक्तित्रयमें कोष, सैन्य और मन्त्र—ये तीन शक्तियाँ आती हैं। प्रतीत होता है कि कोष-शक्तिका विभाग राजा स्वयं अपने हाथमें ही रखता था। इस कोषकी अभिवृद्धि करो (Taxes) (९।३।६, १५, ३।२४।८) के माध्यम तथा विजित शत्रुओके कोषागारोसे की जाती थी।

कौटिल्य अर्थशास्त्रके अनुसार शुल्क, दण्ड, पौतव, नगराध्यक्ष, लक्षणाध्यक्ष, मुद्राध्यक्ष, सुराध्यक्ष, शूनाध्यक्ष, सूत्राध्यक्ष, स्वर्णाध्यक्ष, एवं शिल्पी आदिसे वसूल किया जानेवाला धन 'दुर्ग' कहलाता था[1]। कविने सामान्यतया शुल्क (३।२४।८, ९।३।६, ९।३।१५,) के वसूल किये जानेके उल्लेख किये हैं। अतः यह स्पष्ट विदित नही होता कि किस वर्गसे, किस प्रकारका और कितना शुल्क वसूल किया जाता था।

'राष्ट्र' के अन्तर्गत कृषि, खनि, व्यापार (जलीय एवं स्थलीय) तथा भूमिके उत्पादन आदिकी गणना होती थी। कविने यथास्थान इनका वर्णन किया है।

३. तीन बल

जैसा कि पूर्वमें कहा जा चुका है कि 'बल' को कवि श्रीधरने 'शक्ति' कहा है तथा उसके तीन भेद किये हैं। मन्त्रशक्ति, कोषशक्ति और सैन्यशक्ति। वस्तुत यही तीन शक्तियाँ 'राष्ट्र' मानी जाती थी। राष्ट्रकी सुरक्षा, अभिवृद्धि एवं समृद्धि उक्त तीन शक्तियोके बिना सम्भव नही थी। अतः कविने इनपर अधिक जोर दिया है। प्रथम दोकी चर्चा तो पूर्वमें ही हो चुकी है। उसके बाद तीसरी शक्ति है—सैन्य अथवा बल-शक्ति।

शत्रुओपर चढाई करके तथा दिग्विजय-यात्राएँ करके राजा अपने राज्यका विस्तार किया करता था। इसके लिए उसके यहाँ 'चउरंगबल' (चतुरंगिणी सेना) अर्थात् पदातिसेना, रथसेना, अश्वसेना, और गजसेना रहती थी (२।१४।४)।

---

१ दे २२।६।१-५।

४. गुप्तचर एवं दूत

आचार्य जिनसेनने अपने महापुराण (४।१७०) मे गुप्तचरोको राजाका नेत्र कहा है। यथा—

चक्षुश्चारो विचारश्च तस्यासीत्कार्यदर्शने।
चक्षुषी पुनरस्यास्य मण्डने दृश्यदर्शने॥

'वड्ढमाणचरिउ' मे विद्याधर हयग्रीव एवं राजा प्रजापतिके अनेक गुप्तचरोंकी चर्चा की गयी है, जो परस्परमें एक-दूसरेके राज्यके रहस्यपूर्ण कार्यो तथा महत्त्वपूर्ण स्थलोकी सूचना अपने-अपने राजाओको दिया करते थे। विशाखभूतिके कीर्तिनामक मन्त्रीने युवराज विश्वनन्दिके कार्यकलापोंकी जाँचके लिए अपना चर नियुक्त किया था (१।७।११)। इसी प्रकार विद्याधर राजा ज्वलनजटी अपनी कन्या स्वयंप्रभाका विवाह-सम्बन्ध करनेका इच्छुक होकर राजा प्रजापतिके यहाँ अपना चर ही भेजता है, जिससे राजा प्रजापति, उसके परिवार एवं राज्यकी भीतरी एवं बाहरी स्थितियोका सही पता लगाकर लौट सके (३।२९)। त्रिपृष्ठने अपने शत्रुके सैन्यबल तथा युद्धकी तैयारियाँ देखने हेतु अवलोकिनी देवीको भेजा था। यह अवलोकिनी देवी वस्तुत: गुप्तचर ही थी। कवि कहता है।

संपेसिय अवलोयणिय-नाम देवी हरिणा संजणिय काम।
देक्खण-निमित्त परबलहो सावि तक्खण-निमित्तु संपत्त धावि॥

—वड्ढमाण ५।९।८-९

कौटिल्य अर्थशास्त्रमें तीन प्रकारके दूत बतलाये गये है—(१) निसृष्टार्थ (२) परिमितार्थ और (३) शासनहर। इनमेसे कविने अन्तिम 'शासनहर' दूतकी चर्चा की है। शासनहर दूत प्रत्युत्पन्नमति होना चाहिए। वह शत्रुदेशके प्रमुख पदाधिकारियोसे मित्रता रखनेका प्रयास कर उन्हे अपने विश्वासमें रखनेका प्रयास करता था। वह वाग्मी होता था तथा अपने चातुर्यसे परपक्षीको युक्ति एवं तर्क आदिसे प्रभावित करनेका पूर्ण प्रयास करता था। इस प्रसंगमें विद्याधर हयग्रीव द्वारा राजा प्रजापतिके पास प्रेषित दूत प्रजापति, ज्वलनजटी आदिको समझाता है कि वे विद्याधर-कन्या स्वयंप्रभाको हयग्रीवके हाथोमें सौप दें। दूत इस विषयमे उन्हे सामनीति पूर्वक समझाता है और जब वे कुछ नही समझना चाहते, तब उन्हें दामनीतिसे अपना कार्य पूर्ण करनेकी सूचना देता है (५।१-५)।

५. राजाके भेद

प्रभुसत्तामे हीनाधिकताके कारण कविने राजाके लिए चक्रवर्ती (५।२।१), अर्धचक्रवर्ती (३।१९।७), माण्डलिक (३।२०।१०), नराधिप (१।१०।८), नृप (३।२३।१४), नरपति (२।७।१), और नरेन्द्र (१।७।१०) जैसे शब्द-प्रयोग किये है। अपने-अपने प्रसंगोमे इन नामोंकी सार्थकता है।

विजित-राज्यों पर राजा वहाँके शासन-प्रबन्धके लिए अपना 'राजलोक' (३।१३।७) नियुक्त करता था। इस 'राजलोक' को सूबेदार अथवा आजकी भाषामे गवर्नर कह सकते है। हो सकता है कि अशोककालीन रज्जुक ही उक्त राजलोक हों। (दे. अशोकका चतुर्थ स्तम्भ-लेख)

१८. युद्ध प्रणाली

'वड्ढमाणचरिउ'मे प्रमुख रूपसे दो भयानक युद्धोके प्रसंग आये है। एक तो विश्वनन्दि और विशाखनन्दिके बीच, तथा दूसरा चक्रवर्ती त्रिपृष्ठ और विद्याधर राजा हयग्रीवके बीच। विश्वनन्दि और विशाखनन्दिके बीचका युद्ध वस्तुतः न्याय, नीति तथा सौजन्यपर छल-कपट, दम्भ, ईर्ष्या, विद्वेष एवं अन्याय-

का घोर आक्रमण है। किन्तु इसका खोखलापन उस समय स्पष्ट हो जाता है, जब दोनोका आमना-सामना हो जाता है और विशाखनन्दि, विश्वनन्दिसे जान बचानेके लिए कैंथके वृक्षपर चढ़ जाता है। किन्तु फिर भी जब उसे प्राण बचनेकी आशा नहीं रही तब वह कापुरुष, विश्वनन्दिके चरणोंमें गिरकर प्राणोंकी भिक्षा माँगता है (३।१५।९-१२)।

दूसरा घोर संग्राम सामाजिक रीति-रिवाजके उल्लंघनका परिणाम है। विद्याधर राजा ज्वलनजटी अपनी पुत्री स्वयंप्रभाका विवाह (३।२९-३१; ४।१-४) पोदनपुरके भूमिगोचरी राजा प्रजापतिके सुपुत्र युवराज त्रिपृष्ठके वीर्य-पराक्रम (३-२४-२८) से प्रभावित होकर उसके साथ कर देता है। विद्याधरोंके अर्धचक्रवर्ती राजा हयग्रीवने इसे अपना घोर अपमान समझा। वह यमराजके समान भयानक तथा प्रलयकालीन अग्निके समान विनाशकारी गर्जना करते हुए चिल्लाया—"अरे विद्याधरो, इस ज्वलनजटीने हमारे समाजके विरुद्ध जो कार्य किया है, क्या तुम लोगोंने इसे प्रकटरूपमें नहीं सुना ? इस अधम विद्याधरने हम सभी विद्याधरोंको तृणके समान मानकर हमें तिरस्कृत किया है तथा अपना कन्यारत्न एक दानव स्वरूपवाले भूमिगोचरी (मनुष्य) के लिए दे डाला है।" हयग्रीवकी इस ललकारपर उसकी सेना युद्धके लिए तैयार हो जाती है। उधर प्रजापतिके गुप्तचरोंने जब प्रजापतिको सूचना दी तो वह भी अपनी तैयारी करता है। दोनों ओरसे भयंकर युद्ध होता है। अन्तमें चक्रवर्ती त्रिपृष्ठ (प्रजापति का पुत्र) अर्धचक्रवर्ती हयग्रीवका वध कर डालता है (५।२३)।

कविने इस युद्ध का वर्णन प्रारम्भसे अन्त तक बड़ा ही वैज्ञानिक-रीतिसे किया है। दोनों पक्ष युद्धके पूर्व अपने मन्त्रियोंसे सलाह लेते हैं। हयग्रीवका मन्त्री हयग्रीवको सलाह देता है कि अकारण ही किया गया क्रोध विनाशका कारण होता है। वह साम, दाम एवं दण्ड नीतियोंका संक्षिप्त विश्लेषण कर अन्तमें यही निष्कर्ष निकालता है कि त्रिपृष्ठके साथ युद्ध करना सर्वथा अनुपयुक्त है (४।९)। किन्तु हयग्रीवने मन्त्रीकी सलाहकी सर्वथा उपेक्षा की तथा हठात् युद्ध छेड़ ही दिया।

इधर राजा प्रजापतिने भी तत्काल मन्त्रि-परिषद्को बुलाकर हयग्रीवके युद्धोन्मादकी सूचना दी। मन्त्रियोंमें-से एक सुश्रुतने सामनीति (४।१३-१५) के गुण एवं प्रभावोंकी चर्चा कर उसके प्रयोगपर बल दिया। किन्तु त्रिपृष्ठके बड़े भाई विजय (हलधर) ने दुष्ट हयग्रीवके युद्धको शरारत भरा तथा अन्यायपूर्ण समझकर उस परिस्थितिमें साम नीतिको सर्वथा अनुपयोगी समझा तथा कहा कि स्वभावसे ही अहितकारी तथा शत्रुकर्मोंमें लगा हुआ व्यक्ति प्रेम अथवा सामनीतिके प्रदर्शनसे शान्त नहीं हो सकता (४।१७।१)' और उसने ईंटका जवाब पत्थरसे देनेवाली कहावतको चरितार्थ करनेपर बल दिया (४।१७)। अन्ततः विजयका तर्क मान लिया गया। उसके बाद गुणसागर नामक मन्त्रीके कथनपर युद्ध-क्षेत्रमें पहुँचनेके पूर्व युद्धके लिए आवश्यक विद्याओंकी सिद्धि, साधन-सामग्री तथा पूर्वाभ्यासपर बल देने सम्बन्धी उसकी सलाहको मान लिया गया। (४।१८-१९) और उसके बाद युद्ध क्षेत्रकी ओर कूच करनेकी तैयारी की गयी (४।२०)।

सबसे आगे ध्वजा-पताकाओंको फहराता हुआ मेघ-घटाओंके समान (४।२१) हाथियों का दल चला, फिर वेगमें लता-प्रतानोंमें गुल्म-लताओंको लाँघ जानेवाले (४।२१) चपल घोड़ोंका दल। उसके पीछे आयुधोंसे युक्त रथोंका दल तथा इनके साथ चक्रवर्ती त्रिपृष्ठ तथा उसके आगे-पीछे श्वेत छत्रोंको लगाकर तथा दायें हाथोंमें तलवार लेकर अन्य राजे-महाराजे (४।२०)। त्रिपृष्ठ की इस सेनाके चलनेसे इतनी धूलि उड़ी कि उसीकी ओरसे लड़नेके लिए नभ-मार्गसे चलती हुई विद्याधर-सेना धूलिसे भर गयी (४।२१)। पृथ्वी-मार्ग एवं आकाश-मार्गसे चलती हुई दोनों (मनुष्य एवं विद्याधर) सेनाएँ एक-दूसरेको देखती हुई प्रसन्न-मुख होकर आगे बढ़ रही थीं। त्रिपृष्ठ एवं विजयके आगे-आगे राजा प्रजापति चल रहे थे। वे ऐसे प्रतीत होते थे मानो नय एवं विक्रमके आगे प्रशम ही चल रहा हो (४।२१)।

त्रिपृष्ठ एवं विजयके पीछे-पीछे एक करहा (ऊँट)-दल चल रहा था और उसके पीछे-पीछे कहारो द्वारा ढोयी जाती हुई शिविकाओमें बैठी हुई नरनाथोकी विलासिनियाँ तथा सैन्य-समुदायके खाने-पीनेकी सामग्री—चरुआ, कलश, कड़ाही आदि लेकर चलनेवाला दल (४।२१)।

रथावर्त शैलपर पहुँचते ही मण्डप खडे कर दिये गये। वणिक्‌जनोने विविध आवश्यक वस्तुओका बाजार फैला दिया। सेवकोने हाथियोका सामान उतार डाला। फिर उन्हे जलमें डुवकियाँ लगवाकर तथा घोडोको धूलिमें लिटवाकर और शीतल जल पिलवाकर बाँध दिया। ऊँटोको जल पिलाकर स्नान कराया गया। काण्ड-पट (Partition) लगाकर महिलाओके निवासोकी व्यवस्था कर दी गयी। बैलोको जंगलमे चरने छोड़ दिया गया और कोई घास और जल, तो कोई काष्ठ तथा तेल लाने चल दिया (४।२४)।

उधर हयग्रीवको जब पता चला कि त्रिपृष्ठ पूरी तैयारीके साथ उससे लोहा लेने आ रहा है, तो वह तत्काल ही सन्धि-प्रस्ताव लेकर अपना दूत उसके पास भेजता है। वह त्रिपृष्ठको हयग्रीवके पराक्रमोका परिचय देकर तथा स्वयंप्रभाको लौटाकर हयग्रीवसे सन्धि कर लेनेकी सलाह देता है (५।१-२, ५)। किन्तु विजय उस दूतको डाँट-फटकार कर वापस भगा देता है।

विश्रामके बाद त्रिपृष्ठ सदल-बल युद्धस्थलीकी ओर चला। नागरिकोंकी ओरसे उसका बड़ा स्वागत किया गया। उसे स्थान-स्थानपर गदा, मुसल, धनुप एवं कौस्तुभ-मणि (रात्रिमे प्रकाश करने हेतु) आदि हथियार भेंट-स्वरूप दिये गये।

युद्ध-क्षेत्रमें दोनो सेनाओंमें भयानक युद्ध हुआ। भटसे भट भिड़ गये, घोड़ोसे घोडे जा टकराये, हाथी हाथियोसे जुट गये, रथसे रथ लग गये एवं धनुपकी टंकारोसे गुह-कन्दराएँ भर उठी (५।१०)। किन्तु त्रिपृष्ठकी सेना पर-पक्षके दुर्गति-प्राप्त सैनिकोपर केवल दया ही नही करती थी, अपितु उन्हें मित्रवत् समझकर छोड़ भी देती थी।

अश्वग्रीव (हयग्रीव) का मन्त्री हरिविश्व शर-सन्धानमे इस तरह चमत्कार दिखाता रहा कि उसके शत्रुजन भी दांतो तले अँगुली दवा लेते थे। उसके बाणोने त्रिपृष्ठ-जैसे योद्धाको भी घेर लिया (५।१६)। किन्तु शीघ्र ही भीम अपने अर्ध मृगाक बाणसे मान भंग कर देता है (४।१७)। अर्ककीर्तिने अपने शैलवर्त नामक एक अस्त्रसे प्रतिपक्षी खेचरोके मस्तकोको कुचल डाला (५।१८)। अन्तमें त्रिपृष्ठने अपने चक्रसे रथांग विद्यामें पारंगत (४।९।१२) हयग्रीवका सिर फोड़ दिया और इसी समय युद्ध समाप्त हो गया (५।२३)।

कविने अन्य युद्धसम्बन्धी विवरणोंमें विविध प्रकारके कवचों एवं शिरस्त्राण (५।१६।८), शुभ शकुन (५।२०।१०) आदिका भी अच्छा वर्णन किया है। कवच (५।७) तीन प्रकारके बतलाये हैं। गुडसारी कवच (हाथियोके लिए), पक्ख कवच (घोड़ोके लिए,) एवं सन्नाह कवच (मनुष्योके लिए)। धनुप-बाण साधनेकी विधिका वर्णन करते हुए कविने विविध प्रसंगोमे बताया है कि—

१. धनुष बायें हाथ में लिया जाता है।

२ डोरीको कान तक खीचा जाता है।

३. बाणको नासाग्रके पाससे निशाना बनाकर छोड़ा जाता है।

४. मध्य अँगुलीसे धनुष-डोरीको खीचकर छोड़ा जाता है।

कविने त्रिपृष्ठ एवं हयग्रीवके युद्धका वर्णन वर्गीकृत पद्धतिसे किया है। उसने सबसे पहले हस्तियुद्ध तथा बादमें अश्वयुद्धका वर्णन किया है।

इस वर्णनमें कविने यद्यपि अपनी वर्णन-कुशलताका दिग्दर्शन किया है, किन्तु अपने पूर्ववर्ती महाकवि 'असग' से प्रेरणा लेकर भी वह उसकी समानता नही कर सका है। [तुलनाके लिए देखिए—असग कृत वर्धमानचरित्रका ९।२६—२७ एवं 'वड्ढमाणकाव्य' का ५।११।१३—१४]

१९. शस्त्रास्त्र, युद्ध-विद्याएँ और सिद्धियाँ

११वी-१२वी सदीमें जिस प्रकारके शस्त्रास्त्र प्रमुख रूपसे युद्धोमें प्रयुक्त होते थे 'वड्ढमाणचरिउ' से उनकी कुछ सूचनाएँ प्राप्त होती है। उसमें उपलब्ध युद्ध-सामग्रीको निम्न वर्गोमें विभक्त किया जा सकता है—

(१) चुभनेवाले अस्त्र-शस्त्र—जैसे—छुरी (५।१४।७), कृपाण (५।१३।४), सुरपा (१०।११। ९), कुन्त (५।१४।५), त्रिशूल (१०।२५।१०)।

(२) काटनेवाले अस्त्र-शस्त्र—करवाल (५।७।५, ५।१४।४, १०।२६।१३-१४), खड्ग (५।९। १५), चक्र (५।१२।९), धारावली चक्र (५।२३।२), सहस्सार चक्र (५।६।१०), चित्तलिय (४।५।८)।

(३) चूर-चूर कर डालनेवाले अस्त्र-शस्त्र—मुसल (५।७।९, ५।९।१५-१६), (६।४।४), मुद्गर (५।१५।३), गदा (५।९।१५-१६, ५।२०।१०) एवं लागल (५।९।१५-१६, ५।२०।१०)।

(४) दूरसे फेंककर शत्रुका वध करनेवाले अस्त्र—अमोघशक्ति (५।१।४१) एवं विविध वाण—यथा—अर्धमृगाकवाण (५।१७।१७), नागवाण (५।२२।६), गरुडवाण (५।२२।७), वज्रवाण ५।२१। १४, ५।२२।९) अग्निवाण (५।२२।१०), जलवाण (५।२२।१२), शक्तिवाण (५।२२।१३), पाञ्चजन्य वाण (५।९।१५) एवं नाराच अर्धचन्द्रवाण (९।१९।११)।

कविने इन शस्त्रास्त्रोके अतिरिक्त कई प्रकारकी दैवी-विद्याओ एवं सिद्धियोकी भी चर्चा की है। प्रतीत होता है कि अपनी विजयकी प्राप्ति हेतु पूर्व-मध्यकालमें मन्त्रो, तन्त्रोका भी सहारा लिया जाता था। कविने युद्ध-प्रसंगोमें अवलोकिनी देवी, जो कि शत्रु-सेनाका रहस्य जाननेके लिए भेजी जाती थी, उसका उल्लेख किया है (५।९।६)।

शक्तियोंमें प्रमुख रूपसे उसने अमोघ मुख-शक्ति (५।९।१३; ५।९।१५), दन्तोज्ज्वल-शक्ति (५।१४।१) एवं प्रज्वलित-शक्ति (५।२२।१४) का उल्लेख किया है।

विद्याओंमें उसने अहित निरोधिणी विद्या (४।१८।१२), हरिवाहिणी विद्या (४।१९।३) तथा वेगवती (४।१९।३) नामकी विद्याओके उल्लेख किये है और लिखा है कि त्रिपृष्ठको ५०० प्रकारकी विद्याएँ सिद्ध थी (४।१९।३)।

इस प्रकार सिद्धियोंमें उसने विजया और प्रभंकरीके उल्लेख किये है (४।१९।१)।

२०. दर्शन और सम्प्रदाय

संस्कृतिके पोपक-तत्त्वोमे दर्शन अपना प्रधान स्थान रखता है। उसमें चेतन-तत्त्वके निरूपण तथा विश्लेपण, अध्यात्म-जागरण और आत्म-शोधनकी प्रक्रियाका निदर्शन रहता है। विवुध श्रीधरने इसीलिए जैन-दर्शनके प्रमुख तत्त्व 'जीव'का विस्तृत विश्लेपण तो किया ही, साथ ही उसने समकालीन प्रमुखता-प्राप्त अन्य दर्शनो व सम्प्रदायोकी भी चर्चाएँ की है। इनमे साख्य, नारायण, भागवत तथा आजीवक-दर्शन तथा सम्प्रदाय उल्लेखनीय है।

श्रमण-परम्परामें ऐसी मान्यता है कि सांख्य-दर्शनकी स्थापना 'मारीचि' ने की थी। यह मारीचि आदि-तीर्थंकर ऋषभदेवका पोता (भरतपुत्र) था। जव उसे यह ज्ञात हुआ कि वह अगले भवोमें अन्तिम तीर्थंकर महावीरके रूपमें जन्म धारण करेगा, तव वह अहंकारसे भर उठा। पूर्वमें तो उसने कठोर जैन तपस्या की, किन्तु वादमे वह तपसे भ्रष्ट हो गया और उसी स्थितिमें उसने सांख्य-मतकी स्थापना और प्रचार किया (२।१५।१३-१४)। जैन इतिहासके अनुसार मारीचिका समय लाखो वर्ष पूर्व है। कविने मारीचिके विपयमें कहा है कि 'वह धर्मच्युत, मिथ्यात्वी एवं कुनयी हो गया (२।१५।८–१०)'। इसके वाद उसने चर्चा की है कि उसी मारीचिने कपिल आदिको अपना शिष्य वनाया (२।१५।१०)। कविके कुनयवादी एवं मिथ्यात्वी कहनेका तात्पर्य यही है कि वह जैनधर्मसे विमुख हो गया।

श्वेताश्वतर-उपनिषद् तथा भगवद्-गीतामें कपिलका नाम आदरपूर्वक लिया गया है। डॉ. राधाकृष्णन्ने 'कपिल' को भगवान् बुद्धसे लगभग एक शताब्दी पूर्वका बतलाया है। उक्त तथ्योंसे कपिलकी प्राचीनता सिद्ध होती है। जैन-सम्प्रदाय यदि कपिलके गुरु मारीचिको लाखों वर्ष पूर्वका मानता है, तो उसका पक्ष भी गम्भीरतापूर्वक विचारणीय अवश्य है।

कवि श्रीधरने सांख्योंके विषयमें दो बातोंके उल्लेख किये। प्रथम तो यह कि वे २५ तत्त्व मानते थे (२।१६।१), और द्वितीय यह कि सांख्यमतानुयायी संन्यासी 'परिव्राजक' कहलाते थे (२।१६।२)।

कविने अन्य मतोंमें नारायण एवं भागवत-सम्प्रदायोंकी चर्चा की है और उनमें क्रमशः मन्दिरपुरके अग्निमित्र ब्राह्मण एवं शक्तिवन्तपुरके संलंकायन नामक विप्रोंके विषयमें कहा है कि वे घरोंमें रहते हुए भी त्रिदण्ड एवं चूला धारण करते थे। वे कुसुम, पत्र एवं कुशसे पूजा करते थे तथा गंगाजलको सर्वाधिक पवित्र मानते थे (२।९)। ये लोग यज्ञ-यागादिमें बहुत विश्वास रखते थे। इन उल्लेखोंसे उनके आचार-विचारपर प्रकाश पड़ता है। इनके साधु भी 'परिव्राजक' कहलाते थे (२।१८।५)।

कविने आजीवक-सम्प्रदायका नामोल्लेख मात्र किया है। यह सम्प्रदाय भी अत्यधिक प्राचीन है। 'उवासगदशाओ'में श्रमण महावीर एवं मक्खलिपुत्र 'गोशाल' का भाग्य एवं पुरुषार्थ सम्बन्धी शास्त्रार्थ सुप्रसिद्ध है। उसके अनुसार मक्खलिपुत्र गोशाल भाग्यवादी था एवं श्रमण महावीर पुरुषार्थवादी। उन दोनोके शास्त्रार्थमें मक्खलिपुत्र-गोशाल बुरी तरहसे पराजित हो गया था[1]।

आजीवक-सम्प्रदायके विषयमें विद्वानोमे विभिन्न मान्यताएँ है। कुछ विद्वान् उसे बुद्ध एवं महावीरके पूर्वकालका मानते है (पार्श्वनाथका चातुर्याम धर्म, पृ. १९, २३)। डॉ. हार्नले-जैसे शोध-प्रज्ञ गोशालकको उसका संस्थापक मानते हैं[2]। और मुनि श्री कल्याणविजयजी-जैसे अध्येता विद्वान् उसे उसका समर्थ प्रचारक मानते है[3]। कल्याणविजयजीके मतका आधार अर्धमागधी-जैनागम साहित्य तथा रामायण एवं महाभारतके वे प्रसंग प्रतीत होते है, जिनमें दैववादका वर्णन आता है। भगवती-सूत्रमें आजीवक-सम्प्रदायकी प्राचीनताके विषयमें एक सन्दर्भ प्राप्त होता है, जिसके अनुसार गोशालकने आजीवक-सम्प्रदायके पूर्वाचार्योका नामोल्लेख कर उसके प्राचीन इतिहासपर स्वयं प्रकाश डाला है। वह भगवान् महावीरसे कहता है कि दिव्य-संयूथ तथा सन्निगर्भके भवक्रमसे मैं सातवें-भवमें उदायी कुण्ड्यायन हुआ था। बाल्यावस्थामें ही मैंने धर्माराधन किया और अन्तमें उस शरीरको छोडकर क्रमशः ऐणेयक, मल्लराम, माल्यमण्डित, रोह, भारद्वाज और गौतमपुत्र-अर्जुन इन छह मनुष्योके शरीरोमें प्रवेश किया और क्रमशः २२, २१, २०, १९, १८ एवं १७ वर्षो तक उनमें बना रहा। अन्तमें मैंने गौतमपुत्र-अर्जुनका शरीर छोड़कर गोशालक (मक्खलिपुत्र) के शरीरमें यह सातवाँ शरीरान्तर प्रवेश किया है, और उसमें कुल १६ वर्ष रहनेके उपरान्त मैं निर्वाण प्राप्त करूँगा[4]।" उक्त तथ्योसे ज्ञात होता है कि आजीविक-सम्प्रदाय यदि बहुत अधिक प्राचीन नही, तो २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथके समयमें एक विकसित सम्प्रदायके रूपमे अवश्य रहा होगा।

आजीवक-सम्प्रदाय आगे चलकर जिस तीव्र गतिसे विस्तृत एवं लोकप्रिय हुआ, उसी तीव्र गतिसे उसका ह्रास भी हुआ। ७वी शताब्दीमें उसके परिव्राजकोंके नाम पण्डरभिक्खु, पाण्डुरंग, पण्डरंग अथवा स-रजस्क-भिक्खुके रूपमे मिलते है। १०वी-११वी शताब्दीमें उसकी वेश-भूषा एवं आचार-विचारमें इतना परिवर्तन हो गया कि शीलंकाचार्य और भट्टोत्पलने उन्हे एकदण्डी तथा शैव एवं नारायण-भक्त तक कह

---

१. दे. हॉर्नले द्वारा सम्पादित उवासगदसाओ, ७वाँ अध्ययन, (कलकत्ता १८८५–८८ ई)।
२, Encyclopeadia of Religion and Ethics, page 1.0
३. श्रमण भगवान् महावीर (मुनि श्री कल्याणविजयजी कृत), पृ. २६४।
४, आगम एव त्रिपिटक (मुनि श्री नगराजजी), कलकत्ता, १९६९, पृ २६।

दिया[1] और १२वी शताब्दीके आचार्य देवेन्द्रसूरिके समय तक वे जटाजूट-धारी, भभूत-धारी तथा पिच्छिका-धारी वनकर छल-कपटपूर्ण आचरण करते हुए ग्रामों, गोकुलो व नगरोमें वर्षावास करने लगे थे।[2]

२१. सिद्धान्त और आचार

'वड्ढमाणचरिउ' मूलतः एक धर्म-ग्रन्थ है, अतः इसमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्रका सभी दृष्टियोसे सुन्दर एवं विस्तृत विवेचन किया गया है। कविने इसके भेद-प्रभेदोंके रूपमें उनका प्रसंगानुकूल वर्णन किया है। धर्मोपदेशका प्रारम्भ वह आत्मवादसे करता है। राजकुमार नन्दन जव वन-विहारके लिए निकलता है, तव वहाँ उसकी भेंट ऐल गोत्रीय मुनिराज श्रुतसागरसे होती है। नन्दन भवसागरसे भयभीत रहता है, अतः वह सर्वप्रथम यही प्रश्न करता है कि संसाररूपी सर्पके विपको दूर करनेमें मन्त्रके समान हे सन्त, एलापत्य गोत्रके हे आदि-परमेश्वर, मुझे यह वतलाइए कि जीव निर्वाणस्थलमें किस प्रकार जाता है? (१।९।८-११)। मुनिराज राजकुमारके प्रश्नको सुनकर सीधी और सरल भाषामें समझाते हुए कहते हैं—"जव यह जीव 'यह मेरा है', 'यह मेरा है' इस प्रकार कहता है, तव वह जन्म, जरा और मृत्युसे युक्त संसारको प्राप्त करता है, तथा जव उस ममकारसे विमुक्त होकर आत्मभावको प्राप्त होता है, तव वह मोक्षको प्राप्त कर लेता है" (१।१०।२)।

कवि भवसागरसे मुक्ति पानेका मूल 'अनित्यानुप्रेक्षा'को मानता है। अतः राजा नन्दिवर्धन जव भव-भोगोको भोगकर एकान्तमें बैठता है, तव उसे संसारके प्रति अनित्यताका भान होता है। वह सोचने लगता है कि शरीर, सम्पदा, रूप और आयु इन सभीका उसी प्रकार नाश हो जाता है, जिस प्रकार सन्ध्याकी लालिमा (१।१४।२-३) और इस प्रकार विचार करता हुआ वह पिहिताश्रव मुनिके पास दीक्षा ले लेता है (१।१७।१४)।

कविने जीवको कर्मोका कर्ता और भोक्ता मानकर रागको संसारका कारण माना है। जवतक राग समाप्त नही होता, तवतक सम्यक्त्वका उदय सम्भव नही (२।९)।

मुक्ति प्राप्त करनेके लिए क्रोध, मान, माया और लोभका त्याग (६।१६) अत्यन्त आवश्यक है। लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए अन्तर्वाह्य परिग्रहोंका त्याग (६।१५), तीन शल्य, तीन मद एवं दोपोका सर्वथा त्याग अत्यन्त आवश्यक वतलाया गया है (६।१५)।

कविने दो प्रकारके धर्मोकी चर्चा की है। सागार-धर्म एवं अनगार-धर्म। इन दोनो धर्मोंका मूल आधार भी कविने सम्यक्त्वको ही माना है और वतलाया है कि—"सम्यग्दर्शन संसार-समुद्रसे तरनेके लिए नौकाके समान है" (७।६)।

कर्म आठ प्रकारके होते हैं। कविने उनका मूल कारण मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कपाय एवं योगको माना है। मनकी वृत्तिको एकाग्र एवं शान्त वनानेके लिए इनको वृत्तियोसे दूर रहना अत्यन्त आवश्यक है (७।६)।

कविने वारह प्रकारके व्रतोका सुन्दर निरूपण किया है। उसने मुनिराज नन्दनके द्वादशविध तपोंकी चर्चा करते हुए वाह्य-तपोंकी चर्चा इस प्रकार की है कि—"उस मुनिराजने निर्दोष महामतिरूपी भुजाओके वलसे श्रुतरूपी रत्नाकरको शीघ्र ही पार कर लिया तथा जिस समय तीव्र तपरूपी तपनका प्रारम्भ किया, उस समय मनसे, रागद्वेप रूपी दोनो दोपोको निकाल वाहर कर अनशन-विधान द्वारा अध्ययन एवं ध्यानको सुखपूर्वक संसाधित किया। निद्राको समाप्त करने हेतु विधिपूर्वक सचित्त वर्जित परिमित-आहार ग्रहण

१. श्रमण भगवान् महावीर, पृ. २८१।
२. अगडदत्तकहा, पद्य २०८-२०९।

किया। खलजनोंके निन्दार्थक वचनोंकी उपेक्षा करके क्षुधा एवं तृषाके विलासको दूर कर निर्मलतर हृदयसे भव्यजनोंके घरोंमें गमन करनेकी वृत्तिमें संख्या निश्चित कर वृत्ति-परिसंख्यान तप प्रारम्भ किया। इन्द्रियोंको जीतनेवाले तथा संक्षोभका हरण करनेवाले रसोंका त्याग किया। असमाधि-वृत्तिको मिटाने के लिए निर्जन्तुक भूमिमें शयनासन किया। मनको वशमें कर शोकरहित होकर परिग्रहका त्याग कर त्रिकालोंमें कायोत्सर्ग मुद्रा धारण की (८।१४)।

इसी प्रकार कविने षट्द्रव्यों एवं सात तत्त्वों आदिका भी विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। एक प्रकार-से यह ग्रन्थ इन विषयोंका ज्ञान-कोश भी कहा जा सकता है क्योंकि दर्शन और आचारकी इसमें प्रचुर सामग्री भरी पड़ी है (१०।३-४०)। यह अवश्य है कि कविके इन वर्णनोंमें कोई विशेष नवीनता नहीं है। इन विषय-वर्णनोंका मूल आधार तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार, गोमट्टसार (कर्मकाण्ड और जीवकाण्ड) तथा तत्त्वार्थ-राजवार्तिक आदि हैं। उक्त सभी विषयोंका विश्लेषण वहाँ स्पष्ट रूपसे प्राप्य है ही, अतः उनका निरूपण यहाँपर पिष्टपेषित ही होगा।

२२. भूगोल

श्रमण-परम्परामें भूगोलका अर्थ बड़ा विशाल है। श्रमण-कवियोंके दृष्टिकोणसे इसमे मध्यलोकके साथ-साथ पाताल और ऊर्ध्व लोक भी सम्मिलित हैं। पाताल-लोकमें ७ नरक हैं तथा ऊर्ध्व-लोकमे स्वर्ग एवं मोक्ष-स्थल स्थित हैं, जिनका वर्णन विस्तार-पूर्वक किया गया है (१०।१३-३८)।

कविने मध्य-लोकका भी वर्णन विस्तार-पूर्वक किया है। उसे निम्न चार भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—

(१) प्राकृतिक भूगोल, (२) मानवीय भूगोल, (३) आर्थिक भूगोल और (४) राजनैतिक भूगोल।

(१) प्राकृतिक भूगोल

प्राकृतिक भूगोलमें सृष्टिकी वे वस्तुएँ समाहित रहती हैं, जिनके निर्माणमें मनुष्यके पुरुषार्थका किसी भी प्रकारका सम्बन्ध न हो। इस प्रकारके भूगोलके अन्तर्गत पहाड़, समुद्र, जंगल, द्वीप, नदी आदि सभी आते हैं। इन पहाड़ोंमें-से कविने सुमेरु पर्वत (१।३।५), उदयाचल (१।५।४), हिमवन्त (२।७।४), वराह-गिरि (२।७।६), कैलास (२।१४।१४), विजयार्द्ध (३।१८।५), कोटिशिला (३।२८।१), विजयाचल (३।२९।१०), रथावर्त (४।२३।११), शिखरी (१०।१४।२), महाहिमवन्त (१०।१४।४), रुक्मी (१०।१४।५), निषध (१०।१४।९) एवं नील (१०।१४।१०) के उल्लेख किये हैं, किन्तु इनमें-से प्रायः सभी पर्वत पौराणिक हैं। हाँ, कोटिशिला एवं कैलास पर्वतकी स्थितिका पता चल गया है। कोटिशिला वर्तमान गया जिलेमें कोल्हुआ पहाड़के नामसे प्रसिद्ध है[१] और कैलास पर्वतकी स्थिति मानसरोवर झीलके आसपास अवस्थित मानी गयी है।

नदियोंमें भी कविने गंगा (१०।१६।१), सिन्धु (१०।१६।१), रोहित (१०।१६।१), रोहितास्या (१०।१६।२), हरि (१०।१६।२), हरिकान्ता (१०।१६।२), सीता (१०।१६।२), सीतोदा (१०।१६।३), नारी (१०।१६।३), नरकान्ता (१०।१६।३), कनककूला (१०।१६।३), रूप्यकूला (१०।१६।४), रक्ता (१०।१६।४) एवं रक्तोदा (१०।१६।४) के उल्लेख किये हैं। इनमें-से गंगा और सिन्धु नदियाँ परिचित हैं। कुछ शोध-विद्वान् प्रस्तुत गंगा और सिन्धुको वर्तमान गंगा और सिन्धुसे भिन्न मानते हैं और कुछ अभिन्न। बाकी की सब नदियाँ पौराणिक हैं।

पर्वत एवं नदियोंके समान वनोंके उल्लेख भी पौराणिक अथवा परम्परा-भुक्त हैं। अतः प्रमदवन

---

१. दे. श्रमण-साहित्यमें वर्णित बिहारकी कुछ जैनतीर्थ भूमियाँ, [लेखक डॉ. राजाराम जैन], पृ १-८।

(७।१३।३), नागवन (९।२०।१), इक्षुवन (१।३।१४), नन्दनवन (१।१७), कमलवन (५।१७।२५) एवं तपोवन (१।१६।२) के उल्लेखोंमें इक्षुवन एवं तपोवनको छोड़कर बाकीके वनोंको पौराणिक मानना चाहिए। कविने राजभवनोके सौन्दर्य-वर्णनमें प्रमदवनके उल्लेख किये हैं। ये प्रमदवन नृपतियों, सामन्तों तथा श्रीमन्तोंके हर्म्योंकी वे क्रीडा-वाटिकाएँ थी, जिनमें वे अपनी प्रेमिकाओं और पत्नियोंके साथ विचरण किया करते थे।

प्राचीन-साहित्यमें प्रमदवन और नन्दनवनके उल्लेख अनेक स्थलोंपर उपलब्ध होते हैं। महाभारतके वन-पर्व (५३।२५) के अनुसार राजमहलोंमें रानियोंके लिए बने हुए उपवनोंको प्रमदवन अथवा प्रमदावन कहा गया है। सुप्रसिद्ध नाटककार भासने अपने नाटक 'स्वप्नवासवदत्तम्' में बताया है कि जब राजा उदयन-का पुनर्विवाह पद्मावतीके साथ सम्पन्न होने लगा, तब वासवदत्ता अपने मनोविनोदके लिए प्रमदवनमें चली गयी। स्पष्ट है कि यह प्रमदवन राजप्रासादोके भीतरकी वह पुष्पवाटिका थी, जिसमें प्रेमी-प्रेमिकाओंकी केलि-क्रीडाएँ हुआ करती थी।

विबुध श्रीधर कवि होनेके साथ सौन्दर्य-प्रेमी भी थे। उन्होंने नगर, प्रासाद तथा उपवनोंके वर्णनोंमें जिन वृक्षो, लताओ व पुष्पोके उल्लेख किये हैं, वे निम्न प्रकार हैं—

वृक्ष

'वड्ढमाणचरिउ'में कविने तीन प्रकारके वृक्षोके उल्लेख किये हैं—(१) फलवृक्ष, (२) शोभावृक्ष और (३) पुष्पवृक्ष।

फलवृक्ष

पिण्डी (२।३।१२), कपित्थ (१०।३०।३), पूगद्रुम (३।३।१०), आम्रवृक्ष (४।६।३), कल्पवृक्ष (४।५।१०), वटवृक्ष (९।१७।४), कोरक (२।३।११) एवं शालि (३।३।९) नामक वृक्षोके नाम मिलते हैं।

शोभावृक्ष

अशोक-वृक्ष (१०।१।११, १०।१६।१२), शाल-वृक्ष (९।२१।११) एवं तमाल-वृक्ष (१०।२३।८)।

पुष्पवृक्ष

शैलीन्ध्र (७।३।३), जपाकुसुम (७।१४), शतदल (८।३), कंज (२।३।११), तिलपुष्प (१०।११।८) एवं मन्दार-पुष्प (२।२१।१) के उल्लेख मिलते हैं।

इनके अतिरिक्त कविने लताओ एवं अन्य वनस्पतियोके भी उल्लेख यत्र-तत्र किये हैं। इनमें-से नागरवेल (३।३।१०), महालता (२।३।३), गुल्मलता (८।६।१), लतावल्लरि (२।३।१४) एवं कुश (२।१९।६) आदिके उल्लेख मिलते हैं।

इन उल्लेखोको देखकर ऐसा विदित होता है कि कवि वनस्पति-जगत्‌से पर्याप्त रूपमें परिचित था।

पशु-पक्षी एवं जीव-जन्तु

कविने दो प्रकारके जानवरोके उल्लेख किये हैं—मेरुदण्डवाले (Mammalia) एवं उसके विपरीत (Reptilia)। मेरुदण्डवाले जीवोमें स्तनपायी एवं सरीसृप (रेंगकर चलनेवाले) जीव आते हैं। स्तनपायी जीवोमे मनुष्यो के अतिरिक्त सिंह, व्याघ्र, गाय, लंगूर, सॉड एवं भैंसे आदि हैं।

इनमें-से कविने हाथी, घोडा, ऊँट (४।२४।१०), गाय (१।१३।२), भैंसे (५।१३।७), मेष (९।११।११), हरि (३।२५।९), ऋक्ष (१०।२४।११), हरिण (१०।१९।६), श्वान (९।११।१०), नवकन्धरु (= सॉड ४।१०।११), चीता (४।५।८), जम्बु एवं शृंगाल (५।५।२), सरह (१०।८।१) के उल्लेख किये हैं।

कविने हाथी एवं घोड़ोंके भेद-प्रकार भी गिनाये हैं, जो कई प्रकारसे महत्त्वपूर्ण हैं। हाथियोमें कविने मातंग (५।१०।१२, मदोन्मत्त एवं सवल हाथी), करोश (४।२२।१), द्विरद (४।२३।५, ५।१२।१, छह वर्षसे अधिक आयुवाला हाथी), लाल हाथी (५।८।३), श्वेतांग मातंग (५।७।१०, ५।९।४), मदगल (५।२३।९, ५।१८।७), वन्य-गज (५।२३।६), करीन्द्र (५।१७।१५ श्रेष्ठ गजोका अधिपति), ऐरावत-हाथी (५।१८।८), सुरकरि (५।१९।५), दिग्गज (४।१।५), करि (२।५।१८, ५।१३।१), गज (१।१५।५, ५।१०।१०, साधारण हाथी), गजेन्द्र (१०।१३।१, उत्तम तथा उत्तुग गज), दन्ती (५।१४।१४, आठ सालसे अधिक आयुवाला हाथी) के उल्लेख किये हैं।

घोड़ोके प्रकारोंमें कविने तुरंग (वेगगामी तुर्की घोड़े ४।२४।८, ८।४।४), वाजि (युवावस्थाको प्राप्त उत्तम श्रेणीके घोड़े ३।११।११) एवं हय (४।२४।११) नामक घोड़ोके उल्लेख किये हैं। जिस रथमे घोडे जोते जाते थे, कविने उन रथोको तुरंगमरथ (५।७) कहा है। घोड़ोकी सज्जाके उपकरणोमें-से कविने परियाण (४।२४।७), खलोन (४।२४।७) एवं पक्खर (घोडोके कवच ५।७।१२) के उल्लेख किये हैं। मार्गमें चलते-चलते जब ये घोड़े थक जाते थे, तब अश्वारोही अथवा अश्वसेवक उन्हे जमीनमें लिटवाता था (४।२४।८), इससे उनकी थकावट दूर हो जाती थी।

पक्षियों में कुक्कुट (५।१३।७), परपुट्ठ (कोयल, ४।१३।११), कायारि (उल्लू, ४।१०।४), हंस (१।८।९), हंसिनी (१।८।९), कीर (१।८।१०) एवं मयूर (१।४।१२) उल्लेखनीय हैं।

अन्य जीव-जन्तुओमें पन्नग (१।५।१), कृष्णोरग (१।४।१२), नाग (१।८।४), महोरग (१०।२१।१०), सरीसृप (१०।२१।९), विसारी (मछली, ९।७।५), अक्ष (१०।८।१), कुक्षि (१०।८।१), कृमि (१०।८।१), शुक्ति (१०।८।१), शंख (१०।८।१), गोभिन (१०।८।१), पिपीलिका (१०।८।२), दंशमशक (१०।८।३), मक्खी (१०।८।३), मकर (१०।८।१२), ओघर (१०।८।१२), सुंसुमार (१०।८।१२), झष (१०।८।१२), शिलीमुख (१०।१।१०) एवं कच्छप प्रमुख हैं।

(२) मानवीय भूगोल

मानवीय भूगोलमे मानव-जातिके निवासस्थल तथा उसकी आजीविकाके साधन आदिकी चर्चा रहती है। मानवके जीवित रहनेके लिए आवश्यक-सामग्री, यथा—योग्य जलवायु, जलीय प्रदेश, उपजाऊ भूमि, चरागाह एवं घरेलू उद्योग-धन्धोके योग्य कच्चे माल आदिकी अधिकता जहाँ होती है, उन स्थानोंको मानव अपना निवास-स्थल चुनता है। यही कारण है कि प्रस्तुत ग्रन्थमें वर्णित देश अथवा नगर प्रायः ही नदियोके किनारे-पर स्थित बताये गये हैं। उनकी उपजाऊ भूमि, विविध फसलो तथा वन-सम्पदा एव उद्योग-धन्धो आदिका वर्णन किया गया है। कर्मभूमियोके माध्यमसे कविने मानव-समाजके दो भाग किये है—आर्य और म्लेच्छ। म्लेच्छोके विषयमे उसने लिखा है कि वे निर्वस्त्र तथा दीन रहते हैं। वे कर्कश, वर्वर एवं गूँगे होते हैं। नाहल (वनचर), शवर तथा पुलिन्द जातिके म्लेच्छ, हरिणोके सीगों द्वारा खोदे गये कन्दोको खाते हैं (१०।१९।५-६)। इस माध्यमसे कविने पूर्व मध्यकालीन आदिम जातियोकी स्थितिपर अच्छा प्रकाश डाला है।

आर्योंके विषयमे कविने लिखा है कि वे ऋद्धिवन्त और ऋद्धिहीन इस तरह दो प्रकारके होते हैं। कविने ऋद्धिवन्त-परम्परामें तीर्थंकर, हलायुध, केशव, प्रतिकेशव एवं चक्रायुधको रखा है तथा ऋद्धिहीन आर्योंमें उन मनुष्योको रखा है, जिन्होने पशुओके वध-वन्धनको छोड दिया है तथा जो कृषि-कार्य करते हैं। (१०।१९।७-९)।

कविने इन मनुष्योंकी आयुकी चर्चा की है (१०।२०।१-७)।

(३) आर्थिक भूगोल

'वड्ढमाणचरिउ' एक तीर्थंकर चरित काव्य है, अतः आर्थिक भूगोलसे उसका कोई सीधा सम्बन्ध नही है, किन्तु महावीरके जन्म-जन्मान्तरोके माध्यमसे कविने आर्थिक स्थितिपर भी कुछ प्रकाश डाला है। काव्यमें देश, नगर एवं ग्रामोकी समृद्धिका वर्णन है। वहांके समृद्ध और लहलहाते खेत (९।१), गन्नोकी वाड़ियाँ (३।१), विविध प्रकारके यन्त्र (३।१), हाट-वाजार (३।२), राजाओ एवं नगरश्रेष्ठियोके वैभव-विलास, सिंचाईके साधनस्वरूप लवालव जलसे व्याप्त सरोवर, नदियाँ एवं वापिकाएँ (९।२), यान, वाहन तथा यातायातके लिए सुन्दर मार्ग (३।२), वन-सम्पदा आदि तत्कालीन आर्थिक स्थितिपर अच्छा प्रकाश डालते है। कविने सोने-चाँदी, तांवे तथा लाहेके वरतनो, तेल, घास व गुडके व्यापारकी भी चर्चा की है। व्यापारियोको वणिक् तथा सार्थवाहकी संज्ञाएँ प्राप्त थी।

(४) राजनैतिक भूगोल

राजनैतिक भूगोलके अन्तर्गत द्वीप, क्षेत्र, देश एवं जनपद, नगर, ग्राम तथा खेटकी चर्चा रहती है। कविने प्रस्तुत ग्रन्थमें उक्त सामग्रीका पर्याप्त उल्लेख किया है। द्वीपोंमें—जम्बूद्वीप (१०।१३।९), धातकी-खण्ड द्वीप (७।१।१), वारुणि द्वीप (१०।९।६), क्षीरवर द्वीप (१०।९।६), घृतमुख द्वीप (१०।९।६), भुजगवर द्वीप (१०।९।६), नन्दीश्वर द्वीप (१०।९।६), अरुणवर द्वीप (१०।९।६), कुण्डल द्वीप (१०।९।७), अरुणाभास द्वीप (१०।९।७), शंखद्वीप (१०।९।७) एवं रुचकवर द्वीप (१०।९।७) के उल्लेख मिलते हैं। ये सभी द्वीप पौराणिक हैं। कुछ शोध-प्रज्ञोने जम्बूद्वीपकी अवस्थिति एशिया अथवा एशिया-माइनरमें मानी है, किन्तु अभी तक सर्व-सम्मत शोध तथ्य सम्मुख नही आ पाये है। श्रमण-कवियोने जम्बूद्वीप-का प्रमाण १ लाख योजन माना है। इसी प्रकार अन्य द्वीपोका भी उन्होने सभी दृष्टिकोणोंसे विस्तृत वर्णन किया है।

क्षेत्रोंमें—कविने भरत (१।३।५), ऐरावत (१०।१३), विदेह (२।१०।१), पूर्वविदेह (८।१।१), हैमवत (१०।१४।३), हैरण्यवत (१०।१४।४), हरि (१०।१४।७) एवं रम्यक (१०।१४।७) नामक क्षेत्रोकी चर्चा की है। इनमें-से प्रायः सभी क्षेत्र पौराणिक है।

देश वर्णनोंमें—कविने पूर्वदेश (१।५।६), पुण्कलावती (२।१०।२), मगध (२।२२।६), सुरदेश (३।२१।२), कच्छ (३।३०।२,८।१।२), वत्सा (७।१।४), अवन्ति (७।९।४) एवं विदेह (९।१।३) नामक देशोंकी चर्चा की है।

नगरियोंमें—सितछत्रा (१।४।१), पुण्डरीकिणी (२।१०।४), विनीता (२।११।५), कोसला (२।१६।६), मन्दिरपुर (२।१८।८), शक्तिवन्तपुर (२।१९।५), राजगृह (२।२२।६), मथुरा (३।१७।२), अलकापुरी (३।१८।८,४।४।१४), पोदनपुर (३।२१।८), रथनूपुर (३।१९।१२), कनकपुर (७।१।१६), उज्जयिनी (७।९।१२), क्षेमापुरी (८।१।४), कुण्डपुर (९।१।१६) एवं कूलपुर (९।२०।१२) के उल्लेख मिलते है। शोध-प्रज्ञोने इनकी अवस्थितिपर कुछ प्रकाश डाला है किन्तु स्थानाभावके कारण, यहाँ तुलनात्मक पद्धतिसे प्रत्येक नगरकी स्थितिपर विचार कर पाना सम्भव नही है।

२३. कुछ ऐतिहासिक तथ्य

विबुध श्रीवर साहित्यकार होनेके साथ-साथ इतिहासवेत्ता भी प्रतीत होते है। उन्होने अपनी रचनाओमें कुछ ऐसे ऐतिहासिक तथ्य प्रस्तुत किये है, जो गम्भीर रूपसे विचारणीय है। उनमें-से कुछ तथ्य निम्न प्रकार हैं—

(१) इल गोत्र एवं मुनिराज श्रुतसागर।

(२) त्रिपृष्ठ एवं हयग्रीवके युद्ध-प्रसंगोमें मृतक योद्धाओकी वन्दीजनों (चारण-भाटों) द्वारा सूचियोका निर्माण।

(३) दिल्ली के प्राचीन नाम—"ढिल्ली" का उल्लेख।

(४) तोमरवंशी राजा अनंगपाल एवं हम्मीर वीरका उल्लेख।

(१) कवि श्रीधरने राजा नन्दनके मुखसे मुनिराज श्रुतसागरको सम्बोधित कराते हुए उन्हें इल-परमेश्वर कहलवाया है[१]। यह इल अथवा इल-गोत्र क्या था, और इस परम्परामे कौन-कौन-से महापुरुष हुए है, कविने इसकी कोई सूचना नही दी। किन्तु हमारा अनुमान है कि कविका संकेत उस वंश-परम्पराकी ओर है, जिसमे कलिग-सम्राट् खारवेल (ई. पू. प्रथम सदी) हुआ था। खारवेलने हाथीगुम्फा-शिलालेखमे अपनेको ऐर अथवा ऐल वंशका कहा है[२]। यह वंश शौर्य-वीर्य एवं पराक्रममें अद्वितीय माना जाता रहा है। राजस्थानकी परमार-वंशावलियोमें भी कलिग-वंशका उल्लेख मिलता है[३]। प्रतीत होता है कि परिस्थिति-विशेषके कारण आगे-पीछे कभी खारवेलका वंश पर्याप्त विस्तृत होता रहा तथा उसका ऐर अथवा ऐल गोत्र भी देश, काल एवं परिस्थितिवश परिवर्तित होता गया। गोइल्ल, चादिल्ल, गोहिल्य, गोविल, गोयल, गुहिलोत, भारिल्ल, कासिल, वासल, मित्तल, जिन्दल, तायल, बुन्देल, वाघेल, रुहेल, खेर आदि गोत्रों अथवा जातियोमें प्रयुक्त इल्ल, इल, यल, अल, एल तथा एर या ऐर उक्त इल अथवा एलके ही विविध रूपान्तर प्रतीत होते हैं। सम्भवतः यह गोत्र प्रारम्भमें व्यक्तिके नामके साथ संयुक्त करनेकी परम्परा रही होगी, जैसा कि खारवेल—[खार + व + एल] इस नामसे भी विदित होता है। जो कुछ भी हो, यह निश्चित है कि इल अथवा एल वंश पर्याप्त प्रतिष्ठित एवं प्रभावशाली रहा है। ११वी १२वी सदीमें भी वह पर्याप्त प्रसिद्धि-प्राप्त रहा होगा, इसीलिए कविने सम्भवतः उसी वंशके मुनिराज श्रुतसागरके 'इल' गोत्रका विशेष रूपसे उल्लेख किया है।

(२) विबुध श्रीधर उस प्रदेशका निवासी था, जो सदैव ही वीरोंकी भूमि बनी रही और उसके आसपास निरन्तर युद्ध चलते रहे। कोई असम्भव नही, यदि उसने अपनी आँखोसे कुछ युद्धोंको देखा भी हो, क्योंकि 'वड्ढमाणचरिउ' में त्रिपृष्ठ एवं हयग्रीवके बीच हुए युद्ध[४], उनमें प्रयुक्त विविध प्रकारके शस्त्रास्त्र[५], मन्त्रि-मण्डलके बीचमें [६]साम, [७]दाम, [८]दण्ड और [९]भेद-नीतियोके समर्थन एवं विरोधमें प्रस्तुत किये गये विभिन्न प्रकारके तर्क, [१०]रणनीति, संव्यूह-रचना[११] आदिसे यह स्पष्ट विदित होता है। 'वड्ढमाण-चरिउ'में कवि ने लिखा है कि—"चिरकाल तक रणकी धुरीको धारण करनेवाले मृतक हुए तेजस्वी नरनाथोंकी सूची तैयार करने हेतु वन्दीजनों (चारण-भाटो) ने उनका संक्षेपमे कुल एवं नाम पूछना प्रारम्भ कर दिया[१२]।"

---

१. वड्ढमाण १।६।१०।

२. नमो अरहंतान नमो सवसिधानं ऐरेन (संस्कृत-ऐलेन) महाराजेन माहामेघवाहनेन......
[दे. नागरी प्र. प. ८।३।१२]।

३. मुहणोत नैणसीकी ख्यात भाग-१. पृ. २३२।

४. वड्ढमाण.—५।१०-२३।

५. दे. इसी प्रस्तावनाका शस्त्रास्त्र-प्रकरण।

६. वड्ढमाण.—४।१३-१४, ४।१५।१-७।

७-८. वही—४।१५।८-१२; ४।१६-१७।

९. वड्ढमाण.—४।२-४ राजा प्रजापतिने विद्याधरोंमें फूट डालनेकेलिए ही विद्याधर राजा ज्वलनजटीकी पुत्री स्वयंप्रभाको अपनी पुत्रवधू बनाया।

१०. पाँचवीं सन्धि द्रष्टव्य।

११. वड्ढमाण.—५।१०, १६।

१२. वड्ढमाण.—५।११।१३-१४।

कवि की यह उक्ति उसकी मानसिक कल्पनाकी उपज नही है। उसने प्रचलित परम्पराको ध्यानमें रखकर ही उसका कथन किया है। वन्दीजनो अथवा चारण-भाटोंके कर्तव्योमें-से एक कर्तव्य यह भी था कि वे वीर पुरुषो (मृतक अथवा जीवित) की वंश-परम्परा तथा उनके कार्योंका विवरण रखा करें। राजस्थानमें यह परम्परा अभी भी प्रचलित है। वहाँके चारण-भाटोके यहाँ वीर पुरुषोकी वंशावलियाँ, उनके प्रमुख कार्य तथा तत्कालीन महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ सामग्रियाँ भरी पड़ी हैं। मुहणोत नैणसी (वि. सं. १६६७–१७२७) नामक एक जैन इतिहासकारने उक्त कुछ सामग्रीका संकलन-सम्पादन किया था जो 'मुहणोत नैणसीकी ख्यात'[1] के नामसे प्रसिद्ध एवं प्रकाशित है। राजस्थान तथा उत्तर एवं मध्यभारतके इतिहासकी दृष्टिसे यह संकलन अद्वितीय है। कर्नल टॉडने इस सामग्रीका अच्छा सदुपयोग किया और राजस्थानका इतिहास लिखा। किन्तु उक्त ख्यातोमें जितनी सामग्री संकलित है, उसकी सहस्रगुनी सामग्री अभी अप्रकाशित ही है। उसके प्रकाशनसे अनेक नवीन ऐतिहासिक तथ्य उभरेंगे। इतिहासलेखनके क्षेत्रमें इन चारण-भाटोका अमूल्य योगदान विस्मृत करना समाजकी सबसे बडी कृतघ्नता होगी। विबुध श्रीधरने समकालीन चारण-भाटोंके उक्त कार्य का विशेष रूपसे उल्लेख कर उनके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की है।

(३) विबुध श्रीधरने अपना परिचय देते हुए लिखा है कि वह यमुना नदी पार करके हरयाणासे 'ढिल्ली'[2] आया था। 'दिल्ली' नाम पढते-पढते अव 'ढिल्ली' यह नाम अटपटा-जैसा लगने लगा है। किन्तु यथार्थमें ही दिल्लीका पुराना नाम ढिल्ली एवं उसके पूर्व उसका नाम किल्ली था। 'पृथ्वीराजरासो'के अनुसार पृथ्वीराज चौहानकी माँ तथा तोमरवंशी राजा अनंगपालकी पुत्रीने पृथ्वीराजको किल्ली—ढिल्लीका इतिहास इस प्रकार सुनाया है—"मेरे पिता अनंगपालके पुरखा राजा कल्हण (अपरनाम अनंगपाल), जो कि हस्तिनापुरमें राज्य करते थे, एक समय अपने शूर-सामन्तोके साथ शिकार खेलने निकले। वे जव एक विशेष स्थानपर पहुँचे, (जहाँ कि अब दिल्ली नगर बसा है) तो वहाँ देखते है कि एक खरगोश उनके शिकारी कुत्तेपर आक्रमण कर रहा है। राजा कल्हण (अनंगपाल) ने आश्चर्यचकित होकर तथा उस भूमिको वीरभूमि समझकर वहाँ लोहेकी एक कीली गाड़ दी तथा उस स्थानका नाम किल्ली अथवा कल्हणपुर रखा[3]। इसी कल्हन अथवा अनंगकी अनेक पीढियोंके वाद मेरे पिता अनंगपाल (तोमर) हुए। उनकी इच्छा एक गढ़ बनवाने की हुई। अतः व्यासने मुहूर्त शोधन कर वास्तु-शास्त्रके अनुसार उसका शिलान्यास किया और कहा कि हे राजन्, यह जो कीली गाडी जा रही है उसे पाँच घड़ी तक कोई भी न छुए, यह कहकर व्यासने ६० अंगुल की एक कील वहाँ गाड दी और वताया कि वह कील शेषनागके मस्तकसे सट गयी है। उसे न उखाड़नेसे आपके तोमर-वंशका राज्य संसारमें अचल रहेगा। व्यासके चले जाने पर अनंगपालने जिज्ञासावश वह कील उखड़वा डाली। उसके उखडते ही रुधिरकी धारा निकल पड़ी और कीलका कुछ अंश भी रुधिरसे सना था। यह देख व्यास वड़ा दुखी हुआ तथा उसने अनंगपालसे कहा—

अनंगपाल छक्क वै बुद्धि जोइसी उक्किल्लिय।
भयौ तुंअर मतिहीन करी किल्ली तैं ढिल्लिय॥
कहै व्यास जगज्योति निगम-आगम हौ जानौ।
तुंवर ते चौहान अन्त ह्वै है तुरकानौ॥
हूँ गड्डि गयौ किल्ली सज्जीव हल्लाय करी ढिल्ली सईव।
फिरि व्यास कहै सुनि अनंगराइ भवितव्य वात मेटी न जाई॥

१. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा द्वारा सम्पादित तथा काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा १९२९ ई में प्रकाशित।
२. पासणाह.—१।२।१६।
३. पृथ्वीराज रासो—(ना. प्र. स.), प्र. भा., भूमिका—पृ. २५–२६।
४. सम्राट् पृथ्वीराज, कलकत्ता (१९५०), पृ. ३०–३१।

उक्त कथनसे निम्न तथ्य सम्मुख आते हैं—

१. अनंगपाल प्रथम (कल्हन) ने जिस स्थानपर किल्ली गाड़ी थी, उसका नाम किल्ली अथवा कल्हनपुर पडा।

२. अनंगपाल द्वितीय (तोमर) के व्यासने जिस स्थानपर किल्ली गाडी थी, उसे अनंगपालने ढीला कर निकलवा दिया। अतः तभीसे उस स्थानका नाम ढिल्ली पड़ गया।

जिस स्थानपर किल्ली ढीली होनेके कारण इस नगरका नाम ढिल्ली पड़ा, उसी स्थानपर पृथिवीराजका राजमहल बना था[१]। 'पृथिवीराजरासो' मे इस ढिल्ली शब्दका प्रयोग अनेक स्थलोंपर हुआ है। प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोमे भी उसका यही नामोल्लेख मिलता है। विबुध श्रीधरने भी उसका प्रयोग तत्कालीन प्रचलित परम्पराके अनुसार किया है[२]। अतः इसमें सन्देह नही कि दिल्लीका प्राचीन नाम 'ढिल्ली' था। श्रीधरके उल्लेखानुसार उक्त ढिल्ली नगर 'हरयाणा' प्रदेशमें था[३]।

(४) भारतीय इतिहासमे दो अनंगपालोके उल्लेख मिलते हैं। एक पाण्डववंशी अनंगपाल (अपरनाम कल्हन) और दूसरा, तोमरवंशी अनंगपाल। इन दोनोकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। 'पासणाहचरिउ' में दूसरे अनंगपालकी[४] चर्चा है, जो अपने दौहित्र पृथिवीराज चौहानको राज्य सौंपकर बदरिकाश्रम चला गया था[५]। उसके वंशज मालवाकी ओर आ गये थे तथा उन्होने गोपाचलको अपनी राजधानी बनाया था[६] जो तोमरवंशकी गोपाचल-शाखाके नामसे प्रसिद्ध है[७]।

'ढिल्ली-नरेश अनंगपाल तोमरके पराक्रमके विषयमें कविने कहा है कि उसने हम्मीर-वीरको भी दल-बल विहीन अर्थात् पराजित कर दिया था[८]। यह हम्मीर-वीर कौन था और कहाँका था, कविने इसका कोई उल्लेख नही किया, किन्तु ऐसा विदित होता है कि वह कागडाका नरेश हाहुलिराव हम्मीर रहा होगा, जो 'हाँ' कहकर अरिदलमें घुस पड़ता था और उसे मथ डालता था, इसीलिए उसे 'हाहुलिराव' हम्मीर कहा जाता था। यथा—

हाँ कहते ढीलन करिय हलकारिय अरि मथ्थ।
ताथे विरद हमीर को हाहुलिराव सुकथ्थ॥

अनंगपालके बदरिकाश्रम चले जानेके बाद यह हम्मीर पृथिवीराज चौहानका सामन्त बन गया था, किन्तु गोरीने उसे पंजाबका आधा राज्य देनेका प्रलोभन देकर अपनी ओर मिला लिया। इसी कारण वह चालीस सहस्र पैदल सेना और पाँच सहस्र अश्वारोही सेना लेकर गोरीसे जा मिला। हम्मीरको समझा-बुझाकर दिल्ली लानेके लिए कवि चन्द बरदाई पृथिवीराजकी आज्ञासे कांगड़ा गये थे। चन्द बरदाईने उसे भली-भाँति समझाया और बहुत कुछ ऊँच-नीच सुनाया किन्तु वह दुष्ट पंजाबका आधा राज्य पानेके लोभसे गोरीके साथ ही रह गया। इतना ही नही, जाते समय वह चन्द बरदाई को जालन्धरी देवीके मन्दिरमें बन्द कर गया। जिसका फल यह हुआ कि वह गोरी एवं चौहानकी अन्तिम लड़ाईके समय दिल्लीमे उपस्थित न रह सका। चौहान तो हार ही गया, किन्तु हम्मीरको भी प्राणोसे हाथ धोना पड़ा। गोरीने उसे लालची एवं विश्वासघाती समझकर पंजाबका आधा राज्य देनेके स्थानपर उसकी गरदन ही काट डाली[९]।

---

१. सम्राट् पृथिवीराज—पृ. ४०।
२. पासणाहचरिउ (अप्रकाशित) १।२।२६; १८।१।३।
३ वही, १।२।१४।
४ वही, १।४।१।
५. पृथिवीराजरासो—१८।२; ६६ तथा ११।२६-२७।
६-७. Murry' Northern India, Vol. I, page 375.
८ पासणाह, १।४।२।
९. सम्राट् पृथिवीराज, प. ८५।

२४. कुछ उद्वेगजनक स्थल

कविकी सरस एवं मार्मिक कल्पनाएँ, सूक्ष्मान्वीक्षण-वृत्ति, चित्रोपमता तथा बहुज्ञता उसकी कृतिको लोकप्रिय एवं उपादेय बनानेमें सक्षम होती हैं। किन्तु रचनामें भाव-सौन्दर्य होनेपर भी यदि तथ्य-निरूपणमें असन्तुलन तथा घटना-क्रमोके चित्रणमें क्षिप्रता हो तो काव्य-चमत्कारमें पूर्ण निखार नही आ पाता। विबुध श्रीधरने 'वड्ढमाणचरिउ' को यद्यपि सर्वगुण-सम्पन्न बनानेका पूर्ण प्रयास किया है, किन्तु अपने क्षिप्र-स्वभावके कारण वे कही-कही घटना-क्रमोको सन्तुलित बनानेमें जितने समय एवं शक्तिकी अपेक्षा थी, उसका उन्होने बहुत ही कम अंश व्यय किया है। अतः हमें यह माननेमें संकोच नही है कि श्रीधरमें प्रतिभाका अपूर्व भण्डार रहनेपर भी अपने क्षिप्र-स्वभावके कारण वे कही-कही आवश्यकतानुसार रम नही सके हैं। उदाहरणार्थ—

(१) त्रिपृष्ठ एव हयग्रीवके भयानक-युद्धका वर्णन तो कविने लगभग २५ कडवकोंमें किया, किन्तु हयग्रीवके वध (उद्देश्य-प्राप्ति) के बाद त्रिपृष्ठकी विजयके उपलक्ष्यमें सर्वत्र हर्षोन्मादका विस्तृत वर्णन अवश्य होना चाहिए था, जबकि कविने उसका सामान्य उल्लेख मात्र भी नही किया (५।२३)।

(२) स्वयंप्रभाके स्वयंवरके वर्णन-प्रसंगमें विविध देशोके नरेशोकी उपस्थिति, उनके हाव-भाव, उनके मानसिक उद्वेग, उनकी साज-सज्जा एवं वेशभूषा आदिके खुलकर वर्णन करनेका कविके लिए पर्याप्त अवसर था, किन्तु उसने उसमें अपनी शक्ति न लगाकर स्वयंवर-मण्डपकी रचना तथा विवाह-वर्णन गिनी-चुनी पंक्तियोमें करके ही सारा प्रकरण समाप्त कर दिया (६।९)।

(३) त्रिपृष्ठकी मृत्युके बाद कवि स्वजनों एवं परिजनोंके शोक-वर्णनके साथ-साथ सारी सृष्टिके शोकाकुल रहनेकी विविध कल्पनाएँ कर करुण रसकी सर्जना कर सकता था, किन्तु कविने विजयसे मात्र दो पंक्तियोंमें रुदन कराकर ही विश्राम ले लिया (६।१०।१-२)।

इसी प्रकार द्युतिप्रभा-अमिततेज तथा सुतारा-श्रीविजयके विवाहके साथ त्रिपृष्ठकी मृत्युरूप शुभ एवं अशुभ घटनाओका क्रमिक वर्णन कविने एक ही कडवकमें एक ही साथ कर दिया, जो घटना-संगठनकी दृष्टिसे अनुचित एवं सदोष है (६।९)।

इसी प्रकार अष्ट-द्रव्योमें-से मात्र सात-द्रव्योके उल्लेख (७।१३।३), हरिषेणके जन्मके बाद एकाएक ही उसकी युवावस्थाका वर्णन (७।११), एक ही कडवकमें द्वीप, देश, नगर, राजा, रानी, स्वप्नावली एवं पुत्रोत्पत्तिके वर्णन (८।१) आदि प्रसंगोमें कविने अपने क्षिप्र-स्वभावका परिचय दिया है।

इनके अतिरिक्त ६।५,६।९,८।११,९।१९ एवं ९।२२ के वर्णन-प्रसंगोमें भी कविका वही दोष दृष्टि-गोचर होता है। कविका यह स्वभाव उसकी रचना पर काव्य-दोषकी एक कृष्ण-छाया डालनेका प्रयास करता-सा प्रतीत होता है।

इसके अतिरिक्त कविने तर प्रत्ययान्त शब्दोंका अनेक स्थलोंपर प्रयोग किया है। जैसे—वरयर (१।१।९), चंचलयरु (१।१३।१०), चलयरु (१।१४।३), पंजलयर (२।८।८), णिम्मलयर (८।२।४,१०।१७।११), पविमलयर (८।१४।१,८।१४।६,८।१६।६,८।१७।१), दुल्लहयर (९।८।१०,९।१५।४), विमलयर (९।१५।४), सुंदरयर (१।६।२,१०।१८।७), दूसहयर (१।९।७), गुरुयर (१।१७।१६), थिरयर (२।२।६) एवं असुहयर (१०।२५) आदि। यद्यपि कविने अधिकांश स्थलोपर अनावश्यक होनेपर भी मात्रा-पूर्त्यर्थ ही उनका प्रयोग किया है, किन्तु उसमें अस्वाभाविकता भी अधिक आ गयी है, जो काव्यका एक दोष है।

उक्त उपलब्धियों एवं अनुपलब्धियो अथवा गुण-दोषोके आलोकमें कोई भी निष्पक्ष आलोचक विबुध श्रीधरका सहज ही मूल्याकन कर सकता है। कविने विविध विषयक ६ स्वतन्त्र एवं विशाल ग्रन्थ लिखकर अपभ्रंश-साहित्यको गौरवान्वित किया है। निस्सन्देह ही वे भाषा एवं साहित्यकी दृष्टिसे महाकवियोकी उच्च श्रेणीमें अपना प्रमुख स्थान रखते हैं।

२५. हस्तलिखित ग्रन्थोंके सम्पादनकी कठिनाइयाँ तथा भारतीय ज्ञानपीठके स्तुत्य-कार्य

हस्तलिखित अप्रकाशित ग्रन्थोंका सम्पादन-कार्य बड़ा ही कष्टसाध्य, समयसाध्य एवं धैर्यसाध्य होता है। मूल प्रतियोंके उपलब्ध करनेकी भी बड़ी समस्या रहती है, फिर उनका प्रतिलिपि-कार्य, पाठ-संशोधन, पाठान्तर-लेखन तथा हिन्दी अनुवाद आदिके करनेमें जिन कठिनाइयोका सामना करना पड़ता है, उन्हें भुक्तभोगी ही अनुभव कर सकता है। मूल प्रतिका प्रतिलिपि-कार्य तो इतना दुरूह है कि उसमें चाहकर भी सामान्य जन किसी भी प्रकारकी सहायता नही कर सकते। इसका कारण यह है कि भारतमें अभी हस्तलिखित ग्रन्थोके सम्पादन-कार्यमे न तो लोगोंकी अभिरुचि जागृत करायी गयी है और न ही वह कार्य श्रेण्य-कोटि में गण्य हो पाया है। यही कारण है कि हस्तलिखित ग्रन्थोंके रूपमें हमारा प्राचीन-गौरव शास्त्र-भण्डारोंमें वन्द रहकर अपने दुर्भाग्यको कोसता रहता है। क्या ही अच्छा होता कि विश्वविद्यालयों के प्राच्य-विद्या विभागोंमें प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंके सम्पादनकी कलाका अध्ययन-अध्यापन भी कराया जाये। इससे इस क्षेत्रमें कुछ विद्वान् भी प्रशिक्षित हो सकेंगे तथा देशके कोने-कोनेमें जो अगणित गौरव-ग्रन्थ उपेक्षित रहकर नष्ट-भ्रष्ट होते जा रहे हैं, उनके प्रकाशनादि होनेके कारण उनकी सुरक्षाकी स्थायी व्यवस्था भी हो सकेगी। भारतीय ज्ञानपीठने इस दिशामें कुछ अनुकरणीय कार्य किये है, किन्तु अकेली एक ही संस्था यह महद् कार्य पूर्ण नही कर मकती। यह कार्य तो सामूहिक रूपमें राष्ट्रीय-स्तर पर होना चाहिए। अस्तु !

२६. कृतज्ञता-ज्ञापन

प्रस्तुत ग्रन्थके सम्पादन-कार्यमे मुझे जिन सज्जनोंकी सहायताएँ प्राप्त हुई है, उनमें मैं सर्वप्रथम भारतीय ज्ञानपीठके महामन्त्री श्रद्धेय वावू लक्ष्मीचन्द्रजी जैनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिन्होने इस ग्रन्थके सम्पादनका कार्य मुझे सौंपा तथा उसकी हस्तलिखित मूलप्रतियोंको उपलब्ध करानेमें सतत प्रयत्नशील रहे। जीर्ण-शीर्ण अप्रकाशित हस्तलिखित ग्रन्थोंके उद्धार एवं उनके शीघ्र प्रकाशनके प्रति गहरी चिन्ता साहित्य-जगत्के लिए वरदान है। उनके निरन्तर उत्साह-वर्धन एवं खोज-खवर लेते रहनेके कारण ही यह ग्रन्थ तैयार हो सका है अतः उनके सहज स्नेह एवं सौजन्यका स्मरण करते हुए मैं उनके प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूँ।

प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत-साहित्यके क्षेत्रमे प्रो. डॉ. ए. एन. उपाध्ये अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। उन्होने अपनी दैवी-प्रतिभासे विविध शोधकार्यों एवं हस्तलिखित ग्रन्थोकी सम्पादन-कलामें कई मौलिक परम्पराएँ स्थापित कर साहित्य-जगत्को चमत्कृत किया हैं। इस ग्रन्थके सम्पादनमें मुझे उनसे समय-समयपर निर्देश मिलते रहे हैं। उनके लिए मैं आदरणीय डॉ. साहवके प्रति अपनी सात्त्विक श्रद्धा व्यक्त करता हूँ।

श्रद्धेय अगरचन्दजी नाहटा, वीकानेर तथा पं. हीरालालजी शास्त्री (अध्यक्ष, ऐलक प. दि. जैन सरस्वती भवन) व्यावरके प्रति भी मैं अपना आभार व्यक्त करता हूँ, जिनकी सत्कृपा एवं सौजन्यसे मुझे पूर्वोक्त मूल प्रतियाँ अध्ययन हेतु उपलब्ध हो सकी।

मूलप्रतिकी प्रतिलिपि, उसके पाठान्तर-लेखन तथा शब्दानुक्रमणिका तैयार करनेमें हमारी सहधर्मिणी श्रीमती विद्यावती जैन एम. ए. ने गृहस्थीके वोझिल दायित्वोका निर्वाह करते हुए भी अथक परिश्रम किया है। इसी प्रकार अनुवाद आदिकी प्रेस-कॉपी तैयार करनेमें चि. शारदा जैन वी. ए. (ऑनर्स), चि. राजीव एवं वेटी रश्मिने पर्याप्त सहायताएँ की है। ये सभी तो मेरे इतने अपने है कि इन्हे धन्यवाद देना अपनेको ही

धन्यवाद देना होगा। यह सब उनकी निष्ठा, लगन एवं परिश्रमका ही फल है जिससे कि यह ग्रन्थ यथाशीघ्र सम्पन्न होकर प्रेसमें जा सका है।

अपने अनन्य मित्रोंमें मैं श्री प्रो. दिनेन्द्रचन्दजी जैन, आरा, श्री प्रो. डॉ. रामनाथ पाठक 'प्रणयी' तथा प्रो. पुण्डरीक राव वागरे, मैसूरके प्रति भी अपना आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने समय-समयपर मुझे यथेच्छ सहायताएँ एवं अनेक उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये हैं। परिशिष्ट सं. २ (क-ख) तो प्रो. जैन साहबकी ही जिज्ञासा एवं प्रेरणाका परिणाम है। उनके आग्रहवश ही १०वी सदीसे १७वी सदीके मध्यमें लिखित प्रमुख महावीर-चरितोंके पारस्परिक वैशिष्ट्य-प्रदर्शन-हेतु दो तुलनात्मक मानचित्र तैयार किये गये हैं। सामान्य पाठकों एवं शोधार्थियोंके अध्ययन-कार्योंमें उनसे अवश्य ही सहायता मिलेगी, ऐसा मुझे विश्वास है। मैं इन सभी मित्रोंके प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूँ।

सुविधा एवं मुद्रणकी शीघ्रताको ध्यानमें रखते हुए प्रूफ-संशोधनकी, आदिसे अन्त तक सारी व्यवस्था भारतीय ज्ञानपीठने स्वयं करके मुझे उसकी चिन्तासे मुक्त रखा है। इस कृपाके लिए मैं ज्ञानपीठका सदा आभारी रहूँगा।

सन्मति मुद्रणालयके वर्तमान व्यवस्थापक श्री सन्तशरण शर्मा एवं पं. महादेवजी चतुर्वेदी तथा अन्य कार्यकर्ताओंके सहयोगको भी नही भुलाया जा सकता, क्योंकि उन्हीकी तत्परतासे यह ग्रन्थ नयनाभिराम बन सका है। अप्रकाशित हस्तलिखित ग्रन्थोंके सर्वप्रथम सम्पादनमें सावधानी रखनेपर भी कई त्रुटियोंका रह जाना बिलकुल सम्भव है। यह निःसंकोच स्वीकार करते हुए विद्वान् पाठकोंसे इस ग्रन्थकी त्रुटियोंके लिए क्षमा-याचना कर उनसे सुझावोंकी आकांक्षा करता हूँ। प्राप्त सुझावोंका सदुपयोग आगामी संस्करणमें अवश्य किया जायेगा। अन्तमें मैं डॉन कार्लोजकी निम्न पंक्तियोंका स्मरण कर अपने इस कार्यसे विश्राम लेता हूँ :—

Nothing would ever be written, if a man waited till he could write it so well that no reviewer could find fault with it.

महाजन टोली नं. २
आरा (बिहार)
१०.७.७४

—राजाराम जैन

विषयानुक्रम

[सन्धि एवं कडवकोंके अनुक्रमसे]

सन्धि १

सन्धि २

सन्धि ३

कडवक सं. पृष्ठ
मूल/हिन्दी अनु.

सन्धि ४

सन्धि ५

सन्धि ६

सन्धि ७

सन्धि ८

सन्धि ९

सन्धि १०

विबुह-सिरि सुकइ सिरिहर-विरइउ

वड्ढमाणचरिउ

सन्धि १

१

परमेट्ठिहे [1]पविमल-दिट्ठिहे चलण नवेप्पिणु वीरहो।
तसु णासमि चरिउ समासमि जिय-दु[2]ज्जय-सर-वीरहो ॥

जय सुहय सुहय रिउ विसहणाह   जय अजिय अजिय सासण सणाह।
जय संभव संभव-हर पहाण   जय णंदण णंदण पत्त-णाण।
जय सुमइ[3] सुमइँ[4] परिवत्त-हास   जय पउमप्पह प[5]उमप्पहास।
जय परम-पर मणुहर सुपास   जय चंदप्पह चंदप्पहास।
जय सुविहि सुविहियर अविहि चुक्क   जय सीयल सीयल-भाव मुक्क।
जय समय-समय सेयंस पु[6]ंज्ज   जय सुमण-सुमण थुव वासुपु[7]ंज्ज।
जय विमल विमलगुण-रयण-कंत   जय वरय वरयर अणंत संत।
जय धम्म सुधम्म सुमग्ग-जाण   जय संतिय संति अणंत-णाण
जय सिद्ध-पसिद्ध-पवुद्ध कुंथु   जय अहिय अहिययर कहिय कुंथु।
जय विसय विसयहर[8] मल्लिदेव   जय सुव्वय सुव्वयवंत सेव।
जय विगय-विगय णमि णिरह सामि   जय णीरय-णीरय णयण णेमि।
जय पास अपास अणंगदाह   जय विणय-विणय-सुर वीरणाह।

घत्ता—ए जिणवर णिज्जिय-रइवर विणिवारिय-चउविह-गइ।
जय-सासण विग्घ-विणासण महु पयडंतु महामइ ॥१॥

२

इक्कहि दिणि नरवर-नंदणेण   सोमा-जणणी आणंदणेण।
जिण-चरण-कमल-इंदिंदिरेण   णिम्मलयर-गुण-मणि-मंदिरेण।
जायस[1]-कुल-कमल-दिवायरेण   जिण-भ[2]णियागम-विहिणायरेण।
णामेण णेमिचंदेण वुत्तु   भो कइ सिरिहर सद्दत्थ-जुत्तु।
जिह विरइउ चरिउ दुहोहवारि   संसारुब्भव-संताव-हारि।
[3]चंदप्पह-संति-जिणेसराहँ   भव्वयण-सरोय-दिणेसराहँ।

---

१. १. V. विमल। २. J. दुजय। ३. J. V. °इं। ४. J. V. °इं। ५. V. °ल°। ६-७. J. पूज। ८. D. °हरि।

२. १. D. J. V. जायम। २. J. त°। ३. D. सचंदप्पह०।

सन्धि १

१

मङ्गल स्तुति

घत्ता—विमल दृष्टि वाले एवं दुर्जेय कामवाणों के विजेता वीर-परमेष्ठियोंके चरणोंमें नमस्कार कर उनके चरितका संक्षेप में वर्णन कर अपने अज्ञानरूपी अन्धकारको नष्ट करता हूँ।

सुभग—सुन्दर तनुवाले तथा कर्मरिपुको सुहृत—सर्वथा नष्ट कर देनेवाले वृषभनाथ की जय हो। अजित—अखण्ड शासनके नाथ अजितनाथ की जय हो। संसार-बाधा के नाश करने में प्रधान सम्भवनाथकी जय हो। आनन्ददायक ज्ञान प्राप्त करानेवाले अभिनन्दननाथकी जय हो। ५ जिनका सुमतिरूपी हास्य व्यक्त है, ऐसे सुमतिनाथकी जय हो। भव्यरूपी पद्मोंको प्रहर्ष—विकसित करनेवाले पद्मनाथकी जय हो। परम्पर—प्रधानोंमे प्रधान तथा जिनके शरीरके पार्श्वभाग मनोहर हैं, उन सुपार्श्वनाथकी जय हो। चन्द्रमाकी प्रभाके समान चन्द्रप्रभ भगवान् की जय हो। अन्याय-से दूर तथा न्यायका विस्तार करनेवाले सुविधिनाथ (पुष्पदन्त) की जय हो। कषायविहीन, कृष्णभावोसे मुक्त शीतलनाथकी जय हो। स्वमतके कल्याणोंको पूर्ण करनेवाले श्रेयांसनाथ की १० जय हो। सुमन—देव तथा सुमन—ज्ञानीजनों द्वारा स्तुत वासुपूज्यकी जय हो। निर्मल गुणरूपी रत्नोंसे कान्त (द्युतिवन्त) विमलनाथकी जय हो। वर—श्रेष्ठोंमें श्रेष्ठतर अनन्तनाथकी जय हो। सत्यधर्म एवं सुमार्गके ज्ञाता धर्मनाथकी जय हो। अनन्तज्ञानवाले शान्तिनाथकी जय हो। (सर्वगुणोंमें—) सिद्ध, जगप्रसिद्ध, एवं प्रबुद्ध कुन्थुनाथकी जय हो। जो कुन्थु आदि जीव कहे गये हैं, उनका भी अधिक हित करनेवाले अरहनाथकी जय हो। विषयरूपी विषको हरनेवाले १५ मल्लिदेवकी जय हो। महान् व्रतधारी जिनकी सेवा करते है, ऐसे मुनिसुव्रतनाथकी जय हो। विविध गतियोसे विगत—रहित, अन्तराय आदि घातिया कर्मोसे रहित नमिनाथकी जय हो। नीरज—कमलके समान नेत्रवाले तथा नीरज—कर्मरजसे रहित नेमिनाथकी जय हो। अनङ्गकी दाहसे अस्पृष्ट पार्श्वनाथकी जय हो। विनीत देवों द्वारा सादर नमस्कृत वीरनाथकी जय हो।

घत्ता—उक्त समस्त जिनवर रतिवर—कामदेवको जीतनेवाले हैं, चतुर्विध गतियोंका २० निवारण करनेवाले है, तथा जिनका शासन जयवन्त है और जो विघ्न-विनाशक है, वें (जिनवर) मेरी महामतिको प्रकट करें ॥१॥

२

ग्रन्थ-प्रणयन-प्रतिज्ञा

एक दिन (अपनी) सोमा (नामके) माताको आनन्दित करने वाले, जिनेन्द्रके चरण-कमलोंके लिए भ्रमरके समान, श्रेष्ठ एवं निर्मल गुणरूपी रत्नोंके निवासस्थल, जैसवाल-कुल रूपी कमलके लिए सूर्यके समान, जिनेन्द्र द्वारा कथित आगमविधिका आदर करनेवाले तथा नरवर (सेठ) के सुपुत्र नेमिचन्द्रने कहा—"हे कवि श्रीधर, जिस प्रकार आपने दुःख-समूह रूपी जलसे परिपूर्ण संसारमें उत्पन्न भव-सन्तापका हरण करनेवाले, भव्यरूपी कमलोंके लिए ५

तिह जइ विरयहि वीरहो जिणासु सम-णयण दिट्ठ कंचण-तिणासु ।
अंतिम-तित्थयरहो थिरयरासु गंभीरिम जियरयणायरासु ।
ता पुज्जहि मज्झु मणोहराइँ विणु भंतिए निरु [1]पयणिय-सुहाइँ ।
10 तं निसुणेवि भासिउ सिरिहरेण कइणा वुहयण-माणसहरेण ।

घत्ता—जं वुत्तउ तुम्हिहि जुत्तउ तं अइरेण समाणमि ।
णिय सत्तिए जिण-पय-भत्तिए तिह-जिह तं पि वियाणमि ॥ २ ॥

३

इय भणि सरसइ मणि संभरेइ संकप्प-वियप्पइँ परिहरेइ ।
वज्जरियउ गोल्ह तणूरुहेण संवोहिय-भव्वंभोरुहेण ।
भो वीवा-कंत मणोहिराम सुणु णेमिचंद पायडिय-नाम ।
इह जंवूदीवइ दीवराइ परिभमिर-मिहिर-णक्खत्त राइ ।
5 सुरगिरि-दाहिण-दिसि भरहखेत्ते वहु वीहि विहूसिय विविहखेत्ते
तत्थत्थि पसिद्धउ पुव्वदेसु णियगुणहि विनिज्जिय-सयल-देसु ।
देवा वि समीहहि जित्थु जम्मु दूरुज्झिवि तियसा वासरम्मु ।
जो भूसिउ णयण-सुहावणेहिँ अगणिय-रयणायर गयवणेहिँ ।
कूलामल-जल-परिपूरिएहिँ वित्थिण्ण-सालि-केयारएहिँ ।
10 जो णायवेल्लि-पूयदुमेहि पणइणु रमणो रामारमेहि ।
जहिँ वहहि सुहासमु रसु णईउ अंवुयवासिउ मंथर गईउ ।
गोहण-वंतहि पामरयणेहिँ अवगह-विमुक्क सासहि घणेहिँ ।
जहिं सहहिँ गाम-णिग्गम समेय णं नियवइ चिंतामणि अमेय ।
[4]पुंडुच्छु वाड मंडिय-दिसासु जो सोभा उव उवमियइ कासु ।
15 घत्ता—पहि खिण्णउँ पहिउ निसण्णउँ जहि सरेहिं सद्दिज्जइ ।
दिय-सद्दहिँ सलिलु सहद्दहिँ णं करुणइँ पाइज्जइ ॥ ३ ॥

४

तहि णिवसइ धरणीयले स-णाम णयरी सियछत्तायार णाम ।
सुरपुरिव पुण्णवंतहि समिद्ध णाणा-मणि-गण-किरणिहिँ समिद्ध ।
जहिँ जलयंतरगयणीलभाणु सज्जाणुभएण व निव्व माणु ।

४. J. V. समयण । ५. V. णि० । ६. V. माणसरेण ।
३. १. D. वज्जरिय । २. D. गुणणिज्जिय । ३. D. V. विच्छिण्ण । ४. V. पंडु० । ५. D. J. V. वड ।
६. D. J V. सद्दै ।
४. १. D. J. V. सब्भाणुभएणव निच्च भाणु ।

1. D. प्रजनितसुखानि ।

सूर्यके समान चन्द्रप्रभ एवं शान्तिनाथके चरित-काव्य रचे हैं, उसी प्रकार कांचन एवं तृणमें समदृष्टिवाले, स्थितप्रज्ञ तथा अपने ज्ञानकी गम्भीरतासे समुद्रको जीत लेनेवाले अन्तिम तीर्थंकर (वीर) के चरित-काव्यका भी यदि प्रणयन कर दे, तो आप भ्रान्तिरहित, निरुपम एवं मनोहर मेरे अपने सुखोंको परिपूर्ण कर देंगे।" नेमिचन्द्रकी उस प्रार्थनाको सुनकर बुधजन रूपी हंसोंके लिए मानसरोवरके समान कवि श्रीधरने उत्तर दिया— १०

घत्ता—"आपने जो कुछ कहा है, वह युक्तियुक्त है। मै जिस प्रकार जानता हूँ, उसी प्रकार उसे भी अपनी शक्तिके अनुसार तथा जिनेन्द्रके चरणोंकी भक्ति पूर्वक शीघ्र ही लिखकर समाप्त करूंगा।"॥२॥

३

ग्रन्थ-रचना प्रारम्भ। पूर्व-देश की समृद्धि का वर्णन

उसने इस प्रकार कहकर सरस्वतीका मनमें स्मरण किया तथा संकल्प-विकल्पोंको त्यागकर भव्य-कमलोंको सम्बोधित करनेवाले गोल्हके पुत्र [कवि श्रीधर] ने कहा—"हे बीवा (नामकी) पत्नीसे अपने मनको रमानेवाले तथा 'नेमिचन्द्र' इस नाम से प्रसिद्ध तुम (अब मेरा कथन—वड्ढमाणचरिउ नामक काव्य) सुनो।"

विश्वके समस्त द्वीपोंमें श्रेष्ठ जम्बू-द्वीप नामका एक द्वीप है, जिसमे मिहिर (सूर्य) एवं ५ नक्षत्रराज (चन्द्रमा) परिभ्रमण करते रहते हैं। उसी जम्बूद्वीपमे एक सुमेरु पर्वत है, जिसकी दक्षिण दिशामें भरतक्षेत्र स्थित है, जो अनेक प्रकारके धान्य वाले खेतोंसे विभूषित है।

उसी भरतक्षेत्रमे सुप्रसिद्ध पूर्वदेश है, जिसने अपने गुणोंसे समस्त देशोंको जीत लिया है, तथा जहाँ देवगण भी अपने रम्य त्रिदशावासको दूरसे ही छोड़कर जन्म लेना चाहते हैं, जो नयनोंको सुन्दर लगनेवाले गजयुक्त वनोसे सुशोभित है, जो अगणित रत्नोंकी खानि है, जहाँ १० नदियोंके किनारे निर्मल जलोसे परिपूर्ण रहते हैं, जहाँ दूर-दूर तक शालिकी क्यारियाँ फैली हुई है, जो नागरवेल (ताम्बूल) और पूगद्रुम (सुपाड़ी) के वृक्षों से भूषित है, जहाँ प्रणयीजनोंके रमण करनेके लिए रम्य-वाटिकाएँ बनी हुई है, जहाँ सुधाके समान रसवाली एवं कमलोंसे सुवासित नदियाँ प्रवहमान रहती है, जहाँके पामरजन (कृषकवर्ग) गोधनसे युक्त है, जो देश अवग्रह (वर्षा-प्रतिबन्ध) से रहित एवं घनसमूहसे सुशोभित है, जहाँके ग्राम मार्गोंसे शोभायमान १५ हैं, मानों अमेय चिन्तामणि-रत्नके समान वे सभीकी मनोकामनाको पूर्ण करनेवाले हों, जहाँकी दिशाएँ पौड़ा एवं ईखकी वाटिकाओसे मण्डित रहा करती हैं। उनकी शोभाकी उपमा किससे दी जाय ?

घत्ता—जहाँ पथमें (थकानके कारण) खिन्न बैठे हुए पथिकको हंसोंकी बोलीके बहाने ही मानो ऊँचे स्वरोसे बुलाया जाता है तथा धैर्ययुक्त शब्दोंसे उन्हें करुणापूर्वक जलपान कराया २० जाता है॥ ३॥

४

सितछत्रा नगर का वर्णन

वहाँ उस पूर्व-देशकी भूमिपर स्वर्गपुरीके समान, पुण्यवान् जनोंसे सुशोभित, नाना प्रकारकी मणि-किरणोंसे समृद्ध एवं सार्थक नामवाली सितछत्राकार नाम की नगरी है। जहाँ जलदों के मध्य में छिपा हुआ सूर्य ऐसा प्रतीत होता था, मानो सज्जनोके ज्ञानरूपी सूर्यसे भयभीत

दस सय किरणहि कलिउ विसाले णारोहइ-मणि-मंडिय विमाले ।
5 जहिं जल-खाइयहि तरंग-पंति सोहइ पवणाहय गयणि जंति ।
णव-णलिणि-समुब्भव-पत्त णील णं जंगम-महिहर माल लील ।
जहि गयणंगण-गय-गोउराइँ रयणमय-कवाडहिं सुंदराइँ ।
पेखेवि नहि जंतु सुहासिवग्गु सिरु धुणइँ मउड-मंडिय णहग्गु ।
जहिँ निवसइ वणियण गय-पमाय परदार-विरय परिमुक्क-माय ।
10 संहत्थ-वियक्खण दाण-सील जिण-धम्मासत्त विसुद्ध-सील ।
जहिं मंदिर-भित्ति-विलंवमाण णील-मणि करोहइ धावमाण ।
माऊर इंति गिह्लण-कएण कसणोरयालि भक्खण-रएण ।
जहिँ फलिह-वद्ध-मडियले मुहेसु णारीयणाहँ पडिविंविएसु ।
अलि पडइ कमल-लालेसवेउ अहवा महु वह ण हवइ विवेउ ।
15 जहिँ फलिह-भित्ति-पडिविंवियाइँ णिय रूवइँ णयणहि भावियाइँ ।
स-सवत्ति-संक गय-रयं-खमाहँ जुज्झंति तियउ निय-पिययमाहँ ।

घत्ता—तहिँ णरवइ णावइ सुरवइ करइ रज्ज निच्चितउ ।
सहु रमणिहिँ सुर-मण-दमणिहि सुर-सोक्खइ माणंतउ ॥ ४ ॥

५

णामेण णंदिवद्धणु सुतेउ दुण्णय-पण्णय-गण-वेणतेउ ।
णिय-मणि-णिज्झाइय-अरुह-देउ णं वीयउ हुउ जगे कामदेउ ।
महिवलइ पयासिय-वर-विवेउ अरि-वंस-वंस-वण-जायवेउ[1] ।
उवयद्दि पवाय-दिवायरासु मंभीसणु रणमहि कायरासु ।
5 णव-कुसुमुग्गमु विणयद्दुमासु रयणायरु गंभीरिम-गुणासु ।
छण-इंदु समग्ग-कलायरासु पंचाणणु पर-वल-णर-मयासु ।
जं पाइवि मणि विज्जा-मणोज्ज मइवंतह मणे पविरइय चोज्ज ।
णिग्वणे गय दिणे तारा समाणे रेहंति णहंगणि भासमाणे ।
जस भूसिय समहीहर रसेण अवि फुल्ल-कुंदज्जइ-सम-जसेण ।
10 जं किउ रिउ-वहु मुहु कसण-भाउ तं निएवि ण कहो अच्छरिउ जाउ ।
मणि चिंतिय करुणय-कप्परुक्खु अणु जणवयहो विलुत्त-दुक्खु ।
परिविड्ढिहेमइ-जल-सिंचणेण णिज्जेण विरसु को होइ तेण ।

५. १. D. ज्जुइ । २. D. J. V. थप्प० । ३. V. णिजेण ।

1. D. अग्नि

होकर ही वहाँ (भागकर) छिप गया हो अथवा सहस्रों किरणोंसे युक्त तथा तेजस्वी रहनेपर भी सूर्य मणि-किरणोसे दीप्त विशाल एवं उन्नत भवनोंवाली उस नगरीके ऊपर (गतिरोधके भयसे) नही चढ़ता। जहाँ जल-खातिकाकी तरंग-पंक्तियाँ पवनसे आहत होकर आकाशमें जाती हुई-सी प्रतीत होती हैं। वे तरंगे नव-कमलिनियोंसे उत्पन्न नील-वर्णको प्राप्त थी, अतः ऐसा प्रतीत होता था, मानो उस (जल-खातिका) ने जंगम-पर्वतमालाको ही लील लिया हो। जहाँ रत्नमय कपाटोसे युक्त गगनचुम्बी सुन्दर गोपुरोंको देखकर आकाश-मार्ग मे जाते हुए मुकुटधारी सुधाशी (देव) वर्ग (अपने निवासको हीन मानकर) आकाशमें ही अपना सिर धुनते रहते हैं। जहाँ प्रमादरहित, परदार-विरत एवं मायाचारसे रहित, शब्द एवं अर्थ प्रयोगमे विचक्षण, दानशील, जिन-धर्ममे आसक्त एवं विशुद्धशीलवाले वणिक्जन निवास करते है। जहाँ मन्दिरोंकी भित्तिपर पड़ती हुई नील-मणिकी लम्बी किरणोंको कृष्णवर्णके लम्बे सर्प समझकर उन्हें खानेकी अभिलाषासे मयूरी बार-बार उन्हे पकड़नेके लिए आती है। जहाँ स्फटिकमणिसे निर्मित महीतल (फर्श) पर नारीजनोके मुखोके प्रतिबिम्बित रहनेसे भ्रमर उन्हे भ्रमसे कमल जानकर उसके रसपानकी लालसासे उनपर वेगपूर्वक आ पड़ता है। उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मधुपायियोंके लिए कोई विवेक ही नही रहता। जहाँ स्फटिकमणियोंसे निर्मित भित्तियोंमे तथा नयनोंको चकचौंधिया देनेवाले अपने ही सौन्दर्यको देखकर कामिनियाँ सौतोंकी शंकासे रति-क्रियाओंमे समर्थ अपने प्रियतमोंसे भी जूझ जाती है।

घत्ता—उस सितछत्रा नगरीमे सु-रमण करनेवाली सुन्दर रमणियोंके साथ देवोके समान सुखोंका अनुभव करता हुआ एक नरपति सुरपतिके समान ही निश्चिन्त मनसे राज्य कर रहा था ॥४॥

५

सितछत्राके राजा नन्दिवर्धन एवं पट्टरानी वीरमतीका वर्णन

उस तेजस्वी राजाका नाम नन्दिवर्धन था, जो दुर्नीति रूपी पन्नगों (सर्पो) के लिए मानो गरुड ही था। वह अपने मनमे (निरन्तर ही) अरहन्तदेवका ध्यान किया करता था। सौन्दर्यमे ऐसा प्रतीत होता था, मानो संसारमे वह दूसरा कामदेव ही उत्पन्न हुआ हो। जिसका विवेक पृथिवी-तल पर विख्यात था, जो शत्रुओंके वंशरूपी वेणुवनके लिए अग्निके समान था, जो प्रतापरूपी सूर्यके लिए उदयाचलके समान था, रणक्षेत्रमे कायरोके लिए जो अभयदान देता था। जो नवीन पुष्पोके उद्गमके भारसे विनीत द्रुमके समान था, जो रत्नाकरके समान गुण-गम्भीर था, पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान जो समस्त कलाओसे युक्त था। शत्रुसेनाके मनुष्यरूपी मृगोके लिए जो सिंहके समान था, जिसने विद्यारूपी मनोज्ञमणि प्राप्त कर विद्वानोंके मनमे आश्चर्य उत्पन्न कर दिया था। ग्रीष्मकालीन दिवसके अस्त हो जाने पर नभांगणमें सुशोभित उज्ज्वल तारेके समान तथा अविकलरूपसे प्रफुल्लित कुन्द जातिके पुष्पोंके समान सरस एवं धवल वर्ण वाले यशसे जो सुशोभित था, जिसने रिपु-वधुओंके मुखोंको काला बना दिया था, किन्तु वह देखकर कोई आश्चर्य-चकित नही था (क्योंकि यह तो नन्दिवर्धनके लिए सामान्य बात हो गयी थी)। वह मनमें चिन्तित चिन्तामणि (रत्न) के समान तथा दीन-अनाथोके लिए कल्पवृक्ष और (अपने जनपदके लोगोके साथ-साथ) अन्य जनपदके लोगोंके भी दुःखोको दूर करनेवाला था। ठीक ही है, हेमन्त ऋतु की जल-वर्षा अनाज-वृद्धि करती ही है, क्या उससे कोई विरसताको भी प्राप्त होता है? (उसी प्रकार राजा नन्दिवर्धनके दानरूपी जलसे सिंचित होकर कौन-सा व्यक्ति विरस—दुःखी बच रहा था? अर्थात् दान देकर उसने सभीको प्रसन्न बना दिया था।

घत्ता—तहो रायहो अइ-पियवायहो पिय वीरवइ वि सिद्धी ।
अणुराएँ नाइविहाएँ मणवावारेँ सिद्धी ॥ ५ ॥

६

वेल-व लावण्ण-गईसरासु जयसिरि-व समुत्ति रईसरासु ।
करुणा इव परम मुणीसरासु सुंदरयर सइ व सुरेसरासु ।
पउमरयणु जिह कर-मंजरीए चूव-द्दुमु जिह नव मंजरीए ।
अहिणव-जलहरु जिह तडिलियाए निय पिययमु जिह भूसियउ ताए ।
5 जा सहु पिएण जंपइ सलील सुंदरि सिय णं सरणे सलील ।
णं मयणहो वाणह तणिय पंति णं तासु जे केरी पयड-सत्ति ।
जा जण-मण-हर सुर-सुंदरीव जिण-पय-पंकय-रय-चंचरीव ।
जासिं थणे[3] धम्मालिंगियंग मंथर-गइ-णिज्जिय वण-गयंग ।
जा सुहय सुहासिणि अइ सुरूव विण्णाण-विणउ-गुण सार-भूय ।
10 संतेहिं वि आहरणेहिं जाहे परभूसणु निम्मलु सीलु जाहे ।
घत्ता—महिराएँ विरइय राएँ तणुरुहु समयण काएँ ।
अरुण-च्छवि उप्पाइ रवि णं सुर-दिसिहिँ पहाएँ ॥६॥

७

तहो जम्म काले णहु स-दिसु जाउ णिम्मलु महिवीढु वि साणुराउ ।
पवहइ सुअंधु गंधवहु मंदु गुत्तिहे पविमुक्कउ वंदिवंदु ।
जिणनाह-पूज विरइवि सुवासु दहमइ दिणिराएँ दढसुवासु ।
सव्वंग-हरिसु णंदणु गणेवि आवोहिउ णंदणु इय भणेवि ।
5 जो वालु वि विज्जालंकियंगु निय-काय-कंति-णिज्जिय-पयंगु ।
हल-कलसालंकिय करयलग्गु सुह-जस-धवलिय-धरणियलग्गु ।
अरि-तिय-विहवत्तणु-करण-धीरु पर-वल-णिहणण पच्चल वीरु ।
वर जोव्वण सिरि भूसिय सरीरु अवराह-वारिहर खय-समीरु ।
लावण्ण-वारि-वारिहि सिसालु सरणागय-जण-रक्खणे विसालु ।
10 अण्णेहिँ नरिंद-सुवेहिँ जुत्तु सहयरिहिँ समर पवियरणे धुत्तु ।
घत्ता—उइयइ इणि सो वरहि दिणे जणणहो आण लहेविणु ।
गउ णंदणे णयणाणंदणो रमणहो कज्जि णवेप्पिणु ॥७॥

---

६. १. J. D. V. जह । २. D. °लि । ३. D. J. V. थव ।

घत्ता—अतिप्रिय वाणी बोलनेवाले उस राजा नन्दिवर्धनकी सिद्धि (मुक्ति) के समान वीरवती नामकी प्रिया थी। जिस प्रकार मनके व्यापारसे सिद्धि प्राप्त होती है, उसी प्रकार मानो उस वीरवती के अनुराग से उसे भी समस्त सिद्धियाँ प्राप्त थी ॥ ५ ॥ २०

६

रानी वीरवतीका वर्णन। उसे पुत्र-प्राप्ति

महासमुद्रकी लावण्यमयी तरंगके समान, अथवा कामदेवकी मूर्तिमति विजयश्रीके समान, मुनीश्वरोंकी श्रेष्ठ करुणाके समान अथवा सुरेश्वरकी सुन्दरतर इन्द्राणीके समान सुन्दर उस रानी वीरवतीसे राजा नन्दिवर्धन उसी प्रकार सुशोभित था, जिसप्रकार करमंजरी (प्रभासमूह)से पद्मरागमणि, नवमंजरीसे आम्रवृक्ष तथा विद्युल्लतासे अभिनव मेघ सुशोभित होते हैं। जो अपने प्रियतमसे भी लज्जाशील होकर बोलती थी, सौन्दर्यकी श्रीके समान वह वीरवती ऐसी ५ प्रतीत होती थी, मानो कामदेवकी लीलाओंसे परिपूर्ण पत्नी–रति ही हो। अथवा ऐसा प्रतीत होता था मानो वह कामदेवके बाणोंकी पंक्ति ही हो अथवा कामदेवकी प्रकटरूपमे शक्ति ही हो। जो प्रेमी जनोंके मनको हरण करनेके लिए सुर-सुन्दरी के समान थी, जो जिनेन्द्रके चरण-कमलोमें रत रहनेवाली भ्रमरी थी, जिसका अंग स्तनोंके पसीनेसे आलिंगित रहता था, अपनी मन्थरगतिसे जिसने वन-मतंगको जीत लिया था, जो सुभग थी, सुहासिनी तथा अत्यन्त स्वरूप- १० वती थी, जो विज्ञान एवं विनय आदि सद्गुणोंकी सारभूमि थी, जिसके पास अनेक आभरण थे, फिर भी जिसका परमश्रेष्ठ आभरण निर्मल शील ही था।

घत्ता—राजा नन्दिवर्धनके मनमें अनुराग उत्पन्न करनेवाला तथा कामदेवके समान सुन्दर शरीरवाला एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह ऐसा प्रतीत होता था मानो प्रभातके समय पूर्व-दिशामें अरुण छविवाला सूर्य ही उदित हुआ हो ॥ ६ ॥ १५

७

राजकुमार नन्दनका जन्मोत्सव। एक नैमितिक द्वारा उसके असाधारण भविष्यकी घोषणा

उस पुत्रके जन्मके समयसे हो आकाश स्वच्छ एवं दिशाएँ निर्मल हो गयीं। पृथिवीमण्डल प्रमुदित हो उठा। मन्द एवं सुगन्धित वायु बहने लगी। कारागारोंसे वन्दीजनोंको मुक्त कर दिया गया। दृढ भुजाओंवाले उस पुत्रके निमित्त राजा नन्दिवर्धनने (जन्मकालके) दशवे दिन जिनेन्द्रकी पूजा-अर्चा रचाई तथा 'यह पुत्र सर्वाङ्गीण एवं हर्ष प्रदान करनेवाला है', यह जानकर राजा (नन्दिवर्धन) ने यह कहकर उसका 'नन्दन' नामकरण किया कि—"यह बालक विद्या- ५ कला रूपी अंगोंसे अलंकृत है, अपने शरीरकी कान्तिसे भी सूर्यको जीतनेवाला है, इसकी हथेलियाँ हल, कलश आदि चिह्नों से अलंकृत है। अपने शुभ्र यशसे वह धरणीतलको धवलित करेगा। यह धीर शत्रु-पत्नियोंको वैधव्य प्रदान करनेमें समर्थ रहेगा तथा अकेले ही यह वीर शत्रु-सैन्यका विध्वंस करेगा। उत्तम यौवन-श्रीसे इसका शरीर भूषित रहेगा, अपराधरूपी मेघों-के क्षय करनेके लिए यह पवनके समान होगा। यह शिशु लावण्यरूपी जलका समुद्र होगा। १० शरणागतोंकी रक्षा करनेमे वह विशाल-हृदय होगा।" समरभूमिमें विचरण करनेमे कुशल वह राजकुमार नन्दन दूसरे राजकुमारों तथा अपने सहचरोके साथ—

घत्ता—अन्य दूसरे दिन अपने पिताकी आज्ञा लेकर तथा उन्हें नमस्कार कर सूर्योदय होते ही नेत्रोंको आनन्दित करनेवाले नन्दनवनमें क्रीडा हेतु गया ॥७॥

८

जहिँ असोय कुसुमोह-मालिया　रुणु-झुणंति भमरालि कालिया ।
सहइ णाइँ वण-सिरिहे मेहला　पउम-णील-मणि-मय-विणिम्मला ।
जहिँ विसाल वाविउ पओहरा　असि-लय व्व णिम्मल मणोहरा ।
कीलमाण तिय तरुणि हय-भया　सुर-नर-णाय विरइय विंभया ।
5 जहिँ रमंति दंपइ लयाहरे　साणुराय असुणिय-तमीहरे ।
जहिँ सुरंगणा-गीय-मोहिया　लिहिय णाइँ भित्तीहिँ सोहिया ।
णउ मुणंति संधिय सरम्मया　के मुणंति वा विम्हय संगया ।
जहिँ गहीर पाणिय सरोवरे　सलिल-कील-संठिय वहूवरे ।
हंसिणीए हंसो णुसिज्जए　जणेवि पेम्मु रइ-विसरु णिज्जए ।
10 पुज्जहिँ पढंत-कीरालि-संकुले　कलयलंत-कोइल-रवाउले ।
कीलमाण निरु णायरा णरा　णउ सरंति णिय-णिलउ खेयरा ।
कुसुम-वास-वासिय-दियंतरे　विविह-भूरुहावलि-निरंतरे ।

घत्ता—तहिँ सुंदरे रमिय पुरंदरे मलयाणिल हय तरुवरे ।
विहरेविणु[1] कील करेविँणु फल-पीणिय[2] खेयरवरे ॥८॥

९

तहिँ फलिह-सिलायलि सण्णिसण्णु　णं णिय-जस-पुंजोवरि णिसण्णु ।
कंकेल्लि-महिरुह-तलिमुणीसु　णंदेण णिहालिउ वर-झुणीसु ।
सुयसायरु नामेँ नमिय-भव्वु　भव-भाव विउज्झिउ गलिय-गव्वु ।
गंगा-पवाह-सम दिव्व वाणि　तियरण-परिरक्खिय-दुविह पाणि ।
5 तहो पणवेप्पिणु पय-पयरुहाइँ　णह-मणि-विंबिय णेय[1] णर मुहाइँ ।
अंचिवि कंचण कुसुमेहिँ जोडि　कर-जमलु चिरज्जिउ पाउ तोडि ।
उवविसिवि समीवे मुणीसरासु　दूसहयर-तव-सिरि-भासुरासु ।
तेँ पुच्छिउ भो भयवंत संत　संसारोरय-विस-हरण-मंत ।
उल्लंघिय भीव भवंबुरासि　वसु-भेय-भिण्ण-कम्मइँ विणासि ।
10 किह जाइ जीउ णिव्वाणु ठाणु　इल-परमेसर महु पुरउ भाणु ।

घत्ता—तहो वयणइँ निहणिय मयणइँ सुणिवि मुणीसु समासइ ।
सह लोयहँ विहुणिय[2] सोयहँ मणि आणंदु पयासइ ॥९॥

---

८. १ V विरहेविणु । २. D पि° V प्पि° ।
९. १. D. णुय । २. J. V विर° ।

८

राजकुमार नन्दनका वन-क्रीडा हेतु गमन । नन्दनवनका सौन्दर्य-वर्णन

जिस नन्दन-वनमे अशोक आदि पुष्पोंकी पंक्तियाँ रुणझुण-रुणझुण करते हुए भ्रमर-समूहोंसे काली दिखाई दे रही थीं। वे ऐसी प्रतीत हो रही थी, मानो पद्मनील मणियों द्वारा विशेषरूपसे निर्मित निर्मल वनश्रीकी मेखला ही हों। जहाँ पयस्विनी विशाल वापिकाएँ थी, जो (देखनेमें) निर्मल एवं मनोहर तथा असि-लताके समान लगती थी। जहाँ देवों, मनुष्यों एवं नागोंको भी आश्चर्यचकित कर देनेवाली तरुणी महिलाएँ निर्भय होकर क्रीड़ाशील थी, जहाँ लतागृहोमे ५ अन्धकारकी परवाह किये बिना ही दम्पति अनुरागसे भरकर रमण कर रहे थे। जहाँ देवांगनाओं-के गीतोसे मोहित होकर देव इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे, मानो भित्तिपर लिखे गये चित्र ही हों। उसे (नन्दनको) यह भी ध्यान न रहा कि कामदेवने (उसपर) मोहवाण साध लिया है। ठीक ही है, विषय-वासनाकी संगतिमें पड़कर उसका ध्यान ही किसे रहता है ?

जहाँ गहरे तथा जलसे परिपूर्ण सरोवर थे, जिनके पानीमें युवती-वधुएँ क्रीड़ा-शील थी। १० जहाँ हंस हंसनी से अनुनय करता रहता है और प्रेम उत्पन्नकर रति-विषयमे विजय प्राप्त करता है। जो (नन्दनवन) पूजा पढ़ते हुए शुकोसे व्याप्त तथा कोकिलोंकी कल-कल ध्वनिसे आकुल था। जहाँ नागरजन प्रभूत क्रीड़ाएं किया करते है तथा विद्याधर अपने घर (वापस लौटकर) नही जाना चाहते। जहाँ विविध वृक्षावलियोके पुष्पोसे दिग्-दिगन्तर निरन्तर सुवासित रहते है, १५

घत्ता—जहाँ मलयानिल वृक्षोसे टकराती रहती है, उस वनमें सुन्दरियाँ अपने पति इन्द्रके साथ रमण करती रहती है एवं जहाँ खेचरेन्द्र भी उत्तम फलोका सेवन कर क्रीड़ाएँ करता हुआ विचरण करता है ॥ ८ ॥

९

राजकुमार नन्दनकी मुनि श्रुतसागरसे भेंट

उस नन्दन-वनमें राजकुमार नन्दनने कंकेल्ली (अशोक) वृक्षके नीचे स्फटिक-शिला-पर ध्यानमें लीन बैठे हुए श्रुतसागर नामके एक मुनिश्रेष्ठको देखा। वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानो वहाँ अपने यशोपुंजपर ही विराजमान हों। वे भव्यों द्वारा नमस्कृत, भव-भावोसे रहित एवं निरहंकारी थे। उनकी वाणी गंगाके प्रवाहके समान दिव्य तथा रत्नत्रयसे परिरक्षित थी। कुमार नन्दनने दोनों हाथोंसे मुनिराजके उन चरण-कमलोमे नमस्कार किया, जिनके नखरूपी ५ मणियोंमे नम्रीभूत भव्यजनोंके मुख प्रतिबिम्बित होते रहते थे। उसने अपने कर-कमलोंमे कंचन कुसुमोंकी जोड़ी लेकर अर्चना-पूजा की और इस प्रकार चिरसंचित पापोंको तोड़ डाला। दुःसह तपश्रीसे भास्वर उन मुनिश्रेष्ठके समीपमे बैठकर नन्दनने पूछा—"संसाररूपी सर्पके विषको दूर करनेमे मन्त्रके समान हे सन्त भगवन्, आपने अष्टविध कर्मोको नष्ट करके भीषण संसाररूपी समुद्रको पार कर लिया है। हे एलापत्य गोत्रके आदि परमेश्वर, (अव कृपाकर) १० मुझे यह बतलाइए कि यह जीव निर्वाण-स्थलमें किस प्रकार जाता है ?"

घत्ता—राजकुमार नन्दनके मदनको नष्ट करनेवाले वचनोको सुनकर मुनिराजने समस्त लोकोके शोकको नष्ट कर उनके हृदयमे आनन्दको प्रकाशित करनेवाला उत्तर (इस प्रकार) दिया— ॥ ९ ॥

१०

हुउ मेरउ इय जिउ भणइ जाम जर-जम्मण-मरणइँ लहइ ताम ।
इय भाव-विमुक्कउ अप्प-भाउ पाविवि जिउ गच्छइ मोक्ख-ठाउ ।
तहो मुणि तणु वयणु सुणेवि तेहिँ णिरसिय मिच्छत्त-तमोहएहिं ।
जाणेवि तच्चु पविमलु मणेण वियसिउ कमलायरु जिह खणेण ।
5 मुणि दिण्ण वयाहरणेहिँ रामु मिच्छत्त-भाव विरइय विरामु ।
मुणि-पयइँ नवेप्पिणु णिवइ-पुत्तु नियगेहहो गउ सम्मत्त-जुत्तु ।
सुह[1]-दिणि परवल-अवराइएण सामंत-मंति-पविराइएण ।
विरएवि अहिसेउ नराहिवेण गंभीर-तूर-भेरी-रवेण ।
जुयरायहो पउ पविइण्णु तासु संतासिय-पर-चक्कहो सुवासु ।
10 तिइल्लु वि जुयराय-पउ पावि अप्पाणउ पुण्णाचरिउ[2] दावि ।
अइ-तेयवंतु हुउ गुण-णिहाणु जह सरय-समागमु लहेवि भाणु ।

घत्ता—अइ भत्तहे सेवा-सत्तहे मूलिय रायकुमारहँ ।
चिंतामणि दुविजिय दिणमणि सो हुउ माणिणि मारहँ ॥१०॥

११

जइविहु णव-जोव्वण-लच्छिवंतु सो सुंदरु तइवि मए-विवंतु ।
भउ जइवि णत्थि तहो मणि कयावि ता देइ तइवि वइरिहुँ सयावि ।
परदारहिँ वय चित्तु वि असेसु जसधवलिय-धरणीयल-पएसु ।
पुज्जंतु जिणेसर-पाय-दंदु रइ-विसइ-भाउ विरयंतु मंदु ।
5 चरियइँ निसुणंतु जिणेसराहँ पणवंतु पयाइँ मुणीसराहँ ।
चूडामणि-भूसिय-विउल-भालु जो धम्मासत्तउ णेइ कालु ।
ता जणणहो उवरोहेण तेण परिणिय सराय-भावंगएण ।
णामेण पियंकर पियर-भत्त णिय-सिरि-जिय-तियसंगण सुगत्त ।
सम्मत्त-पुरस्सर-वयइँ पावि पिययमहो पसाएँ पियइँ सावि ।
10 धम्मामउ अणुदिणु पियहे[1] हुंति पिययम अणुकूल ण कावि भंति ।

घत्ता—लज्जहे सहे विणयहो महे[2] पिम्म-णईसहो ससि-कला ।
पिउ रंजइ सा सुहु भुंजइ परियाणइ परियण कला ॥११॥

---

१०. १. D. हं । २. D पुण्णवेरिउ V. पुण्णावरिउ ।
११. १. D. °ह । २. V. °हि ।

१०

राजकुमार नन्दनकी युवराज-पदपर नियुक्ति

"जब यह जीव 'यह मेरा है, यह मेरा है' इस प्रकार कहता है, तभी वह जरा, जन्म एवं मृत्युको प्राप्त होता है और यही जीव जब भव-भावसे विमुक्त तथा आत्म-भावको प्राप्त कर लेता है तब वह मोक्षस्थलको चला जाता है।"

उन मुनिराजके इस प्रकार वचन सुनकर अन्य साथियोंके साथ उस राजकुमारने अपने मिथ्यात्वरूपी अन्धकार-समूहको नष्ट कर दिया तथा निर्मल मनसे जिस क्षण तत्त्वको पहचाना, ५ उसी क्षण उसका हृदय-कमल विकसित हो उठा। मुनि द्वारा प्रदत व्रताभरणोसे रम्य होकर तथा मिथ्यात्व-भावोंसे विराम लेकर (नष्ट कर) वह नृप-पुत्र सम्यक्त्वसे युक्त होकर अपने घर वापिस लौट गया।

अन्य किसी शुभ-दिवसपर शत्रु-सैन्य द्वारा अपराजित तथा सामन्त एवं मन्त्रियोंसे सुशोभित उस नराधिप नन्दिवर्धनने गम्भीर तूर्य, भेरी आदि वाद्य-ध्वनियोंके साथ राजकुमार १० नन्दन का राज्याभिषेक कर उसे शत्रुजनों के लिए सन्त्रासकारी युवराज-पद प्रदान किया। त्रैलोक्य-के युवराज-पदको प्राप्त कर उस नन्दनने अपनी सेवा करनेवाले सम्पूर्ण सेवकोंको पर्याप्त दान दिये। गुणोंका निधान वह युवराज ऐसा तेजस्वी हुआ, जिस प्रकार शरद्-ऋतुका समागम पाकर सूर्य तेजस्वी हो जाता है।

घत्ता—अति भक्त एवं सेवकोंमे आसक्त प्रमुख राजकुमारोंके लिए वह युवराज नन्दन १५ चिन्तामणि रत्नके समान था तथा सूर्यकी द्युतिको भी जीतनेवाला तथा कामदेवोंमें मानी सिद्ध हुआ॥ १०॥

११

युवराज नन्दनका प्रियंकराके साथ पाणिग्रहण

युवराज नन्दन यद्यपि नवयौवनरूपी लक्ष्मीसे युक्त तथा सुन्दर था, तो भी वह मदसे रहित था। यद्यपि उसके मनमें भय कदापि न था, तो भी वह वैरियोंको सदा भयभीत करता रहता था। यद्यपि उसका चित्त सम्पूर्ण रूपसे परदारा-व्रतसे युक्त था, तो भी उसने अपने यशसे धरणीरूपी महिलाके प्रदेशोंको धवलित कर दिया था। वह जिनेश्वरके पाद-द्वन्द्वोंकी पूजा किया करता था, रति-विषयके भावोंको कृश करता रहता था, जिनेन्द्रके चरितोंको सुना ५ करता था, मुनीश्वरोंके पदोमे प्रणाम किया करता था। उसका विपुल-भाल चूड़ामणिसे विभूषित था। इस प्रकार जब वह धर्म-कार्यमें आसक्त रहता हुआ अपना समय व्यतीत कर रहा था, तभी पिताके आग्रहसे ही उसने सराग-भावको प्राप्त होकर प्रियंकरा (नामकी एक राजकन्या) के साथ पाणिग्रहण कर लिया। पतिभक्ता वह प्रियंकरा अपनी सौन्दर्यश्रीसे देवांगनाओंके सुगात्रोको भी जीतनेवाली थी। प्रियतमके प्रसादसे उस प्रियंकराने भी सम्यक्त्वपूर्वक व्रतोंको प्राप्त कर १० लिया और इस प्रकार वह धर्मामृतका पान करने लगी, क्योंकि जो कुलांगनाएँ होती है, वे अपने प्रियतमके अनुकूल चलती ही है, इसमें कोई सन्देह नही।

घत्ता—लज्जाकी सखी, विनयकी आधारभूमि एवं प्रेमरूपी समुद्रकी शशिकलाके समान वह प्रियंकरा जब अपने प्रियतमके रंजन तथा परिजनोंके मनोरंजनकी कलाको जानती हुई सुखानुभोग कर रही थी॥ ११॥ १५

१२

एत्थंतरे पिय परियरिय काउ रायहो धुर अप्पिवि सुअहो जाउ ।
णिउ णिच्चितिउ साणंद-चित्तु सुउ जणणहो हवइ हरिस मित्तु ।
हरिणारि-वूढ-विट्ठरे णिविट्ठु सामंत-मंति सव्वेहिँ दिट्ठु ।
संजाउ हरिसु मणि परियणासु पहु पेक्खणे हरिसु ण होइ कासु ।
5 इच्छाहिय-दाणेँ कय-सुहाइँ वंदिहु पूरंतु मणोहराइँ ।
सो सुमणालंकिउ वइरि-भीसु जंगम-सुरतरु-समु हुउ महीसु ।
सो कणय-कूड-कोडिहि वराइँ कारावइ मणहर जिणहराइँ ।
पोम-मणि करोहहिँ आरुणाइँ पल्लवियंवर पविउल-वणाइँ ।
अवर वि णर हुंति महंत संत धम्माणुरत्त चिंतिय परत्त ।
10 अणवरय चलिय सुवि चामरेहिँ तुंगहि विंभिय-खयरामरेहिँ ।
दाणंवु गंध-रय-छप्पएहिँ पाहुड-मय-मत्त-महागएहिँ ।
भाउ व संतोसु ण करहिँ कासु बहु-दाणवंत अवर वि जणासु ।

घत्ता—उब्भिवि करु लेविणि असि फरु संभासइ चच्चिय छलु ।
सो सुस्सरु कुसल-पुरस्सरु समिउ होइ सवच्छलु ॥१२॥

१३

रक्खा-रज्जुए णिम्मिवि भरेण निरुवम णएण लालिवि करेण ।
चउ-जलहि-पओहर रयण-खीरु गो दुहिवि लेइ सो गोउ धीरु ।
जह कालि ललिय भू-सुंदरीए कुसुमाउह-केसरि-कंदरीए ।
दर-हासालंकरियाहराइँ सो रमइ निरारिउ सहु पियाइँ ।
5 इय तेण तिवग्गइँ अणुकमेण साहंतेँ धरिय-कुलक्कमेण ।
णीयइ अगणिय संखइ सुहेण वच्छरइँ णंदिवड्ढण-निवेण ।
एत्थंतरे एक्कहि दिणि विसाले उत्तुंग सउहयले सिरि-विसाले ।
सहुँ तीए सुनयणिए संठिएण निय रमणिए रमणुक्कंठिएण ।
णरणाहेँ लीलइँ पवल-सोहु दिट्ठउ विचित्त कूडुवरि मेहु ।
10 णह- सायरासु णं फेण-पुंजु चंचलयरु पवण-वसेण मंजु ।

घत्ता—सो नरवइ णिहय णरावइ जाव सविंभउ थिरमणु ।
विणिहालइ निय [य] सिरु वालइँ ता विलीणु नहयले घणु ॥१३॥

---

१२. १. J V एहु । २. D. करे लहि ।
१३. १. D. J. V. हर । २. D. J. V, अगणि ।

१२

युवराज नन्दनका राज्याभिषेक

—कि इसी बीच प्रियजनों से परिचरित राजा नन्दिवर्धन अपने सुपुत्र नन्दन को आनन्दचित्त पूर्वक राज्य का भार सौपकर निश्चिन्त हो गया। यह ठीक ही है कि (जिस समय) वह नन्दन राज्यसिंहासनपर आसीन हुआ तभी समस्त सामन्त एवं मन्त्रीगणोंने उसके दर्शन किये। परिजनोंके मनमें बड़ा हर्ष हुआ। अपने प्रभुको देखकर किसे आनन्द नही होता? इच्छाधिक दान देकर सुखी किये गये वन्दीजनोंके मनोरथ पूर्ण हो गये। वह राजा नन्दन शत्रुओंके लिए भीषण अवश्य था, किन्तु देवताओं अथवा विद्वानो से अलंकृत वह (राजा) साक्षात् जंगम कल्पवृक्षके समान ही प्रतीत होता था। उसने श्रेष्ठ एवं मनोज्ञ जिनगृहों तथा उनपर करोड़ों स्वर्णकूट बनवाये, जो पद्मराग-मणियों से अरुणाभ तथा नभस्तल तक पल्लवित विशाल वनके समान प्रतीत होते थे। और भी कि, जो व्यक्ति महान् सन्त होते है, वे (मन्दिर बनवाने आदि) धर्ममें अनुरक्त रहते है तथा परलोककी चिन्ता करते है। जिनके निरन्तर चलते हुए द्युतिपूर्ण चामरोंकी ऊँचाईसे खेचर एवं अमर भी आश्चर्यचकित थे, जिनके दानजलकी गन्धसे भौंरे राग-युक्त हो रहे है, ऐसे मदोन्मत्त महागज उसे भेंट स्वरूप प्राप्त हुए। इस प्रकार बहुत अधिक दान (भेंट) देनेवालोंके प्रति कौन सा व्यक्ति भाईके समान ही सन्तोष धारण न करेगा? उन्होने :—

घत्ता—हाथ उठाकर असि फल लेकर छल-कपट का त्यागकर सम्भाषण किया (और कहा कि) :—"मधुर-भाषी, कुशल एवं वात्सल्य गुणवाला यह नन्दन हमारा स्वामी (राजा) है।" ॥ १२ ॥

१३

राजा नन्दिवर्धन द्वारा आकाशमें मेघकूटको विलीन होते देखना

वह धीर-वीर नन्दन रूपी गोप, रक्षारूपी शक्तिशाली रस्सी द्वारा नियमन कर, निरुपम नयरूपी हाथोंसे लालन-पोषण कर, चार समुद्ररूपी पयोधरोके रत्नरूपी दुग्धसे युक्त पृथिवीरूपी गायका दोहन करने लगा। (अर्थात् वह राजा नन्दन चारों समुद्रों तक व्याप्त अपने विशाल साम्राज्यको सुरक्षित एवं समृद्ध कर प्रजाजनोंका न्याय-नीतिपूर्वक लालन-पालन करने लगा)। जिस समय कामदेवरूपी सिंह की गुफाके समान तथा पृथिवी-मण्डलकी सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी उस प्रियंकराके अधर मन्द-मन्द हास्यसे अलकृत होते थे, तब-तब वह नन्दन विना विरामके ही उसके साथ रमण करता था।

और इधर, जब राजा नन्दिवर्धनने कुलक्रमागत त्रिवर्गो का अनुक्रमपूर्वक साधन करते हुए सुखपूर्वक अगणित वर्ष व्यतीत कर दिये, उसी समय किसी एक दिन जब वह उन्नत, विशाल एवं श्रीसम्पन्न राजभवनपर रमणकार्यमे उत्कण्ठित सुनयनी अपनी रमणी (पट्टरानी) के साथ विराजमान था, तभी ऊपर आकाशमे लीलापूर्वक अत्यन्त शोभा-सम्पन्न मेघोका एक विचित्र कूट (शिखर) देखा। वह ऐसा प्रतीत होता था मानो आकाशरूपी समुद्रका सुन्दर चंचल पवनके द्वारा एकत्रित फेनसमूह ही हो।

घत्ता—शत्रु-राजाओंका विध्वंस करनेवाला वह राजा नन्दिवर्धन आश्चर्यचकित होकर स्थिर मनसे जब अपने सिर का (पलित) केश देख रहा था, तभी आकाशमे वह मेघ विलीन हो गया ॥ १३ ॥

१४

तहि अवसरि राएँ निय-मणेण झाइय अणिच्च अणुवेक्ख तेण ।
वउ जीविउ संपय रूउ आउ सव्वु वि णासइ जिह संझ-राउ ।
णिस्सेस वत्थु संतइ वियाणि चलयर खणद्ध रमणीय माणि ।
णिय-रायलच्छि सुहि सो विरत्तु वीरवइ-पियालंकरिय-गत्तु ।
5 मणि चिंतइ सो विस-सण्णिहेसु रइ वंधइ संसारिय-सुहेसु ।
जिउ घर-घरिणी-मोहेण मुत्तु उवभोय-भोय तण्हए णिरुत्तु ।
भव असि-पंजरे अमणोरमाए दूसह-दुरंत-दुक्खम्मि ताए ।
पेसिज्जइ जिउ अणवरउ तेम सूई-विवरंतरे तंतु जेम ।
जम्मंबुहि-मज्जंतहँ जणाहँ नर-जम्मु रम्मु चिंतिय-मणाहँ ।
10 भव-कोडि-मज्झि दुल्लहु भणंति कुल-वल-देसाईय तह हवंति ।
सेसु वि मइँ हिययारिणि सयावि विसएहिँ न जिप्पइ जा कयावि ।

घत्ता—अवगण्णइँ णउ अणुमण्णइँ जिउ अणाइ-मिच्छत्ते ।
सद्दंसणु पाव-विहंसणु भवे-भवे ताविय-गत्तेँ ॥१४॥

१५

अविरल-मिच्छत्तासत्तु जेण हिंडइ भव-सायरे जीउ तेण ।
विसएसु विरत्तु अदूर-भव्वु परिहरिवि परिग्गहु दुविहु सव्वु ।
आवज्जिय रयणत्तउ रएण जिण-दिक्ख लेइ मोक्खहो कएण ।
इय जाणंतु वि णिच्छउ सकज्जु तण्हए भुंजाविउ जाइ रज्जु ।
5 एव हिंसमूल सा मइ महंत उम्मूलिवि दुम मण-गय लहंत ।
वल्लीव खिवेव्वी वारणेण किं जंपिएण वहुणा अणेण ।
इय मणे मण्णेवि दिक्खाहिलासु दूरुज्झेवि सीमंतिणि-विलासु
मंदिर-सिहरग्गहो उत्तरेवि मणिमय सिंहासणि वइसरेवि ।
खणु एक्कु कुलक्कम-णंदणासु वाहरइ पुरउ णिय णंदणासु ।
10 तुहुँ पर असेस धरणीसराहँ लच्छीमंडणु खंडिय-पराहँ ।
किं वासर-सिरि दिवसाहिवेण विणु सोहइ लद्ध-णवोदएण ।
वित्थारंतहो जणयाणुराउ मेल्लंतहो रिउ विस्सासभाउ ।

घत्ता—मूल-वलहो जिय-वेरि-वलहो उण्णय-लच्छि करंतहो ।
किं मइँ तुह अवरु कमल-मुह उवएसिव्वउ संतहो ॥१५॥

---

१४. १. D. वज्जं । २. V. ° ई. ।
१५. १. D J. V. तन्हए ।

१४

राजा नन्दिवर्धनकी अनित्यानुप्रेक्षा

मेघकूटको सहसा ही विलीन हुआ देखकर राजा नन्दिवर्धनने उसी समय अपने मनमें अनित्यानुप्रेक्षाका (इस प्रकार) ध्यान किया—'वपु, जोवन, सम्पदा, रूप और आयु इन सभीका उसी प्रकार नाश हो जाता है, जिस प्रकार सन्ध्याकी लालिमा। समस्त वस्तु-सन्तति को नाशवान् समझो। वे सब तो आधे क्षणमात्र तक ही रमणीय प्रतीत होती है।' इस प्रकार अपनी प्रियतमा वीरवतीसे अलंकृत गात्रवाला वह विवेकी राजा अपनी राज्यलक्ष्मीसे विरक्त हो गया। ५ वह मनमें विचारने लगा कि—'विषके समान सांसारिक सुखोमें कौन रति बाँधेगा ? यह जीव उपयोग और भोगकी तृष्णामे लीन होकर मोह-पूर्वक गृह एवं गृहिणीमें निरन्तर आसक्त रहता है और इस प्रकार दुःसह एवं दुरन्त दुःखोंवाले संसार रूपी लौह-पिंजरे में यह जीव निरन्तर उसी प्रकार डाल दिया जाता है, जिस प्रकार सुईके छिद्रमें तागा।' उसने पुनः अपने मनमें विचार किया कि—'जन्म-मरणरूपी समुद्रमे निरन्तर डूबते-उतराते हुए प्राणियो के लिए मात्र यह नर-जन्म ही १० रम्य (आलम्बन) है। इस नर-भव-कोटिमें भी उत्तम कुल, बल, देश आदि का मिलना कठिन है और (यदि वे मिल भी जाये तो) अन्तमे विषयवासनाओं से कभी भी न जीती जा सकनेवाली सदैव हितकारी रहनेवाली बुद्धिकी प्राप्ति दुर्लभ है।

घत्ता—'भव-भवमें सन्तप्त शरीरवाला यह जीव अनादि कालसे मिथ्यात्व द्वारा तिरस्कृत होता आया है, फिर भी पापोंका विध्वंस करनेवाला सम्यग्दर्शन उसे नहीं रुचता' ॥ १४ ॥ १५

१५

राजा नन्दिवर्धनका जिनदीक्षा लेनेका निश्चय तथा पुत्रको उपदेश

'जिस कारण यह जीव मिथ्यात्वमें अविरलरूपसे आसक्त रहता है उसी कारण यह भवरूपी सागरमे भटकता है। सभी निकट भव्य (जीव) विषय-वासनासे विरक्त होकर तथा अन्तर्वाह्य परिग्रहोंको छोड़कर एवं रत्नत्रयको आदरपूर्वक धारण कर मोक्षप्राप्तिके हेतु जिन-दीक्षा धारण करते है। उक्त रत्नत्रय एवं जिन-दीक्षासे ही आत्म-कल्याण है, यह मै निश्चयपूर्वक जानता हूँ, तो भी तृष्णासे ग्रस्त होकर मैने राज्यभोग किया। इस प्रकार मेरी वह बुद्धि महान् हिसाकी मूल ५ कारण थी। मनोगत उस हिंसारूपी द्रुमलताको अब उसी प्रकार समूल नष्ट कर डालूँगा, जिस प्रकार हाथी लताओंको समूल उखाड़कर फेक देता है। अब इससे और अधिक कहनेसे क्या लाभ ?' इस प्रकार अपने मनमे मानकर तथा दीक्षाकी अभिलापा कर उसने सीमन्तिनियोंके साथ विलासको दूरसे ही छोड़कर, भवनके शिखराग्र (अट्टालिका) से उतरकर तथा मणिमय सिंहासनपर बैठकर कुछ क्षणोंमे ही कुल परम्पराको आनन्द प्रदान करनेवाले राजा नन्दनको १० अपने सम्मुख बुलाया और कहा—'समस्त राजाओंमे तू ही श्रेष्ठ है, तू ही लक्ष्मीका मण्डन है। तूने शत्रुओंको नष्ट कर दिया है। क्या नवोदित सूर्यके बिना दिनश्री शोभाको प्राप्त हो सकती है ? तुम प्रजा-जनोंके प्रति अनुरागका विस्तार करो तथा शत्रुजनोके प्रति विश्वासभावको छोड़ो।'

घत्ता—'तुम अपनी शक्तिशाली सेनासे शत्रुसेनापर विजय प्राप्त कर रहे हो। समृद्धिको भी उन्नत बना रहे हो। अतः हे कमलमुख, अब मै तुम्हें क्या उपदेश दूँ' ? ॥ १५ ॥ १५

१६

तेण तुज्झु अप्पेवि रज्जु साहंतहो णिरु परलोय कज्जु ।
गच्छंतहो महो तवत्रणो तणूय पडिकूलु म होज्जहि पणय-भूय ।
इय भूअ-भणिय-वाणी सुणेवि चिंतिवि खणेक्कु णिय-सिरु धुणेवि
विणयाणय-सिरु पणयारिवग्गु सुउ चवइ जणेरहो पायलग्गु
5 अहिअप्पहो परियाणो वि मणेण पइँ मुक्क रायलच्छी खणेण ।
जास विरोहहो वित्थरणि ताय कहिँ पडिवज्जमि गंभीरणाय ।
किं पइँ ण मुणिउ अच्छण असक्कु हउँ खणु वि तुज्झु सेवा-विमुक्कु ।
णिय जम्महो कारणे वासरेसि परिगइँ किं अच्छइ दिणु सएसि ।
दय-धम्म-मग्ग-रइ करइ जेम जणणेण भणिव्वउ तणउ तेम ।
10 पइँ एउ भणिउ किं हणिय सग्गु णरयंध-कूव-पडिवहण-मग्गु ।
पइँ पणवेवि मग्गमि दाण-सीलु तुहुँ पणय-पीड-हरु विमल-सीलु ।
पइँ सहुँ णिक्खवणु न अण्णु किंपि ठिउ मउणु करेविणु एउ जंपि ।

घत्ता—विसय-विरउ णिक्खवण-णिरउ सुउ परियाणिवि राएँ ।
कल-सद्दें मुक्क-विसद्दें आहासिउ गयराएँ ॥१६॥

१७

पइँ विणु इउ रज्जु कुलक्कमाउ गय पहु णासइ वित्थरिय राउ ।
णिय-कुल-संतइ पर वर-सुएण णिच्छउ उद्धरियइ णिववरेण[1]
जणणेरिउ साहु असाहु जं जि तणएण करेव्वउ अवसु तं जि ।
इय जाणंतु वि णय-मग्गु जाउ किं संपइ अण्णोरिसु[2] सहाउ ।
5 णिम्महिउ कुलक्कमु णरवरेण सुउ लइ तव वणि जंतेण तेण ।
इउ मज्झु दिंति अवजसु जणाइँ धरि तेण अच्छु कइवय दिणाइँ[3] ।
एउ भणिवि तणय-भालयलि चारु विप्फुरिय-रयण-गण तिमिर-भारु ।
सइँ वद्धु पट्टु जणणिं विसालु णं वद्धउ रिउ-णरवाहु-डालु ।
भूवाल मंति-सामंत-वग्गु महुर गिरइँ संभासिउ समग्गु ।
10 तुम्हइँ संपइ वहु-सामि-सालु पणविज्जहो णिव लच्छी विसालु ।
पियमय-सुमित्त-बंधव-यणाइँ पुच्छेविणु पणयट्ठिय मणाइँ ।
णिग्गउ गेहहो परिहरिवि दंदु पिहियासव-मुणिवर-पाय दंदु ।
पणवेवि तेण वर लक्खणेण ति-पयाहिण देविणु तक्खणेण ।
सविणय पंच-सय-णरेसरेहिँ सहुँ लेवि दिक्ख णिज्जिय-सरेहिँ ।

---

१७. १. J. V. D. जीवरेण । २. J. V. अण्णो । ३. J. विणाइं ।

१६

नन्दन भी पिता—नन्दिवर्धनके साथ तपस्या हेतु वनमें जाना चाहता है

'इसी कारण हे प्रणयभूत पुत्र, तुझे राज्य समर्पित कर परलोक साधनके लिए तपोवनमे जाते हुए मेरे प्रति तुम प्रतिकूल मत होना।' इस प्रकार राजा (नन्दिवर्धन) द्वारा कथित वचन सुनकर क्षणेक विचारकर तथा अपना सिर धुनकर अनतों (विनय विहीन) के सिर को विनत कर देने-वाले तथा अरिवर्गको झुका देनेवाले उस पुत्र (राजा नन्दन) ने पिताके चरणोंमें लगकर (झुककर) कहा—'अपने मनमें आपने राज्यलक्ष्मी को सर्पके समान भयंकर जानकर क्षणभर में उसे ५ छोड़ दिया। हे पिता, जिस विरोधसे आपने उस (राज्यलक्ष्मी) का विस्तार नही किया, हे गम्भीर न्यायके ज्ञाता, उसे ही मै कैसे स्वीकार कर लूँ ? इसके अतिरिक्त क्या आपने यह नहीं सोचा कि आपकी सेवासे विमुक्त होकर मै एक भी क्षण नहीं रह सकता। अपने जन्मदाता सूर्यके चले जानेपर क्या दिवस एक भी क्षण ठहर सकता है ? पिताके द्वारा पुत्रको इस प्रकारकी शिक्षा दी जानी चाहिए कि वह दया एवं धर्म-मार्गमें प्रवृत्त हो, किन्तु नरकके अन्धकूपकी ओर ले जानेवाले एवं १० स्वर्ग का हनन करनेवाले मार्ग का उपदेश आपने मुझे कैसे दिया ? हे विमलशील, आप प्रणाम करनेवालोंकी पीड़ाको दूर करते है। हे दानशील, आपको प्रणाम कर मैं आपसे यही आज्ञा माँगता हूँ कि मै भी आपके साथ निष्क्रमण करूँ और मौनपूर्वक स्थित होकर तपस्या करूँ, अन्य कार्य नही।'

घत्ता—वैराग्ययुक्त होकर राजाने पुत्र नन्दनको विषयोंसे विरत तथा निष्क्रमणमें दृढ़- १५ निश्चयी जानकर अहंकारविहीन मधुरवाणीमें कहा—॥ १६ ॥

१७

नन्दिवर्धन द्वारा मुनिराज पिहिताश्रव से दीक्षा

"तेरे जैसे संरक्षकके बिना कुलक्रमागत तथा राग-भावसे विस्तार किया गया यह राज्य नष्ट हो जायेगा। उत्तम नृप-पुत्रको चाहिए कि वह अपनी कुल सन्ततिकी परम्पराका निश्चयरूप से उद्धार करे। पिताके द्वारा कहे गये वचन चाहे साधु हों चाहे असाधु, पुत्रको उसका पालन अवश्य करना चाहिए। इस नीति-मार्गको जानते हुए भी तेरा स्वभाव इस समय अन्यथा क्यों हो गया है ? 'नृपवर नन्दिवर्धन तपोवनमें जाते समय अपने पुत्रको भी ले गया और इस प्रकार ५ उसने अपने कुलक्रमको ही उन्मूलित कर दिया' इस प्रकार कहकर लोग मुझे अपयश देगे अतः तू कुछ दिनों तक घरमे ही रह।

इस प्रकार कहकर राजा नन्दिवर्धनने पुत्र नन्दनके माथेपर सुन्दर, तिमिर-भारका अपहरण करनेवाला तथा रत्नोंसे स्फुरायमान राज्यपट्ट स्वयं ही बाँध दिया। वह ऐसा प्रतीत होता था मानो शत्रुजनोकी बाहुरूपी डाल ही बांध दी हो। इसके बाद भूपालने मन्त्री, एवं १० सामन्तोंके सम्मुख मधुर वाणीमें कहा—हे नृप, इस समय अनेक नतमस्तक राजे-महाराजे एवं सारभूत विशाल लक्ष्मी तुम्हारे अधिकारमे है। सिर झुकाये खड़े हुए प्रियतम, सुमित्र एवं बन्धु-जनोंसे पूछकर तथा मनके सभी द्वन्द्वोंको छोड़कर वह घरसे निकल गया और उस उत्तम लक्षणों-वाले राजा नन्दिवर्धनने तत्क्षण ही मुनिवर पिहिताश्रवके पादमूलमें प्रणाम कर तीन प्रदक्षिणाएँ देकर विनयपूर्वक कामदेवपर विजय प्राप्त करनेवाले पाँच सौ नरेशोंके साथ दीक्षा ले ली। १५

घत्ता—हे नेमिचन्द्र, चन्द्र एवं सूर्य द्वारा वन्दित जिनेन्द्रका नियमपूर्वक ध्यान करो तथा उसीमें अपना मन लगाओ और अपनी शक्तिपूर्वक तथा गुरुतर भक्तिपूर्वक तपश्रीके गृहस्वरूप श्रीधर मुनि द्वारा नन्दित बने रहो ॥१७॥

प्रथम सन्धिकी समाप्ति

इस प्रकार प्रवर गुण रूपी रत्न-समूहोंसे भरपूर विविध श्री सुकवि श्रीधर द्वारा विरचित साधु-स्वभावी श्री नेमिचन्द्रके लिए नामांकित श्री वर्धमान तीर्थंकर देवके चरितमें नन्दिवर्धन नरेन्द्रका वैराग्य-वर्णन नामका प्रथम परिच्छेद समाप्त हुआ ॥६॥ सन्धि ॥ १ ॥

आश्रयदाताके लिए आशीर्वाद

पवित्र, निर्मल एवं शोभा-सम्पन्न चारित्ररूपी आभूषणोंके धारी, धर्म-ध्यान-विधिमें निरन्तर रति करनेवाले, विद्वज्जनोंके लिए प्रिय, अन्तःकरणमे अभीप्सित अखिल-जगत्की वस्तु-समूहको प्राप्त करनेवाले, दुर्जेय, एवं तत्त्वार्थके विचारमें उद्यत मनवाले श्री नेमिचन्द्र चिरकाल तक इस लोकमें आनन्दित रहें।

सन्धि २

१

घत्ता—तव-वणे गए स-जणणे अवणीरुह-घणे तहो विओय-सोयाहउ।
णरवइ तिह खेज्जइ जिह मणि झिज्जइ विंझ विउत्तु महागउ॥

सयल-भुवणयल-गइ जाणंतुवि करयल-रयणु व मणि माणंतु वि।
मइवंतु वि वित्थारिय-सोएँ अवसेँ तम्मइ जणण-विओएँ।
5 तहिँ अवसरि बुहयण-सामंतइँ मंति-पुरोहिय-सुहि-सामंतएँ।
जणण-विओय-वणिउ बुज्झावहि तं सुयत्थ-वयणिहि विभावहि।
को ण महंतहँ मणु अणुरंजइ पुरउ पतिट्ठिउ सोउ पउंजइ।
सामिय सोउ विसाउ मुएप्पिणु अम्हहँ उवरि[1] दया विरएप्पिणु।
पहु परिहरिय सभासहिँ पिय-पय संभालहिँ स-जणेरहो संपय।
10 हवइ सोय-वसु कुपुरिसु कायरु ण उ कयावि सुपुरिसु गुण-सायरु।
स-जणण-दिण-किरिया-सयलविकुरु गुरु-भत्ति[2] पणवहि सुदेउ-गुरु।
पइँ सोयंवुरासि-ठिएँ के वि वर होंति सचेयण सुह-माणस णर।

घत्ता—इय पहु आसासेवि सविणउ भासेवि सयल वि सह गय गेहहो।
भय-भाव-विवज्जिय तेण विसज्जिय सिहरालिंगिय-मेहहो॥ १८॥

२

मुएवि सोउ सजणेरसमुब्भउ सहिउ विसाएँ पयणिय-दुब्भउ।
सयल मणिच्छिय किरिय समाणिय णंदणेण जिह तेण वियाणिय।
कइवय-वासरेहिँ विणु खेएँ[1] णियबुद्धिए वइरियण-अजेएँ[2]।
विहिय गुणाणुरत्त मेइणि-वहु भय पणयारि तइँवि ललए लहु।
5 जं तहो करु पावेविणु चंचल णरणाहहो लच्छी हुव णिच्चल।
तं अच्चरिउ ण जं पुणु थिरयर कित्ति महीयले णिज्जिय ससिहर।
अणुदिणु भमइ णिरारिउ सुंदर[3] तं जिवित्तु पूरिय-गिरि-कंदर[4]।
तेण ण केवलु मच्छर रहिएँ कंति-कुलक्कम-विक्कम-सहिएँ।

१. १. . J. V. °रे। २. . तें।
२. १. D. V. वें। २. D. V. वें। ३. D. °र। ४. J. V. °रु।

सन्धि २

१

राजा नन्दन पितृ-वियोगमें किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है।

घत्ता—अपने पिताके घने वृक्षवाले तपोवनमे चले जानेपर उनके वियोग-शोकसे आहत राजा नन्दन इस प्रकार खीजने और झीजने (झूरने) लगा, जिस प्रकार विन्ध्याचलमें वियोगी महागज ॥६॥

वह राजा नन्दन अपने मनमें संसारकी समस्त गतिको जानता था तथा उसे हथेलीपर रखे हुए रत्नकी तरह मानता था। वह मतिवान् था, तो भी उसे पिताके वियोगका इतना शोक ५ बढ़ गया कि वह उसमें तिरोहित होकर किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गया। उस अवसरपर बुधजन, सामन्त, मन्त्री, पुरोहित, एवं सन्मित्रोंने मन्त्रणा की कि इस वणिक्‌को पिताके वियोगका दु:ख है, अत: इसे (हम लोग) समझायें तथा श्रुतार्थके वचनोंसे इसे भावित (सम्बोधित) करे। (ठीक ही कहा गया है कि) महान् पुरुषोके मनका अनुरंजन कौन नही करता? अत: वे उसके सम्मुख आकर बोले—"हे स्वामिन्, हमारे ऊपर दया करें, हे प्रभु, विषादको शीघ्र ही छोड़ें तथा अब १० अपने पिताके प्रियपदको सम्हालें। जो सुपुरुष एवं गुणसागर हैं, वे कभी भी शोकाकुल नहीं होते। क्योंकि शोकके कारण व्यक्ति कुपुरुष एवं कायर बन जाता है। अत्यन्त भक्तिपूर्वक सुदेव एवं सुगुरुको प्रणाम कीजिए और अपने पिताके द्वारा प्रदत्त समस्त कार्योको कीजिए। यदि आप शोक-सागरमें डूबे रहेगे तो ऐसे कौन से सचेतन व्यक्ति हैं, जो सुखी मन होकर रह सकेगे।"

घत्ता—इस प्रकार अपने स्वामीको आश्वस्त कर एवं विनयपूर्वक समझाकर सभी जन १५ गगनचुम्बी शिखरोंवाले सभास्थलसे नन्दनके तपोवन जाने सम्बन्धी अपने भयकी भावनाको दूरकर तथा राजा (नन्दन) से आज्ञा प्राप्तकर अपने-अपने घर चले गये ॥१८॥

२

राजा नन्दनकी 'नृपश्री' का विस्तार

'विषाद करने से दुर्गति प्राप्त होती है' यह जानकर पितृ-वियोग सम्बन्धी उत्पन्न शोकको छोड़कर उस राजा नन्दनने, जिस प्रकार वह जानता था उसी प्रकार अपने मनमें इच्छित समस्त क्रियाओंको किया। कुछ ही दिनोमें बिना किसी बाधाके, मात्र अपने बुद्धिबलसे ही उसने लालन-पालन कर पृथिवी रूपी वधूको शीघ्र ही अपने गुणोमें अनुरक्त कर लिया तथा दुर्जेय शत्रुजनोंको भयभीत कर देने मात्रसे ही उन्हे नम्रीभूत बना लिया। जो लक्ष्मी चंचला थी, वह उस नरनाथका ५ सहारा पाकर निश्चल हो गयी, यह कोई आश्चर्यका विषय न था। तथा उसकी पूर्णमासीके चन्द्रमाको भी निर्जित कर देनेवाली स्थिरतर कीर्ति, पृथिवीतलपर निरन्तर भ्रमण करने लगी। अत्यन्त सुन्दर उस राजाने गिरि-कन्दराओं तकको समृद्धियो से भर दिया। मात्सर्य-विहीन

ससियर-सरिस गुणेहिँ पसाहिउ महिमंडलु अरिगणु वि महाहिउ।
इय सत्तित्तएण तहो जावहिँ दिणि-दिणि णिव-सिरि वड्ढइ तावहिँ।
10 घत्ता—धारिउ तहो मज्झए गब्भु[5] सलज्जए हुव पंडुर गंडत्थल।
पेट्टु वि परिवड्ढइ पयमंथरगइ कसणाण वि सिहिणत्थल॥ १९॥

३

उत्तमम्मि वासरम्मि उग्गयम्मि [1]नेसरम्मि।
सामिणो पियं कराए[2] सुंदरो पियंकराए[3]।
णंदु णाम पुत्तु ताए जाउ णं महालयाए।
पल्लवो, पलंब-बाहु रूव धत्थ मार राहु।
5 कंतिवंतु णं णिसीसु तेयवंतु णं दिणेसु।
वारिरासि णं अगाहु वेरिक्खरोह वाह
सो दिणे दिणम्मि जाम वड्ढए सगेहिँ ताम।
पत्तु कामएव-बंधु उच्छलंत-फुल्ल-गंधु।
दक्खिणाणिलं वहंतु माणिणी-मणं डहंतु।
10 कीर-कोविला-रवालु हिंडमाण-भिंग-कालु।
कोरयंकुरेहिँ जुत्तु कंज केसरीहिँ रत्तु।
पिंडि[4] पल्लवेहिँ रम्मु रुक्ख-राइ-रुद्ध-घम्मु।
कामुआण दिण्ण-सम्मु चूवमंजरीहि नम्मु।
वल्लरीहि लंबमाणु चच्चरीहिं गायमाणु।
15 [5]पीयडंतु जामिणीहि कीलमाण कामिणीहिँ।
जोण्हणाइँ काम कित्ति णं मुणीसराण वित्ति।
हंस-सेणिए हसंतु कामि-माणिओ वसंतु।
घत्ता—इय फुल्लिय-वल्लिहिँ, ललिय-णवल्लिहिँ, पविराइय वणवालेँ[6]।
लीलइ विहरंतेँ, हरिसु करंतेँ वणि[7] उण्णामिय भालेँ॥ २०॥

४

तहिँ णिविट्ठु पोढिलु मुणि दिट्ठउ मइ-सुय-अवहि-ति-णाण-गरिट्ठउ।
तहो पय-जुअलु णवेविणु भावेँ पविमुक्कउ पुव्वज्जिय-पावेँ।
गउ वणवालु तुरंतउ तेत्तहे अच्छइ णिवइ सहंतरे जेत्तहे।
पडिहारहो वयणेँ पइसेप्पिणु महिवइ पाय-जुयलु पणवेप्पिणु।
5 जाणाविउ मुणिणाह-समागमु कय-भव्वयण-मणोरह-संगमु।
दरिसिय कुसुमहि कहिउ वसंतु वि सोसिय-विरहिणि मास वसंतु वि।

---

५. J. V. गव्वु।
३. १. D. J. V. ते°। २ J. D. इं। ३. D. इं। ४ V. °ड। ५. D. J. पा°। ६. D. J. V. वणिवालेँ। ७. J. D. V. वण।

तेजस्विता एवं कुल-क्रमागत विक्रमसे युक्त उस राजाने चन्द्रमाके समान अपने सात्त्विक गुणोंसे न केवल पृथिवी-मण्डलको सिद्ध कर लिया था। अपितु दुर्जेय शत्रुगणोंको भी वशमें कर लिया था। ५ इस प्रकार अपनी तीनों शक्तियों (कोषबल, सैन्यबल एवं मन्त्रबल) से उस राजाकी 'नृपश्री' दिन प्रतिदिन वृद्धिगत होने लगी।

घत्ता—उस राजाकी लज्जावती भार्या प्रियंकराने गर्भधारण किया, जिसके कारण उसके गण्डस्थल पाण्डुरवर्णके हो गये, पेट बड़ा होने लगा, पैरोकी गति मन्थर हो गयी तथा स्तनोंके अग्रभाग कृष्ण वर्णके हो गये ॥२०॥ १०

३

राजा नन्दन को नन्दनामक पुत्रकी प्राप्ति : वसन्त ऋतुका आगमन

उस रानी प्रियंकरा (की कोख) से शुभ दिवसमें, सूर्योदयके होनेपर स्वामी (राजा नन्दन) लिए प्रियकारी सुन्दर 'नन्द' नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। वह ऐसा प्रतीत होता था, मानो महालता-का पल्लव हो। वह लम्बी भुजाओंवाला था। सौन्दर्यमें कामदेवरूपी राहुको ध्वस्त करनेवाला था। कान्तिमें वह चन्द्रमा तथा तेजस्वितामें सूर्यके समान था। गम्भीरतामें वह समुद्रके समान था। वह बैरी रूपी बाधाओंको रोकनेवाला था। ५

जब दिन प्रतिदिन वह अपने साथियोंके साथ वृद्धिगत हो रहा था कि उसी बीच फूलोंकी गन्ध लेकर उछल-कूद करते हुए वसन्तका आगमन हुआ। दक्षिण-वायु (मलयानिल) बहने लगी, मानिनियोंके मनमें दाह उत्पन्न होने लगी, तोते एवं कोयले मधुर वाणी बोलने लगीं, काले-काले भौंरे डोलने लगे, कोरक वृक्ष रक्ताभ अंकुरोसे युक्त होने लगे। कमलपुष्प केशरोसे युक्त हो गये। मदनक (दाडिम ?) पल्लवोंसे रम्य हो गये, रूख (वृक्ष)-पंक्तियाँ घाम (धूप) को रोकने लगीं, १० वह ऋतुराज झुकी हुई आम्र-मंजरियोके बहानेसे मानो कामदेवकी आज्ञाको प्रदान करता हुआ, लता-वल्लरियोंसे झूमती तथा संगीत करती हुई भ्रमरियों तथा रतिक्रीड़ामें संलग्न कामिनियोकी सिसकारियोंसे व्याप्त रात्रियोंसे युक्त था। वह कामरूपी कीर्तिके लिए ज्योत्स्नाके समान था। वह वसन्त ऋतु मुनीश्वरोंकी वृत्तिके समान तथा हंस-पंक्तियोंको हँसानेवाला और कामी एवं मानीजनों-को शान्त करनेवाला था। १५

घत्ता—इस प्रकार ललित, नवेली एवं फूली हुई बेलोंसे सुशोभित उस वनमें हर्षित होकर उन्नत भाल किये हुए तथा लीलापूर्वक विहार करते हुए, वनपालने—॥२०॥

४

वनपाल द्वारा राजाको वनमें मुनि प्रोष्ठिलके आगमनकी सूचना

वहाँ (उस वन में वनपालने) बैठे हुए मति, श्रुत एवं अवधि रूप तीन ज्ञानोंसे सुशोभित पोष्ठिल नामक एक मुनिराजको देखा। उनके चरण-कमलोंमें भावशुद्धिपूर्वक नमस्कार कर पूर्वार्जित पापोंसे मुक्त हो गया। फिर वह (वनपाल) तुरन्त ही वहाँ पहुँचा, जहाँ सभाके मध्यमें वह नृप विराजमान था। वनपालने द्वारपालके आदेशसे (सभाभवनमे) प्रवेश कर महीपतिके चरण-कमलोंमें नमस्कार कर उसे भव्यजनोंके मनोरथोंका संगम करानेवाले उन मुनिनाथका आगमन ५ जताया तथा उसे वसन्त-मासके पुष्पोंको दिखाकर विरहिणी-कामिनियोंका शोषण करनेवाले वसन्तऋतुके आगमनकी भी सूचना दी।

तं णिसुणेप्पिणु मुणि वणि संठिउ रोमंचिय-सरीरु उक्कंठिउ ।
हरि-विट्ठरहो समुट्ठिउ जाइवि सत्त-पयइँ मुणि-सम्मुहु ठाइवि ।
मुणिपुंगवहो णविउ धरणीसरु कंति-विणिज्जिय-छण-रयणीसरु ।
10 चूडामणि-पीडियं[1] महि-मंडलु णं जिणणाहहो सइँ आहंडलु ।
वणवालहो मणु हरिसहिँ[2] णेविणु सहुँ साहरणहिँ वहु धणु देविणु ।
घत्ता—णिय-णयरे णरेसेँ भत्ति विसेसेँ वंदणत्थु मुणिणाहहो ।
भेरी-रव-सद्दें वइरि विमद्दें[3] काम-मयहु जोवाहहो ॥२१॥

५

गंभीरुधीरयरु विंभविय-सुर-खयरु ।
भुवणयले पविमद्दु[1] निसुणेवि तहो सद्दु ।
जिण-धम्म सायरइँ सव्वत्थ णायरइँ ।
भव्वयण-सुहयरइँ णिग्गयइँ लहुयरइँ ।
5 णिव-वयणु पावेवि णीसरिय धावेवि ।
णरणाह-रामाउ जण-णयण-रामाउ ।
संजणिय-कामाउ मज्झम्मि खामाउ ।
सविलास-णयणाउ दर-हास-वयणाउ ।
सोमाल-गत्ताउ जिणणाह-भत्ताउ ।
10 भूसणहि दिप्पंत हरसेण-छिप्पंत ।
आरुहिय जाणेसु सुरहर-समाणेसु ।
सहुँ अंग-रक्खेहिँ सररुह-दलक्खेहिँ ।
करि-कलिय-असिवरहिँ णिव्वूढ-किंकरहिँ ।
पर-चक्क-महिहरहिँ गय-संख-महिहरहिँ ।
15 परियरिउ वंदिणहिँ गुण-लच्छि-णंदिणहिँ ।
चिंतियइँ पूरंतु दाणेण चूरंतु ।
महीवीढु हरिवरहिँ उत्तुंग रहवरेहिं ।
आरुहिवि णरणाहु करि पवर महिणाहु ।
तक्काल-वेसेण णरवइ विसेसेण ।
20 णं सरिउ सहसत्ति पयडंतु जिणभत्ति ।
घत्ता—मुणि-वंदण-कारणे, सुह-वित्थारणे, मण अणुराएँ चोइउ ।
मंदिर-सिहरत्थहिँ अइ-सुपसत्थहिँ पउरंगणहिँ पलोइउ ॥ २२ ॥

६

एत्थंतरे पावेविणु मणहरु विज्जाहर-विरइय-वल्लीहरु ।
णंदण-वण-सण्णिहु सुंदर-तणु मुणि-पय-रय-फंसण-वस-पावणु ।
दाहिण-पवण-विहंसिय-पह-समु णंदणु णरवइ सक्कंदण-समु ।

४. १. D. J. V. °ढ° । २. V. हरिसहो । ३. V. °हिं ।
५. १. D. °रे ।

वनमें स्थित मुनिराजविषयक वृत्तान्त सुनकर वह राजा नन्दन रोमांचित शरीर होकर (उनके दर्शनार्थ) उत्कण्ठित हो गया। अपनी कान्तिसे रजनीश्वर—चन्द्रको जीत लेनेवाला वह धरणीश्वर सिंहासनसे उठकर मुनि-पुंगवको अपने सम्मुख करके सात पैर आगे गया और उन्हे नमस्कार किया। उसने पृथिवी-मण्डल पर अपना चूड़ामणि रगड़ा। उस समय वह राजा ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो जिनेन्द्रके समीप स्वयं इन्द्र ही आ गया हो। राजाने मनमे हर्षित होकर उस वनपालके लिए अपने आभरणोंके साथ ही अनेक धन प्रदान किये। १०

घत्ता—राजा नन्दनने अपने नगरमे भक्ति-विशेषसे (भरकर) कर्म-शत्रुके विमर्दक एवं काममदको जीतनेवाले मुनिनाथकी वन्दना हेतु भेरी-रव करा दिया ॥२१॥ १५

५

राजा नन्दनका सदल-बल मुनिके दर्शनार्थ प्रयाण

गम्भीर, धीर तथा सुरों एवं खेचरोंको विमर्दित कर देनेवाले उस भेरीके शब्दको सुनकर, जिनधर्ममें सागरके समान गम्भीर, शब्द एवं अर्थके (मर्मको समझनेमें) नागर (अग्रणी) और भव्यजनोंके लिए सुखकर उन मुनिराजके दर्शनोंके हेतु राजाका आदेश पाते ही लोग तत्काल ही निकल पड़े, निकल-निकलकर दौड़ने लगे। लोगोके नेत्रोंको रम्य लगनेवाली, उत्पन्न मनोरथ वाली, कृशकटिभागवाली, विलासयुक्त नेत्रोंवाली, मन्द-मन्द हास्य युक्त मुखोंवाली, सुकुमार गात्रोंवाली, जिननाथकी भक्ति करनेवाली, आभूषणोंसे दीप्त तथा हर्षसे प्रमुदित रामाएँ (रानियाँ) विमानोंके समान यानोंमे सवार हुईं। ५

कमलदलके समान नेत्रोंवाले अपने अंगरक्षकोंके साथ, हाथोंमे तलवार धारण किये हुए कुशल-सेवकोके साथ, विजित शत्रु राजाओं एवं असंख्यात (अन्य) राजाओके साथ, गुणोंरूपी लक्ष्मीका अभिनन्दन करनेवाले बन्दीजनों द्वारा सेवित, (याचको की) मनोकामनाओंको पूर्ण करता हुआ तथा दान देकर दरिद्रताको चूर-चूर करता हुआ, पृथिवी-मण्डलपर सिंहासनसे युक्त उत्तुग रथोंके साथ वह पृथिवीनाथ नरनाथ राजा नन्दन भी नरपतिके योग्य तथा अवसरोचित वेश-भूषा धारण कर अपनी जिन-भक्तिको प्रकट करता हुआ श्रेष्ठ हाथीपर सवार होकर सहसा ही इस प्रकार निकल पड़ा, जैसे (बरसाती) नदी ही निकल पड़ी हो। १०

घत्ता—सुखका विस्तार करनेवाली, मुनि-वन्दनाके कारण मनमें अनुरागसे प्रेरित हुए उस राजाको भवनोंके शिखरोंपर स्थित अति-सुप्रशस्त पौरांगनाओने देखा ॥२२॥ १५

६

राजा नन्दन मुनिराज प्रोष्ठिलसे अपनी भवावलि पूछता है

इसी बीचमें विद्याधरों द्वारा निर्मित नन्दनवनके सदृश मनोहर लतागृहमे पहुँचकर मुनिराजके चरणकमलोंके दर्शनोके लिए उत्सुक तथा उसके चरणोंकी पावन-रजको स्पर्श करने

हेतु, इन्द्रके समान सुन्दर गात्रवाला वह नरपति नन्दन दक्षिण-वायुसे पथके श्रमको शान्त कर दूरसे ही मदोन्मत्त महागजको छोड़कर नीचे उतर पड़ा तथा भव्यजनोंके सम्मुख ही उसने उन मुनिराजके प्रति विनय प्रदर्शित की। (ठीक ही कहा गया है कि) 'विनयगुणके विना कौन व्यक्ति शिव (कल्याण) पा सकता है ?' छत्र आदि नृप-चिह्नोंको छोड़कर तथा दुर्जेय मिथ्यात्वरूपी शत्रुसे अनिर्जित होकर उस राजाने वनके मध्यभागमें प्रविष्ट होकर गम्भीर एवं महाध्वनिवाले तथा पृथिवीके समस्त भयभीत प्राणियोंको शरण प्रदान करनेवाले मुनिराजको अशोक-वृक्षके मूलपीठमे एक स्फटिक शिलापर बैठे हुए देखा। वे ऐसे प्रतीत होते थे, मानो धर्मरूपी यानके माथेपर बैठकर शिवपदकी ओर ही जा रहे हों। हाथ जोड़कर तथा तीन प्रदक्षिणाएँ देकर उसने अपना सिर झुकाकर उनकी वन्दना की तथा पृथिवी तलपर उनके समीप बैठकर न्यायनीतिसे युक्त महीपतिने अनेक प्रकारसे विनय —

घत्ता—तथा प्रशंसा कर उनसे इस प्रकार प्रार्थना की कि पंचबाणावलिका दलन करनेवाले एवं तपश्रीके साथ रमण करनेवाले हे श्रेष्ठ मुनीश्वर, मेरी भवावलि कहें—॥२३॥

७

राजा नन्दनके भवान्तर वर्णन—नौवाँ भव—सिंहयोनि वर्णन

इस प्रकार कहकर तथा मौन धारण कर नरपति (नन्दन) जब वहाँ सम्मुख जाकर बैठा था, तभी प्रतिदिन त्रिकरण—मन, वचन एवं कायका संवर करनेवाले दिगम्बर मुनिराज बोले—'हे कुल-दिनमणि, हे भव्य-चूड़ामणि, स्थिर होकर एकाग्र मनसे सुनो—इसी भरतक्षेत्रमे हिमवन्त-पर्वतसे समुत्पन्न तथा समुद्र के समान दिखाई देनेवाली सुन्दर गंगानदी है, जिसका जल श्रावकों (अथवा श्वापदों) का भरण-पोषण करनेवाला है तथा जो (गंगाजल) अपने फेन-समूह के बहाने अन्य नदियों पर हँसता हुआ-सा रहता है।

उस गंगानदीके उत्तर-तटमे अति गौरवांग वराह नामका उत्तुंग पर्वत है, जो ऐसा प्रतीत होता है, मानो पृथुल आकाशको लाँघकर स्वर्गका निरीक्षण करनेका ही विचार कर रहा है।

उस पर्वतपर हे नरपति, तू इसके पूर्व नौवें भवमें मदोन्मत्त हाथियोके दर्प का दलन करनेवाला एक भयानक सिंह था, जो कुटिल भौहोंवाला, भीषण गर्जना करनेवाला, बालचन्द्रके समान दाढ़ोंवाला, पूँछरूपी हाथ ऊपर उठाये हुए, निश्चल एवं वक्र केशर (अयाल) वाला, क्रूर मुखवाला एवं रक्त वर्णके नेत्रवाला था तथा जो श्वापदों (वनचर जीवों) को मारने मे समर्थ था।

घत्ता – वृक्षावलिके गृहके समान उस पर्वत पर निवास करते हुए, वनमें रमण करते हुए तथा वन्य-हस्तियोंका दलन करनेमें कृतान्तके समान ही उनका हठात् खींच-खीचकर दलन करते हुए, उस सिंहने वहाँ बहुत समय व्यतीत कर दिया ॥२४॥

८

चारणमुनि अमितकीर्ति और अमृतप्रभ द्वारा सिंहको प्रबोधन

अन्य किसी एक दिन वह मृगपति वन्य हस्तियोंको मारकर श्रमातुर होनेके कारण जब अपने केशर-समूह को फैलाकर गुफा-द्वारपर सो रहा था, तभी काम-बाणको नष्ट कर देनेवाले

लहु अंवरिय[२] णहहो णह-चारण सीह-पवोहणत्थु सुह-कारण ।
5 सत्त-वण्ण-तरु-तले सुविसिट्ठइँ सुद्ध सिलायले वे वि निविट्ठइँ ।
साणुकंप कलकंठ महासइ सत्थु पढंतें पवर संजय-जइ ।
मत्त-महा-मयगल-पल-लुद्धउ ताहँ सद्दु सुणि सीहु पवुद्धउ ।
कूर-भाउ परिहरिवि पहूवउ पंजलयर-मणु सोमु सरूवउ ।
णीसरेवि गुह-मुहहो मयाहिउ अइ-पसमिय-भावेण पसाहिउ ।
10 ताहँ समीवें निविट्ठु नयाणणु थिर-लंगूल्लु दुरय-संदाणगु ।

घत्ता—तं णिएवि निराउहु जियकुसुमाउहु अमियकित्ति संभासइ ।
सीलालंकारउ निरहंकारउ दिय-पंतिप्पहु भासइ ॥२५॥

९

भो सीह जिणिंदहो पणय-सुरिंदहो सासणयं ।
तिहुयण-भव्वयणहँ वियसिय वयणहँ सासणयं ।
वहु दुक्खु सहंतें पइँ अलहंतें भव-गहणें ।
णाणा-तणुलिंतें णडुअ मुअंतें अइगहणें ।
5 सीहेणव विलसिउ मय-गल[१]-तासिउ एत्थु पर ।
पूरिय गयदंतिहिँ मोत्तियपंतिहि सयलधर ।
णासाइ विवज्जिउ परिणामज्जिउ दिट्ठिमउ ।
सइँ कत्तउ भुत्तउ विंवहो मित्तउ णाणमउ ।
सहुँ रायहिँ सुंदर माणिय-कंदर परिहरहि ।
10 मिच्छत्तु दुरंतउ धम्मु तुरंतउ अणुसरहि ।
राई वंधइ जिउ ण मुणइ णिय-हिउ कम्म-कलं ।
गय-राउ ति मुच्चइ अण्णु न संचइ पवर-वलं ।
उवएसु अणिंदहो एउ जिणिंदहो तुव कहिउ ।
पयणिय-दुह-सोक्खहो वंध-विमोक्खहो णउ रहिउ ।
15 वंधाइय दोसहो णिरसिय तोसहो मूल मुणि ।
दोसहँ जउ अक्खिउ सुक्खु विवक्खिउ पुणु वि सुणि ।
तहु विद्धिए हम्मइँ हय अवगम्मइँ णित्तुलउ ।
सम्मत्तु सुणिम्मलु णिहणिय-भवमलु सुहणिलउ ।

घत्ता—रायाइय-दोसहिँ पयणिय-रोसहिँ जा पइँ भमिय भवावलि ।
20 सा सीह [२]हियत्तें णिसुणि पयत्तें मणु थिरु करि जंतउ वलि ॥२६॥

२. . °ओ ।
९. १. D. °वहु । २. J. V. दियत्तें ।

1. The saga who is gifted with the power of moving in the sky independently.

अमितकीर्ति एवं अमृतप्रभ नामके सभीके हितैषी दो नभचारण मुनि उस सिंहको देखकर (उसे) प्रबोधित करने हेतु वहाँ शीघ्र ही उतरे। वहाँ वे दोनों ही मुनि सप्तपर्णी वृक्षके नीचे एक विशेष निर्मल शिलापर बैठ गये। महान् आशय वाले वे संयत मुनिवर अनुकम्पा सहित मनोज्ञ-कण्ठसे ५ शास्त्र पढ़ने लगे। मदोन्मत्त गजराजोंके मांसका लालची वह सिंह मुनिराजके शास्त्र-पाठ को सुनकर प्रवुद्ध हुआ। क्रूरभावको छोड़कर उसका प्रांजलतर मन सौम्य-स्वरूपको प्राप्त हो गया (अर्थात् उस सिंहकी साहजिक क्रूरता समाप्त हो गयी और उसके परिणाम कोमल हो गये)। हाथियोंके लिए भयानक मुखवाला वह मृगाधिप अत्यन्त प्रशम-भावपूर्वक तथा प्रमाद-रहित होकर गुफाद्वारसे बाहर निकला और पूँछको स्थिर किये हुए नतमुख होकर मुनिराजोके १० समीप बैठ गया।

घत्ता—उसे देखकर निरायुध, काम-विजेता, शीलगुणसे अलंकृत, निरहंकारी तथा द्विज-पंक्तिके समान सुशोभित वे मुनिराज अमितकीर्ति (इस प्रकार) बोले—॥२५॥

९

सिंहको सम्बोधन

"हे सिंह, तूने देवों द्वारा प्रणत, त्रिभुवनका शासन करनेवाले तथा भव्यजनोंके मुखोंको विकसित करनेवाले जिनेन्द्रके शासन (उपदेश) को प्राप्त नही किया, अतः अतिगहन भवरूपी वनमे नाना प्रकारके शरीरोंको धारण करते हुए अनेकविध दुख सह रहा है। कष्टोंमे भी प्रसन्नता-का अनुभव करता हुआ, हे सिंह, यहाँ तूने मदोन्मत्त हाथियोंको त्रास दिया है तथा बड़े नये-नये विलास किये है। समस्त भूमिको मोतीके समान गजदन्तोंसे भर दिया है। फिर भी आशाओंको ५ न छोड़ा। (अशुभ-) परिणामोंसे कर्मों का अर्जन किया, दृष्टिमदसे युक्त रहा। (देख) यह जीव स्वयं ही (कर्मोका) कर्ता एवं भोक्ता है। (तूने) ज्ञानमय बिम्ब (आत्मा) का (शरीरके साथ) भेद नही किया (नहीं पहचाना)। (अतः अब) रागादिक भावोंके कारण सुन्दर लगनेवाली इस मिथ्यात्व-पाप रूपी कन्दराको छोड़, तुरन्त ही धर्मका अनुसरण कर। यह जीव रागी होकर कर्मोका बन्ध करता है; किन्तु अपने हितका विचार नही करता। अतः गतराग होकर इस कर्मको १० छोड़। अपने प्रबल बलसे अन्य कर्मोका संचय न कर। अनिन्द्य जिनेन्द्रका यह उपदेश मैने नय-विहीन तुझे सुनाया है, जो कि सुख, दुख, बन्ध एवं मोक्ष (की परिभाषा) को प्रकट करता है। (तू) बन्धादिक दोषोंका निरसन कर सन्तोषके मूल कारण (धर्म) का ध्यान कर। यहाँ तक (भव) दोषोंका वर्णन किया अतः अब सुखकी विवक्षा की जायेगी। उसे भी सुन।"

"धर्म-वृद्धिका हर्म्य (प्रासाद) अवगमनों (दुर्गतियों) को नष्ट करनेवाला, अनुपम, १५ भवमलका घातक एवं सुखोंके निलयरूप सुनिर्मल सम्यक्त्व ही वह सुख है (तू उसे धारण कर)।"

घत्ता—"रागादिक दोषों एवं रोषोंको प्रकट करते रहने के कारण तू जो भवावलियोमें भटकता रहा है, हे सिंह, धैर्य-पूर्वक सावधान होकर तथा मनको स्थिर करके उस भ्रमणा-वलिको सुन" ॥२६॥

१०

एत्थवि जंबूदीव विदेहइँ पंगणि वरिसिय विविहइँ मेहइँ ।
पुंक्खलवइ-विसयम्मि विसालए णारि-दिण्ण-मंगल-रावालए ।
सीया-जलवाहिणि-उत्तरयलें अगणिय-गोहण-मंडिय-महियलें ।
विउल पुंडरिंकिणि पुरि निवसइ जहिं मुणिगणु भव्वयणहँ हरिसइ ।
5 सत्थवाहु तहिं वसइ वणीसरु धम्म-सामि नामेण महुर-सरु ।
तहो सत्थेण तेण सहुँ चलियउ मंदगामि तवलच्छी-कलियउ ।
हियय कमलें-विणिहित्त जिणेसरु णामें सायरसेणु मुणीसरु ।
एक्कहिं दिणि चोरेहिं विलुंटिए । तम्मि सत्थि लवडोवल-कुट्टिए ।
सूरहिं जुज्झेवि पाण-विमुक्कइँ कायर-णरइँ पलाइवि थक्कइँ ।
10 एत्थंतरे वण-मज्झे मुणिंदें तव-पहाव-उवसमिय-फणिंदें ।
दिस-विहाय-मूढेण णिहालिउ सवरु कालि-सवरी-भुव-लालिउ ।
सूवर-हरिण-वियारिय-सूरउ रूव-रहिउँ नामेण पुरूरउ ।
पुव्वज्जिय-पावेण असुद्धउ सो कूरु वि मुणि-वयणहिं बुद्धउ ।
भत्ति करेविणु सहुँ सम्मत्तें लइयइँ सावय-वयइँ पयत्तें ।
15 कोउवसंतएण चुव-संगें णिण्णासिय-दुव्वार-निरंगें ।

घत्ता—सहुँ मुणिणा जाएवि करु उच्चाइवि तेण मग्गि मुणि लाइउ ।
जिण-गुण-चिंतंतउ मइ-णिब्भंतउ गउ उवसम-सिरि राइउ ॥ २७ ॥

११

सावय-वयइँ विहाणें पालिवि जीवइँ अप्प-समाणइँ लालिवि ।
बहुकालें सो मरेवि पुरूरउ पढम-सग्गे सुरु जाउ सूरूरउ ।
बे-रयणायराउ सोहंतउ अणिमाइय-गुण-गणहिं महंतउ ।
इह पविउल-भारहे-वरिसंतरे सरि-सरवर-तरु-गिरि-णिरंतरे ।
वसइ विणीया णयरि णिराउल णं सुर-रायहो पुरि अइ-पविउल ।
5 परिहि रयण-गण-किरण-णिहय-तम परिहा पाणिय-वलय मणोरम ।
चउदिसु णंदण-वणिहिं विहूसिय खल-दुज्जण-पिसुणेहिं अदूसिय ।
णाणा-मणि-गण-णिम्मिय-मंदिरे[3] सुह-सेलिंधणिलीणिंदिंदिरे[4] ।
गज्जमाण दारें ठिय चंदिरे खयरामर-णर-णयणाणंदिरे ।
णव-तरु-पल्लव-तोरण सुहयर घर-पंगण-कण-पीणिय-णहयर ।
10

१०. १. J. V. मु° । २. D. J. V. रायउ ।
११. १. D. भराह । २. D. °वल । ३. D. °दरे । ४. D. °दरे ।

१०

भवान्तर वर्णन—(१) पुण्डरीकिणीपुरका पुरूरवा शबर

इस जम्बूद्वीप-स्थित विदेह क्षेत्रके प्रांगणमे विविध प्रकारके मेघोंकी वर्षा होती रहती है। वहीपर पुष्कलावती नामका एक विशाल देश है, जहाँ महिलाएँ मंगलगान गाती रहती हैं। उस देशमें जलवाहिनी सीतानदीके उत्तर-तटपर अगणित गोधनोंसे मण्डित महीतलपर विशाल पुण्डरीकिणी नामकी नगरी वसी है, जहाँके मुनिगण भव्यजनोंको हर्षित करते रहते हैं। उस नगरीमे धर्मका रक्षक 'मधुस्वर' इस नामसे प्रसिद्ध एक वणिक् श्रेष्ठ सार्थवाह निवास करता था। ५

उस सार्थवाहके साथ मन्दगामी तपोलक्ष्मीसे युक्त तथा हृदय-कमलमें जिनेश्वरको धारण किये हुए सागरसेन नामक मुनीश्वर चले। एक दिन वह सार्थवाह चोरोके द्वारा लूट लिया गया तथा उसके साथी लकड़ी-पत्थरों से कूटे गये। जो शूरवीर थे, उन्होंने तो जूझते हुए प्राण छोड़ दिये और जो कायर व्यक्ति थे, वे भाग खड़े हुए। इसी बीचमें वनके मध्यमे मुनीन्द्र (सागरसेन)-के तपके प्रभावसे एक फणीन्द्रने स्थितिको शान्त किया। दिशाके विघातसे विमूढ़ (दिग्भ्रम हो १० जानेके कारण), सुन्दर भुजाओंवाले उन मुनीन्द्रने एक शबरको काली नामक अपनी शबरीके साथ देखा। शूकर एवं हरिणोंके विदारण (मारने) में शूर तथा अत्यन्त कुरूप उस शबरका नाम पुरूरवा था। पूर्वोपार्जित पापोंके कारण कलुषित मनवाला वह क्रूर पुरूरवा भी मुनि-वचनोंसे प्रवुद्ध हो गया। उस शबरने उन मुनीन्द्रकी भक्ति करके उनके पास प्रमादरहित एवं सम्यक्त्वसहित होकर श्रावक-व्रतोंको ले लिया तथा क्रोधको उपशम कर, परिग्रह छोड़कर दुर्निवार काम-वासनाको १५ नष्ट कर दिया।

घत्ता—मुनिके साथ जाकर, कर ऊँचा कर, उस शबरने उन्हे मार्गमें लगा दिया (पथ-निर्देश कर दिया)। इस प्रकार जिन-गुणोंका चिन्तन करता हुआ वह पुरूरवा अपनी मतिको निर्भ्रान्त कर उपशमश्रीसे सुशोभित हुआ ॥२७॥

११

पुरूरवा-शबर मरकर सुरौरव नामक देव हुआ। विनीतानगरीका वर्णन

विधि-विधानपूर्वक श्रावक व्रतोंका दीर्घकाल तक पालन कर तथा जीवोंका अपने समान ही लालन करता हुआ वह पुरूरवा नामक शबर मरा और प्रथम-स्वर्गमे दो सागरकी आयुसे सुशोभित तथा अणिमादिक ऋद्धि-समूहसे महान् सुरौरव नामक देव हुआ।

इस प्रविपुल (विशाल) भारतवर्षमे नदी, सरोवर एवं सदाबहार वृक्ष-वनस्पतियोंसे युक्त विनीता नामकी नगरी है। वह ऐसी प्रतीत होती है, मानो सुरराज इन्द्रकी निराकुल एवं अति ५ प्रविपुल (विशाल) नगरी (—इन्द्रपुरी) ही हो। उस नगरीकी परिधि (कोट) में जड़े हुए रत्नोंकी किरणें अन्धकारका नाश करती थी। वहाँ जलकी तरंगोंसे युक्त परिखा सुशोभित थी। उस नगरीकी चारों दिशाएँ नन्दन-वनसे विभूषित थी। दुष्टों, दुर्जनों एवं चुगलखोरोसे वह नगरी अदूषित थी। वहाँ नाना मणि-गणोसे निर्मित मन्दिर वने थे। सुखद छत्रक वृक्षोके पुष्पों (के रसपान) में भ्रमर लीन रहते थे। विद्याधरों, देवों एवं मनुष्योंके नेत्रोंको आनन्दित करनेवाली १० महिलाएँ गीत गाती हुई छतोपर स्थित रहती थीं। वह नगरी नवीन वृक्ष-पल्लवोके तोरणोंसे सुखकारी थी तथा जहाँके घरोंके आंगनोंमे पड़े हुए धान्यकणोंसे नभचर-पक्षी अपना भरण-पोषण किया करते थे।

घत्ता—तहिँ णरवइ होंतउ महि भुंजंतउ णिम्महणाहु परमेसरु ।
तित्थयरु पहिल्लउ णाण-समिल्लउ तिजगंभाव दिणेसरु ॥ २८ ॥

१२

जसु गब्भावयारेँ संजायउ देवागमु गयणयलि न माइउ ।
जसु जम्मणे तिहुवणु आकंपिउ जय-जय सद्दु सुरेहिँ पयंपिउ ।
जो उप्पण्ण-मेत्तु देवेंदिहिँ आणंदेँ णच्चिय-सुर-वंदेहिँ ।
अवरुप्परु संचिहिय-विमद्दिहिँ गंभीरारव-दुंदुहि-सद्देहिँ ।
5 णेविणु मेरुहेँ मत्थएँ न्हाविउ खीर-णीर-धारहिँ मणि-भाविउ ।
मइ-सुइ-अवहि-तिणाण-समिल्लउ जो सयंभु छकम्म-पहिल्लउ ।
जो सुरतरुवरेहिँ उच्छण्णहिँ पुरिय-रयण-किरणेहिँ रवण्णहिँ ।
अज्जव लोयहो करुणावरियउ अहिणव-कप्पदुमु अवयरियउ ।
तहो कुसुमालंकरिय-सिरोरुहु हुवउ भरहु णामेण तणुरुहु ।
10 छक्खंडावणि मंडल-सामिउ मइ गिरियालिवे गय-गइ-गामिउ ।

घत्ता—चक्कालंकियकरु परिपालिय करु पवरु मयल्लवणयराँ ।
चक्कवइ-पहाणउ, सुरे[3]-समाणउ, मणि-मंडिय-मउड-धराँ ॥ २९ ॥

१३

चउदह-रयण-समण्णिय णव-णिहि जसु मंदिरे विलसहिँ पयणिय-दिहि ।
जसु दिव्विजइ महंत-सयंगहँ । संदण-भड-संदोह-तुरंगहँ ।
भरुअ सहंति व धण-कण-दाइणि धूलिमिसेण चडइ णहे मेइणि ।
जसु भइ कंपिय सोहण-विग्गहु पत्तु तुरंतु धुणंतु व मागहु ।
5 जं आयण्णिवि नरहिउ वरतणु सेवि करेवि गउ देविणु सुह-धणु ।
णिम्मलयरु जसु पयडंतहो जसु मुक्कुवहासु पहासु हुवउ वसु ।
जो सुरसरि-सिंधुहि अहिसिंचिउ उववण-धणयहिँ कुसुमहिँ अंचिउ ।
वेयड्ढहो गुह-मुहु उग्घाडिउ मिच्छाहिउ भिडंतु विब्भाडिउ ।
जेण फुरंताहरण-विराइउ णट्टमालि सुरु पायहिँ लाइउ ।
10 विज्जाहरवइ णमि-विणमीसर केरकराइय कुल रयणीसर ।

घत्ता—तहो गेहिणि धारिणि गुण-गण-धारिणि ताहे गब्भे सवरामरु ।
सग्गहो अवयरियउ रुइ-विप्फुरियउ सुरतिय-चालिय चामरु ॥ ३० ॥

---

१२. १. D. जे । २. D. °वलय गइँ° । ३. . सुरवत समाणउ ।

घत्ता—उसी विनीता नगरीमे पृथिवीके भोक्ता, नरपति ऋषभनाथ हुए जो त्रिविधज्ञान-धारी, परमेश्वर, प्रथम तीर्थंकर तथा त्रिजगत्के जीवरूपी कमलोंके लिए सूर्य-समान थे ॥२८॥ १५

१२

ऋषभदेव तथा उनके पुत्र भरत चक्रवर्तीका वर्णन

जिस (ऋषभदेव) के गर्भावतरणके समय इतने देवोंका आगमन हुआ कि वे गगनतलमें नही समाये, जिसके जन्म लेनेके समय त्रिभुवन कम्पायमान हो गया, सुरेन्द्रों द्वारा जय-जयकार किया गया, जिसके जन्म लेने मात्रसे ही देवेन्द्रोंने आनन्द-पूर्वक मुकुलित हस्त-युगलसे परस्परमे धक्का-मुक्की पूर्वक, गम्भीर शब्दवाले दुन्दुभिके शब्दों पूर्वक, हार्दिक भक्ति-भावसे युक्त होकर, मेरु शिखरपर ले जाकर, क्षीरसागरकी जलधारासे अभिषेक कराया ऐसे वे ऋषभदेव जन्मसे ही मति, श्रुत एवं अवधिज्ञानसे युक्त थे, जो षट्-कर्मोके निरूपणमे निपुण एवं स्वयम्भू थे, जो मनोहारी रत्न-किरणोंके समान स्फुरायमान कल्पवृक्षोंके उच्छिन्न हो जानेपर व्याकुल-जनोंके लिए करुणावतार अथवा मानो अभिनव-कल्पद्रुमके रूपमे ही अवतरे थे। ५

उन ऋषभदेवके पुष्पोंके समान अलंकृत केशवाला भरत नामका पुत्र उत्पन्न हुआ, जो पृथ्वीके समस्त छह-खण्डोका स्वामी था तथा जो मदसे आकर्षित होकर लिपटे हुए भ्रमरोंसे युक्त मदोन्मत्त हाथीकी गतिके समान गतिवाला था। १०

घत्ता—जिसके हाथ चक्रसे अलंकृत थे, जो पृथिवीका पालन करता था, जो समस्त चक्रवर्तियोंमे प्रथम, प्रधान, देवोपम एवं मणियोंसे मण्डित मुकुटधारी चक्रवर्ती (सम्राट्) था ॥२९॥

१३

चक्रवर्ती भरतका दिग्विजय वर्णन

चौदह-रत्नोंसे समन्वित नवनिधियाँ जिसके राजभवनमे आकर धैर्यपूर्वक विलास करती थीं, जिसकी दिग्विजयमे महान् मतंगजोंवाले स्यन्दन (रथ), भट-समूह और घोड़ोंके भारको सहन न कर पानेसे ही मानो धन-धान्यदायिनी मेदिनी धूलिके बहाने आकाशमें चढ़ रही थी। जिसके भयसे कम्पित सुन्दर विग्रह करनेवाला मागध (देव) स्तुति करता हुआ वहाँ तुरन्त आ पहुँचा, जिसे सुनकर नराधिप वरतनु सेवा करके तथा शुभधन देकर वापस गया। जिसका निर्मल यश प्रकट हुआ, जिसने उपहास करना छोड़ दिया, किन्तु जिसकी उत्तम हँसीसे सभी उसके वशमे हो गये, जिसका गंगा एवं सिन्धु नदियोंसे अभिषेक किया गया तथा जो धनदके उपवनसे लाये गये कुसुमोसें अर्चित किया गया, जिसने वैताढ्यके गुहा-मुखको उघाड़ा, भिड़ते हुए म्लेच्छाधिपको वशमे किया, जिसने स्फुरायमान आभरणोसे सुशोभित णट्टमालि देवको अपने पैरोमें झुकाया तथा विद्याधराधिपति सम्राट् नमि एवं विनमिके कुलरूपी चन्द्रमाको जिसने सुशोभित किया— ५ १०

घत्ता—उस भरतकी गृहिणीका नाम धारिणी था, जो गुण-समूहको धारण करनेवाली थी। उसके गर्भमे शबरके जीववाला वह देव जो कि रुचिपूर्वक देवांगनाओं द्वारा स्फुरायमान चँवर ढुराये जानेवाला था, स्वर्गसे अवतरा ॥ ३०॥

१४

वरे[1] वारे[2] तीए[3] सुओ जणिओ घरे पंगणे तूरु तुरं रणिओ।
जणणें तहो णामु मरीइ कओ पुणु सो परिपालिउ विद्धिणिओ।
णडमाण-सुरिंद-पिया-मरणं भव-भूव-महा-दुह-वित्थरणं।
सइँ पेक्खेवि जाणि जयं चवलं सघरं सपुरं चउरंग-बलं।
5 सहुँ मिल्लिवि जेम तिणं तुरिओ वस्थोह-विहूसण-विप्फुरिओ।
वइराय-गओ पुरुएव-जिणो सम भावहिँ भाविय-हेम-तिणु।
णिरु देवरिसीहिँ पबोहियउ णरणाह-णिकायहिँ सोहियउ।
खयरोरय-देवहिँ लक्खियउ सुमरेविणु सिद्धइँ दिक्खियउ।
सहुँ तेण जिणेण मरीइ पुणु हुउ संजम-धारि गुणी णिउणो।
10 दुहयारि-परीसह-पीड-हओ सहसत्ति मरीइ कुभाव-गओ।
जिणलिंगु धरेइ महंतु मणे भय-भोय-विरत्तुण भीक जणे।
पमुएवि पुराकय-पाव-खओ जिण-णाह-समीरिउ तेण तओ।

घत्ता—अण्णेक्कहि वासरि रवि-बोहिय-सरे पुणु मरीइ णामें पहु।
कइलास-महीहरे तियस-मणोहरि पयडिय-सिवपुर-वर-पहु ॥३१॥

१५

तिजयाहिव-सामिउ आइ-जिणु सम भावण-भाविय हेमतिणु।
अवलोइउ जाएवि जावतओ भरहेसें[1] पुच्छिउ धम्मधओ।
परमेसर कित्तिय तित्थयरा तह चक्कहराणय-बोमयरा।
भणु होसहिँ णाहि-णरिंद-सुओ परि जंपइ तासु पलंब-भुओ।
5 तेय[2]-संजुव-वीस-जिणा पवरा वसु-तिण्णि मुणिज्जहि चक्कहरा।
पुणु पुच्छिउ चक्कहरेण जिणो पणवेविणु मुक्क-दुहोह-रिणु।
तहो जीवहँ मज्झि मणोहरणो इह अच्छइ को वि ण वासरणे।
पुणु जंपइ देउ भवं खविही तुहुँ[3] पुत्तु मरीइ जिणो हविही।
चउवीसमु मिच्छतमेण चुओ मरिही भविही भवे धम्मचुओ।
10 कविलाइय सीस-गुरूहविही पयडेसइ लोय पुरो अविही।
जिण वुत्तु सुणेवि मरीइ तओ लहु णिग्गउ तत्थहो हरिसरओ।
जिण वुत्तु ण चल्लइ मण्णि मणे हरिसेण पणच्चिवि तित्थुखणे।

---

१४. १–३. D. वासरे ताए।

१५. १. D. J. °सर। २. J. तिय। ३. V. प्रति मे इस प्रकार पाठ है—तुहु पत्तु हवे मरीइ जिणो हविही D. तुहुँ°।

१४

चक्रवर्ती भरत की पट्टरानी धारिणीको मरीचि नामक पुत्रकी प्राप्ति

उत्तम दिनमे उस (धारिणी) ने पुत्रको जन्म दिया, जिस कारण घर-घरमें, प्रांगण-प्रांगणमें तूर एवं तुरही वजने लगे। पिता (भरत) ने उसका नाम 'मरीचि' रखा। पुनः (सम्यक् प्रकार) परिपालित वह (मरीचि) वड़ा हुआ। नृत्य करती हुई सुरेन्द्र प्रिया—नीलांजनाका मरण तथा भवमे होनेवाले महान् दुखोंके विस्तरणको स्वयं ही देखकर जिस (ऋषभदेव) ने इस जगत्को चपल (अनित्य) समझा और अपने-अपने घर तथा नगरको अपनी चतुरंगिणी सेनाके साथ तत्काल ही तृण समान जानकर छोड़ दिया। श्रेष्ठ ज्ञान रूपी आभूषण से स्फुरायमान वे पुरुदेव ऋषभ जिन वैराग्यको प्राप्त हुए। उन्होंने कांचन एवं तृणमे समभाव रखा। देवर्षि लौकान्तिक देवोने आकर उन्हें सम्बोधा, तव नरनाथ (ऋषभ) निकाय (शिविका) में सुशोभित हुए, उन्हे विद्याधर एवं नागदेवोंने लक्षित किया। वे (ऋषभ) भी सिद्धोंका स्मरण कर दीक्षित हो गये। उन जिनेश्वर ऋषभके साथ गुणोंमें निपुण मरीचि भी संयमधारी हो गया। दुःखकारी परीपहोंकी पीड़ासे घवराकर वह मरीचि सहसा ही कुभावको प्राप्त हो गया। जो जिन-दीक्षा धारण करता है, वह तो हृदयसे महान् होता है, वह भव-भोगोंसे विरक्त रहता है। किन्तु भीरु जन उस दीक्षाको धारण नही कर सकते। अतः जिनेन्द्र द्वारा प्रेरित उस मरीचिने पूर्वकृत पापोंको क्षय करनेवाले तपको छोड़ दिया।

घत्ता—अन्य किसी एक दिन सूर्य-वोधित स्वरमें (नासिका के वायें छिद्रसे वायुका चलना सूर्य-स्वर कहलाता है) मरीचि नामधारी उस प्रभुने देवोंके लिए मनोहर लगने वाले कैलास-पर्वत पर शिवपुर का (नया) पथ (सांख्यमत) प्रकट किया ॥३१॥

१५

मरीचि द्वारा सांख्यमतकी स्थापना

तीनों लोकोंके अधिपति स्वामी आदि जिनेश्वर जव स्वर्ण एवं तृणमे समदृष्टिकी भावना भा रहे थे, तभी भरतेशने जाकर उनके दर्शन किये तथा धर्मकी ध्वजाके समान उनसे पूछा—हे नाभिनरेन्द्रके सुपुत्र परमेश्वर, वताइए कि तीर्थंकर चक्रधारी तथा व्योमचर कितने होंगे ?" तव प्रलम्ववाहु (आदि जिन) ने उस (भरतेश) से कहा—"(आगे) तीन सहित वीस अर्थात् तेईस प्रवर तीर्थंकर (और) होंगे और आठ तथा तीन अर्थात् ग्यारह चक्रधर जानो।" चक्रधर (भरतेश) ने दुख-समूह रूपी ऋणके नाशक जिनेन्द्रको प्रणाम कर उनसे पुनः पूछा—"और, यहाँ आपकी मनोहारी शरणमें (तप करनेवाले) जीवोंमे भी कोई (तीर्थंकर) होनेवाला है अथवा नही ?" तव ऋषभदेवने पुनः उत्तर दिया—"तुम्हारा पुत्र मरीचि अभी तो धर्मसे च्युत होकर मरेगा, जियेगा किन्तु आगे जाकर मिथ्यात्वसे स्खलित होकर तथा भवको क्षयकर चौवीसवां तीर्थंकर होगा। कपिल आदि शिष्योंका वह गुरु वनेगा, जो उसकी अविधि (कुपथ) का लोकमें प्रचार करेंगे।" "जिनेन्द्रका कथन सुनकर मरीचि हर्षित होकर वहाँसे तत्काल निकला। 'जिनेन्द्र कथन कभी मिथ्या नही होते' अपने मनमे यह निश्चय कर उस मरीचिने हर्षपूर्वक तत्काल ही नया तीर्थ स्थापित किया तथा–

घत्ता—कविलाइय सीसहिँ पणविय सीसहिँ परिवायय तव धारेँ।
संख-मउ पयासिउ जडयण-वासिउ तेण कुणय-वित्थारेँ ॥३२॥

१६

पंचवीस तच्चइँ उवएसिवि कुमय-मग्गे जडयणु विणिएसिवि ।
परिवायय-तउ चिरु विरएविणु सो मिच्छत्तेँ[1] पाण-मुए विणु ।
पंचम-कप्पि सुहासिव हूवउ कहो उवमिज्जइ अणुवम-रूवउ ।
दह-रयणायर-परिमिय-जीविउ सहजाहरण-किरण-परिदीविउ[2] ।
5 जीवियंति [3]सोणिहउ कयंतेँ तिविह-भुवण भवणंगे कयंतेँ ।
कोसलपुरि कविलहो भूदेवहो परिणिवसंतहो चवल-सहावहो ।
जण्णसेण-कंता-अणुरत्तहो जण्णोइय-परिभूसिय-गत्तहो ।
तहो तणुरुहु सत्थत्थ-वियक्खणु हुउ वह्मणु सव्वंग-सलक्खणु ।
जडिलु भणिउ जलणुव दिप्पंतउ मिच्छादिट्ठिहे सहुँ जंपंतउ ।
10 भयव-दिक्ख गेण्हेविणु कालेँ परिपालेविणु मुउ असरालेँ ।
घत्ता—हुउ सुरु सोहम्मइँ मणिमय-हम्मइँ वे-सायर-जीविय-धरु ।
अमियज्जुइ समण्णिउ सुर-यण-मण्णिउ सुंदरु उण्णय-कंधरु ॥३३॥

१७

सूणायार गामि[1] मण-मोहणि कुसुमिय-फलिय विविह-वण-सोहणे ।
आसि विप्पु पुहुविए विक्खायउ णिय-कुल-भूसणु भारद्दायउ ।
पुप्फमित्त[1] तहो कंत मणोहर कंचण-कलस-सरिच्छ-पओहर ।
विमलोहय पक्खहिँ पविराइय हंसिणीव हरिसेणप्पाइय ।
5 आवेप्पिणु तियसावासहो सुरु ताहँ पुत्तु जायउ भा-भासुरु ।
पूसमित्तु णामेँ मण-मोहणु माणिणि-यण-मण-वित्ति-णिरोहणु ।
परिवाययहँ निलउ पावेप्पिणु सग्ग-सुक्खु णिय-मणि भावेप्पिणु ।
बालुवि दिक्खिउ बालायरणेँ गमइ कालु भव-भय-दुह-यरणेँ ।
तउ चिरु कालु करेइ मरेविणु पंचवीस तच्चइँ भावेविणु ।
10 सुरु ईसाण-सग्गि संजायउ कुसुम-माल-समलंकिय-कायउ ।
वे-सायर-संखाउसु सुहयणु अच्छर-यण-कय-णट्ट-णिहिय-मणु ।
घत्ता—कण-निवडिय-खयरिहे सोइय णयरिहे अग्गिभूइ दिउ हुन्तउ[2] ।
गोत्तम-पिय-जुत्तउ पत्त-पहुत्तउ छक्कम्मइँ माणंतउ ॥३४॥

---

१६. १. J. पर° । २. पर° । ३. D. सेणिहउ V, णियहउ ।
१७. १. D. पुप्पमित्त J. V. पुप्पमित्त । २. D. हो° ।

घत्ता—तप धारण करनेमें परिव्राजक उस (मरीचि) ने कुनयोंका विस्तार करके सिर झुका-झुकाकर नमस्कार करनेवाले कपिल आदि शिष्योंके साथ जड़-जनोंको अनुयायी बनाकर सांख्यमत-का प्रकाशन किया ।।३२।। १५

१६

मरीचि भवान्तर वर्णन—कोशलपुरीमें कपिल भूदेव ब्राह्मणके यहाँ जटिल नामक विद्वान् पुत्र तथा वहाँसे मरकर सौधर्मदेवके रूपमें उत्पन्न

कुमतमार्गमें जड़जनोंको विनिवेशित कर उन्हें पचीस-तत्त्वोंका उपदेश किया और चिरकाल तक परिव्राजक-तप करके उस मरीचिने मिथ्यात्वपूर्वक प्राण छोड़े और पाँचवें कल्पमें सुधाशी-देव हुआ। वह रूप-सौन्दर्यमें अनुपम था। उसकी उपमा किससे दे ? वहाँ उसकी जीवित आयु दस सागर प्रमाण थी। वह सहज सुन्दर आभरणोंसे प्रदीप्त था। जीवनके अन्तमे वह कृतान्त (यमराज) के द्वारा निधनको प्राप्त हुआ। ५

तीनों लोकोंमें एक अद्वितीय भवनके समान कोशला नामकी नगरी थी, जहाँ चपल स्वभावी कपिल भूदेव नामक ब्राह्मण निवास करता था। उसकी यज्ञादिकसे परिभूषित गात्रवाली एवं अनुरागिणी यज्ञसेना नामकी कान्ता थी। उनके यहाँ शास्त्रों एवं उनके अर्थोमे विलक्षण विद्वान् तथा सर्वांगीण शारीरिक लक्षणोसे युक्त जटिल नामका पुत्र उत्पन्न हुआ, जो अग्निशिखाके समान दीप्त था तथा जो मिथ्यादृष्टियोंके साथ ही वार्तालाप करता था। अन्त समयमे (वह) भगवती १० दीक्षा ग्रहण कर तथा उसका पालन कर कष्ट पूर्वक मरा, और

घत्ता—मणिमय हर्म्य—विमानवाले सौधर्म-स्वर्गमे दो सागरकी जीवित आयुका धारी, अमितद्युतिसे समन्वित, देवों द्वारा मान्य, सुन्दर एवं उन्नत कन्धों वाला देव हुआ ।।३३।।

१७

वह सौधर्मदेव भारद्वाजके पुत्र पुष्पमित्र तथा उसके बाद ईशानदेव तथा वहाँसे चयकर श्वेता नगरीमे अग्निभूति ब्राह्मणके यहाँ उत्पन्न हुआ

पुष्प एवं फलवाले विविध-वनोंसे सुशोभित तथा मनमोहक स्थूणागार नामक एक ग्राम था, जहाँ पृथिवीपर विख्यात तथा अपने कुलका भूषण भारद्वाज नामक एक विप्र निवास करता था। उसकी मनोहारी एवं स्वर्ण-कलशके सदृश पयोधरोंवाली पुष्पमित्रा नामकी एक कान्ता थी, जो दोनों पिता एवं पति पक्षोसे सुशोभित एवं निष्कलंक तथा हंसिनीके समान हर्षपूर्वक चलने-वाली थी। भास्वर कान्तिवाला वह (मरीचिका जीव-) देव स्वर्गसे चयकर उनके पुत्र रूपमे उत्पन्न ५ हुआ। उसका नाम 'पुष्पमित्र' रखा गया। वह मनमोहक तथा मानिनी जनोके मनकी वृत्तिका निरोध करनेवाला था। अपने निलय (भवन)मे आये हुए एक परिव्राजकके उपदेशसे स्वर्ग-सुखकी अपने मनमे कामना कर बालहठके कारण उसने बालदीक्षा ग्रहण कर ली और (इस प्रकार) समय व्यतीत करने लगा। वह चिरकालतक तप करता रहा। फिर मरकर २५ तत्त्वोकी भावना भाकर ईशान-स्वर्गमें पुष्पमालासे अलंकृत देहधारी देव हुआ। वहाँ उसकी आयु दो सागर प्रमाण थी। १० वहाँ वह अप्सराओं द्वारा रचाये गये सुहावने नृत्योंमें मन लगाने लगा।

घत्ता—वह (मरीचिका जीव) ईशान देव, स्वर्गसे कणके समान पतित हुआ। श्वेता नामकी नगरीमे अग्निभूति नामका द्विज रहता था, जो अपनी गौतमी नामकी प्रियासे युक्त, षट्-कर्मोको मानता हुआ प्रभुताको प्राप्त था। ।।३४।।

१८

एयहँ दोहिंमि सुहु भुंजंतहँ　　सज्जणाइँ विणएँ रंजंतहँ ।
आउक्खइँ सुर-वासु मुएप्पिणु　　सुर-सुंदरिहिँ समाणु रमेप्पिणु ।
पूसमित्तु-चरु भयउ धणंधउ　　णिय-गुण-जियराणंदिय वंधउ ।
भणिउ अग्गिसिहु सोसइँ-जणणेँ　　दुज्जण-भणिय-वयण-परिहणणेँ ।
5 पुणु परिवायय-तउ विरएविणु　　चिरु कालेँ पंचत्तु लहेविणु ।
सणकुमार-सग्गेँ जायउ सुरु　　विप्फुरंत-भूसण-भा-भासुरु ।
सत्त-जलहि पमियाउ महामइ　　गयणंगणे मण-महिय-सुरय गइ ।
इह णिवसइ सुंदरु मंदिरपुरु　　कामिणि-यण-पय-सद्दिय-णेउरु ।
मंदरग्ग-धय-पंति-पिहिय-रवि　　तहिँ वलि-विहिणा संपीणिय हवि ।
10 गोत्तमु णामेँ दियवरु हूवउ　　परियाणिय-णिय-समय-सरूवउ ।
तहो कोसिय कामिणि-जण-मोहण　　तणु-लायण्ण-वण्ण-संखोहण ।

घत्ता—एयहँ सुउ हूवउ णं रइ-दूवउ दियवर-सत्थ-रसिल्लउ ।
जणणेँ सो भासिउ जणह पयासिउ अग्गिमित्तु-तेइल्लउ ॥३५॥

१९

गिह-वासणि-रइ-भाउ णिवारिवि　　णारायण-सासण-सए-धारेवि ।
मणु पसरंतु जिणेवि तउ लेविणु　　चूलासहिउ तिदंडु धारेविणु[1] ।
परिवायय-रूवेण भमेविणु　　भूरिकाले मिच्छत्ति[2] रमेविणु ।
मरि माहिंद-सग्गि संजायउ　　सत्त-जलहि-समाउ सुछायउ ।
5 तहिँ णिरु सुहुँ देवीहिँ रमेविणु　　चविउ सपुण्णक्खउ पावेविणु ।
सत्थिवंतपुरे पर-मण-हारणु　　कुसुम-पत्त-कुस-पत्ती-धारणु ।
निय-मणि निज्झाइय णारायणु　　आसि विप्पचरु सालंकायणु[3] ।
मंदिर-णाम पिया हुय एयहो　　गुण-मंदिरु मुणियायमभेयहो ।
एयहँ सग्गहो एवि तणुरुह　　संभूवउ मुह-जिय-अंभोरुहु ।
10 जणणेँ भासिउ भारद्दायउ[4]　　सुरसरि जल-पक्खालिय-कायउ ।

घत्ता—पुणरवि विक्खायउ हुउ परिवायउ[5] चिरु तउ करेवि मरेविणु ।
माहिंदि मणोहरि मणिमय-सुरहरे हुवउ अमरु जाएविणु ॥ ३६ ॥

---

१८. १. D पुँ° ।
१९. १. D. °लु । २. V. °त्ति । ३. V. सं. । ४. D. J. V. °इ° । ५. D. °रि ।

१८

वह 'अग्निशिख' नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह पुनः मरकर सानत्कुमारदेव हुआ तथा वहाँसे चयकर मन्दिरपुरके निवासी विप्रगौतमका अग्निमित्र नामक पुत्र हुआ।

(जब) ये दोनों (अग्निभूति एवं गौतमी) सुख-भोग कर रहे थे तथा अपने विनय गुणसे सज्जनोंका मनोरंजन कर रहे थे तभी उनके यहाँ आयुके क्षय होनेपर स्वर्गावास छोड़कर सुर-सुन्दरियोंके साथ रमण करनेवाला वह (पुष्यमित्रका जीव) ईशानदेव स्वर्गसे चयकर अपने गुण-समूह द्वारा बन्धुजनोंको आनन्दित करनेवाले पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुआ। अपने पिता (अग्निभूति) के द्वारा वह 'अग्निशिख' इस नामसे पुकारा जाता था। वह अग्निशिख दुर्जनोंके कहे गये वचनोंका ५ खण्डन करनेवाला था। पुनः वह चिरकाल तक परिव्राजक-तप कर पंचत्वको प्राप्त हुआ और सनत्कुमार स्वर्गमें स्फुरायमान भूषणों की आभासे भास्वर एक देव हुआ। वहाँ उस महामतिकी आयु सात-सागर प्रमाण थी। वह गगनरूपी आंगनमें मनवांछित सुरत-गतिको भोगता था।

इस संसारमें मन्दिरपुर नामका एक सुन्दर नगर है, जहाँ कामिनी-जनोंके पैरोंके नूपुर शब्दायमान रहते है, जहाँ मन्दिरोंके अग्रभागमें लगी हुई ध्वज-पंक्तियाँ रविको ढँक देती थी। वहाँ १० बलि-विधानसे होम किया जाता था। वहाँ गौतम नामक एक द्विजश्रेष्ठ हुआ, जो अपने मतके स्वरूपका जानकार था। शरीरके लावण्य एवं सौन्दर्यसे जगत्को मोह लेनेवाली उसकी कौशिकी नामकी कामिनी थी।

घत्ता—उन दोनोंके यहाँ वह (सनत्कुमारदेव चयकर) अग्निमित्र नामके पुत्रके रूपमे उत्पन्न हुआ। वह ऐसा प्रतीत होता था, मानो रतिका दूत ही हो। वह द्विजश्रेष्ठ शास्त्रोंका रसिक १५ था। उसके पिता (गौतम) ने उससे कहा कि—"हे अग्निमित्र, लोकमे अपना तेज प्रकाशित करो" ॥३५॥

१९

मरीचि भवान्तर—वह अग्निमित्र मरकर माहेन्द्रदेव तथा वहाँसे पुनः चयकर वह शक्तिवन्तपुरके विप्र संलंकायनका भारद्वाज नामक पुत्र हुआ। पुनः मरकर वह माहेन्द्रदेव हुआ।

वह अग्निमित्र घरमें निवास करते हुए भी रति-भावनाका निवारण कर नारायण-शासनके मतको धारण कर, मन (की वृत्तियों)के प्रसारको जीतकर, तप-ग्रहण कर, चूला (शिखा-जटा) सहित त्रिदण्ड (त्रिशूल) धारण कर, परिव्राजक रूपसे भ्रमण कर दीर्घकाल तक मिथ्यात्वमें रमकर तथा मरकर माहेन्द्र-स्वर्गमें सात-सागरकी आयुवाला सुन्दर कान्तिवाला देव हुआ। वहाँ-पर वह देवियोंके साथ सुखपूर्वक खूब रमकर पुण्यक्षय होनेके कारण मृत्युको प्राप्त हुआ। ५

शक्तिवन्तपुरमे दूसरोंके मनका हरण करनेवाला कुसुम, पत्र, कुश एवं पत्तीको धारण करनेवाला तथा अपने मनमे नारायणका ध्यान करनेवाला संलंकायन नामका एक विप्र निवास करता था। उसकी प्रियाका नाम मन्दिरा था। इन्हीके यहाँ वह माहेन्द्र-स्वर्गका देव (अग्निमित्र का जीव) चयकर पुत्र रूपमे उत्पन्न हुआ। वह गुणोंका मन्दिर तथा आगम-भेदोंका ज्ञाता था। अपने मुखसे तो वह कमलको जीतनेवाला ही था। पिताने उस पुत्रके शरीरको गंगाजलसे प्रक्षालित १० कर उसका नाम 'भारद्वाज' रखा।

घत्ता—वह भारद्वाज (अग्निमित्रका जीव) पुनः एक विख्यात परिव्राजक हुआ। चिरकाल तक तप करके, मरकर पुनः मणिमय विमानवाले मनोहर माहेन्द्र-स्वर्गमे देव हुआ ॥३६॥

२०

तहिँ सुर-णारिहिँ सुर-मण-हारिहिँ ।
दीहर-णयणिहिँ पहिसिय[1]-वयणिहिँ ।
विणिहउ तिक्खहिँ णयण-कडक्खहिँ ।
सभसल-विमलहिँ लीला-कमलहिँ ।
5 णिम्मल-सिज्जहिं मयण-विसज्जहिँ
देवहिँ सहियउ अणरइ-रहियउ ।
रमइ सुरालइ रयण-गणालइ ।
जहिँ मणि रुच्चइ तहे खणे[2] वच्चइ[3] ।
सुरतरु-वर-वणे रमिय-भमर-गणे ।
10 फल-दल-फुल्लइँ भूरि-रसोल्लइँ ।
लेविणु परिसइ देविणु दरिसइ ।
मह-माणस-सरे मरु-पसरिय-सरे ।
जाइ विसालइँ वर-जल-कीलइँ ।
पिययम सिंचइ णिय-तणु वंचइ ।
15 गिरिवइ-संठिउ अइ-उक्कंठिउ ।
मणहक गायइँ वज्जउ वायइँ ।
णिहुवउ विहसइ सुललिउ भासइ ।

घत्ता—तहिँ तहो अच्छंतहो सुहु इच्छंतहो मउडालंकिय-भालहो ।
तरणिव दिप्पंतहो सिरि विलसंतहो सत्त जलहि-मिय कालहो ॥ ३७ ॥

२१

कप्परुक्ख-कंपणए विसालए मल-मइलिण-मंदारह-मालइँ ।
लोयण भंतिए सग्ग-विणिग्गमु संसूयउ दुक्खोहहँ संगमु ।
विलवइ णिज्जरु करुणु रुवंतउ हियउ हणंतु स-सिरु विहुणंतउ ।
पणइणि-मुहु स-विसाउ णियंतउ मुच्छा-विहलंघलु घोलंतउ ।
5 समिय-पुराइय-पुण्ण-पईवहो चिंता-सिहि-संताविय-भावहो ।
आसा चक्कु मज्झु विगयासहो तिमिरावरिउ अज्ज हयहासहो ।
हा तियसालय मणि-यर-हय-तम सुंदर सुरसुंदरिहिँ मणोरम ।
किं ण धरहि महु पाण-मुवंतउ दुक्खिय-मणु णिलयहो णिब्भंतउ ।
अज्जु सरणु भणु कहो हउँ पइसमि का गइ किं करणिउ कहिं वइसमि ।
10 केण उवाएँ जीविउ धारमि वंचिवि मिच्चुह[1] तं विणिवारमि ।
सह संजायवि गुण-गण-गेहहो गउ लावण्णु वण्णु महु देहहो ।

घत्ता—अहवा पुणु विहडइ देहु वि ण घडइ पुण्णक्खउ पावेविणु ।
पाणइँ जंतइ धरु पिय आरासरु पणएणालिंगेविणु ॥ ३८ ॥

---

२०. १. D. ह । २. D. °णि । ३. . . J. V. °इं । ४. D. J. V. कायहो ।
२१. १. D. J. V. मिच्चु हवंति णिवारमि ।

२०

माहेन्द्र-स्वर्गमें उस देवकी विविध क्रीड़ाएँ

वहाँ देवोंके मनका हरण करनेवाली सुरनारियोंके दीर्घ नयनों, हँसते हुए वचनों तथा तीक्ष्ण नेत्र-कटाक्षोंसे विनिहत होकर वह माहेन्द्र-देव भ्रमर लगे हुए सुन्दर-सुन्दर कमलोसे अलंकृत निर्मल शय्याओं पर मदन द्वारा प्रेषित देवियोंके साथ लीलापूर्वक, अन्यत्र रति रहित (अर्थात् एकाग्र रूपसे वहीपर रति करनेवाला) होकर रत्न-समूहके स्थानस्वरूप उस माहेन्द्र-स्वर्गमे रमता था। जहाँ मनमें रुचता था, वहाँ वह क्षणभरमे पहुँच जाता था। भ्रमरो द्वारा रमित कल्पवृक्षोंके श्रेष्ठ वनमे अत्यन्त रसीले फल, पत्र एवं पुष्पोंको लेकर तथा उन्हे परिखद्मे देकर दिखाता था तथा कभी वायुसे प्रसरित चंचल तरंगोंवाले महा-मानस सरोवरमे जाकर खूब जल-क्रीड़ाएँ करता था। उसमें वह प्रियतमाओं पर छीटे फेंकता था और (बदलेमे) उनसे अपने शरीरको बचाता था। अत्यन्त उत्कण्ठित होकर वह कभी गिरिपति (पर्वतों) पर बैठता था तो कभी मनोहर गीत गाता था। कभी वह बाजे बजाता था तो कभी भोग भोगकर हँसता था तथा सुललित वाणी बोलता था।

घत्ता—उस माहेन्द्र-स्वर्गमे रहते हुए, सुखोंकी इच्छा करते हुए, सूर्यके समान दीप्तिमान्, लक्ष्मीका विलास करते हुए तथा मुकुटसे अलंकृत भालवाले उस (भारद्वाजके जीव माहेन्द्रदेव) ने सात-सागरका काल व्यतीत कर दिया ॥३७॥

२१

माहेन्द्रदेवका मृत्यु-पूर्वका विलाप

कल्पवृक्षोंके विशाल रूपसे काँपनेपर, मन्दार-पुष्पोंकी मालाके म्लान होनेपर, लोचनोमे भ्रान्ति (दृष्टिभ्रम) हो जानेपर, दुख-समूहके संगमके समान स्वर्गसे विनिर्गमकी सूचना हुई। तब वह निर्जर—देव करुणाजनक रुदन करने लगा, छाती पीटने लगा, अपना माथा धुनने लगा, विषाद-युक्त होकर प्रणयिनियोंका मुँह देखता हुआ मूर्च्छित होने लगा, तथा विह्वल होकर घूमने लगा, क्योकि उसका पूर्वार्जित पुण्य-प्रदीप शान्त हो गया था। चिन्तारूपी अग्निसे उसका हृदय सन्तप्त था। (वह सोचने लगा कि) 'मेरा आशाचक्र नष्ट हो गया है, आज मेरा हर्ष नष्ट होकर तिमिरावृत हो गया है, मणिकिरणोसे नष्ट अन्धकारवाला तथा सुर-सुन्दरियोसे सुन्दर, मनोरम हाय स्वर्ग, तू निर्भ्रान्त प्राण छोड़ते हुए दुखी मनवाले मुझे बचाकर अब स्थान क्यों नही दे रहा है? कहो, आज मुझे कहाँ शरण है? मैं कहाँ प्रवेश करूँ? कहाँ जाऊँ? क्या करूँ? कहाँ बैठूँ? किस उपायसे जीवनको धारण करूँ? किस उपायसे मृत्युको ठगकर उसका निवारण करूँ? गुण-समूहके गृह-स्वरूप मेरी इस देहके साथ उत्पन्न यह लावण्य-वर्ण भी नष्ट हो गया है।'

घत्ता—'अथवा पुण्य-क्षय पाकर विघटित हुआ शरीर अब पुनः नहीं बन सकता। प्रणयपूर्वक आलिंगन कर हे प्रिये, (मुझमें) आसक्त होकर अब मेरे जाते हुए इन प्राणोंको बचाओ।' ॥३८॥

२२

इय पलाव विरयंतु पढुक्कउ मरणावत्थहिँ पाणहिँ मुक्कउ।
तत्थहो ओवरेवि पावासउ मिच्छत्ताणल-जाल हुवासउ।
थावर जोणि-मज्झे णिवसेविणु सो चिरु भूरि-दुक्खु विसहेविणु।
दुक्खेँ कहव तसत्तु लहेविणु विविह-जीव-संघाउ वहेविणु।
5 पावेप्पिणु मणु वत्तणु वल्लहु जूअसंविला-संजोएँ[2] दुल्लहु।
जीउ पयंड पुराइय-कम्में किं किं ण करइ मूढु अगम्में।
भरहखेत्ते खेयरहँ पियंकरे मगह-विसइ रायहरे सुहंकरे।
हुवउ विप्प चरु संडिल्लायणु जण्ण विहाणाइय गुण-भायणु।
तहो संजाय कंत पारासरि णं पच्चक्ख समागय सुरसरि।
10 तहो संभूउ पुत्तु पयणिय-दिहि थावरु णामें जुइ-णिज्जिय-सिहि।
भयवं[1]-भणिउ रुउ चिरु विरएविणु वम्हलोइ सो पत्तु मरेविणु।
दह-सायर-संखा-पमियाउसु अइ-मणहरु णं अहिणउ पाउसु।
सह-भव-दिव्वाहरण पसाहिउ सुर-सीमंतिणि णियरा राहिउ।

घत्ता—जो विसय णिवारइ, णिय मणु धारइ, णेमिचंदु[3] किरणुज्जलु।
15 सो हुइ अवस सुरु सिरिहरु भासुरु धुणिवि पाव-घणँ[4]-कज्जलु ॥ ३९ ॥

इय सिरि वड्ढमाण-तित्थयर-देव-चरिए पवर-गुण-णियर-भरिए विबुहसिरि सुकइ सिरिहर विरइए साहु सिरि णेमिचंद अणुमण्णिए मयवइ-भवावलि[5]-वण्णणो नाम बीओ संधी-परिच्छेओ समत्तो ॥ २ ॥ संधि २ ॥

श्रृण्वन्तो जिनवेश्मनि प्रतिदिनं व्याख्यां मुनीनां पुरः
प्रस्तावान्नतमस्तकः कृतमुदः संतोख्यधुर्यः कथा।
धत्ते भावयतिच्छमुत्तमधिया यो भावयं भावना
कस्यासावुपमीयते तव भुवि श्रीनेमिचन्द्रः पुमान् ॥

---

२२. १. D. भयभवं° । २. D. J. V. जूसविलासं. । ३. D. J. V. °द । ४. D. J. V, ण । ५. J. V. °ली ।

२२

माहेन्द्रदेवका वह जीव राजगृहके शाण्डिल्यायन विप्र के यहाँ स्थावर नामक पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुआ।

इस प्रकार प्रलाप करते हुए उसकी मरणावस्था आ पहुँची। वह प्राणोंसे मुक्त हो गया। वह पापाश्रयी मूढ़ जीव वहाँसे (माहेन्द्र-स्वर्गसे) गिरा और मिथ्यात्वकी अग्नि-ज्वालासे दग्ध होता हुआ, स्थावर-योनियोंके मध्यमे निवास कर, चिरकाल तक अनेक दुःखोंको, सहकर बड़े कष्टसे, जिस किसी प्रकार त्रस-पर्याय पाकर विविध जीवसंघातोंको धारण कर जुवाड़ी सेला-संयोगके समान दुर्लभ एवं वल्लभ मनुष्य-पर्याय पाकर पूर्वाजित प्रचण्ड एवं अगम्य-कर्मोके कारण ५ क्या-क्या नहीं करता रहा?

विद्याधरोंके लिए प्रियंकर, भरतक्षेत्र स्थित मगध-देशके सुखकारी राजगृह नगरमें शाण्डि-ल्यायन नामका एक विप्र रहता था, जो यज्ञ-विधानादि गुणोंका भाजन था। उसकी पारासरी नामकी कान्ता थी। वह ऐसी प्रतीत होती थी, मानो साक्षात् आयी हुई गंगानदी ही हो। उन दोनोंके धैर्यको प्रकट करनेवाला, अपनी द्युतिसे शिखीको निर्जित करनेवाला स्थावर नामका (वह १० माहेन्द्रदेव) पुत्र उत्पन्न हुआ। भागवतके कथनानुसार चिरकाल तक तप करके वह पुनः मरा और ब्रह्मलोक-स्वर्गको प्राप्त हुआ। वहाँ वह दस-सागर प्रमाण आयुवाला तथा अभिनव-पावसके समान अत्यन्त मनोहर देव हुआ। जन्मके साथमें ही वहाँ होनेवाले दिव्य-आभरणोंसे प्रसाधित तथा सुर सीमन्तिनियों (देवांगनाओं) द्वारा आराधित हुआ।

घत्ता—जो विषय-वासनाका निवारण करता है तथा जो चन्द्रकिरण समान उज्ज्वल १५ नेमिचन्द्रको अपने मनमें धारण करता है, वह पापरूपी घने काजलको धोकर श्रीधरके समान भास्वर होकर अवश्य ही देव होता है॥ ३९॥

दूसरी सन्धिकी समाप्ति

इस प्रकार प्रवर-गुणरूपी रत्न-समूहसे भरपूर विविध श्री सुकवि श्रीधर द्वारा विरचित एवं साधु-स्वभावी श्री नेमिचन्द्रके द्वारा अनुमोदित श्री वर्धमान तीर्थंकर देवके चरितमें मृगपतिकी भवावलियोंका वर्णन करनेवाला दूसरा सन्धि-परिच्छेद समाप्त हुआ।

आश्रयदाता नेमिचन्द्रके लिए कविका आशीर्वाद

जो जिन-मन्दिरमें प्रतिदिन मुनिजनोंके सम्मुख व्याख्या सुनते हैं, सन्त एवं विद्वान् पुरुषोंकी कथाकी प्रस्तावना मात्रसे प्रमुदित होकर नत-मस्तक हो जाते हैं, जो शम-भावको धारण करते हैं, उत्तम बुद्धिसे विचार करते हैं, जो द्वादशानुप्रेक्षाओंको भाते हैं, ऐसे हे श्री नेमिचन्द्र, इस पथिवीपर तुम्हारी उपमा किससे दी जाये?

सन्धि ३

१

एत्थंतरे सारु सुर-मण-हारु भरहखेत्ते विक्खाउ।
वित्थिण्ण पएसु मगहादेसु निवसइ देसहराउ॥

जहिँ गुरुयर गिरिवर कंदरेसु जल-झरण-वाह-झुणि-सुंदरेसु।
कीलंति सुरासुर खेयराइँ णिय-णिय रमणिहि सहुँ सायराइँ।
5 जहिँ उट्ठंतिहिँ अइ-णव-णवेहिँ पुंडुच्छु-वाड-जंता रवेहिँ।
बहिरिय-सुयरंधिहिँ जणवएहिँ सुम्मइँ न किंपि विंभिय गएहिँ।
जहिँ अहणिसि वहहिँ तरंगिणीउ तरु-गलिय कुसुम रय-संगिणीउ।
विरयंतिउ जल-विब्भमहिँ वित्तु खयरामर-मणुवहँ हरिय-चित्तु।
जहिँ णंदणतरु-साहय ठियाहँ समहुर-सद्दइँ कलयंठियाहँ।
10 णिसुणेइँ णिच्चलु ठिउपहियलोउ ण समीहइ को सुहयारि जोउ।
जहिँ सरि-सरि सोहइ हंस पंति जिय-सारय-ससहर-जोन्ह-कंति।
परिभवण-समुब्भव-खेयखिण्ण, णं सुवण-कित्ति महियले णिसण्ण।

घत्ता—तक्कर-मारीइ तहय अणीइ णिरु दीसंति ण जेत्थु।
सुरपुर पडिछंदु णर णिदंदु णयरु रायगिहु तेत्थु॥४०॥

२

णिवसइ असेस-णयरहँ पहाणु वर-वत्थु-रयण-धारण-णिहाणु।
फलिह-सिलायल-पविरइय-सालु सिंगग्ग-णिहय-णहयलु विसालु।
गोउरु तोरण-पडिखलिय-तारु आवणे संदरिसिय-कणय तारु।
ससि-सूरु-कंति-मणि-गण-पहालु मरु-धुय-धयवड-चल-वाहु-डालु।
5 णील-मणि-किरण-संजणिय-मेहु रयणमय-णिलय-जिय-तियसगेहु।
सुर-हर-सिहरुच्चाइय-पयंगु रायहर-दारि गज्जिय-मयंगु।
णच्चुच्छव-हरिसिय-सुयण-वग्गु तूरारव-वहिरिय-पवणमग्गु।

---

१. १. J. °णु। २. D. °ड्डु।

सन्धि ३

१

मगधदेशके प्राकृतिक सौन्दर्यका वर्णन

यहीं भरतक्षेत्रमें विख्यात, सारभूत, देवोंके मनको हरण करनेवाला, विस्तीर्ण प्रदेशवाला एवं देशोंके राजाके समान मगध नामका देश स्थित है।

जहाँ गुरुतर पर्वतोंके जल-स्रोतोंके प्रवाहकी ध्वनिसे युक्त श्रेष्ठ एवं सुन्दर कन्दराओंमें अपनी-अपनी रमणियोंके साथ सुर-असुर एवं विद्याधर सादर क्रीड़ाएँ किया करते है, जहाँ पौड़ा एवं इक्षुके बाड़ोंमें पीलन-यन्त्रोंसे उठते हुए अत्यन्त नये-नये शब्दोसे श्रोत्र-रन्ध्र वहरे हो जाते हैं ५ और विभ्रमको प्राप्त जनपदोसे अन्य कुछ नही सुना जाता, जहाँ वृक्षोसे गिरे हुए पुष्पोंकी रजकी संगवाली (अर्थात् परागमिश्रित) नदियाँ अहर्निश प्रवाहित रहती हैं, जो जलके विभ्रमसे समृद्धिको प्रदान करती हैं तथा विद्याधरों, देवों एवं मनुष्योंके हृदयोंका हरण करती हैं, जहाँ नन्दन-वृक्षकी शाखाओंपर बैठे हुए कलकण्ठवाले पक्षियोके मधुर कलरव पथिकजनों द्वारा निश्चल रूपसे स्थित होकर सुने जाते हैं। (ठीक ही कहा गया है कि—) 'सुखकारी-योगको कौन नही चाहता ?' १० जहाँ नदी-नदी अथवा तालाब-तालावपर हंस-पंक्तियाँ सुशोभित रहती है, वे ऐसी प्रतीत होती है, मानो शरद्कालीन चन्द्र-ज्योत्स्नाकी कान्ति ही हो, अथवा मानो परिभ्रमणकी थकावटके कारण ही वहाँ वैठे हों अथवा मानो वहाँ महीतलपर वैठकर वे सुन्दर-वर्णोमें वहाँका कीर्ति-गान ही कर रहे हों।

घत्ता—जहाँ तस्कर, मारी (रोग) तथा (ईति, भीति आदि) अनीति जरा भी दिखाई १५ नहीं देती। इन्द्रपुरीका प्रतिविम्ब तथा मनुष्योंके लिए निर्द्वन्द्व राजगृह नामका नगर है ॥४०॥

२

राजगृह-नगरका वैभव-वर्णन। वहाँ राजा विश्वभूति राज्य करता था।

वह राजगृह नगर समस्त नगरोंमें प्रधान तथा उत्तमोत्तम वस्तुरूपी रत्नोंके धारण (संग्रह) करनेवाला निधान है। जहाँ स्फटिक-शिलाओं द्वारा बनाया गया विशाल परकोटा है, जिसके शिखराग्रोंसे आकाश रगड़ खाता रहता है। गोपुरके तोरणोंसे जिस (परकोट) की ऊँचाई प्रतिस्खलित है, जहाँके बाजारोंमे सोनेके सुन्दर-सुन्दर आभूषण ही दिखाई देते है, जो चन्द्रकान्त एवं सूर्यकान्त मणियोंकी प्रभासे दीप्त है, जो वायु द्वारा फहराती हुई ध्वजा-पताकारूपी चंचल ५ बाहु-लताओंसे युक्त है, जहाँ मेघ ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो नीलकान्त मणियोसे बने हुए हों। जहाँके रत्नमय निलयोंने स्वर्ग-विमानोंको भी जीत लिया था, जहाँ देवगृहके समान प्रतीत होनेवाले भवनोंके शिखरोंसे सूर्यको भी ऊँचा उठा दिया गया है। राजगृहके (राजभवन) के द्वारपर सिंह गरजता रहता है। नित्य होनेवाले उत्सवोसे सज्जन-वर्ग हर्षित रहता है, जहाँ तूरके

परिपालिय-जंगम-जीवरासि तियरण-परिसुद्धिए सुद्ध-भासि ।
परदव्व-हरण-संकुइय-हत्थु मुणिदाण-जिणुद्धव-विहि-समत्थु ।
10 परणारि-णिरिक्खण-कयणिवित्ति मुणि-भणिय-संख-विरइय-पवित्ति ।
परिहरिय-माणं-मय-माय-गव्वु वंदियण-विंद-पविइण्ण-दव्वु ।
सीलाहरणालंकरिय-भव्वु णिरुवद्दउ जहिं जणु वसइ सव्वु ।

घत्ता—तहिं भुंजइ रज्जु, चिंतिय कज्जु वइरि-हरिण-गण-वाहु ।
णामेण पसिद्धु लच्छि-समिद्धु विस्सभूइ णरणाहु ॥४१॥

३

पणइणि-यण-णयणाणंद-हेउ उब्भासिय-सयल-विहूय-हेउ ।
अइ-णिम्मलयर-णय-चारु चक्खु वर-भोय-परज्जिय-दस-सयक्खु ।
भुव-जुव-बल-सिरि-आलिंगियंगु णिय-कुल-णहं-भूसणमिय पयंगु ।
संपीणिय-परियण-सुयण-वग्गु पविमलयर-जस-धवलिय-धरग्गु ।
5 तहो अत्थि सहोयरु जण-मणिट्ठु विणयाराहिय-गुरुयणु-कणिट्ठु ।
दीणाणाहहँ पविइण्ण-भूइ णामेण पसिद्धु विसाहभूइ ।
जेट्ठहो जइणी णामेण भज्ज भाविय-पिय-पय-पंकय-सलज्ज ।
णं णिवइहे णव-जोव्वणहो लच्छि णिम्मलयर-णीलुप्पल-दलच्छि ।
णोवइ तइलोयहो तणिय कंति एक्कट्ठिय जण-विभउ जणंति ।
10 अवरहो लक्खण णामेण भज्ज णाणाविह-वर-लक्खण मणोज्ज ।

घत्ता—पढमहो सुउ जाउ अइसुच्छाउ तियसावासु मुएवि[१] ।
तणु-बल-सिरि रूवउ[३] बहु-गुण भूवउ[४] सहुं सोहग्गु लहेवि ॥४२॥

४

सो विस्सणंदि-जणणें पउत्तु परियाणिवि णाणा-गुण-णिउत्तु ।
लहु भाइहे जाउ विसाहणंदि णंदणु णिय-कुल-कमलाहिणंदि ।

---

२. १. J. V. मण ।
३. १, D. णवइ । २. V. सइ° । ३. D. रूउ । ४. D. भूउ ।

शब्दोंसे आकाश बहरा हो जाता है। जहाँ जंगम जीवराशि भी परिपालित रहती है (वहाँ त्रस-जीवराशिकी परिपालनाका तो कहना ही क्या) जहाँ त्रिकरणों अर्थात् मन, वचन एवं कायकी शुद्धि कही जाती है, जहाँ परद्रव्य-हरणमे लोगोंके हाथ संकुचित तथा मुनियोंके लिए दान एवं जिनोत्सवकी विधियोंमें दान देनेमे समर्थ है। जहाँके लोगोंकी वृत्ति परनारीके निरीक्षण करनेमें निवृत्तिरूप तथा मुनि-कथित शिक्षाके पालन करनेमे प्रवृत्तिरूप है। क्रोध, मद, माया एवं गर्वसे दूर रहते हैं। वन्दीजनोंको द्रव्य दिया करते है। भव्यजन शीलरूपी आभरणोंसे अलंकृत हैं तथा जहाँ सभी जन विना किसी उपद्रवके निवास करते है— ५

घत्ता—उस राजगृहीमें कर्तव्य-कार्योकी चिन्ता करनेवाला, वैरियोंको हरानेमें समर्थ वाहुओंवाला एवं लक्ष्मीसे समृद्ध 'विश्वभूति' इस नामसे प्रसिद्ध एक नरनाथ राज्यभोग करता था ॥४१॥ १०

३

राजा विश्वभूति और उसके कनिष्ठ भाई विशाखभूतिका वर्णन। मरीचिका जीव-ब्रह्मदेव विश्वभूतिके यहाँ पुत्र रूपमें जन्म लेता है

वह राजा विश्वभूति प्रणयीजनोंके नेत्रोंके लिए आनन्दका कारण, समस्त विधेय एवं हेयका प्रकाशक, अतिनिर्मल नयरूपी सुन्दर चक्षुवाला (अर्थात् नय-नीतिमे निपुण) उत्तम भोगोंमें इन्द्रको भी पराजित कर देनेवाला, भुज-युगलकी शक्तिरूपी लक्ष्मीसे आलिंगित शरीरवाला, अपने कुलरूपी आकाशके लिए आभूषण-स्वरूप, सित पतंग—सूर्य, परिजनों एवं स्वजनोंका पालक एवं अपने निर्मल-यशसे पृथिवीके अग्रभागको धवलित करनेवाला था। ५

उस राजाका विशाखभूति, इस नामसे प्रसिद्ध एक सहोदर कनिष्ठ भाई था, जो लोगोंके मनोंको इष्ट, गुरुजनोंकी विनयपूर्वक आराधना करनेवाला तथा दीन अनाथोंको धन देनेवाला था।

ज्येष्ठ भाई—राजा विश्वभूतिकी भार्याका नाम 'जयनी' था, जो लज्जाशील एवं प्रियतमके चरणकमलोंका ध्यान करनेवाली थी। वह ऐसी प्रतीत होती थी, मानो वह राजाके नवयौवनकी लक्ष्मी ही हो, उसके नेत्र निर्मल नील-कमलके दलके समान थे, उसके शरीरकी कान्तिके वरावर तीनों लोकोमे अन्य कोई न था। उसमें एकत्रित गुण-समूह सभी जनोंमे आश्चर्य उत्पन्न करते थे। १०

कनिष्ठ भाईकी लक्ष्मणा नामकी मनोज्ञ भार्या थी, जो नाना प्रकारके उत्तम लक्षणोंसे युक्त थी।

घत्ता—वह (पूर्वोक्त ब्रह्मदेव) त्रिदशावाससे चयकर ज्येष्ठ भाई विश्वभूतिके यहाँ शरीर, वल, श्री, रूप आदि अनेक गुणोंके लिए स्थानस्वरूप तथा समस्त सौभाग्योंके साथ अत्यन्त सुन्दर कान्तिवाले पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुआ ॥४२॥ १५

४

विश्वभूतिको विश्वनन्दि एवं विशाखभूतिको विशाखनन्दि नामक पुत्रोंकी प्राप्ति तथा प्रतिहारीकी वृद्धावस्था देखकर राजा विश्वभूतिके मनमे वैराग्योदय

पिताने उस नवजात शिशुको नाना प्रकारके गुणोंका नियोगी जानकर उसका नाम विश्वनन्दि रखा। लघु भाई विशाखभूतिको अपने कुलरूपी कमलको आनन्दित करनेवाला विशाखनन्दि नामका पुत्र हुआ।

एक्कहे दिणि राएँ कंपमाणु पडिहारु देक्खि आगच्छमाणु ।
संचिंतिउ णिच्चल-लोयणेण वइराय-भाव-पेसिय-मणेण ।
5 एयहो सरीरु चिरु चित्तहारि लावण्ण-रूव-सोहग्ग-धारि ।
माणिज्जंतउ वर-माणिणीहिँ अवलोइज्जंतउ कामिणीहिँ ।
तं बलि-पलियहिँ परिभविउ कासु सोयणिउ णं संपइ पुण्णरासु ।
जयविहु सयलिंदिय भणिय सत्ति णिण्णासिय-दुट्ठ-जरा-पउत्ति ।
मग्गेइ तो-वि णिय-जीवियास णिरु वड्ढइ वुड्ढहो मणे पियास ।
10 सिढिली भूजुंवल णिरुद्ध-दिट्ठि पइ-पइ खलंतु णावंतु दिट्ठि ।
णिवडिउ महि-मंडलि कह वि णाइँ णिय-जोव्वणु एहु णियंतु जाइँ ।

घत्ता—अहवा गहणम्मि[3] भव-गहणम्मि, जीवइँ णट्ठ-पहम्मि ।
उप्पाइय पेम्मु कहिँ भणु खेमु कम्म-विवाय-दुहम्मि ॥४३॥

५

इय वइरायल्लें णरवरेण परिणिज्जिय-दुज्जय-रइवरेण ।
जाणमि विवाय-दुह-बीउ रज्जु अप्पिवि अणुवहो धरणियलु सज्जु ।
जुवराए थवेविणु णिय-तणूउ सुमहोच्छवेण गुण-पत्त भूउ ।
पणवेवि सिरिहर-पय-पंकयाइँ विहुणिय-संसार-महावयाइँ ।
5 णिच्चलयरु विरएविणु स-सित्तु अजरामर-पय-संपय-णिमित्तु ।
चउसय-णरिंद-सहिएण दिक्ख संगहिय मुणिय-स-समयहो सिक्ख ।
सुरतरु व कप्पवल्लिए खण्णु सिहि-सिह-संतविय-सुवण्ण-वण्णु ।
छव्वग्ग-वइरि-विजएण जुत्तु सत्तित्तय-गुण वित्थरण-धुत्तु ।
सविहव-णिज्जिय-सयमह-विभूइ सोहिउ णिव-सिरिए विसाहभूइ ।
10 बल-वीर-लच्छि-णय-संजुओ[1] वि सुर-करिवर-कर-दीहर-भुवो वि ।
जुवराउण णिय-पित्तियहो आण लंघेविणु विरइय अप्प-ठाण ।

घत्ता—महुवर-रावालु कोइल कालु दंसिय-णहयर चारु ।
पयडिय-राएण जुवराएण वणु विरयायउ चारु ॥४४॥

६

तेत्थु सुंदरे वणम्मि भूरुहावली-घणम्मि ।
इंद-णंदणावभासि फुल्ल-रेणु-वासियासि ।
कोमले तियाल-रम्मि चूव-साहिणो तलम्मि ।

---

४. १. J. स. । २. D. ज्जु॰ । ३. V. ॰णु ।
५. १. D. भुओ ।

किसी एक दिन राजा विश्वभूतिने आते हुए प्रतिहारीको काँपता हुआ देखा, तब वह वैराग्य-भावसे प्रेषित (प्रेरित) मन होकर निश्चल-नेत्रोसे विचार करने लगा कि—'इस लावण्य, रूप एवं सौभाग्यधारी प्रतिहारीका शरीर तो चिरकाल तक मनोहारी रहा तथा श्रेष्ठ मानिनी महिलाओं द्वारा सम्मानित तथा कामिनियों द्वारा अवलोकित रहा है, किन्तु अब वही वलि—बुढ़ापेके आ पड़ने और श्वेत बालोंके हो जानेके कारण यह कैसा परिभूत—(तिरस्कृत) हो गया है, और वही पुण्यराशि इस समय शोक-विह्वल है। सकल इन्द्रियाँ ही शक्ति कही गयी है, यद्यपि दुष्ट वृद्धावस्थाने उसकी प्रवृत्तिको नष्ट कर डाला है, तो भी वह अपने जीनेकी आशा करता है। इस बुड्ढेके मनमे तृष्णाकी प्यास बढ़ी हुई है। शिथिल भौहोंपर दृष्टिको निरुद्ध करके पग-पगपर लड़खड़ाता हुआ दृष्टि झुकाये वह ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो पृथिवीपर कही गिरे हुए अपने यौवनको ही यत्नपूर्वक खोजता हुआ चल रहा हो।

घत्ता—अथवा गहन कर्म-विपाकके फलस्वरूप संसाररूपी गहन वनमें मार्ग-भ्रष्ट होकर यह जीव दुखमे भी प्रेम उत्पन्न करना चाहता है, तब उसका कल्याण कहाँसे होगा? ॥४३॥

५

राजा विश्वभूतिने अपने अनुज विशाखभूतिको राज्य देकर तथा पुत्र विश्वनन्दिको युवराज बनाकर दीक्षा ले ली

इस प्रकार वैराग्यसे युक्त होकर राजा विश्वभूतिने दुर्जेय कामदेवको जीतकर तथा राज्यको कर्म-विपाक—दुःखोंका बीज जानकर अपने अनुज विशाखभूतिको धरणीतलका समस्त राज्य अर्पित कर अपने पुत्रको युवराज-पदपर स्थापित कर सुन्दर महोत्सवपूर्वक गुणोंका पात्र बनकर संसाररूपी महान् आपत्तिका विध्वंस करनेवाले श्रीधर मुनिके चरणकमलोमें प्रणाम कर अपने मनको निश्चलतर बनाकर तथा अजर-अमर पदरूपी सम्पदा के निमित्त, चार सौ नरेन्द्रोके साथ उसने दीक्षा ले ली और स्वसमय (शास्त्र) की शिक्षाका संग्रह एवं मनन करने लगा।

कल्पलतासे जिस प्रकार कल्पवृक्ष रम्य प्रतीत होता है तथा जिस प्रकार अग्निकी शिखामें सन्तप्त स्वर्णका वर्ण होता है, उसी प्रकार तथा क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर एवं कामरूप षड्वर्गरूपी शत्रुकी विजयसे युक्त, शक्तित्रयरूपी गुणोंके विस्तरणमे उद्यत, अपने वैभवसे शतमख—इन्द्रकी विभूतिको जीतनेवाला वह विशाखभूति भी अपनी नृपश्री से सुशोभित होने लगा।

बल, वीर्य, लक्ष्मी एवं नय-नीतिसे युक्त तथा श्रेष्ठ ऐरावत हाथीकी सूँड़के समान दीर्घभुजाओंवाले उस युवराज विश्वनन्दिने अपने चाचाकी आज्ञाका उल्लंघन कर अपना स्थान (अलग) बनवाया।

घत्ता—अपने अनुरागको प्रकट करते हुए युवराजने एक ऐसे सुन्दर उपवनका निर्माण कराया जो मधुकरों एवं कृष्णवर्णा कोयलोके मधुर, रवोंसे गुंजायमान तथा सुन्दर पक्षियोसे युक्त दिखाई देता था ॥ ४४ ॥

६

युवराज विश्वनन्दि द्वारा स्वनिर्मित नन्दन-वनमें विविध-क्रीड़ाएँ। विशाखनन्दि का ईर्ष्यावश उस नन्दन-वनको हड़पनेका विचार

अन्य किसी एक समय विशाल चित्त, वन्दीजनोंको दान देनेवाला, सुन्दर कामिनियोंके साथ एकाग्रचित्तसे क्रीड़ाएँ करता हुआ तीक्ष्ण खड्गरूपी धेनु हाथमें धारण किये हुए बुद्धि श्रेष्ठ,

उज्जले सिलायलम्मि एक्कया[1] तओवरम्मि ।
5 संट्ठिउ विसाल-चित्तु वंदि-लोय-दिण्ण-वित्तु ।
चारुकामिणी[2] समाणु एक्क चित्तु कीलमाणु ।
तिक्ख-खग्ग-घेणु हत्थु धीवरो[3] गुणी महत्थु ।
लीलए मही कमंतु सत्तुणो घणं-दमंतु ।
रुक्ख संत्तई णियंतु दुट्ठ-मदणो कियंतु ।
10 अद्ध-इंदु-तुल्ल-भालु विस्सणंदि णेइ कालु ।
तं वणं कयावि दिक्खि सोक्खरं मणेण लक्खि ।
विस्सुओ विसाहणंदि जं सया थुणंति वंदि ।
पत्तु सो भणेइ वित्थु संठिया जणेरि जेत्थु ।
मत्थयं पणासिऊण पाणि-जुम्मु जोडिऊण ।
15 विस्सभूइ-णंदणासु राय-लच्छि-णंदणासु ।
णंदणं जणेरि देहि मज्झु भूहरं भणेइ ।
तं सुणेवि पुत्त घुट्ठु चिंतिऊण चित्ति सुट्ठु ।
ताए मग्गिओ णरिंदु दीहहत्थु णं[4] करिंदु ।
देव देहि मे सुवासु णंदणो गुणंकियासु ।
20 घत्ता—जइ जीविउ मज्झु देव असज्झु इच्छहि हियइ निरुत्तु ।
इय पणय-गयाइँ मोहरयाइँ लहु लक्खणइँ पहुत्तु ॥ ४५ ॥

७

तं वयणु[1] सुणेवि विसाहभूइ मणि मंतिवि संत-महंत-भूइ ।
अणुदिणु णिरु सम्माणिय-सपत्ति हियरर-जुवरायहो उवरि झत्ति ।
विक्किरिया-भावहो गयउ केम मरुहउ-घण-संझा-राउ जेम ।
पिय-रत्तउ सुवणु-विसत्तु होइ सव्वत्थ इत्थु वज्जरइ जोइ ।
5 इत्थंतरे भेसिय-परवलेण लहु करि किंकरणीयाउलेण ।
सद्देवि एयति समंति-वग्गु णियमइँ-जाणिय सग्गापवग्गु ।
तं भणि वित्तंतु असेसु तेण पुच्छिउ तहो उत्तरु नरवरेण ।
णरवइहे तणिय णय-रहिय वाणि विमलयर-दिट्ठ-णिय-मणोवियाणो ।
वाहरइ कित्ति णामेण मंति णिय-सामिहे कुलो वित्थरिय-संति ।
10 जइणी-णंदणु तियरणहिँ सुट्ठु भू-वल्लह तुह ण कयावि दुट्ठु ।
सो वार वार अम्हहँ[2] चरेहिँ सुपरिक्खिउ पर-माणस-हरेहिँ ।
जइ तहो पायडिय-सविक्कमासु णयवंतहो धरिय कुलक्कमासु ।
घत्ता—जुयराहो चित्ते[3] धम्मपवित्ते होइ जगीस नरिंद ।
ता किं भणु वज्झु भुवणे असज्झु सिरि-परिभविय-सुरिंद ॥ ४६ ॥

---

६. १. J. V. °क्कु । २. D. वा° । ३. J. V. °रे । ४. D. दीहहत्थु ।
७. १. J. °ण । २. D. °हिं । ३. J. V. वित्ते । ४. V. ण ।

महान् गुणी, लीलाओं पूर्वक पृथिवीपर भ्रमण करता हुआ, शत्रुओंका विशेष रूपसे हनन करता हुआ, वृक्ष-पंक्तिका अवलोकन करता हुआ, दुष्टजनोंके मान-मर्दनके लिए कृतान्तके समान, अर्ध-चन्द्रके तुल्य भालवाला वह विश्वनन्दि वृक्ष-पंक्तिसे सघन एवं इन्द्रके नन्दनवनके समान प्रतिभासित ५ होनेवाले तथा फूले हुए पुष्पोंकी रजसे दिशाओंको सुवासित करनेवाले उस सुन्दर वनमे कोमल तथा त्रिकालोंमें रमणीक किसी आम्रवृक्षके नीचे उज्ज्वल शिलातलके ऊपर स्थित होकर जब अपना समय व्यतीत कर रहा था।

तभी किसी समय सुखके गृहस्वरूप उस नन्दन-वनको देखकर वह विशाखनन्दि जिसकी कि बन्दीजन निरन्तर स्तुति करते थे, विषादसे भर उठा। वह (शीघ्र ही) वहाँ पहुंचा जहाँ, १० माता विराजमान थी। वहाँ उसने दोनों हाथ जोड़कर माथा झुकाकर उससे कहा—'हे माता, राजा विश्वभूतिके नन्दनको तो राज्यलक्ष्मीके नन्दनके समान नन्दन-वन दे दिया गया और मुझे (छूछा) भूधर बताया जाता है ?" पुत्रकी घुड़की सुनकर माताने अपने मनमे भली-भाँति विचार किया और करीन्द्रके समान ही दीर्घबाहुवाले विशाखभूतिके पास गयी और कहा कि "हे देव मेरे गुणालंकृत नन्दन विशाखनन्दिके लिए नन्दन-वन दे दीजिए।" १५

घत्ता—"हे देव, यदि आप असह्य मेरे प्राणोंको हृदयसे बचाना चाहते हैं, तो आज्ञाकारी, मुखर एवं अनेक लक्षणोवाले हाथियों (सहित इस नन्दन-वन) को विशाखनन्दिके लिए शीघ्र ही दिला दे" ॥४५॥

७

विश्वनन्दिसे नन्दन-वनको छीन लेने हेतु विशाखभूतिका अपने मन्त्रियोंसे विचार-विमर्श

अपनी महारानीका (उलाहनापूर्ण) कथन सुनकर विशाखभूतिने अपने मनमें सर्वप्रथम बड़े भाई विश्वभूतिकी महान् समृद्धि एवं सन्तवृत्तिपर विचार तो किया, किन्तु (शीघ्र ही) प्रतिदिन शत्रुओं द्वारा अत्यधिक सम्मानित एवं हितंकर युवराजके ऊपर उसका विकृत भाव जागृत हो उठा। वह कैसे ? ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार कि वायुसे घनी सन्ध्याका राग विकृत हो जाता है। योगीजनोंने सर्वत्र यह ठीक ही कहा है कि "पितामें आसक्त पुत्र भी (समय ५ आनेपर) शत्रु हो जाता है (फिर चाचा-भतीजेका तो कहना ही क्या ?)।"

इसी बीच शत्रुसे भयभीत तथा 'क्या करना चाहिए' इस प्रकार आकुल-मन होकर उस राजा विशाखभूतिने स्वर्ग-अपवर्गके नियमोको जाननेवाले अपने मन्त्रियोंको शीघ्र ही एकान्तमे बुलाकर उन्हे वह अशेष (जटिल) वृत्तान्त कह सुनाया तथा उनसे उसका उत्तर भी पूछा। राजाकी वाणी नीति रहित है" इस प्रकार विमलतर दृष्टिसे अपने मनमे विचार कर कीर्ति १० नामक मन्त्रीने (उस राजासे) कहा—"वह विश्वनन्दि अपने स्वामीके कुलमे शान्तिका विस्तार करनेवाला जयनी-माताका नन्दन, मन, वचन एवं कायरूप त्रिकरणोसे शुद्ध तथा भू-वल्लभ है। आपके साथ उसने कभी भी दुष्टता नही की। हमने गुप्तचरोंके साथ बारम्बार उस परमनापहारी (विश्वनन्दि) की परीक्षा स्वयं ही कर ली है। कुलक्रमके धारी उस नीतिवान् विश्वनन्दिका पराक्रम भी प्रकट है।" १५

घत्ता—अपनी श्रीसे सुरेन्द्रको भी पराभूत करनेवाले हे जगेश, हे नरेन्द्र, आप तो भुवनमे असाध्य है, फिर भी धर्मसे पवित्र चित्तवाले उस युवराजके प्रति आपकी भावना विकृत क्यों हो रही है ? आप ही उसका कारण कहिए ?" ॥४६॥

८

अणुकूलतमहो सोयर सुवासु उप्परि पाढय-जण-संथुयासु ।
तुह णयवंतहो अवि विमुह वुद्धि उज्झउ कय-चइर णरिंद-रिद्धि ।
तिमिरुण णयणावरणहो णिमित्तु मारण समत्थु ण गरलु वि णिरुत्तु ।
ण णरउ वहु-दुहयरु णायवंत भासहि कलत्तु णित्तुलउ संत ।
5 [1]णय-मग्ग-वियक्खण णरवरासु जुत्तउ ण तुज्झु णिज्जिय-परासु ।
महिलाहिय-इच्छिय करणु राय जस-ससहर-धवलिय महि-विहाय ।
[2]वियरंतहँ पिसुणहँ भासियाइँ अवजसु होसइ अलुहासियाइँ ।
मग्गिज्जंतु वि सोवणु ण देइ वण गय मणहरे सिरि सोक्खु लेइ ।
थिर-मइए दिक्खु दलियारि-विंद कहो मइ ण लुद्ध मणहरे[3] णरिंद ।
10 पिय-वयण-कसा-हउ करिवि कोउ अणपावेविणु पायडिय सोउ ।
पडिवक्खु होइ जइ अण वेपक्खु सहसत्ति हरहि होइवि विवक्खु ।

घत्ता—गुण-रयण-णिहाण राय-पहाण ता सयल विज्झेँ[4] स-मुदे ।
तहो पायवयंति सेवरयंति णय इव विउलि समुद्दे ॥ ४७ ॥

९

जिय अवर णरिंद वि देव जुज्झे जुवराय पुरउ परयण-असज्झे ।
सोहहिँ णं हिमंसु व दिणयरासु मेल्लंतहो किरणइँ भासुरासु ।
अहवा संगरि दइवहो वसेण पइँ कहव णिवाइउ सहु-रिसेण ।
ता जगे वित्थरइ जणापवाउ तम-णियरुव रयणिहिँ णिव्विवाउ ।
5 इय वयणु भणेवि विवाय रम्मु वुह कण्ण-रसायणु पर-अगम्मु ।
णय-सहिउ मंति विरमियउ[1] जाम पडिवयणु णराहिउ देइ ताम ।
परिएसु एउ जारिसु पउत्तु वुहयणहँ एउ करेंणिउँ[2] णिरुत्तु ।
सो भणु उवाउ भो मंति जेण तं वणु अदोसु लब्भइ सुहेण ।
इय सामिहे वयणु सुणेवि मंति पुणु भणइ महामइ विगय-भंति ।
10 न मुणमि सामिय तमुवाउ वुज्झु जो जाणइ सो पायडउ तुज्झु ।
अहवा णिय-वुद्धिए कुरु णरेस मइ होंति भिण्ण पुरिसहँ सुवेसँ[3] ।
णिय-मणि गउ मंतु मुणंतु[4] सत्थु महमइवि मंति भासण-समत्थु ।

---

८. १. D. णयण । २. D. विरयंतहं V. विरयंत तं । ३. D. °र । ४. D. °ज्झ ।
९. १. D. °मयउ । २. J. V. करि° । ३. D. सुवेण । ४. D. मणंतु ।

८

मन्त्रिवर्ग मूढ़बुद्धि विशाखभूतिको समझाता है

"आपके सहोदरका पाठक-जनों द्वारा संस्तुत सुपुत्र आपके लिए अनुकूल तम है। आप नीतिवान् है फिर भी उसके प्रति विमुख वुद्धि रखते हैं, (तब यही कहना होगा कि) वैरको उत्पन्न करनेवाली यह नरेन्द्र-ऋद्धि भस्म ही हो जाये (तो अच्छा है)। नेत्र दृष्टिके आवरणमे अन्धकार ही निरन्तर निमित्त कारण नही होता, मारनेमे गरल ही निरन्तर समर्थ नहीं होता, नरक ही निरन्तर अनेक दुखोंका कारण नही बनता, अपितु नीतिज्ञ सन्तोंने कलत्रको भी अनुपम दुखोंका निमित्त कारण वताया है। शत्रुओंको पराजित करनेवाले हे नरवर, आप न्यायमार्गमे विचक्षण है, अतः यशरूपी चन्द्रमासे पृथिवी एवं आकाशको धवलित करनेवाले हे राजन्, आपके लिए यह उचित नही होगा कि आप महिलाकी किसी अहितकारी इच्छाको पूर्ण करें। दुर्जनके अशुभाश्रित कथनके अनुसार प्रवृत्ति करनेवालेका अपयश होकर ही रहेगा। वह (विश्वनन्दि) अपने नन्दन-वनमें जाकर मनोहर श्री-सौन्दर्यका सुख ले रहा है, अतः वह माँगे जानेपर भी उस (नन्दन-वन) को नहीं देगा। अरिवृन्दका दलन करनेवाले हे नरेन्द्र, स्थिर वुद्धिसे विचार तो कीजिए कि अपने-अपने मनोहर मतपर किसकी वुद्धि लुब्ध नहीं होती? अपनी प्रियतमाके वचनरूपी चावुकसे आहत होकर आप कुपित होंगे तथा (माँगनेपर भी नन्दन-वनको) प्राप्त न करके आप शोक प्रकट करेंगे और तब यदि प्रतिपक्षी भी अपने प्रतिपक्षीकी उपेक्षा करनेवाला हो जाये, तव आप सहसा ही उसके विपक्षी होकर उसके नन्दन-वनका हरण करना चाहेंगे।

घत्ता—हे गुणरत्न निधान, हे राजाओमे प्रधान, सभी जन उसके (विश्वनन्दि के) चरणों में रहते है, तथा सेवा करते हैं। 'यह (विशाखभूति) अपनी मर्यादा को भी वेध (छोड़) रहा है' यह कहकर वे सभीजन उस (विश्वनन्दि) के साथ उसी प्रकार मिल जायेंगे, जिस प्रकार कि बड़े-बड़े नद समुद्रमें मिल जाते है ॥४७॥

९

राजा विशाखभूतिको महामन्त्री कीर्तिकी सलाह रुचिकर नहीं लग सकी

हे देव (यद्यपि) आपने युद्धमें अन्य नरेन्द्रोंको जीत लिया है तो भी परजनों द्वारा असाध्य युवराज (विश्वनन्दि) के सम्मुख (युद्धक्षेत्रमें) आप उसी प्रकार शोभित न होगे, जिस प्रकार किरणोंको विकीर्ण करते हुए भास्वर दिनकरके सम्मुख चन्द्रमा सुशोभित नही होता। अथवा दैववशात् अथवा क्रोधपूर्वक आपने किसी प्रकार युद्धमे यदि उसे परास्त भी कर दिया तो जगत्में निर्विवाद रूपसे उसी प्रकार जनापवाद फैल जायेगा, जिस प्रकार कि रात्रिमे निविड अन्धकार-समूह फैल जाता है।" इस प्रकार विपाकमे रम्य वुधजनोंके कानोंके लिए रसायनके समान एवं शत्रुजनोंके अगम्य, नीतियुक्त वचन कहकर जब कीर्त्ति नामक वह मन्त्री चुप हो गया तब नराधिपने उत्तर दिया—"आपने जैसा कहा है, वुधजनोंके लिए वही करना उचित है। किन्तु हे मन्त्रिन्, ऐसा कोई उपाय बताइये, जिससे सहज ही मे वह नन्दन-वन विना किसी विद्वेषके प्राप्त हो सके। स्वामीके ये वचन सुनकर महामति एवं निर्भ्रान्त मन्त्रीने पुनः कहा—"मैं उस उपायको न तो सोच ही पाता हूँ और न समझ ही पाता हूँ। जो जानता हूँ, सो वह आपके सम्मुख प्रकट कर ही दिया है। अथवा सुन्दर वेशवाले हे नरेश, अव आप अपनी वुद्धिसे ही कोई उपाय कीजिए, क्योकि पुरुषोंकी मति तो भिन्न-भिन्न होती है। भाषणमें समर्थ एवं महामतिवाला मन्त्री तो अपने मनमे आये हुए विचारोंको ही प्रशस्त मानता है।"

घत्ता—इय भासिवि वाणि गुणमणि खाणि विरमिए मंति-पहाणि ।
मंतियणु विसज्जे णिय मणुकज्जे थविउ णिवेण णियाणि ॥ ४८ ॥

१०

परिकलिवि किंपि सइँ णिय-मणेण सद्देवि सोयर-सुउ तक्खणेण ।
भासइ णरणाहु महंतु-सत्तु किं ण मुणहि तुहु पडिकूल सत्तु ।
णामेण पसिद्धउ कामरूउ अवयरिउ णाइँ जमरायं-दूउ ।
तओ साहणत्थु हउँ जामि पुत्त पच्छइ अच्छिज्जहि गुण-णिउत्त ।
5 तं सुणेवि वयणु पणमिय-सिरेण जुवराउ पयंपइ कलरवेण ।
मइँ हुंतएण को तुह पयासु पहु मइँ पेसहिँ हं हणमि तासु ।
विणु पडिवक्खेँ जो महु पयाउ वइरियण-विंद-परिसेसियाउ ।
वहु कालु भुवेसु विलीयमाणु ण मुणिउ णरणाह कयावि जाणु ।
तं मइ पयडिव्वउ मह-रणम्मि पर-वल-वस-णिवडिय-खय-गणम्मि ।
10 इय जुवरायहो भासिउ सुणेवि अइ साव लोउँ[2] सुंदरु मुणेवि ।

घत्ता—संपेसिउ तेण णरणाहेण संभूसेविणु जाम ।
वण-रक्ख करेवि किंकर देवि सो वि विणिग्गउ ताम ॥ ४९ ॥

११

स[1]देसं दिणेहिँ मुएऊण मग्गे चलंता ण वाईह-पाइक्क-वग्गे ।
जयं भूरि-भेरी-रवेणं भरंतो सलच्छीए सक्कस्स लच्छी हरंतो ।
महा-सूर-सामंत-कोडीहिँ जुत्तो तुरंसत्तु-देसस्स पासे पहुत्तो ।
सहा-मज्झे इत्थंतरे दूरि दिट्ठो विसंतो पडीहार-दंदेण सिट्ठो ।
5 वणावद्ध पट्टावलीए विलक्खो ....
सिरेणं णमेऊण णाहं णिविट्ठो पुणो दिट्ठि दिण्ण-प्पएसे विसिट्ठो ।
पुरा एव आहा सियंधत्थ गव्वं वणाली समक्कंत देहेहिँ सव्वं ।
खणेक्कं जु वेसाण ए ठाइऊणं समाउच्छियं मत्थयं णाविऊणं ।
पुणो भासएसो सरोसो सवित्तं सकोवं करंतो सणाहस्स चित्तं ।
10 जणेराणए अम्हि णिब्भच्छिऊणं रुसांकुर-दिट्ठिए संपेसिऊणं ।
तईयं वणं गेण्हिऊणं वतेणं सया तुम्हि जोग्गं दुरासा खलेणं ।
[2]ठिओ तत्थ दुट्ठो विसाहाइणंदी [3]धणाओरिया णेय धावंतवंदी ।

---

१०. १. J. V. °राइ । २. D. लेउ ।
११. १. J. V. संदेसं. । २. D. J. V. ठिउ । ३. D. J. V. °ऊरि° ।

घत्ता—इस प्रकार वचन कहकर गुणरत्नोंकी खानि स्वरूप वह प्रधान-मन्त्री जब चुप हो गया, तब नृप विशाखभूतिने मन्त्री वर्गको विसर्जित कर दिया और अन्तमें उस कार्यको (स्वयं ही) करनेके निमित्त अपना मन एकाग्र किया ॥४८॥ १५

१०

विशाखभूतिने छलपूर्वक युवराज विश्वनन्दिको कामरूप नामक शत्रुसे युद्ध करने हेतु रणक्षेत्रमें भेज दिया

राजा विशाखभूतिने स्वयं ही अपने मनसे कुछ विचार करके तत्काल ही सहोदर भाईके पुत्र—विश्वनन्दिको बुलाकर कहा—"क्या तुम नही जानते कि महान् शक्तिशाली शत्रु हमारे प्रतिकूल हो गया है। वह 'कामरूप' इस नामसे प्रसिद्ध है। वह ऐसा प्रतीत होता है मानो यमराजका दूत ही अवतरा हो। मैं उसे नष्ट करनेके लिए जानेवाला हूँ। अतः हे गुण नियुक्त पुत्र, मेरी अनुपस्थितिमे तुम सावधानीसे रहना।" चाचा विशाखभूतिके (छल-प्रपंचवाले) वचन सुनकर ५ युवराज विश्वनन्दिने नतमस्तक होकर मधुर-वाणीमें कहा—"मेरे होते हुए आपको कौन-सा प्रयास करना है ? हे प्रभु, आप मुझे (वहाँ) भेजिए। मैं (ही) उसे मारूँगा। समस्त वैरी-जनोंको समाप्त कर देनेवाला मेरा जो प्रताप था, वह किसी प्रतिपक्षीके विना कई दिनोंसे मेरी भुजाओंमे ही विलीन होता जा रहा है। हे नरनाथ, आपने न तो वह जाना और न (उसपर कभी) विचार ही किया है। (अतः अब अवसर मिला है तो) पराये बलके वशीभूत वैरीगणको महान् १० रणमें नष्ट करने हेतु आप मुझे ही प्रकट करें (अर्थात् मुझे रणभूमिमें जाकर अपना प्रताप दिखाने दे)।" इस प्रकार युवराजका दर्पोक्ति पूर्ण कथन सुनकर तथा उसे अतिसुन्दर मानकर—

घत्ता—उस नरनाथ विशाखभूतिने (विश्वनन्दिको) सजा-धजाकर वहाँ (कामरूपसे युद्ध करने हेतु) भेज दिया। उस युवराजने भी नन्दन-वनकी सुरक्षा-व्यवस्था कर (तथा अपने) सेवकोंको सावधान कर वहाँसे प्रयाण किया ॥४९॥ १५

११

विशाखनन्दि द्वारा नन्दन-वनपर अधिकार

मार्गमें वाजि एवं पदाति सेनाओंके साथ चलते-चलते कुछ ही दिनोंमें स्वदेश छोड़कर अनेक भेरी-रवोंसे जगत्को भरता हुआ, अपनी लक्ष्मीसे शक्रकी लक्ष्मीको भी पराजित करता हुआ, करोड़ों महान् शूर, सामन्तोंसे युक्त वह विश्वनन्दि शीघ्र ही शत्रु-देशके पार्श्व भागमें जा पहुँचा।

इसी बीचमे (एक दिन) जब वह (अपनी) सभाके मध्यमे बैठा था, तभी उसने दूरसे ही एक दण्डधारी प्रतिहारीको वहाँ प्रवेश करते हुए देखा। उसके घावोंपर कपड़ेकी पट्टियाँ बँधी ५ हुई दिखायी दे रही थी (× × × ×) वह नाथ (विश्वनन्दि) को सिर झुकाकर पुनः दृष्टि-विशेष द्वारा प्रदत्त स्थानपर बैठ गया। यद्यपि कुछ देर तक बैठकर अपने घावोंसे परिपूर्ण शरीर द्वारा वह सब कुछ निवेदन कर ही चुका था, फिर भी एक क्षणके लिए (विशाखनन्दिके प्रति) द्वेष-वश खड़े होकर व्याकुलता पूर्वक माथा झुकाकर, पुनः रोषसे भरकर उस (प्रतिहारी) ने अपने नाथ—विश्वनन्दिके चित्तको क्रोधित कर देनेवाला अपना समस्त वृत्तान्त (इस प्रकार) १० कहा—"चाचा विशाखभूतिकी आज्ञासे हमारी भर्त्सना की गयी, रुष्ट एवं क्रूर-दृष्टि द्वारा हमें भगा दिया गया तथा निरन्तर आपके योग्य उस नन्दन-वनको दुराशयी उस दुष्ट विशाखनन्दिने बलात् हमसे छीन लिया। दुष्ट विशाखनन्दि (अभी) वहाँ स्थित है, तथा धनसे आपूरित अनेक वन्दी वहाँ दौड़ रहे है।

घत्ता—जं किउ रक्खेहिँ आण विलक्खेहि सगुणाणंदिय देव ।
दुस्सह रणरंगे विहुणिय अंगे[४] तं पि सुणेसहि देव ॥ ५० ॥

१२

इय मायणिणवि वण-हरण-वत्त वणवाल-णिवेइय-ससरजत्त ।
पारद्ध जिणेविणु हियइँ कोउ धीरेण[१] तेण वइरियणइँ-लोउ ।
एत्थंतरि संपाविय-जएहिँ दूसह-पयाव-सत्तिहि णएहिं ।
साहिउ रिउ समरावणिए जाम सो पणवेप्पिणु करु देइ ताम ।
5 वहु पणउ जणेविणु वाहुडेवि गउ गयवर-गइ तहो आण लेवि ।
जुवराएँ परवल-दूसहेण सहली विरइय समणोहरेण ।
णिय-णिय पुरवरे परिमुक्क कोउ सइँ पविसज्जंतेँ राय-लोउ ।
देक्खिवि स-देसि लहु धावमाणु आउल-मणु लोउ पलोयमाणु ।
आवंतेँ अम्हणिरुद्ध नासु नियमंति-समिच्छिय-सयल-कामु ।
10 एउ लोउ केण भणु कारणेण भज्जंतु जाइ चत्तउ धरेण ।

घत्ता—तं सुणेवि णिरुद्धु धम्मविसुद्धु धीरवाणि धुव[२]-पाउ ।
आहासइ ता[३]सु धरिय-णयासु परियाणिय परभाउ ॥ ५१ ॥

१३

सव्वत्थवि तुव वणु करेवि दुग्गु लक्खण-तणूउ कोएण उग्गु ।
एयहो पइँसिहुँ संगरे समाणु तुम्हहँ दोहिमि णरवइ समाणु ।
इउ जाणि पलायइ जणु असेसु भय-भीउ अवरु ण मुणमि विसेसु ।
तं णिसुणेविणु 'जइणी-सुएण' णिय मणे चिंतिवि दीहर-भुएण ।
5 आहासिउ जहिँ महु तणउ भाउ लहुए विहिणासो किउ उवाउ ।
जइ जामि कहव वाहुडि अहीणु ता णेइ कोवि भडु भय-विहीणु ।
जइ मारिवि जम-मंदिरहो णेमि ता अयस-महीवहो णीरु देमि ।
भणु किं जुत्तउ करणीउ मज्झु वुहयणहँ वि चिंततहँ असज्झु ।
तं णिसुणेवि पुणरवि भणई मंति णिय-पहु-पुच्छिउ विहुणनु भंति ।
10 जिह विसुद्दी होइ न वीर-लच्छि कर-कमलि चडइ तुव विजयलच्छि ।
तं तुह करणी उहवेइ देव किं वहुणा णिहणिय-सावलेव ।

---

४. D. J. V. अंगि ।
१२. १. D. J. V. °वण । २. D. धुव । ३. D. V. ना° ।

घत्ता—अपने सद्गुणोंसे आनन्दित हे देव, (नन्दनवनके) रखवालोंने जो किया, उसे आप आकर देखेंगे ही। दुस्सह रणरंगभूमिमें मेरे अंग ध्वंसित (कैसे) हो गये, हे देव, उसे भी आप वहीं सुनेंगे" ॥५०॥ १५

१२

कामरूप-शत्रुपर विजय प्राप्त कर युवराज विश्वनन्दि स्वदेश लौटता है तो प्रजाजनोंको आतुर मन हो पलायन करते देखकर निरुद्ध नामक अपने महामन्त्रीसे उसका कारण पूछता है

इस प्रकार वनपाल द्वारा निवेदित वनहरण एवं समर-यात्राका वृत्तान्त सुनकर प्रारम्भमे ही उस धीर-वीर युवराजने हृदयमें क्रोधित होकर अपने दुस्सह प्रताप, शक्ति एवं न्याय-नीति द्वारा संसारके वैरीजनोंपर विजय सम्पादित कर डाली। इसी बीचमें जब उसने समरभूमिमे अपने शत्रु (कामरूप) को पराजित किया तब उसने भी माथा झुकाकर अत्यन्त प्रेम जनाकर, भेंटें देकर तथा कर (टैक्स) देना स्वीकार कर लिया और (बादमें) युवराजकी आज्ञा प्राप्त कर वह श्रेष्ठ हाथीकी गतिसे भागा। ५

शत्रुके लिए दुस्सह एवं स्वयं मनोहर लगनेवाले उस युवराजने सफलता प्राप्त कर, अपने-अपने (विजित) नगरमें कोई न कोई राजलोक (प्रतिनिधि) छोड़कर (वहाँसे) स्वयं विसर्जित हुआ (और देशकी ओर बढ़ा)। स्वदेशमे (पहुँचते ही) अपने प्रजाजनोंपर आकुल मन होकर दृष्टिपात करते हुए एवं उसे शीघ्रता पूर्वक भागते हुए देखकर तथा सभी कार्योंको करनेमे समर्थ अपने निरुद्ध नामक मन्त्रीको आते हुए देखकर, उसने उससे पूछा—"ये लोग अपनी-अपनी भूमि छोड़कर क्यों भागे जा रहे हैं ? इसका कारण कहो।" १०

घत्ता—उसे सुनकर धर्मसे विशुद्ध एवं निष्पाप उस निरुद्ध नामक मन्त्रीने धीर-वाणीमें (युवराजसे) कहा—"हे न्यायनीति धारण करनेवाले, तथा दूसरोंकी भावनाको जाननेवाले— ॥५१॥ १५

१३

उपवनके अपहरणके बदलेमें विश्वनन्दिकी प्रतिक्रिया तथा अपने मन्त्रीसे उसका परामर्श

"लक्ष्मणाका पुत्र विशाखनन्दि उग्र कोपके कारण तुम्हारे उपवनके चारों ओर किलेबन्दी करके यहाँ आपके साथ युद्ध करना चाहता है। आपको (विश्वनन्दि) और उस विशाखनन्दिको समान नरपति मानकर तथा (भीषण युद्धमें नरसंहारकी कल्पना करके) भयभीत होकर समस्त प्रजा पलायन कर रही है। (बस मै इतना ही जानता हूँ इसके अतिरिक्त) और विशेष कुछ नही जानता।" मन्त्रीका यह कथन सुनकर दीर्घ भुजावाले जयनोके पुत्र उस विश्वनन्दिने अपने मनमे विचार किया और इस प्रकार कहा—"मेरे छोटे भाईके प्रति विधिने यह क्या उपाय कर दिया है ? यदि मै किसी प्रकार पीछे लौटता हूँ, तो भी निर्भीक एवं पराक्रमी हमारे कोई भी योद्धा पीछे न हटेंगे। यदि मै उसे मारकर यम-मन्दिर भेजता हूँ तब भी मैं अपयशरूपी महावृक्षको जल देता हूँ। (हे मन्त्रिवर, अब तुम ही) कहो कि (इन दोनोमे-से) मुझे क्या करना युक्ति-सगत होगा ? विचारशील बुधजनोंके लिए यह प्रश्न असाध्य-जैसा ही है।" इस प्रकार राजा द्वारा पूछे जानेपर मन्त्रीने उसके मनकी भ्रान्तिको नष्ट करते हुए (पुनः) कहा—'हे देव, आपके लिए वही करना चाहिए, जिससे वीर-लक्ष्मी विमुख न हो तथा तुम्हारे कर-कमलोंमे विजय-लक्ष्मी चढ़ी रह सके। मै और अधिक क्या कहूँ ? अतः आप गर्वके साथ उसे मारें।" ५ १०

घत्ता—तुहुँ[1] सुद्ध सहाउ विमुहुँ[2] न जाउ उववण-हरणहो काले ।
चिरु वत्त सुणेवि, हियइ धरेवि, संपत्तइ वणवाले ॥ ५२ ॥

१४

अवहरिवि तुज्झु वणु सोवि दुट्ठु पइँ हणण समीहइ[1] समरे सुट्ठु ।
अण्वरिउ एउ जायइ न कोइ तुह एयहो उप्परि पाण-लोइ ।
परिकूल भाव इय तरुवरासु सरिया वि ण किं कीरइ विणासु ।
जइ वंधु-वुद्धि तुह उवरि तासु ता किण्ण दूउ पेसइ दुरासु ।
5 अवराह-जुओ विमयावगीढो[2] पणवंत सीस हयपाय गीढो[3] ।
किंकरइ कोइ णिय-हियइं कोउ णयवंत-पुरिसु संजणिय-सोउ ।
जो करिवि भूरि अवराहु सत्तु पयडइ पच्छिल्लिउ पउर-सत्तु ।
तें सहु जुज्झियइ न को वि दोसु विरएविणु हियइँ महंतु रोसु ।
इहु कालु परक्कम-तणउँ तुज्झु मइँ कहिउ वियारेवि कज्जु वुज्झु ।
10 तुह भुअ-वल सरिसु ण अत्थि अण्णु को एयहो दुट्ठहो तणउँ गण्णु ।

घत्ता—तं वयणु सुणेविणु कज्जु मुणेविणु विस्सणंदि गउ तेत्थु ।
मण-पवन-जवेण सग्गभुवेण दुग्गट्ठिउ रिउ जेत्थु ॥ ५३ ॥

१५

दूरंतरे[1] णिविवेसिवि स-सिण्णु रणरंग-समुद्धरु वद्ध-मण्णु ।
अप्पुणु पुणु सहुँ कइवय[2]-भडेहिँ भूमिउडि[3]-विहीणउ उब्भडेहिँ ।
गउ दुग्गहो अवलोयण-मिसेण जुयराय-सीहु अमरिस-वसेण ।
तं पावेवि उल्लंघिवि विसालु जल-परिहा-समलंकरिय-सालु ।
5 विणिवाइवि सहसा सूर विंदु वियसाइवि सुर-वयणारविंदु ।
भग्गाइँ असिवरसिहुँरिउ-चलेण कलयल परिपूरिय-णह-यलेण ।
उप्पेंडिय सिलमय थंभ पाणि आवंतु कयंतुव वइरि जाणि ।
मलिणाणणु मह-भय-भरिय-गत्तु तणु-तेय-विवज्जिउ हीण-सत्तु ।
दिढयर कवित्थ तरुवरे असक्कु लक्खण गभुंब्भव चडिवि थक्कु ।
10 उप्पाडिए तरुवरे तम्मि णेण गुरुयरे सहुँ सयल-मणोहरेण ।
लक्खण-तणुरुहु कंपंत-गत्तु जुवराय-पाय-जुउ सरण-पत्तु ।

घत्ता—तं पेक्खिवि भग्गु पाय-विलग्गु मणि[6] लज्जिउ जुवराउ ।
लज्जए रिउ-वग्गो पणय-सिरग्गो अवरु विधीवर-सहाउ ॥ ५४ ॥

---

१३. १. J. V. °ह । २. J. V. °ह ।
१४. १. D. °इं । २. D. V. °ढे । ३. D. V. °ढे ।
१५. १. V. °प्पं° । २. V. °इं । ३. J. V. °सिं° । ४. D. J. °प्पं° । ५. J. °व्वं° । ६. D. °णे ।

घत्ता—"आप शुद्ध स्वभाववाले हैं, अतः उपवनके अपहरण-कालमें आप विमुख न हों।" इस प्रकार विश्वनन्दिने मन्त्रीके वीर रसयुक्त वचन सुनकर उन्हे अपने हृदयमें धारण किया।" (उसी समय) वहाँ वनपाल आ पहुँचा ॥५२॥ १५

१४

विश्वनन्दिका अपने शत्रु विशाखनन्दिसे युद्ध हेतु प्रयाण

"वह दुष्ट आपके उपवनका अपहरण करके युद्ध-भूमिमें आपका वध करना चाहता है। (हमें) यही आश्चर्य है कि आपको उस (दुष्ट) के ऊपर प्राण लेवा क्रोध (क्यों) नही आ रहा है? इस संसारमें (यह देखा जाता है कि) यदि कोई वृक्ष मार्गमें प्रतिकूल पड़ता हो, तो क्या नदी उसका विनाश नही कर डालती? यदि उसकी आपपर वन्धु-वुद्धि होती तो वह दुराशय (आपके पास अपना) दूत न भेजता? (और यह सन्देश न भेजता कि)—'मै अपराधसे युक्त ५ हूँ, तथा भयभीत होकर चरणोंमे माथा झुकाकर प्रणाम करता हूँ।' अपने हृदयमे कोई न्यायवान् (व्यर्थ ही) क्रोध नही करता, क्योंकि वह उसके शोक का कारण बनता है। हाँ, जो शत्रु अनेक अपराध करता हो तथा प्रवर-शक्तिका प्रदर्शन करता है, उसके साथ हृदयमे महान् रोप धारण कर जूझनेमें कोई दोष नहीं। आप-जैसे ज्ञानीके लिए यह समय पराक्रम दिखलानेका है, अतः मेरे कथनपर विचार करके कर्तव्य-कार्य करें। इस पृथिवीतलपर जव आपके भुजवलके सदृश अन्य १० कोई है ही नही, तब फिर इस दुष्टकी तो (तुम्हारे सम्मुख) गणना ही क्या?"

घत्ता—उसके वचन सुनकर तथा अपना कर्तव्य-कार्य समझकर वह विश्वनन्दि मन अथवा पवनके समान वेगसे वहाँ पहुँचा, जहाँ स्वर्गके समान भूमिपर निर्मित दुर्गमे वह शत्रु स्थित था ॥५३॥

१५

विशाखनन्दि अपनी पराजय स्वीकारकर विश्वनन्दिकी शरणमें आता है

रणरंगमें समुद्यत तथा क्रोधमें वँधी हुई अपनी सेनाको दूर ही छोड़कर पुनः स्वयं अपनी भृकुटियोंको चढ़ाये हुए तथा धैर्यहीन कतिपय उद्भट-भटोंके साथ वह युवराजरूपी सिंह आमर्पके वशीभूत होकर दुर्गके अवलोकनके वहाने उसकी ओर चला। जल-परिखासे अलंकृत विशाल कोट-को लाँघकर सहसा ही उसने शत्रुके शूरवीरोंका निपात (हनन) कर देवोंके मुख-रूपी कमलोंको विकसित किया। तव नभस्तल कल-कल शब्दसे परिपूर्ण हो उठा। शत्रु-सैन्यसे लड़नेके कारण ५ उसकी खड्ग जव भग्न हो गयी, तव शिलामय स्तम्भको हाथसे उखाड़कर कृतान्तके समान विश्व-नन्दि रूपी वैरीको आया हुआ जानकर मलिन मुखवाले महान् भयसे युक्त गात्रवाले तथा शारीरिक तेजसे विवर्जित हीन-सत्त्ववाले और लक्ष्मणानामक मातासे उत्पन्न वह विशाखनन्दि अशक्त होकर तथा थककर जव एक दृढ़तर कैथ-वृक्षपर चढ़ गया, [तव सभीमें मनोहर उस युवराजने उस महान् गुरुतर कैंथके वृक्षको भी उखाड़ डाला। तव (विवश होकर) लक्ष्मणाका पुत्र वह विशाखनन्दि १० काँपते हुए शरीरसे युवराजके चरणोंकी शरणमें आया।

घत्ता—उस विशाखनन्दिको भागकर आया हुआ तथा चरणोंमें गिरा हुआ देखकर वह युवराज अपने मनमे वड़ा लज्जित हुआ। (ठीक ही कहा गया है कि) यदि रिपुवर्ग प्रणत-सिर हो जाये तथा विद्वानोंका सहायक हो जाये, तव (युवराज-जैसे) विख्यात शूरवीरोंको स्वयं ही (अपने प्रति) लज्जाका अनुभव होने लगता है ॥५४॥ १५

१८

तत्थवि विसाहणंदी पहूउ सुउ जिणवर-तउ विरइवि सरुउ ।
एत्थंतरि सुर सेल-समिद्धउ जंबू नामि दीउ सुपसिद्धउ ।
जो छहि वासहरेहि विहत्तउ [1]सोहइ सत्त-खेत्त-संजुत्तउ ।
तेसु सजीव-धणुह-संकासू दाहिण-दिसि तहो भारह-वासू ।
5 तासु मज्झि पुव्वावर-दीहरु विजयद्धत्ति नामेण महीहरु ।
जो जोयण पणवीसुच्चत्तणि तं विउणी-कयमाणु पिहुत्तणि ।
मेहल-सेणि-वणेहि [2]रवन्नउ सोहइ रुप्प-समुज्जल-वयणउ ।
तस्सुत्तरवर-सेणि पसिद्धी अलयानयरी अत्थि समिद्धी ।
जहिँ निवसहिँ विज्जाहरलोया परउवयार करणि सपमोया ।
10 घत्ता—तहिँ पुरवरि सामी नहयल-गामी मोरकंठु खेयरहँ पहु ।
विज्जावलि-वलियउ गुण-सय-कलियउ करइ रज्जु जगे पयड-महु ॥ ५७ ॥

१९

मोरकंठ-विज्जाहर-रायहो सूरिम-गुणि तिहुवणि विक्खायहो ।
सयलंतेउर-मज्झे पहाणी अच्छइ कणयमाल तहो राणी ।
असह विसाहनंदि-सुरु चवियउ कणयमाल-कुक्खिहिँ अवयरियउ ।
तउ सागवभणुभाव-विसेसेहिं केलि करइ साउह-नर[1]-वेसिहि ।
5 तिहुवणु सयलु गणइ तिण-लेखइ दप्पणु मिल्लि असिहिँ मुहु पिक्खइ[2] ।
इणि परि पूरि मणोरह रीणी पसवइ पुत्तु महो-मणि खाणी ।
तं फुडु अद्धचक्कि-तणु-लक्खणु पिक्खिवि खेयरराय[3] ततक्खिणु ।
कॅरिप्पिणु उच्छउ अहिरामू धरियउ आसगीउ तह नामू ।
घत्ता—सो नरवर-णंदणु नयणाणंदणु बालचंदु जिम ललिय-करु ।
10 णियकुल गयणंगणि वड्ढइ दिणे दिणे सयल-कला-संगहण-परु ॥ ५८ ॥

२०

फुरिय-तार-तारुन्न-तरंगहँ निरुवम-रूव-रेह-गुण-रंगहँ ।
कुमरहँ सयल-कलाउ सयंवर वरहिणाइँ रणरणइँ णिरंतर ।
सो कुमारु पुणु अण्ण-दिणंतरे गिहि-गुह-माहि रहिउ झाणंतरि ।
जाम जाउ मंडइ निच्चल-मणु ता पच्चक्खु हुवउ विज्जा-गणु ।
5 सिद्ध-विज्जु सो मेरु-महीहरि जिण पणमिवि सासय-चेई-हरि ।

---

१८. १. J. V. सो इह । २. J. वरवन्नउ ।
१९. १. D. °रे । २. D. °इ । ३. D. °राइ । ४. D. करिँ ।

१८

अलका नगरीके विद्याधर राजा मोरकण्ठका वर्णन

और उधर, वह विशाखनन्दि भी जिनवरके तपका आचरण कर स्वरूपवान् देव हुआ।

इसी पृथिवी-मण्डलपर सुमेरु पर्वतसे समृद्ध जम्बू नामक सुप्रसिद्ध द्वीप है, जो छह वर्ष-घर—पर्वतोंसे विभक्त होनेके कारण सात क्षेत्रोसे संयुक्त होकर सुशोभित है। उन क्षेत्रोंमे-से ज्या सहित धनुष तुल्य दक्षिण-दिशामें भारतवर्ष (नामक क्षेत्र) है, जिसके मध्यमे पूर्व एवं अपर दिशाओं मे विस्तृत, ऊँचाईमें पचीस योजन, पृथुलता (मोटाई) में उससे द्विगुणित प्रमाणवाला, मेखला- ५ श्रेणीके वनोसे रमणीक, रौप्यवर्णसे समुज्ज्वल वदनवाला, 'विजयार्द्ध' इस नामसे सुप्रसिद्ध एक महीधर सुशोभित है। उसकी उत्तर-श्रेणीमें विख्यात अलका नामकी एक समृद्ध नगरी है, जहाँ परोपकार करनेमे प्रमुदित रहनेवाले विद्याधर लोग निवास करते हैं।

घत्ता—उस नगरीका स्वामी, आकाशगामी, विद्याधर-समूहसे वेष्टित, सैकड़ों गुणोंसे सुशोभित तथा जगत्में प्रकट यशवाला मोरकण्ठ नामका एक विद्याधर राजा राज्य करता था ॥५७॥ १०

१९

विशाखनन्दिका जीव चयकर कनकमालाकी कुक्षिसे अश्वग्रीव नामक पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुआ

अपने शौर्यगुणों द्वारा तीनों लोकोंमें विख्यात उस विद्याधर राजा मोरकण्ठकी समस्त अन्त:पुरमें प्रधान कनकमाला नामकी पट्टरानी थी। इधर (विशाखनन्दिका जीव) वह देव चयकर कनकमालाकी कुक्षिमे अवतरित हुआ। तदनन्तर उस गर्भके अनुभाव विशेषसे वह रानी मनुष्यका वेश धारणकर आयुध-क्रीड़ाएँ करती रहती थी, वह तीनों लोकोंको तृणके समान गिनती थी तथा दर्पण छोड़कर तलवारमें अपना मुख देखती थी। इस प्रकार मनोरथोंको परिपूर्ण कर महामणियोंकी ५ खानि स्वरूपा उस रानी कनकमालाने पुत्र-प्रसव किया। खेचर राज मोरकण्ठने उसके शरीरमे अर्धचक्रीके स्पष्ट लक्षण देखकर तत्क्षण ही अभिराम उत्सवका आयोजन कर उसका नाम 'अश्व-ग्रीव' रखा।

घत्ता—नेत्रोंको आनन्द देनेवाला वह राजनन्दन अपने कुलरूपी आकाशके प्रांगणमें सुन्दर किरणोंवाले बालचन्द्रके समान समस्त कलाओंका संग्रह करता हुआ दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा ॥५८॥ १०

२०

कुमार अश्वग्रीवको देवों द्वारा पाँच रत्न प्राप्त हुए

जिसके तारुण्यकी तरंगें स्फुरायमान हो रही थीं, तथा रूप-रेख, एवं गुणोंके रंगमें अनुपम था, ऐसे उस कुमार अश्वग्रीवको समस्त कलाओंने स्वयं ही वरण कर लिया था। वे श्रेष्ठ कलाएँ निरन्तर रण-रण कर आनन्द करती रहती थी।

अन्य किसी एक दिन वह कुमार गुफा-गृहमें ध्यानस्थ होकर बैठा। जब वह निश्चलमनसे ५ जाप कर रहा था, तभी उसे विद्या-समूह प्रत्यक्ष हो गया। विद्याएँ सिद्ध होनेपर वह सुमेरु पर्वतपर

विज्जाहर-परिवार-सजुत्तउ वहु उच्छवें णिय-घरु संपत्तउ।
देव-दिन्नु जसु चक्कु जलंतउ सत्ति अमोह छत्तु झलकंतउ।
असि ससिहासु दंडु सुपयंडु कवणु-कवणु तसु देइ न दंडु।
घत्ता—सोल-सहस-सेवय नर वर मंडल धर तिउणंतेउर-जुत्तउ।
10 सो पडिहरि वलवंतउ महि भुंजंतउ करइ रज्जु जयवंतउ॥ ५९॥

२१

इत्थंतरि अइ-विच्छिन्न-खेत्ति तरु-गिरि-सरु-पूरिय-भरह खेत्ति।
णिवसइ सुर णामेण देसु गोहण-भूसिय-काणण-पएसु।
जहि सरसुन्नय-वहु-फल-घणेहिँ सोहहिँ तरुवर नं सज्जणेहिँ।
जहिँ अडवि सरोवर[1]-तीरि णीरु नव-नलिणी-दल-झंपिउ गहीरु।
5 न पियासियाइँ हरिणी पिएइ[2] गरुलोवल-थल-मूढी ण एइ।
जहिँ जण-मणहर-लहरी भुवाउ सुपओहर-तिमि-चल-लोयणाउ।
नर-रमिय-नियंवावणि अमाण सोहहिँ सरि पणइंगण-समाण।
तत्थत्थि विउलु[3] पुरु पोयणक्खु सुरपुरु व सुमोहिय-सुरयणक्खु।
जहिँ मंदिरग्ग-भूसिय मणिट्ठ सोहहि मणि-दप्पण समवसिट्ठ।
10 तारायणेहिँ मणि-विंविएहिँ नं पूरिय-तल नव-मोत्तिएहिँ।
घर लग्ग-नील-रुवि पडल-छन्नु पिययमु पल्लंकोवरि णिसन्नु।
जहिँ निसि दीसइ रइहरि ठियाहिँ सव्भाणु-पिहिउ चंदुव तियाहिं।
घत्ता—.......सुद्धंगण लिंति मणि महिरवि पडिविंवु।
दप्पण भावेण दिक्खि जवेण हसइ सहीयायंवु[4]॥ ६०॥

२२

तहिं असिवर निरसिय-रिउ-कवालु नामेण पयावइ भूमिपालु।
जसु जय-सिरि दाहिण-वाहु-दंडि निवसइ गय-घड-चूरण-पयंडि।
वच्छत्थलु भूसिउ लच्छियाइँ अवलोइउ रूउ मयच्छियाइँ।
सुरतरुवि विसेसिउ जेण दाणु दिंति वंदियणहँ अइ अमाणु।
5 न मुवहि खणिक्कु नरनाह-पासु महियलि उवमिज्जइ काइँ तासु।

२१. १. J. V. सरहोवरं। २. J. पएइ। ३. D. विउल। ४. J. V. सहीयावंतु।

शाश्वत चैत्यगृहोंके जिन बिम्वोंको प्रणाम कर विद्याधर परिवार सहित अनेक उत्सवोंके साथ जब अपने घर लौटा, तब देवोंने उसे ज्वलन्त चक्र, अमोघशक्ति, झालरवाला छत्र, चन्द्रहास खड्ग तथा सुप्रचण्ड दण्ड प्रदान किये और भी कौन-कौनसे दण्ड (धनुष) उसे प्रदान नही किये गये ?

घत्ता—सोलह सहस्र श्रेष्ठ मण्डलधारी राजा उसकी सेवा करते थे, उससे तिगुनी स्त्रियाँ उसके अन्त:पुरमे थी। वह वलवान् प्रतिनारायण पृथिवीको भोगता हुआ जयवन्त होकर राज्य कर रहा था ॥५९॥ १०

२१

सुरदेश स्थित पोदनपुर नामक नगरका वर्णन

इसके अनन्तर, अति विस्तीर्ण क्षेत्रवाले, तरु, गिरि एवं सरोवरोंसे व्याप्त इस भरतक्षेत्रमे 'सुर' नामका एक देश है, जो गोधनसे विभूपित एवं कानन-प्रदेशोंसे युक्त है। जहाँ सरस उन्नत तथा अनेक प्रकारके फलोंवाले सघन-वृक्ष सज्जनोंके समान सुशोभित हैं। जहाँ अटवीके सरोवरोंके तीर तथा गहरे जल नवीन कमलिनियोंके पत्तेसे ढँके हुए हैं। इसी कारण तृषातुर हरिणियाँ भ्रमसे उसे हरिन्मणियों—पन्नाका वना हुआ भूमिस्थल समझकर उस जलको नही पी पाती। ५

जहाँकी सरिताएँ एवं महिलाएँ समान रूपसे सुशोभित हैं। सरिताएँ लोगोके मनको हरण करनेवाली लहरियों, एवं महिलाओके नेत्रोंके समान चंचल मछलियोंसे युक्त हैं। महिलाएँ भी लोगोके मनको हरण करनेवाली लोललहरियोंके समान वक्र तथा भ्रू लताओ एवं चंचल नेत्रोंसे युक्त हैं। लोग सरिताओंके नितम्बों—किनारोंका सेवन करते है, पति भी मानरहित होकर महिलाओंके नितम्बरूप भूमि भागका सेवन करते है। १०

उसी सुर नामक देशमें विशाल पोदनपुर नामका नगर है, जो इन्द्रपुरीके समान सुन्दर है, तथा जो देवोंके नेत्रोंको भी मोहित करनेवाला है। जहाँके मन्दिरोंके अग्रभाग विशिष्ट उत्तम मणियोसे विभूषित हैं तथा मणि निर्मित दर्पणके समान सुशोभित हैं। मणिबिम्वोंमे जव तारागण प्रतिविम्वित होते है, तब ऐसा प्रतीत होता है, मानो आकाशतल नव मोतियोसे पूर दिया गया हो। जहाँ घरोंमे प्रियतमके पलंगोंके ऊपर नीलरुचिके पटलवाले छत्ते लगे हुए है, जहाँ रात्रिके समय रतिगृहोंमें प्रियाएँ राहुसे पिहित चन्द्रमाके समान दिखाई देती है। १५

घत्ता—निर्मल आँगनकी मणिमय भूमिपर रविके आताम्र प्रतिविम्बको दर्पण समझकर वेगपूर्वक लेते हुए देखकर सखियाँ हँसने लगती है ॥६०॥

२२

विशाखनन्दिका जीव (वह देव) राजा प्रजापतिके यहाँ विजय नामक पुत्रके रूपमें जन्मा

उस पोदनपुरमे अपने तेज खड्गसे शत्रुजनोंके कपालोंका निरसन करनेवाला प्रजापति नामका भूमिपाल—राजा राज्य करता था। गजरूपी घटाओंको चूर करनेमे प्रचण्ड उस राजाके दाये बाहुदण्डमें जयश्री विराजमान रहती थी। उसका वक्षस्थल श्रीसे विभूषित था। मृगनयनियोंके द्वारा उसका सौन्दर्य निहारा जाता था। जिसका दान कल्पवृक्षोसे भी विशेष होता था। वन्दीजनोंको जो निरभिमानपूर्वक अत्यधिक दान देता था वे (वन्दीजन) एक क्षणको भी उस नरनाथका साथ न छोड़ते थे। ऐसे उस प्रजापतिकी उपमा किससे दी जाये ? ५

नामेण जयावइ पढम भज्ज तहु अवर मयावइ हुअ सलज्ज ।
आयहँ दोहिमि सोहेइ केम तिणयणु गंगा-गौरीहिँ जेम ।
जिहँ कालु गमइँ आयहँ समेउ नं सइँ अवयरियउ कामएउ ।
अवयरिवि सुरवासहो सरूउ हुउ पढमु विजउ निवइहे तणूउ ।
10 सो जाउ जयावइ-हरिस-हेउ जो चिरु मगहाहिउ गुण-णिकेउ ।
घत्ता—जिह नियमु जमेण साहु-समेण उववणु कुसुम-चएण ।
पाउसु कंदेण नहु चंदेण तिह सोहिउ कुलु तेण ॥ ६१ ॥

२३

गएहिं दिणेहिँ कएहिँ पियाहि थणंधउ जाउ मयावइ आहि ।
पुरा जइणी-सुउ जो पुण सग्गे सुहासिव हूउ सुहोह-समग्गि ।
छणिंदुव णिम्मल-कंति-समिल्लु णिमाइ जणाण मणे सुपियल्लु ।
सिरीहिँ णिवासु नवो नलिणीहि मणोहरुणं कमलो रमणीहिँ ।
5 पुरे पडियामल पंच पयार नहाउ पयत्थ निरंतर धार ।
गहीररवाल[2] पवज्जिय तूर असेस खलासह नासय जूर ।
पणच्चिय वारविलासिणि गेहि घरग्ग-धयालि-वियारिय मेहि ।
सुहंकरु गायउ गीउ रवन्नु विइन्नउ वंदियणाहँ सुवण्णु ।
करेवि जिणेसर-पायहँ[3] पूज सुभत्तिँए[4] अट्ठपयार मणोज्ज ।
10 किओ दहमेँ दियहेँ तहु नामु तिविट्ठु अणिट्ठहरो[5] कय-कामु ।
तओ कढिणत्तु सरीरवलेण पवुड्ढि गओ गुणसारि[6] कमेण ।
रमंतउ भूहर रक्खइ केम अणग्घ-मणी जलरासिहि जेम ।
घत्ता—वालेणवि तेण विलयवरेण सयलवि कल निरवज्ज ।
तिरँयण[7] सुद्धिए थिर वुद्धिए परियाणिय निव-विज्ज ॥ ६२ ॥

२४

नव-जोवण-लच्छिए अणुकमेण अहिणउ सुतु अवलोइउ जणेण ।
सो सुंदरुयरु[1] सोहग्ग-रासि संजायउ रिउगल-काय-पासि ।
सुव-जुवल-समिन्निउ लद्धमाणु पुहईयरेहि सेविज्जमाणु ।
णरवइ सह भँवणि[2] भएहि चत्तु रयणाह रणालंकरिय-गत्तु ।

२३. १. D. °याइ । २. J. वला । ३. D. °ह । ४. D. °त्तए । ५. D. अणिट्ठ° । ६. D. °रासि । ७. D. J. तिरियण ।
२४. १. D. सुंदर° । २. D. भाँ ।

उस राजाकी प्रथम भार्याका नाम जयावती था, जो लज्जाशील थी। उसकी दूसरी भार्याका नाम मृगावती था। उन दोनों भार्याओसे वह कैसे शोभता था, जैसे मानो त्रिनेत्र महादेव गंगा-गौरीसे सुशोभित होते थे। जिस राजाका काल अपनी दोनों रानियोके साथ व्यतीत होता था, वह ऐसा प्रतीत होता था, मानो कामदेव ही अवतरित हो आया हो। १०

विशाखनन्दिका वह जीव—सुन्दर देव, स्वर्गसे अवतरित होकर उस राजाका विजय नामक प्रथम पुत्र हुआ। जो गुण-निकेत पहले मगधाधिपति था, वही अब जयावतीके हर्षका कारण बना।

घत्ता—जिस प्रकार संयमसे नियम, समतासे साधुता, कुसुम-समूहसे उपवन, कन्दसे वर्षाऋतु एवं चन्द्रमासे आकाश सुशोभित होता है उसी प्रकार राजा प्रजापतिका कुल भी उस विजय नामक पुत्रसे सुशोभित था ॥६१॥ १५

२३

विश्वनन्दिका जीव—देव, राजा प्रजापतिकी द्वितीय रानी मृगावतीकी कोखसे त्रिपृष्ठ नामक पुत्रके रूपमें उत्पन्न होता है

पूर्वमें जो रानी जयनीका पुत्र (विश्वनन्दि) स्वर्गमे देव हुआ था, वही देव कतिपय दिनोंके बाद रानी मृगावतीको कोखसे समस्त सुखोंके सारभूत एवं अमृत वर्षाके समान, पुत्रके रूपमे उत्पन्न हुआ। वह पूर्णचन्द्रके समान निर्मल तथा अद्वितीय कान्तिवाला, मायारहित, जनमन प्रिय एवं श्रीकी निवासभूमि, रमणीक नवनलिनी द्वारा उत्पन्न मनोहर कमलके समान था। (उसके जन्मके समय) नगरमे आकाशसे पाँच प्रकारके निर्मल पदार्थ लगातार बरसते रहे। ५ जोर-जोरसे तूर आदि बाजे बज उठे। वे वाद्य-ध्वनियाँ समस्त दुष्ट जनोके लिए असह्य हो उठी। घरों-घरोंमें वार-विलासिनियोके नृत्य होने लगे। घरोके अग्रभागोंपर लगी हुई ध्वजा-पक्तियोंसे मेघ विदीर्ण होने लगे। शुभकारी एवं सुन्दर गीत गाये जाने लगे। वन्दीजनोंके लिए स्वर्णका वितरण किया जाने लगा। जिनेश्वरके चरणोंकी भक्तिपूर्वक अष्टविध मनोज्ञ पूजा करके दसवें दिन (उस पुत्रका) अनिष्टको दूर करनेवाला तथा मनोरथको पूर्ण करनेवाला त्रिपृष्ठ यह नामकरण १० किया गया। उस त्रिपृष्ठका गुणभार शरीर-क्रमसे एवं बलसे वृद्धिगत होकर कठिनताको प्राप्त होने लगा। वह भूधर—राजाओंके साथ प्रमोद क्रीड़ाएँ करता हुआ किस प्रकार सुरक्षित था? (ठीक उसी प्रकार) जिस प्रकार कि जलराशि—समुद्र द्वारा अनर्घ्य मणि सुरक्षित रहता है।

घत्ता—उस विनयवान् बालकने भी त्रिकरणशुद्धिपूर्वक स्थिर बुद्धिसे समस्त निरवद्य (निर्दोष) कलाएँ तथा नृप-विद्याएँ सीख ली ॥६२॥ १५

२४

एक नागरिक द्वारा राजा प्रजापतिके सम्मुख नगरमें उत्पात मचानेवाले पंचानन—सिंहकी सूचना

प्रजाजनोंने अनुक्रम पूर्वक त्रिपृष्ठसे नवयौवनरूपी लक्ष्मीको अभिनवस्वरूप (शोभा-सम्पन्न) देखा (अर्थात् त्रिपृष्ठको पाकर यौवन स्वयं ही शोभा एवं श्रेष्ठताको प्राप्त हो गया) वह सुन्दरतर एवं सौभाग्यकी राशिस्वरूप तथा शत्रुजनोके गलेमें की गयी फाँसीके समान था। वह भुजबलसे युक्त विख्यात तथा पृथिवीधरों द्वारा सेवित था। एक दिन जब राजाके साथ वह निर्भीक

5 सिंहासण-सिहरि निसन्नु जाम अच्छइ जणेक्कु संपत्तु ताम।
सो मउलेविणु कर-कमल वेवि विणएण पाय-पंकय णवेवि।
अवसरु लहेवि पयणियसिवासु विन्नवइ पुरउ होइवि निवासु।
जा परिरक्खी तुव असिवरेण धर धरणि णाह पालिय करेण।
पीडइ पंचाणणु पउर-सत्तु वलवंतु भुवणे भो कम्मसत्तु।
10 किं जंमु जणवय-मारण-कएण सइँ हरि-मिसेण आयउ रवेण।
अह असुरु अहव तुह पुव्ववेरि दुद्धरु दुव्वारु वहंतु खेरि।
तारिसु वियारु सीहहो ण देव दिट्ठउ कयावि णर-णियर-सेव।

घत्ता—पिययम-पुत्ताइँ गुणजुत्ताइँ परितज्जेवि जणु जाइ।
जीविउ इच्छंतु लहु भज्जंतु भय-वसु को वि ण ठाइ॥ ६३॥

२५

तं वयणु सुणेविणु सिरि-सणाहु संतप्पइ णिय-मणे धरणिणाहु।
परिवड्ढिए सवणे मणे कहोण तप्प संजायइ असुह-णिमित्तु वप्प।
गंभीर-धीर-सद्दें विसालु पूरंतु सहा-भवणंतरालु।
वज्जरइ राउ तिणं माणुसो वि किउ खेत्तहो रक्खणिमित्तु सो वि।
5 भउ करइ रवंतहँ मय-गणाहँ दस-दिसु संपेसिय-लोयणाहँ।
हउँ तहो वि पासि हूअउ णिरुत्तु सयलावणि साहु वि कय पहुत्तु।
अविणासंतउ भउ जणवयासु जो जय सामित्तु करइ हयासु।
चित्त-गय-महीसुवसो जणेण दीसइ असारु अणमिय-सिरेण।
जइ हणमि ण हरिहउँ दुट्ठु एहु ता भमइ भरंतउ भुवण-गेहु।
10 अवजसु अवस्स इउ भणिवि जाम उट्ठिउ हरि-हणण-कएण ताम।
वारिवि जणेरु जंपइ तिविट्ठु विणएण तुरंतें जिय विसिट्ठु।

घत्ता—जइ मइ संतेवि असिवरु लेवि पसु-णिग्गहण-कएण।
उट्ठिउ करि कोउ वइरि विलोउ तार्किं मइ तणएण॥ ६४॥

२६

इय वयणिहिं विणिवारिवि णरिंदु तहो आणइँ गउ पढमउ उविंदु।
वल-परियरियउ कोवग्गि-दित्तु वलवंतु सीहु मारण-निमित्तु।

३. D. जमु। ४. D. पहंतु। ५. D. J. V. साहहो।
२५. १. D. J. V. विण।
२६. १. J. °हुँ।

राजकुमार रत्नाभरणोंसे अलंकृत होकर राजदरबारमें सिंहासनके ऊपर बैठा था, तभी एक व्यक्ति वहाँ आया। उसने अपने दोनों कर-कमलोंको मुकुलित कर विनयपूर्वक उसके चरण-कमलोंमें नमस्कार कर तथा अवसर प्राप्त कर सभीका कल्याण करनेवाले राजाके आगे खड़े होकर प्रकट रूपमें इस प्रकार निवेदन किया—"हे धरणीनाथ, आपने तीक्ष्ण खड्गसे इस पृथिवीकी सुरक्षा की है तथा करोंसे उसका पालन किया है। (अब इस समय) पुरजनोंको एक प्रवर शक्तिशाली पंचानन—सिंह पीड़ा दे रहा है। अहो, संसारमे कर्मरूपी शत्रु (कितना) बड़ा बलवान् है। जनपदको मार डालने हेतु सिंहके छलसे क्या यमराज स्वयं ही वेगपूर्वक आ गया है ? अथवा क्या कोई महान् असुर आ गया है, अथवा आपके पूर्वजन्मका कोई दुर्द्धर, दुर्वार एवं विध्वंसक ? नरेन्द्र-समूह सेवित हे देव, इस प्रकारका विकारी दुष्ट सिंह कभी भी नही देखा गया।

घत्ता—गुणयुक्त प्रियतम, पुत्र आदिको भी छोड़-छोड़कर लोग अपने-अपने जीवनकी कामनासे भयके कारण शीघ्रतापूर्वक भागे जा रहे हैं" ॥६३॥

२५

राजकुमार त्रिपृष्ठ अपने पिताको सिंह मारने हेतु जानेसे रोकता है

श्री-शोभा सम्पन्न वह धरणीनाथ प्रजापति उस (नागरिक) का निवेदन सुनकर अपने मनमें बड़ा सन्तप्त हुआ। कानोंमे (बातोंके) पड़नेपर कहो कि किसको सन्ताप नही होता ? "हाय, अब अशुभका निमित्त आ गया है।" इस प्रकार विचारकर गम्भीर एवं धीर शब्दोंसे वह राजा विशाल सभा-भवनको पूरता हुआ बोला—"खेतोंकी सुरक्षाके निमित्त तृण द्वारा निर्मित एक कृत्रिम मनुष्य बना दिया जाता है जिनसे दसों दिशाओंमे नेत्रोंको फैलाकर चलनेवाले मृगगण भी धान्य चरनेमे (दूरसे ही) भयभीत होकर भाग जाते हैं फिर मै तो निरन्तर ही उस प्रजाके बीचमें रहता हूँ। समस्त पृथिवीपर (मैने) सम्यक् प्रकार प्रभुता प्राप्त की है, किन्तु जो हताश जनपदके भयको दूर नही करता फिर भी जय-स्वामी (विजयी-सम्राट्) बना फिरता है, वह निश्चय ही उस चित्रगत राजा-जैसा है, जिसे प्रजा अनमित सिरसे देखती है तथा उसे असार समझती है। यदि मै इस दुष्ट सिंहको मारकर जनपदका भय न मिटाऊँगा, तो लोकोके घरोंको भरता हुआ मेरा अपयश अवश्य ही (दूर-दूर तक) फैलेगा।" इस प्रकार कहकर जब सिंहके मारनेके निमित्त वह राजा उठा, तब शत्रुजयी उस त्रिपृष्ठने तुरन्त ही विनयपूर्वक पिताको रोका और कहा—

घत्ता—"यदि मेरे रहते हुए भी पशु-निग्रह हेतु तलवार हाथमें लेकर आपको उठना पड़े अथवा वैरीके क्रोधको देखकर आपको क्रोधित होना पड़े, तब फिर हम-जैसे आपके पुत्रोंसे क्या लाभ ?" ॥६४॥

२६

त्रिपृष्ठ उस भयानक पंचानन—सिंहके सम्मुख जाकर अकेला ही खड़ा हो गया

इस प्रकार निवेदन कर तथा नरेन्द्रको रोककर, फिर उसी (नरेन्द्र) की आज्ञा लेकर वह प्रथम उपेन्द्र (—नारायण)—त्रिपृष्ठ नामक पुत्र अपनी सेनाके साथ क्रोधाग्निसे दीप्त उस बल-वान् सिंहके मारनेके निमित्त चला।

णिहणिय णरत्थि पंडुरिय पासि पल-लुद्ध-पडिय-णहयर-सुहासे ।
णह-रंध-मुक्क-मोत्तियपुरंते मारिय मय-लोहिय-पज्झरंते ।
5 रुद्दत्तण-जिय-वइवसणिवासि महिहर-विवरंतरे रयण-भासि ।
जंतेण तेण दिट्ठउ मइंदु कररुह-मुह-दारिय-वण-गइंदु ।
पडु-पडह-समाहय ताहँ सद्दु णिसुणेविणु कय-महिहर-विमद्दु ।
उट्ठिउ हरिणाहिउ भासमाणु कूरासणु मह-रक्खस-समाणु ।
सालसलोयणु दाढा-करालु भू-भीसणु भासुर-केसरालु ।
10 गल-गज्जिए वहिरंतउ दिसाउ कूरंतरंगु वड्ढिय-कसाउ ।

घत्ता—णर-मारण-सीलु, दारिय-पीलु घुरुहुरंत-मुहु जाम ।
हरि एक्कु तुरंतु पुरउ सरंतु तहो अग्गइ थिउ ताम ॥ ६५ ॥

२७

तहो णिक्किवासु हरिणाहिवासु ।
अग्गिम-पयाइँ हय-सावयाइँ ।
णह-भासुराइँ अइ-दुद्धराइँ ।
हरिणा करेण णियमिवि थिरेण ।
5 णिद्दय-मणेण पुणु तक्खणेण ।
दिढु इयरु हत्थु संगरे समत्थु ।
वयणंतराले पेसिवि कराले ।
पाडियउ सीहु लोलंत-जीहु
लोयण-जुवेण लोहिय-जुवेण ।
10 दावग्गि-जाल अविरल विसाल ।
थुवमंते भाइ कोवेण णाइं ।
पवियारिऊण हरि मारिऊण ।
तहो लोहिएहिँ तणु णिग्गएहिँ ।
उवसमिउ ताउ मेइणिहिँ जाउ ।
15 विजयाणुवेण जलहिव घणेण ।
णिय-साहसेण कयरिउ-वसेण ।
ण कहइ महंतु मउ गुणु वहंतु ।
अवरहो अवज्झु जो रणे असज्झु ।
तं हणिवि विट्ठु वुहयण-वरिट्ठु ।
20 ठिउ णिव्वियारु रिउ-दुण्णिवारु ।

घत्ता—एत्थंतरे तेण सिरिणाहेण, [3]पिक्खंतहँ [4]तियसाहँ ।
जय-जय-सद्देण, अइ-भद्देण, मणहर-कोड-वसाहँ ॥ ६६ ॥

---

२ D. फु° । ३. D. J. V. दिवाउ ।
२७. १. D. विसील । २. D. °तु । ३. D. विक्खंतहं । ४. J. V. पियसाहं ।

चलते समय (मार्गमें) उसने उस मृगेन्द्रको देखा, जिसके द्वारा मारे गये मनुष्योंकी हड्डियोंसे पार्श्वभाग पाण्डुर-वर्णके हो गये थे तथा जहाँ मांस-लोलुपी गृद्ध सुखपूर्वक गिर-पड़ रहे थे। जिस सिंहके नख-रन्ध्रों द्वारा छितराये गये गज-मोतियोंसे नगरके छोर पुरे हुए थे, जिसके द्वारा मृगोंके मारे जानेसे (जहाँ-तहाँ) खून वह रहा था, जिसने अपनी रौद्रतासे यमराजके निवासको भी जीत लिया था तथा जो पर्वतके विवरमें रत्नप्रभा नामक नरक-भूमिकी तरह प्रतिभासित होता था, जिसने अपने नखोंसे वन-गजेन्द्रके मुखको विदीर्ण कर दिया था। ५

त्रिपृष्ठ (की सेना) द्वारा किया गया उपद्रव तथा पटु-पटहके पीटे जानेके शब्दोंको सुनकर क्रूरभक्षी तथा महाराक्षसके समान प्रतीत होनेवाला, आलस-भरे नेत्रोंवाला, कराल दाढ़ोंवाला, भीषण भौंहोंवाला, भास्वर केशर—जटाओंवाला, गल-गर्जना करता हुआ अपना वाह्य रूप दर्शाता हुआ तथा क्रूरतासे वढ़ी हुई कपायवाले अन्तरंगको दिखाता हुआ वह पंचानन—सिंह उठा। १०

घत्ता—मनुष्योंको मारनेके स्वभाववाला तथा पीलु—गजोंको विदारनेवाला वह पंचानन, जव अपने मुखसे घुरघुरा रहा था, तभी वह त्रिपृष्ठ तुरन्त ही अकेला धीरे-धीरे उसके आगे खिसककर गया और खड़ा हो गया ॥६५॥

१५

२७

त्रिपृष्ठ द्वारा पंचानन—सिंहका वध

तदनन्तर निर्दय उस हरिणाधिप—सिंहके श्वापदोंको मारनेवाले नखोंसे भास्वर तथा अत्यन्त दुर्धर अग्रिम पैरोंको उस हरि—त्रिपृष्ठने अपने हृदयको कड़ा कर स्थिर एक हाथसे तो तत्काल ही खींचकर पकड़ लिया तथा संग्राममें समर्थ अपने दूसरे दृढ हाथको कराल-मुखके भीतर डालकर लपलपाती जिह्वावाले सिंहको पछाड़ दिया। रक्तसमान दोनों नेत्रोंसे दावाग्निरूपी अविरल विशाल ज्वालाका वमन करता हुआ क्रोधसे ऐसा प्रतीत होता था, मानो वह हरि—त्रिपृष्ठका विदारण कर, मारकर ही दम लेगा। इसके वाद उस सिंहके शरीरसे निकले हुए रक्तसे उस हरि—त्रिपृष्ठने मेदिनी—पृथिवीपर उत्पन्न सन्तापको शान्त किया। ५

समुद्रके समान गम्भीर विजयके उस अनुज—त्रिपृष्ठने अपने साहससे शत्रुको वशमें कर लिया। मृदु-गुणको धारण करनेवाले महान् पुरुप अपने कार्योको कहते नहीं फिरते। रणक्षेत्रमें दूसरोंके लिए जो असाध्य एवं अवध्य था उसे भी मारकर दुर्जनोके लिए दुर्निवार तथा वुधजनोंमें वरिष्ठ वह—त्रिपृष्ठ निर्विकार ही रहा। १०

धत्ता—इसी वीच उसी श्रीनाथ—त्रिपृष्ठने देवो द्वारा उच्चरित अत्यन्त भद्र जय-जयकार शब्दों पूर्वक मनोहर—॥६६॥

२८

लीलए णिज्जिय सुर-करि-करेहिँ उच्चाइय कोड़ि-सिला करेहिँ ।
पसरंति उद्ध-भुव-दंड-जास किउ साहुयारु [1]देवेहिँ ताम ।
णिय-भुव-जुव-वीरिउ पायडेवि पुणु गउ णिय-पुर-वरे वाहुडेवि ।
णिसुणंतउ णिय-जसु गीयमाणु अणुराय-गयहिँ ससहर-समाणु ।
5 पइसिवि परमाणंदेण गेहे णरणाहहो चूला-पहय-मेहे ।
पणविउ विणयालंकिउ तिविट्ठु सामंत-संति-लोएहिँ दिट्ठु ।
भालयलि णिवेसिवि कर सिरेण सउडग्ग-लग्ग मणि भासिरेण ।
पढमउ परिरंभिवि लोयणेहिँ संदरिसिय हरिसंसुव-कणेहिँ ।
पुणु गाढु[2] करेविणु भुय-जुएण णरणाहेँ परियाणिय सुएण ।
10 आलिंगिय विण्णिवि णिय-तणूव सुर-सीमंतिणि-मणहरण-रूव ।
पहु आणइँ पुणुवि णिविट्ठवेवि पहु-पीढ-पासि सहरिस णवेवि ।
पुच्छिउ णिवेण बलु वाहरेवि णिय-अणुवहो विक्कमु मणुहरेवि ।
सव्वुवि णिसुणंतु महंत-तेउ दुव्वार-वेरि-वाणहिँ[3] अजेउ ।
णिहुवउ परिसंठिउ वासुएउ णिय थुइ गुरु आहण हरिस हेउ ।
15 घत्ता—णिउ सहुँ सवलेण सुवजुवलेण परिरक्खए हरिसंतु ।
जणु कर लालेवि महि पालेवि धण धारहिँ वरिसंतु ॥ ६७ ॥

२९

इत्थंतरे दउवारिय-वरेण कंचणमय-वित्त-लया-करेण ।
आवेप्पिणु राउ करेवि भत्ति[1] विण्णंतु णवंतु सिरेण झत्ति ।
गयणाउ कोवि आइवि दुवारे ठिउ देव देव चित्तावहारि ।
तेइल्लउ तुह दंसण-समीहु णरवइ तं सुणि रिउ-हरिण-सीहु
5 जंपइ पेसहि माकरहि खेउ पहु आणइ तेण वि सोसवेउ ।
पेसिउ विंभि[2]य-गय-सहयणेहिँ अवलोइज्जंतउ थिर-मणेहिँ ।
पणवेप्पिणु सोवि णिविट्ठ तेत्थु धरणीसरेण सइँ भणिउ जेत्थु ।
वीसमिउ वियाणि नरेसरेण सो चरु पुच्छिउ वइयरु परेण ।
को तुहुँ कंतुव कंतिल्ल-भाउ कहो ठाणहो किं कज्जेँ समाउ ।
10 णर-विहुणा पुच्छिउ सोणवंतु भासइ भालुप्परि कर ठवंतु ।
इत्थत्थि विहिय-गयणयर-मेलु विजयाचलु णामेँ पयड सेलु ।
उत्तर-दाहिण-सेणी जुवेण संजुउ भूसिउ रयणं सुवेण ।
घत्ता—दाहिण सेणीहे, अइरमणीहे रहणेउरपुरे रज्जु ।
विरयइ तवणाहु णहयरणाहु जलणजडी अणिवज्जु ॥ ६८ ॥

---

२८. १. V. देवि° । २. J. °ढ । ३. D. वाणिहिं ।
२९. १. J. V. सत्ति । २. D. °भय ।

२८

त्रिपृष्ठ कोटिशिला नामक पर्वतको सहजमें ही उठा लेता है

ऐरावत हाथीकी सूँड़को भी जीत लेनेवाले अपने हाथोंसे लीलापूर्वक कोटिशिलाको भी ऊँचा उठाकर जब (उस त्रिपृष्ठने) अपने भुजदण्डको ऊपरकी ओर फैलाया, तभी देवोंने साधुकार किया। इस प्रकार अपने भुजयुगलकी वीरताको प्रकट कर वह (त्रिपृष्ठ) पुनः अपने नगरकी ओर लौटा। अनुरागसे भरकर चन्द्रमुखियों द्वारा गाये जाते हुए अपने यशोगानको सुनता हुआ परमानन्द पूर्वक वह अपने नरनाथ पिताके उस भवनमे प्रविष्ट हुआ, जिसके शिखर मेघोको प्रहत कर रहे थे। सामन्तों एवं मन्त्रिगणोंने उसे देखते ही विनयगुणसे अलंकृत उस त्रिपृष्ठको अपने भालपट्ट-पर दोनों हाथ रखकर मुकुटमे लगे हुए मणियोसे भास्वर सिरको झुकाकर प्रणाम किया। ५

नरनाथ प्रजापतिने हर्षाश्रुकणोंको दिखाकर सर्वप्रथम नेत्रो द्वारा आलिंगन कर पुनः पुत्रके पराक्रमको जानकर उसका अपनी दोनों भुजाओंसे गाढालिंगन कर लिया। एक बार फिर सुर-सीमन्तिनियोंके मनको हरण करनेवाले सुन्दर अपने दोनों ही पुत्रोंका उसने आलिंगन कर लिया। १० फिर उस प्रभुकी आज्ञासे वे दोनों ही प्रभुके सिंहासनके पास हर्षित मनसे प्रणाम कर बैठ गये। राजाने बलभद्र (विजय) को बुलाकर उससे अपने अनुज (त्रिपृष्ठ) मनोहर विक्रम-प्राप्तिके अनुभव पूछे। तब दुर्वार वैरीजनोंके बाणोसे अजेय, महान् तेजस्वी वासुदेव (त्रिपृष्ठ) वह सब सुनकर भी चुपचाप बैठा रहा। ठीक ही है, महापुरुष अपनी स्तुति अथवा निन्दा सुनकर हर्ष अथवा विषादसे युक्त नही होते। १५

घत्ता—अपने दोनों बलवान् पुत्रों (विजय एवं त्रिपृष्ठ) के साथ वह राजा (प्रजापति) प्रजाकी सुरक्षा कर रहा था मानो कर द्वारा पृथ्वीका लालन-पालन करता हुआ वह हर्षरूपी धनकी धाराएँ ही बरसा रहा हो ॥६७॥

२९

विद्याधर राजा ज्वलनजटी अपने चरको प्रजापतिनरेशके दरबारमें भेजता है

इसी बीच हाथमें कांचनमय वेत्रलता (दण्ड) धारण किये हुए द्वारपालने राजाके समीप आकर भक्तिपूर्वक सिर झुकाकर उसे तत्काल ही विज्ञप्ति दी कि—"हे देव, देवोंके चित्तका आहरण करनेवाला कोई (आगन्तुक) आकाश-मार्गसे आकर आपके दरवाजेपर बैठा है। यह तेजस्वी आपके दर्शन करना चाहता है।" यह सुनकर शत्रुरूपी हरिणोंके लिए सिंहके समान उस राजा (प्रजापति) ने द्वारपालसे कहा—"उसे शीघ्र ही भेजो, देर मत करो।" प्रभुकी आज्ञासे ५ वह द्वारपाल भी वेगपूर्वक गया और उस आगन्तुकको वहाँ भेज दिया। सभासद् आश्चर्यचकित होकर तथा स्थिर-मनसे उसे देखते ही रह गये। आगन्तुक भी नमस्कार कर उस स्थानपर बैठ गया जिसे धरणीश्वर प्रजापतिने स्वयं ही उसे बतलाया था। नरेश्वरने उस चरको विश्रान्त जानकर उससे (इस प्रकार) वृत्तान्त पूछा—"हे सौम्य भाई, तुम कौन हो, कहाँसे आये हो, तुम्हारा निवासस्थान कहाँ है और किस कार्यसे यहाँ आये हो ?" राजा द्वारा पूछे जानेपर उस १० नवागन्तुकने अपने माथेपर हाथ रखकर तथा नमस्कार कर उत्तर दिया—"इसी देशमें गगनचरोंसे सुन्दर विजयाचल नामक एक पर्वत है जो रत्नोंकी किरणोसे विभूपित उत्तर एवं दक्षिण इन दो श्रेणियोंसे युक्त है।

घत्ता—अत्यन्त रमणीक दक्षिण श्रेणीमे रथनूपुर नामक नगरमें राज्य करता हुआ निर्मल चित्तवाला एक विद्याधर राजा ज्वलनजटी आपको स्मरण करता है" ॥६८॥ १५

३०

ज्वलनजटीके दूतने राजा प्रजापतिका कुलक्रम बताकर उसे ज्वलनजटीका पारिवारिक परिचय दिया

"आपके कुलमें सर्वप्रथम अजेय बाहुबलि देव हुए तथा लोगोंके राजाधिराज अजेय भरत भी हुए। कच्छ देशके राजाके पुत्र तथा अपनी कुलरूपी श्रीके मण्डनस्वरूप, विद्याधरोंके स्वामी नाभि नृप आदिको आपके चिरपुरुषोंका स्नेह प्राप्त था। उसी परम्पराके न्यायवान्, विनयालंकृत, गगनतलगामी, विद्याधरोंके राजा तथा मेरे स्वामी ज्वलनजटीने दूर रहते हुए भी बारम्बार स्नेह-सुखपूर्वक आलिंगन कहकर आपकी कुशल-वार्ता पूछी है। उस ज्वलनजटीका पुत्र अर्ककीर्ति तथा ५ प्रचुर कीर्तिवाली पुत्री स्वयंप्रभा है। स्वयंप्रभाके योग्य वर प्राप्त न कर पानेके कारण सन्तप्त उस ज्वलनजटीने निमित्तज्ञानमे दक्ष, हृदयसे स्वच्छ महामति सम्भिन्न (नामक दैवज्ञ) मे विश्वास कर (इसका कारण) उससे पूछा। तब उस दैवज्ञने कहा—'बुधजनोके मनको प्रसन्न करनेवाले मुनिके श्रीमुखसे मैने जो कुछ सुना है, उसे सुनो—"धन-धान्यसे सम्पन्न इसी भारतवर्ष-में, प्रजापति नामका एक नरनाथ है। १०

घत्ता—विजय और त्रिपृष्ठ नामके समस्त गुणोंसे समृद्ध तथा उत्कृष्ट दो पुत्र हैं जो बलभद्र एवं वासुदेव पदधारी हैं। वे अर्धचन्द्रके समान भालवाले तथा पुराकृत-पुण्यके फलसे ही उसे प्राप्त हुए हैं।" ॥६९॥

३१

ज्वलनजटीके इन्दु नामक दूत द्वारा प्रस्तुत 'स्वयंप्रभाके साथ त्रिपृष्ठका विवाह सम्बन्धी प्रस्ताव' स्वीकृत कर राजा प्रजापति उसे अपने यहाँ आनेका निमन्त्रण देता है

"विजयके अनुज—त्रिपृष्ठका पूर्वभवका शत्रु वह विशाखनन्दि, जो वन्दीजनों द्वारा स्तुत था, वही इस भवमे नीलमणिके समान देहवाला खेचराधिपति अश्वग्रीव हुआ है। यह त्रिपृष्ठ समरागणमे इस अश्वग्रीवका भयंकर शिला द्वारा भालतलको भंग करके उसके सिरको तोड़ डालेगा। फिर वह नृप-वरिष्ठ त्रिपृष्ठ अपने हाथमें चक्रसे अलंकृत होकर तीन खण्डोंका स्वामी होगा। अतः निर्भ्रान्त होकर तुम महान् उत्सवपूर्वक अपना कन्यारूपी रत्न इस (त्रिपृष्ठ) को ५ दो। उसके प्रसादसे तुम भी संसारमे भव्य समस्त उत्तर श्रेणीका राज्य भोगोगे।" सुवर्ण-सूत्र पोषित (महाग्रन्थोके अध्येता) उस सम्भिन्न नामक दैवज्ञका वचन सुनकर तथा उसीके आदेशसे उस विद्याधरनरेश ज्वलनजटीने 'इन्दु' नामसे प्रसिद्ध, मुझे विश्वस्त दूतके रूपमे आपकी सेवामें भेजा है। हे देव, मैंने कल्याणकी कामना करके स्थिर चित्त होकर आपके सम्मुख अपना रहस्य प्रकट कर दिया है। १०

उस अवसरपर अत्यन्त हर्षसे रोमांचित होकर राजा प्रजापतिने उत्तम आभूषणोंसे उस दूतको सम्मानित किया तथा दूतके द्वारा ज्वलनजटीके हृदयके भाव जानकर तथा खेचराधिप ज्वलनजटीके ही निमित्त उसके मनको सन्तोष देनेके लिए इस प्रकार एक वाचन सन्देश भी भेजा—"निश्चयपूर्वक कुछ ही दिनोंमें अरिजनोंके लिए दुस्साध्य इस नगरीमे आप आवे।"

घत्ता—वह खेचरेश (इन्दु नामक दूत राजा प्रजापतिका सन्देश) लेकर शीघ्र ही वापस लौट आया। मैं—नेमिचन्द्र, लक्ष्मीगृहकी शीतल छायाके समान श्रीधर मुनिके यशोधाम चरण-कमलोंका वर्धमान स्वामीके चरित सम्बन्धी अपनी मनोकामनाकी पूर्ति हेतु स्पर्श करता हूँ ॥७०॥ १५

तीसरी सन्धिकी समाप्ति

इस प्रकार प्रवर गुण-समूहसे परिपूर्ण विबुध श्री सुकवि श्रीधर द्वारा विरचित तथा साधु स्वभावी श्री नेमिचन्द्र द्वारा अनुमोदित श्री वर्धमान तीर्थंकर देवके चरितमें बल-वासुदेवकी उत्पत्तिका वर्णन करनेवाला यह तीसरा परिच्छेद समाप्त हुआ ॥ सन्धि-३ ॥

आश्रयदाता नेमिचन्द्रके लिए कविका आशीर्वाद

जनोंमें सन्तोष उत्पन्न करनेवाला, शंकादि दोषोंको त्याग देनेवाला, दस प्रकारके श्रेष्ठ धर्मोके पालनेमें दक्ष, मिथ्यात्व-पक्षको ध्वस्त कर देनेवाला, कुलरूपी कमलके लिए दिनेशके समान, कीर्तिरूपी कान्ताका निवासस्थल तथा शुभमतिवाला वह नेमिचन्द्र (आश्रयदाता) किसके द्वारा प्रशंसित न होगा ?

सन्धि ४

१

गुणभूवहो दूवहो वयण सुणि जलणजडी वि समायउ ।
अइ सरसहिं दिवसहिं परिगएहिं केहिमिं सुह-गुण-भायउ ॥

मलयविलसिया

तहि विउलवणे पोसिय-वि-गणे ।
5 [1]वल-परियरियउ ठिउ गुण-भरियउ ।
सुणि तहो वत्त पयावइ णिग्गउ तहो दंसण-णिमित्तु णं दिग्गउ ।
दाहिण-वाम-करेहि विहूसिउ[2] विहि सुएहिं वंदिणहि पसंसिउ ।
वहुविह वाहण-रूढ णरेसहि रयणाहरण धरेहिं सुवेसहिं ।
परियरियउ पहुपत्तु तुरंतउ राउ वणंतरे हरिसु करंतउ ।
10 णिय विज्जा-वल विरइय मणहरे विप्फुरंत मणि[4]-गण-भासिय हरे ।
संट्ठिय वरखयरंगण-णेत्तहिँ मोहिय-णरवर-खेयर-चित्तहिँ ।
सहुँ पडिउट्ठिएण खयरेसेँ दिट्ठु णरिंदु स-समाण संतोसेँ ।
जाणु मुएवि लहु विउल-णिय-विहि णियँड णरप्पिय कर अवालवहि ।
अवरुप्परु सम्मुह होएप्पिणु पणय- भरिय-णयणहिँ जोएविणु ।
15 दोहिमि णरवर-णहयर-णाहहिँ स-सरसेहिँ णिरु दीहर-वाहहिँ ।
आलिंगणहि सुहा-रस-धारहिँ सिंचिउ संवंधियरु वियारहिँ ।
जिण्णुवि अंकुरियउ जिह सोहइ केऊरंसुवेहिँ मणु मोहइ ।

घत्ता—पउरमइहे ,णेवइहे परिणविउ अक्ककित्ति दुल्लक्खेहिँ ।
सुह-ज ाँ जणणेँ तहिँ समएँ अण भणिया वि कडक्खिहिँ ॥ ७१ ॥

२

मलयविलसिया

कुलवल-वंतहँ होइ महंतहँ ।
विणउ णिसग्गउ कय अववग्गउ ।

---

१. १. J. विल° । २. D. वहूसिउ, V. वहूउ, J. वहूसिउ । ३. D. V. °स । ४. D. J. मणे । ५. D. V. °सि । ६. J. V. भ° ।

सन्धि ४

१

ज्वलनजटी राजा प्रजापतिके यहाँ जाकर उनसे भेंट करता है

अति सरस, (प्रतीक्षामें) कुछ दिनोंके व्यतीत हो जानेपर गुणोंकी खान उस 'इन्दु' (नामक दूत) के वचन सुनकर शुभ-गुणोंका भाजन वह ज्वलनजटी भी किसी समय (राजा प्रजापतिसे मिलने हेतु) चला।

मलयविलसिया

और विशेष गणों द्वारा सेवित होकर तथा अपनी सेनाओं द्वारा परिचरित रहकर वह गुणवान् ज्वलनजटी एक विपुल वनमें ठहरा। ५

राजा प्रजापति भी ज्वलनजटीके आगमनका वृत्त जानकर उसके दर्शनोंके निमित्त इस प्रकार निकला मानो वह कोई दिग्गज (–दिक्पाल) ही हो। उसके साथ उसके दायीं और वायीं ओर वन्दीजनों द्वारा प्रशंसित उसके दोनों पुत्र सुशोभित थे। अनेक प्रकारके वाहनोंपर आरूढ़ तथा रत्नाभरणोंको धारण किये हुए सुन्दर वेशवाले राजाओं द्वारा परिचरित होता हुआ वह राजा प्रजापति हर्ष करता हुआ शीघ्र ही राज-वनके मध्यमे पहुँचा। १०

अपने विद्याबलसे विरचित मनोहर एवं स्फुरायमान मणि-समूहोंसे देदीप्यमान श्रेष्ठ विद्याधर-महिलाओंके नेत्रों एवं चित्तके लिए मोहित करनेवाले विद्याधरो एवं मनुष्योके साथ वह सन्तुष्ट खेचरेश ज्वलनजटी उठा और ससम्मान उस नरेन्द्र प्रजापतिके दर्शन किये।

अपना यान छोड़कर तत्काल ही प्रशस्त स्वकीय परम्पराओं पूर्वक तथा निकटस्थ प्रियतम (विश्वस्त) जनोंका हस्तावलम्बन करके परस्परमे सम्मुख होकर, प्रणयपूर्ण नेत्रोंसे जोहकर अत्यन्त हर्षपूर्वक दीर्घबाहु उन दोनों नरश्रेष्ठ एवं नभचर नाथने (परस्परमे) आलिंगनरूपी अमृत रसकी धारासे समधीरूपी सम्वन्धका सिंचन किया। जीर्ण वृक्ष जिस प्रकार अंकुरित होकर सुशोभित होता है, उसी प्रकार वाजूबन्दकी मनमोहक मणि-किरणोंसे वे दोनों राजा (आलिंगनके समय) सुशोभित हो रहे थे। (अर्थात् प्रजापति एवं ज्वलनजटी दोनोंका सम्वन्ध पुराना पड़ गया था, किन्तु उन दोनोंने मिलकर गाढ़ालिंगनके अमृतजलसे उसको सीचा, जिससे वह फिर हरा-भरा हो गया)। १५ २०

घत्ता—प्रवरमति नृपति (–प्रजापति) के लिए दुर्लक्ष्य एवं सुखोके जनक पिता (राजा ज्वलनजटी) द्वारा अनकहे कटाक्षों द्वारा (मनका भाव समझकर) अर्ककीर्तिने तत्काल ही (अपने ससुर प्रजापतिको) सिर झुकाकर प्रणाम किया ॥७१॥ २५

२

प्रजापति नरेश द्वारा ज्वलनजटीका भावभीना स्वागत

मलय विलसिया

महान् कुल एवं महान् वलवालोंका अपवर्ग प्रदान करनेवाला विनयगुण नैसर्गिक ही होता है।

वल-लच्छी-पयाव-मइवंतहिँ चंदणोल रयणेहि व कंतहिँ ।
खयराहिवहो भुवणे उक्कंठिहिँ वंदिउ पय-जुउ विजय-तिविट्ठिहिँ ।
5 थट्ट गुणाहिँ वो विण महंतउ गुरुयणे होइ सुयत्थ-मुणंतउ ।
अक्क क्कित्ति-तणु आलिंगेविणु णिब्भरु णिय-लोयण-फलु लेविणु ।
तहिँ अवसरि रोमंच-सहिय सुव विजय-तिविट्ठ वेवि स-हरिस हुव ।
पिय-बंधव-संसग्गु ण कहो मणे करइ हरिसु भो भाउव तक्खणे ।
एत्थंतरे णर-खयराहीसहँ परियाणिवि मणुपर-णर-भीसहँ[3] ।
10 चवइ पयावइ-मंति वियक्खण होइ महामइ पर-मण-लक्खण ।
जो चिरु पुरिस-णेह-तरु छिण्णउँ वहु-कालेण गलंतें भिण्णउ ।
तं पइँ पुणु दंसण-जलधरिहिँ संचिवि वड्ढारिउ अणिवारहिँ ।

घत्ता—केवलु लहि सुउ कहि परम-सुहु जिह मुणि लहइ विउत्तउ ।
दुह-धंसणि दंसणि तुह तणइ तिह णरेवि संपत्तउ ॥ ७२ ॥

३

मलयविलसिया

तं सुणिऊणं सिरु धुणिऊणं ।
भणइ अभीसो खयराहीसो ।
एरिसु वयणु वियार-वियक्खण मा मंति-वर पयंपि सुलक्खण ।
चिरु आराद्धि रिसहु अणुराएँ कच्छ-णरेसर-सुव-णमि-राएँ ।
5 फणिवइ-दिण्ण-खयर-सिरिमाणिय णिस्सेसहिँ णरणाहहिँ जाणिय ।
हउँ पुणु एयहो आण-करण-मणु जं भावइ तं भणउ पिसुण-यणु ।
पुव्वक्कमु सप्पुरिस ण लंघहिँ कज्ज उत्तरुत्तरु आसंघहिँ ।
इय संभासिवि खयर-णरेसर मउड-किरण-पच्छइय-दिणेसर ।
दूय-भणिय विवाह-विहि विरयण कय-उज्जम आणंदिय सुरयण ।
10 णिय-णिय-णिलइ पइट्ठ सपरियण वेवि विसुद्ध वियारिय-अरियण ।
घरे घरे जुवइहिँ गाइय मंगल विणिवारिय-खल-पयणिय-घंघल ।
कर-[1]कोणाहय-पडह समंदल कहिंमि न कीरहिँ केणवि कंदल ।

घत्ता—पवणाहय-महधय-चिधचय पिहिय-दिवायर घरे घरे ।
पच्चंतहँ संतहँ वहु यणहँ मुह-सररुह-रय-महुवरे ॥ ७३ ॥

---

२. १. D. °टिहि । २. D. भाव । ३. V. परणत्तीसहं, D. परणरभीसहं ।
३. १. D. J. V. करकेणाहय ;

संसारमें बल, लक्ष्मी, प्रताप, चतुर-श्रेष्ठ, चन्दनके समान शान्त—शीतल स्वभावी तथा रत्नद्युतिके समान कान्तिमान् होनेपर भी उन विजय एवं त्रिपृष्ठने खेचराधिप ज्वलनजटीके चरणयुगलमें प्रणाम किया। श्रुतार्थका मनन करनेपर तथा उस (ज्वलनजटी) से महान् गुणज्ञ होनेपर भी वे दोनों भाई (उसके प्रति) अत्यन्त विनम्र थे। ५

उसी अवसरपर रोमांचसे भरकर विजय एवं त्रिपृष्ठने हर्षित होकर अर्ककीर्तिका भी आलिंगन किया तथा स्नेहप्लावित होकर अपने नेत्रोंका (अर्ककीर्ति दर्शनरूपी) फल प्राप्त किया। हे भाई, आप ही बतलाइए कि प्रिय बान्धवोंका संसर्ग किसके मनमें तत्क्षण ही हर्ष उत्पन्न नही कर देताा ?

इसी बीचमें शत्रुजनोंके लिए भयानक तथा मनुष्यों एवं विद्याधरोके स्वामीके मनको १० जानकर राजा प्रजापतिका, दूसरोंके मनकी बातें जाननेमें अत्यन्त चतुर एवं विलक्षण मन्त्री बोला—"चिरकालसे पुरुष-स्नेहरूपी जो वृक्ष छिन्न हो गया था तथा अनेक वर्षोंसे जो गल-गलकर विदीर्ण हो रहा था, उसे आपने अपने दर्शनरूपी अनिवार जल-धारासे सीचकर बढ़ाया है।"

घत्ता—वियुक्त मुनि केवलज्ञान प्राप्त कर जिस प्रकार श्रुतकथित परम-सुख प्राप्त करता १५ है, उसी प्रकार आपके दुख-ध्वंसी दर्शन कर इस राजा प्रजापतिको भी आपके दर्शनोसे परमसुख प्राप्त हुआ है। ॥७२॥

३

ज्वलनजटी द्वारा प्रजापतिके प्रति आभार-प्रदर्शन व वैवाहिक तैयारियाँ

मलयविलसिया

(राजा प्रजापतिके) मन्त्रीका कथन सुनकर, अपना सिर घुनकर तथा अधीर होकर वह खेचराधीश—ज्वलनजटी बोला—

"हे विचार-विचक्षण, हे सुलक्षण, हे मन्त्रीश्रेष्ठ, ऐसे वचन मत बोलो, क्योंकि चिरकालसे आराधित ऋषभदेवके अनुरागसे ही कच्छ-नरेश्वरके सुपुत्र नमिराजा, फणिपति–धरणेन्द्र द्वारा प्रदत्त एवं सभी नरनाथों द्वारा ज्ञात विद्याधर-विभूतिसे सम्मानित हुए थे। मैं भी तो हृदयसे इन्हीं ५ (प्रजापति नरेश) का आज्ञाकारी राजा हूँ। खलजन तो जो मनमें आता है, सो ही कहा करते हैं। किन्तु सज्जन पुरुष पूर्वपरम्पराका उल्लंघन नहीं कर सकते। कार्य आ पड़नेपर उनसे तो उत्तरोत्तर घनिष्ठता ही बढ़ती जाती है।"

इस प्रकार कहकर सूर्यको भी तिरस्कृत कर देनेवाली किरणोंसे युक्त मुकुटधारी उस विद्याधर-राजाके दूतने कहा कि "विवाह-विधिकी संरचना कीजिए।" (तब) आनन्दित होकर १० देवोंने उस कार्यको प्रारम्भ कर दिया।

अरिजनोंका विदारण करनेवाले वे दोनों ही विशुद्ध (मनवाले) विद्याधर राजा, परिजनों सहित अपने-अपने निलय (आवास) में प्रविष्ट हुए। घर-घरमें युवतियाँ मंगलगान करने लगी, दुष्टजनों द्वारा किया गया दंगल शान्त किया जाने लगा। सामूहिक रूपमें हाथोंके कोनों द्वारा पटह (नगाड़े) एवं मृदंग पीटे जाने लगे। कहीं भी कोई भी कलह—शोरगुल नही कर रहा था। १५

घत्ता—चिह्नांकित ध्वजाएँ हवाके कारण फहरा-फहराकर सूर्यको ढँक दे रही थीं। घरों-घरोंमें मुखरूपी कमलकी रजसे मनोहर एवं श्रेष्ठ कुल-वधुएँ नृत्य कर रही थी ॥७३॥

४

मलयविलसिया

मंदिर-दारे जण-मणहारे ।
कलस-विइण्णे मणियर-पुण्णे ।
मोत्तिय-पंतिहिँ रइय-चउक्कइँ जण-कलयल-पूरिय-दिसि चक्कइँ ।
दव्व दाण-परिपीणिय-णीसए णं अवरुप्परु लच्छि जगीसए ।
5 संजायइँ रमणीए पुरवरे उववण-फल-पोसिय-खेयर-वरे ।
एत्थंतरे संभिण्ण-विइण्णइँ वर-वासे सुहगुण-संपुण्णइँ ।
भत्तिए जिणवर-पुज्ज करेविणु चिर-पुरिसहँ कय-विहि सुमरेविणु ।
लच्छिव कमल-रहिय खयरेसेँ हरिहि विइण्ण दुहिय परिओसेँ ।
णरवरोह-तिमिरुक्कर-हरणिहिँ सम्माणेवि विप्फुरिया हरणिहिँ ।
10 कण्ण-दाण-जोएण खगेसेँ चिंता-सायरु तरिउ सुवेसेँ ।
विजयाणुवहो देवि खयराहिउ णिय सुव विहिणा तुट्ठ जयाहिउ ।
सहुँ गरुएँ संबंधु लहेविणु तूसइ को न हियइ भावेविणु ।
एत्थंतरे पयणिय-सुह-सेणिहे विजयायले वरउत्तर-सेणिहे ।
अलयाउरे सिहिगलु खयराहिउ णीलंजण-पिययम-सुपसाहिउ ।
15 तहो विसाहणंदी वरु जायउ सुउ हयगीउ चक्कि विक्खायउ ।

घत्ता—सररुह यर-णहयर वइ-सुअहो संपयाणु णिसुणेविणु ।
सिरिभायण-पोयणवइ-सुवहो णियचर-मुहहो मुणेविणु ॥ ७४ ॥

५

मलयविलसिया

सो हयगीओ समरे अभीओ ।
णिय मणे रुट्ठो दुज्जउ दुट्ठो ।
आहासइ वइवसु व विहीसणु खय-कालाणल-सण्णिह णीसणु ।
अहो खेयरहो एउ किं णिसुवउ तुम्हहँ पायडु जं किउ विरुवउ ।
5 तेण खयर-अहमेँ अवगण्णेवि तिण-समाण सव्वे वि मणि मण्णेवि ।
कण्णा-रयणु विइण्णउ मणुवहो भूगोयरहो अणिज्जिय-दणुवहो ।
तं णिसुणेवि सह-भवण-भडोहइँ संखुहियइँ दुज्जय-दुज्जोहइँ ।

---

४. १. D. J. जि । २. D. J. V. जोइण । ३. D. J. V. °वले ।
५. १. D. °णि । २. D. J. V. मण ।

४

ज्वलनजटीकी पुत्री स्वयंप्रभाका त्रिपृष्ठके साथ विवाह

मलयविलसिया

जन-मनका हरण करनेवाले मन्दिरके (प्रमुख) द्वारपर सर्वश्रेष्ठ मणियोंसे निर्मित पूर्ण कलश स्थापित किया गया ।

(विविध) मोतियोंकी मालाओंसे चौक पूरे गये । दिशाचक्र जनकोलाहलसे व्याप्त हो गया । द्रव्य-दानसे दरिद्रोंका पोषण किया गया, उपवनके फलोंसे पोषित श्रेष्ठ विद्याधरोंके कारण वह नगर इतना अधिक रमणीक हो गया मानो, लक्ष्मी ही परस्परमें संसारसे ईर्ष्या करने लगी हो । (अर्थात् सुन्दर नगर एवं विद्याधरोंसे व्याप्त उपवन—ये दोनों ही परस्परकी विभूतिको जीतनेकी इच्छासे एक दूसरेसे अधिक रमणीक बन गये थे) । ५

इसी बीचमें शुभ गुणोंसे समृद्ध उस सम्भिन्न नामक ज्योतिषी द्वारा बताये गये उत्तम दिवसपर भक्तिपूर्वक जिनवरकी पूजा करके तथा पूर्व-पुरुषोंका विधि-पूर्वक स्मरण करके, कमलको छोड़ देनेवाली लक्ष्मीके समान अपनी उस सुपुत्रीको परितोष पूर्वक उस खेचरेश—ज्वलनजटीने हरि—त्रिपृष्ठ-नारायणको समर्पित कर दिया । अन्धकारको नष्ट करनेवाले स्फुरायमान आभरणोंसे अन्य नरेन्द्रोंको सम्मानित कर, सुन्दर वेशवाला वह खगेश—ज्वलनजटी योग्य कन्यादान कर चिन्तारूपी सागरसे पार उतर गया । विजयके अनुज त्रिपृष्ठको विधिपूर्वक अपनी सुपुत्रीको प्रदान कर वह (खेचराधिप) बहुत ही प्रसन्न था । ठीक ही है, गौरवशालियोंके साथ मनचाहे सम्बन्धको प्राप्त कर अपने हृदयमें कौन सन्तुष्ट न होगा ? १० १५

इसी बीचमें, विजयार्ध पर्वतकी सुखद श्रेणियोंमें श्रेष्ठ उत्तर-श्रेणीमे स्थित अलकापुरीमे विद्याधरोंका श्री-सम्पन्न राजा शिखिगल, अपनी प्रियतमा नीलांजनाके साथ निवास करता था । उनके यहाँ विशाखनन्दीका वह जीव, हयग्रीव नामक पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुआ, जो चक्रवर्तीके रूपमें विख्यात हुआ ।

घत्ता—नभचर-पति—ज्वलनजटीकी कमलके समान हाथोंवाली पुत्रीका अपने चरके मुखसे श्रीके भाजनस्वरूप पोदनपुरपतिके पुत्र त्रिपृष्ठके लिए, सम्प्रदान (समर्पणका वृत्तान्त) सुनकर ॥७४॥ २०

५

हयग्रीवने ज्वलनजटी और त्रिपृष्ठके विरुद्ध युद्ध छेड़नेके लिए अपने योद्धाओंको ललकारा

मलयविलसिया

समरभूमिमें निर्भीक वह दुष्ट एवं दुर्जन हयग्रीव अपने मनमे रुष्ट हो गया ।

यमराजके समान विभीषण (भयानक) तथा प्रलयकालीन अग्निके समान विनाशकारी गर्जना करता हुआ वह (हयग्रीव) चिल्लाया—"अरे विद्याधरो, इस (ज्वलनजटी विद्याधर) ने (हमारे समाजके) विरुद्ध जो कार्य किया है, क्या तुम लोगोंने उसे प्रकट रूपमें नही सुना है ? उस अधम विद्याधरने हम सभी विद्याधरोंको तृणके समान मानकर हमे तिरस्कृत करके अपना कन्यारत्न एक अनिर्जित तथा दानव स्वरूपवाले भूमिगोचरी (मनुष्य) के लिए दे डाला है ।" ५

हयग्रीवका कथन सुनकर सभा-भवन (दरवार) मे स्थित दुर्जेय भयंकर योद्धागण (इस प्रकार)

क्षुब्ध हो उठे, मानो (साक्षात्) जनपदों ने ही कलकल मचा दिया हो। अथवा प्रलयकालीन वायुसे लवण-समुद्रका जल ही क्षुब्ध हो उठा हो। मारे गये शत्रुओंके रक्तसे मदोन्मत्त चित्रांगद नामक योद्धा अपने दृढ़ अग्रदन्तोंसे अधरको चबाता हुआ तथा बायें हाथसे चित्र-विचित्र चित्तल (एक विशेष हथियार) का स्पर्श करता हुआ तत्काल ही उठा। (पुनः) उसने पसीनेके स्वेद-कणोंसे परिपूर्ण अपने गण्डस्थल, भुजयुगल एवं वक्षस्थलकी ओर झाँका। रण-रोमांचोंसे साधित कायवाला भीम नामक योद्धा भी भीम-दर्शनवाला (देखनेमें भयंकर) हो गया। १०

घत्ता—भयसे भावित परबलको झुकानेवाला, कायरजनोंके लिए भयंकर तथा विद्या एवं भुजबलसे गर्वित भयंकर नीलकण्ठ भी ॥७५॥ १५

६

नीलकण्ठ, अश्वग्रीव, ईश्वर. वज्रदाढ, अकम्पन और धूम्रालय नामक विद्याधर-योद्धाओंका ज्वलनजटी तथा त्रिपृष्ठके प्रति रोष-प्रदर्शन

मलयविलसिया

तीनों लोकोंका मर्दन करनेवाली गर्जनासे भुवनको व्याप्त करता हुआ तथा खड्ग हाथमें धारण कर वह (नीलकण्ठ) भी उठा।

गजदन्तों द्वारा शत्रुजनोंके वक्षस्थलको घायल कर देनेवाला तथा मणि-निर्मित कुण्डलोंसे मण्डित गण्डस्थलोंवाला (स्व) कुलदीपक वह हयग्रीव क्रोधित होकर अपने कर्णोत्पलों द्वारा पृथ्वीको ठोकने लगा तथा पद्माकरोंपर समर्पित पादवाला एवं सूर्य-तेजके समान दुर्निरीक्ष्य वह हयगल—अश्वग्रीव अपने विविध प्रतापोंसे दिशाभागोंको भरता हुआ, अपने क्रोधसे जन-संहारका विस्तार करने लगा। ५

युगल चरण-कमलोंसे नभस्थलको पकड़नेवाले श्रेष्ठ खड्गसे भूषित दक्षिण हस्तवाले, दुस्सह कोपरूपी पवनसे व्याप्त ईश्वर एवं वज्रदाढ़ नामक दोनों योद्धागण (जब) एक साथ ही शत्रु-विद्याधरोंके साथ उग्रतापूर्वक जूझनेके लिए तत्पर हुए, तब साथियों द्वारा जिस-किसी प्रकार रोके जा सके। १०

"दीर्घकाल बाद मुझे यह अवसर प्राप्त हुआ था, किन्तु दुर्भाग्यरूपी नेत्रोंने उसे भी छीन लिया।" इस कारण रूसकर भी नृपति अकम्पनके हृदयका अदृश्य क्रोध नष्ट हो गया। (ठीक ही कहा गया है कि)—चंचल बुद्धिवाला सभामें बैठा हुआ भी क्रुद्ध हो उठता है, किन्तु धीर-वीर पुरुष (वैसा) नहीं (करते)। १५

घत्ता—सभाके क्षोभको उपलक्ष्य कर तथा देखकर, साक्षात् शनीचर अथवा यमराज (अथवा काल शिखर)के समान धूमालय नामक विद्याधर मात्सर्य पूर्वक बोला ॥७६॥

७

हयग्रीवका मन्त्री उसे युद्ध न करनेकी सलाह देता है

मलयविलसिया

वसुन्धराका पोषण करनेवाले हे हरि कन्धर—अश्वग्रीव, आप मुझे वह गोपनीय (कार्य) बताइए जो आपको असाध्य लग रहा हो।

हे अश्वग्रीव, (आप) व्यर्थ ही क्यों क्षीण हो रहे हैं ? (यदि आप आदेश दें तो) धनदायिनी इस पृथ्वीको उठाकर मकरगृहमें फेंक दूँ ? राजा ज्वलनजटी कामीजनोंके अभिमानका

मणुवहो गले लग्गी अवलोएवि को ण सुमइणिय-मुहि करु ढोएवि।
अइउवहासु करइ गोलच्छहु गलि मणिमाला इव जय-पुच्छहो।
एयहँ मज्झे सयल-खयरेसहँ झासु देहिँ आएसु सुवेसहँ।
भू भंगेणँ सो वि णमि रायहो करइ कुलक्खउ गरुडुव नायहो।
पइँ जमराय-सरिस मणे कुवियए एक्कुवि खणु दिट्ठिएँ रिउण जियए।
10 इय मुणंतु पइँ सिहुँ सो सामिय किम विरोहु विरयइ गय-गामिय।
अहो अहचा अंभाएँ मइवंतहँ वुद्धिवि परिखिज्जइ गुणवंतहँ।
सिहुँ वंधवहँ रणंगणु रुंधिवि इत्थु णायपासहिँ णिव वंधिवि।
वहु वर जुवलु रसंतउ आणहँ तुम्ह मणोरह लहु सम्माणहँ।

घत्ता—उट्ठंतइँ लिंतइँ पहरणइँ हय खयरइँ अणुणंतउ।
15 हयकंधरु दुद्धरु करे धरेवि पमणइ मंति णवंतउ ॥ ७७ ॥

८

मलयविलसिया

किं णिक्कारणु पहु कुप्पहि भणु।
काहिँ गय तुह मइ मुणिय भुवण-गइ।
कोउ गुएविणु अण्णु महाहिउ मणुयहो आवय-हेउ हणिय हिउ।
तेण्ण करइ धीरत्तणु पहणइ मइ विहुणइ मूवत्तणु पयणइ।
इंदिएहिँ सहु तणु तावंतउ विस-संताउ वअइ-पसरंतउ।
5 कोउ होइ पित्तज्जर-समाणउ माण-विहंडणु दुक्खरमाणउ।
जो पए-पए णिक्कारणु कुप्पइ अहणिसु हियर्यंतरे संतप्पइ।
णियजणोवि सहुँ तेण सहित्तणु ण समिच्छइ पायडिय-समत्तणु।
मंदाणिल-उल्लसिय-कुसुम-भरु किं सेवियइ दुरेहहिँ विस-तरु।
सुंदर रक्ख समिच्छियँ सिद्धिहो जल-धारा-लच्छी-लँइ विद्धिहो।
10 खंति भणिय विवुहहँ सप्पुरिसहँ सुहि वंधव-यण-पयणिय-हरिसहँ।
जो पहु विक्कम वइरि-विग्रारणु सोमुवि कोविण सेयहो कारणु।

घत्ता—गज्जंतइँ जंतइँ णहे घणइँ अइलंघिवि हरिणाहिउ।
णिक्कारणु दारुणु णिय तणुहे किं ण करइ णिहियाहिउ ॥ ७८ ॥

---

७. २. D. भंगण। ३. J. णुँ।
८. १. D. J. V. कंण्ण। २. D. दिएहिँ। ३. D. °य। ४. V. णिक्कारण णिय तणुहे°।

विखण्डन करनेवाली तथा पृथिवी-मण्डलकी मण्डन-स्वरूपा अपनी सुपुत्रीको एक मनुष्यके गलेमें लगी हुई देखकर कौन सुमतिवाला (विद्याधर) अपने मुखको हाथसे न ढँक लेगा तथा पुछकटे गोवत्सके गलेमे पड़ी हुई मणिमालाके समान कौन उसका उपहास नही करेगा ? यहाँपर उपस्थित सुन्दर वेशवाले समस्त विद्याधरोंमें-से जिसे भी आप आदेश देंगे, वह अपने भ्रूभंग मात्रसे ही नमिराजाके कुलको उसी प्रकार नष्ट कर देगा, जिस प्रकार कि गरुड़ नागको नष्ट कर डालता है। आपके मनमे यमराजके सदृश क्रोधके उत्पन्न हो जानेपर आपका शत्रु एक भी क्षण जीता हुआ दिखाई नहीं दे सकता। यह सब समझकर भी गजके समान आचरण करनेवाले हे स्वामिन्, आपके साथ (न मालूम) उसने क्यों विरोध मोल लिया है ? अथवा (यही कहा जा सकता है कि), दुर्भाग्य कालमे मतिवानों एवं गुणवानोंकी बुद्धि भी क्षीण हो जाती है। रणागणमे सभी बन्धुजनोंके साथ रोककर राजाको नागपाशसे बाँधकर तार-स्वरसे रोते हुए वर-वधू—दोनोंको ही तत्काल ले आऊँगा और इस प्रकार तुम्हारे मनोरथका शीघ्र ही सम्मान करूँगा।　५ १० १५

घत्ता—शत्रु-विद्याधरोंको मारने हेतु प्रहरणोंको लेकर जब वे (धूमालय आदि विद्याधर) उठे तभी दुर्द्धर हयकन्धर—अश्वग्रीवका हाथ पकड़कर उसका मन्त्री अनुनय-विनयपूर्वक बोला—॥७७॥

८

विद्याधर राजा हयग्रीवको उसका मन्त्री अकारण ही क्रोध करनेके दुष्प्रभावको समझाता है

मलयविलसिया

हे प्रभु, अकारण ही क्रोध क्यों कर रहे है ? कहिए, आपकी भुवन-गतिको जाननेवाली बुद्धि कहाँ चली गयी ?।

मनुष्यके लिए क्रोधको छोड़कर महान् अहितकारी आपत्तिका जनक, एवं हानिकारक अन्य दूसरा कोई कारण नहीं हो सकता। वह तृष्णा बढ़ाता है, धैर्य-गुणको क्षतिग्रस्त करता है, विवेक-बुद्धिको नष्ट करता है, मृतकपनेको प्रकट करता है, इन्द्रियोंके साथ-साथ शरीरको भी सन्तप्त करता है, विषके सन्तापकी तरह ही वह क्रोध-विष भी अति प्रसरणशील है।　५

वह क्रोध पित्त-ज्वरके समान माना गया है तथा वह स्वाभिमान (अथवा गौरवशीलता) का विखण्डन करनेवाला और दु:खोंका घर है। जो व्यक्ति पग-पगपर अकारण ही क्रोध करता है और हृदयमें अहर्निश ही सन्तप्त रहता है, उस व्यक्तिके साथ उसके आप्तजन भी प्रकट रूपमें समता एवं मित्रता नही रखना चाहते। (ठीक ही कहा गया है कि) मन्द-मन्द वायुसे उल्लसित पुष्पोंके भारसे युक्त विषवृक्षका क्या द्विरेफ—भ्रमर-गण सेवन करते है ? (अन्तर्बाह्य—) सौन्दर्य (अथवा अभिवांछित कार्य-सिद्धिकी) रक्षा करनेवाले (अन्धी—) आँखोंके लिए सिद्धांजन स्वरूप तथा लक्ष्मीरूपी वृद्धिके लिए जलधाराका (कार्य) क्षमा-गुण ही (कर सकता) है तथा वही क्षमागुण मित्रों एवं बन्धुजनोंके हर्षको भी प्रकट करता है, ऐसा विवेकशील सत्पुरुषोने कहा है। जो प्रभु अपने विक्रमसे क्रोध-पूर्वक शत्रुका विदारण करता है, उसे भी मरनेपर (क्रोधके कारण ही) कोई श्रेय नही मिलता।　१० १५

घत्ता—जिस प्रकार मृगराज—सिंह नभमे गरज-गरजकर जाते हुए मेघोंपर उछलकूद करता है, तब क्या वह अकारण ही अपने शरीरको दारुण दुख देकर क्या अपना अहित नही करता ? ॥७८॥

९

हयग्रीवके मन्त्री द्वारा हयग्रीवको ज्वलनजटीके साथ युद्ध न करनेकी सलाह

मलयविलसिया

यदि शत्रु समान शक्तिवाला, वीर एवं पराक्रमी हो तब उससे सन्धि कर भ्रान्ति दूर कर लेना चाहिए।

यदि शत्रु दैव एवं पराक्रमकी अपेक्षा समान हो, तब नीतिशास्त्रके जानकारोंने बलवान्‌को ही पूजनीय बताया है। हे चक्रधर, विद्वानोंने यह भी कहा है कि दोनोंमें-से यदि कोई हीन भी हो, तो वह भी मतिवान् एवं सरागी राजाओं-द्वारा सहसा ही दण्डनीय नही होता। जिस प्रकार ५ हाथी की चिंघाड़ उसके अन्तर-मदकी तथा प्रात:कालीन किरणें उदयाचलमे आनेवाले सूर्यकी सूचना देती है, उसी प्रकार पुरुषके आचरण उसके मनको कह देते है तथा लोकमे होनेवाले उसके (भावी) आधिपत्यको प्रकाशित कर देते है। जिस कोटि-भट बलवान् (त्रिपृष्ठ) ने मृगारि—पंचानन सिहको मात्र अपनी अंगुलियोंसे ही प्राण-वियुक्त कर डाला, लीला-लीलामे ही कोटिशिला-को चलायमान कर दिया और उसे छातेके समान जहाँ-तहाँ घुमा डाला, विद्याधराधिपति ज्वलन- १० जटीने जिसके घर पहुँचकर स्वयं ही जिसे सम्मानित किया। विविध सेनाओसे युक्त उस ज्वलनजटी तथा त्रिपृष्ठके भटो द्वारा विरचित संग्राममे आप किस प्रकार जीतेंगे? मै रथांग लक्ष्मी रूपी विद्यासे संयुक्त हूँ, इस प्रकार आप व्यर्थ ही गर्व करके मूढ़ मत बनिए।

घत्ता—अरे, मूढ़मति तथा इन्द्रियोंके वशवर्ती कुपुरुषोके विषयमे क्या कहा जाये? (अर्थात् उनकी सम्पत्ति परिणाम कालमे अस्थायी एवं दुखद होती है) किन्तु जो (इन्द्रियविजेता १५ एवं) विवेकी जन है उनकी श्री—लक्ष्मी, परिपाक-कालमे दुखोंको नष्ट कर (स्थायी) सुख प्रदान करनेवाली होती है ॥७९॥

१०

अश्वग्रीव अपने मन्त्रीकी सलाह न मानकर युद्ध-हेतु ससैन्य निकल पड़ता है

मलयविलसिया

"आप विज्ञ हैं, अत. मानको अनिष्टकारी मानकर आप अहंकार न करें और (युद्ध न करने सम्बन्धी) मेरी सलाह मान ले।"

इस प्रकार (अपनी सलाहका) परिणाम स्पष्ट रूपसे जानकर वह मन्त्री मौन धारण कर बैठ गया, क्योंकि जो बुद्धिमान होते है, वे विना प्रयोजनके अधिक नही बोलते। जिस प्रकार अन्धकार-समूहका हनन करनेवाले तथा लोक-प्रकाशक सूर्य-किरणोके दर्शनमात्रसे ही नेत्रविहीन ५ नर उल्लूके समान ही काँप उठता है, उसी प्रकार उस मन्त्रीकी सलाह द्वारा अज्ञानान्धकारसे आच्छादित मतिवाला वह कुटिल-बुद्धि अश्वग्रीव प्रतिबुद्ध न हो सका।

मन्त्रीके वचनोंको हृदयमे विचारकर तथा नेत्रोंको माथेपर चढ़ाकर वह हयकन्धर—अश्व-ग्रीव हथेलियोसे पृथिवीको पीटता हुआ तथा उस (मन्त्री) का विरोध करता हुआ (इस प्रकार) बोला—"जिस प्रकार उपेक्षा करनेसे रोग बढ़ जाता है और समय पाकर वह प्राण ले लेता है, १० उसी प्रकार शत्रुओंका नाश करनेवाले शत्रुको बढ़ावा देना भी गुणकारी नही है।" इस प्रकार

उट्ठिउ गज्जमाणु हयकंधरु णंगिभावसाणि नवकंधरु।
जलहिव अविरल जलकल्लोलेहिँ[1] खय-मरु-वस-संजाय विसालहिँ।
गयणंगणु पूरंतु असंखहि खेयरेहिँ वज्जंतहिँ संखहि।
घत्ता—तिणि-तरुवरे-गिरिवरि पियणवरे समरंगणि उक्कंठिउ।
15 घिप्पंतइँ इंतइँ परवलइँ परिवो[2]लंतु परिट्ठिउ॥ ८०॥

११

मलया

इय हयगीवहो वहु अवणीवहो।
चरिउ णिरंकुसु निरु असमंजसु।
विसारिणा अवारियं सहंतरे समीरियं।
सुणेवि खेड-सामिणा मयंग-मत्त-गामिणा।
5 पयावईहिँ भासियं असेस-दोस वासियं।
अहो तुरंग कंधरो रणावणी-धुरंधरो।
समायये सखेयरे सवंस-वो[1]म भायरे।
रणम्मि भीरु-भीहरे[2] परिट्ठिए महीहरे[3]।
किमत्थ कालि जुज्जए अवस्सु[4] सत्तु जुज्जए।
10 सुणेवि तासु जंपियं ण भूहरेण कंपियं।
वियप्पिऊण माणसे तुरं विमुक्क-तामसे।
विसेवि गूढमंदिरे स खेयरेस-सुंदरे।
तिविट्ठ-सीरि संजुओ अणेय-वंदि-संथुवो।
गहीरु णाइँ णीरही समंतिवग्गु धीरही।
15 पयाव-धत्थ-णेसरो भणेइ पोयणेसरो।
घत्ता—चवलच्छी लच्छी जाय महु, तुम्हहँ संगग्गेण णिरु।
धविय वि वर तरुवर-विणुरिउहि[5] कि कुसुमसिरि लहहि चिरु॥ ८१॥

१२

मलया

तुम्हाण मइ अम्हइँ कयरइ।
जणणि व पेक्खइ वं[1]हुरहो रक्खइ।
गुणहीणु वि गुणियण-संसग्गेँ होइ गुणी पयडिय नयमग्गेँ।
पाडल-कुसुमाविलजलवासिउ खप्परु होइ सुअंध-गुणासिउ।

---

१०. १. D. J. V. कक्को° । २. D. °वा° ।
११. १. J V. मोम । २. V. रो । ३. V. रो । ४. D. °स्स । ५. D. रिउ ।
१२. १. D. वि° ।

गरजता हुआ वह हयकन्धर—अश्वग्रीव उठा (उस समय) वह ऐसा प्रतीत होता था, मानो ग्रीष्मावसानके समयका नवीन कंधीरवाला साँड़ ही हो। जिस प्रकार प्रलयकालीन वायुसे समुद्र विशाल एवं अविरल कल्लोलोसे भर उठता है, उसी प्रकार शंखोके बजते ही असंख्यात खेचरोसे गगनरूपी आँगन भर उठा। १५

घत्ता—समरांगणके लिए उत्कण्ठित वह अश्वग्रीव मार्गमें शत्रुजनोंपर आक्रमण कर उन्हे पराजित करता हुआ तथा घास, लकड़ी, जल आदि लेकर आगे बढ़ता हुआ, एक पर्वतपर स्थित नवीन सुन्दर नगरमें रुका ॥८०॥

११

राजा प्रजापति अपने गुप्तचर द्वारा हयग्रीवकी युद्धकी तैयारीका वृत्तान्त जानकर अपने सामन्त-वर्गसे गूढ़ मन्त्रणा करता है

मलया

इस प्रकार अत्यन्त अविनीत हयग्रीवका चरित बड़ा ही निरंकुश एवं सर्वथा असमंजस-पूर्ण था।

अबाधगतिसे सभामें आये हुए चरने मदोन्मत्त गजगतिवाले खेट—स्वामी प्रजापतिसे कहा—"अरे, समस्त दोषोंका घर, रणोमे धुरन्धर अपने कुलरूपी आकाशके लिए भास्करके समान, वह तुरंगकन्धर—अश्वग्रीव खेचरों सहित चढ़ा आ रहा है और रणक्षेत्रमे भीरुजनोंके लिए भयंकर वह ५ महीधर (पर्वत) पर स्थित है। अतः अब इस समय क्या उचित है? (मेरी दृष्टि से तो) शत्रुसे अवश्य ही जूझना चाहिए।"

चरका कथन सुनकर राजा प्रजापति कम्पित नही हुआ, बल्कि तुरन्त ही विचार कर वह अपने मनका तामस-भाव छोड़कर अनेक वन्दीजनों द्वारा संस्तुत त्रिपृष्ठ, सीरि—बलदेव तथा अन्य खेचरों और समुद्रके समान गम्भीर एवं धीर सामन्तवर्ग सहित, अपने प्रतापसे सूर्यको भी तिरस्कृत १० कर देनेवाला वह पोदनेश—प्रजापति गूढ़-मन्दिर (मन्त्रणा-कक्ष) मे प्रवेश करते ही बोला—

घत्ता—"हमारी चपलाक्षी जो (यह) लक्ष्मी है, वह सब आप लोगोंके संसर्गसे ही (जुटी हुई) है, क्या बिना उत्तम-ऋतुके धवा आदि श्रेष्ठ वृक्ष चिरकाल तक पुष्पश्री धारण कर सकते है? ॥८१॥

१२

राजा प्रजापतिकी अपने सामन्त-वर्गसे युद्ध-विषयक गूढ़ मन्त्रणा

मलया

"अब आपलोगोंकी मति हमसे रति करती हुई हमारी ओर माताकी तरह देखेगी तथा वधूके समान हमारी रक्षा करेगी।

(क्योकि) गुणहीन व्यक्ति निश्चय ही गुणीजनोके संसर्गसे न्यायमार्गमे गुणी बन जाता है। पाटल-पुष्पोमें व्याप्त जल सुवासित होकर खपरेको भी सुगन्धि-गुणके आश्रित कर देता है। गुणीजनोके संसर्गसे अकुशल व्यक्ति भी कुशल बन जाता है और सज्जनोके विधि-कार्यो (के ५

5 अकुसल-कुसल कज्ज-विहि सयलहँ अविचिंतिउ विइरयइ सुवणखलहँ।
बलवंतउ हयगीउ समुट्ठिउ चक्कपाणि वइरियण-अणिट्ठिउ।
सहुँ अवरहिँ खयरेसहुँ अक्खहु किं करणिउ महु होइ मरक्खहु।
इय भणि विरमिउ महिवइ² जावेहिँ भणइ महामइ सुस्सुउ तावेहिँ।
अम्हइँ तुज्झु पसाएँ पत्तइँ वोह-विसुद्धि भाउ सयवत्तइँ।
10 जल जायाइव तेय-सणाहहो धरणीयले जिह वासर णाहहो।
जडुवि पडुत्तु लहइ विवुहयणहँ संसग्गे³ आणादिय सुवणहँ।
जललउ करवालगउ करिंदहँ किं ण दलइ सिरु दलिय गिरिंदहँ।

घत्ता—कयहरिसहो पुरिसहो साभरणु परमत्थेँ सुउ णावरु।
तासु वि पुणु णिव सुणु फलु चिणउ तह उवसमु पणयामरु॥ ८२॥

१३

मलया

उवसम विणयहिँ पयणिय पणयहिँ।
भूसिउ पुरिसो विगयामरिसो।
सइँ भत्तिइँ साहुँहिँ पणविज्जइ करभालयले ठवेवि थुणिज्जइ।
साहु समागमु मणुयहँ पयणइँ कय अणुराउ महामइ पभणइँ।
5 अण्णुणयालउ जणु पडिवज्जइ किंकरत्तु महिवइहे न लज्जइ।
इय जाणेवि णयभूसिउ सुच्चइ उवसमु सहुँ विणएण ण मुच्चइ।
वेयवंत हरिणइँ वणे वणयर लहु णासहि सयमेव गुणायर।
कासु ण गुणु भणु कज्ज-पसाहणु करइ महीयले पुरिस-पसाहणु।
कढिणहो कोमलु कहिउ सुहावहु णयवंतहि णिय-मणि परिभावहु।
10 दिणयरेण महिहरु ताविज्जइ कुमुयायर सुहिणाणी विज्जइ।
पियवयणहो वसियरणु ण भल्लउ अत्थि अवरु माणुसहँ रसुल्लउ।
जुत्तउ महुरु लवंतउ दुल्लहु परपुट्ठो वि हवइ जणवल्लहु।

घत्ता—सयलत्थहँ सत्थहँ साहणउँ हियथंगमु णिरविक्खउ।
रिउ¹ वारणुँ² कारणु जयसिरिहे सामहु अण्णु ण णोक्खउ॥८३॥

---

२. D. J. V. °ही° । ३. D. J. V. ससग्गि ।
१३. १. J. V. रिव । २. V. वारण्णु ।

प्रभाव) से समस्त खलजन भी अचिन्तनीय (उत्तम) कार्य करने लगते हैं। वैरी-जनोंके लिए अनिष्टकारी तथा बलवान्, चक्रपाणि—हयग्रीव अन्य खेचरेशोंके साथ (युद्धके लिए) सन्नद्ध हो चुका है, अतः (अब) आप बताइए कि मुझे क्या करणीय है ? (हे मन्त्रियो, अब कुछ भी) छिपाइए मत।"

यह कहकर जब महीपति—प्रजापतिने विराम लिया, तब महामति सुश्रुत (मन्त्री इस प्रकार) बोला—"आपकी कृपासे ही हमें विशुद्ध बोधि (—ज्ञान) की प्राप्ति हुई है। जिस प्रकार पृथिवी-मण्डलपर तेजस्वी सूर्यके उदित होनेपर शतदलवाले कमल-पुष्प भी विकसित हो जाते है, उसी प्रकार मैंने जड़ होते हुए भी सज्जनोंको आनन्दित करनेवाले विवुध जनोंके संसर्गसे पटुता प्राप्त की है। जरा-सा पानी तलवारके अग्रभागमें लगकर जब वह करीन्द्रोंका भी दलन कर डालता है, तब क्या वह इन दलित-गिरीन्द्रों (विद्याधरों) के सिरोंका दलन नही कर डालेगा ?" १०

१५

घत्ता—"हर्षित चित्तवाले पुरुषका उत्तम आभरण परमार्थ है और वह परामर्श श्रुत ही हो सकता है, अन्य नही। हे नृप, सुनो, उस परमार्थ-श्रुतका फल विनय तथा उपशम (कषायोंकी मन्दता) है, जिसे देवगण भी नमस्कार करते है ॥८२॥

१३

मन्त्रिवर सुश्रुत द्वारा राजा प्रजापतिके लिए सामनीति धारण करनेकी सलाह

मलयविलसिया

उपशम एवं विनय द्वारा प्रकटित प्रेमसे भूषित पुरुष क्रोध रहित हो जाता है।

तथा मस्तकपर हाथ रखे हुए साधुओं द्वारा वह भक्ति पूर्वक नमस्कृत और संस्तुत रहता है। साधु-समागम मनुष्योंके लिए प्रसन्न करता है। महामतियोंका कहना है कि अनुराग करनेवाले महीपतिकी नीतिज्ञ-जन दासता स्वीकार करनेमे भी नही लजाते। यह समझकर नयगुणसे भूपित एवं पवित्र होकर उपशम एवं विनयगुण मत छोड़िए। जिस प्रकार वनमे वनेचर वेगवन्त हरिणोंको भी शीघ्र ही मार डालते है, उसी प्रकार बोलो, कि इस पृथिवी-मण्डल पर किस पुरुपार्थी गुणाकरका गुण स्वयं ही अपने मनोरथकी पूर्ति नहीं कर देता ? अपने मनमे यह समझ लेना चाहिए कि नीतिज्ञो द्वारा कर्कशताकी अपेक्षा कोमलताको ही सुखावह कहा गया है। सूर्य-द्वारा पृथिवीको तो सन्तप्त किया जाता है, जबकि कुमुदाकर उससे आह्लादित होकर रहता है। मनुष्योंके लिए प्रियवाणीको छोड़कर अन्य कोई दूसरा उत्तम रसार्द्र—वशीकरण नही कहा जा सकता। दुर्लभ मधुर वाणी बोलकर परपोषित होनेपर भी कोयल जन-मनोंको प्रिय होती है। ५

१०

घत्ता—सभी मनोरथोंका साधन करनेवाली, निरपेक्ष होनेपर भी हृदयमें प्रवेश करनेवाली तथा शत्रुओंको रोकनेमें कारणभूत सामनीतिसे बढ़कर अन्य कोई नीति उत्तम नही हो सकती ॥८३॥

१४

मलया

कुविय-रिऊणं पिउ चविऊणं ।
सामु रइज्जइ दव्वु समिज्जइ ।
पढमु सामु बुहयणहँ पउत्तउ णिय-मणे णिव परियाणि निरुत्तउ ।
विणु करवयं कइमिउं ण पाणिउं होइ पसण्णउं जलयर-माणिउं ।
5 खर-वयणेण कोउ वित्थरियइ कोमलेण उवसामिवि धरियइ ।
जिह पवणेण दवाणलु णीरें घण मुक्कें णिय जुइ-जियखीरें ।
जो सामेण वि उवसामिज्जइ तत्थ ण वप्प सत्थु परिलिज्जइ ।
अरियणे साम-सज्झे उप्पायहिँ किं णरेंद इयरेहि अणेयहिँ ।
परिणामेवि ण परु विकिरियहे जाइ साम-साहिउ खलु-किरियहे ।
10 सलिल समिउँ धूमावलि-भीसणु किं पुणरवि पज्जलइ हुवासणु ।
मणु न जाइ कुवियहों वि महंतहो विकिरियहे कयावि कुलवंतहो ।
जलणिहि-सलिलु ण परताविज्जइ तिण हउ लुक्कहि बुहहिं भणिज्जइ ।

घत्ता—णयवंतउ दंति उण करणहिँ जो तहिं रिउ णो[1] उपज्जइ ।
पच्छासणु भासणु सुय सयहँ किं रोयहिँ पीडिज्जइ ॥ ८४ ॥

१५

मलया

दुद्ध आम भायणे किं किउ लहु उवगच्छइ दहिभावहो असुलहु ।
वप्प कोमलेणावि परिट्ठिउ रिउ कमेण भिज्जइ उवलक्खिउ ।
किन्न सेलु मह तीरु णिवेएँ पवियारिज्जइ विरइय भेएँ ।
तेउ मिउत्तणु सहिउ सणाणणु होइ असंसउ सुह-गुण-भायणु ।
5 रहिउ सुतेल्ल दसीएण दीवउ किं न उणीवइ वड-पिड-दीवउ ।
तेण जे तत्थु सामु विरइज्जइ निच्छउ किं पिनणु मंतिज्जइ ।
इय भणि सुस्सुउ विरमिउ जावेहिँ विजउ विजय-लच्छीवइ तावेहिँ ।
आहासइ कोवारुण-लोयणु उण्णमियाणणु णय-गुण-भायणु ।
किण्ण सुओवि पढाविउ यारिसु भणइँ रहिउ संवंधेँ तारिसु ।
10 सो णय-दच्छु बुहेहि समासिउ साहिय-सत्थु सवयणु पयासिउ ।

---

१४. १. D. V. णे ।

१४

सामनीतिका प्रभाव

मलयविलसिया

किसी भी क्रोधित शत्रुको प्रिय-वाणी बोलकर उसपर साम—सान्त्वनाका उपयोग कीजिए और द्रव्यार्जन कीजिए ॥

हे नृप, प्रथम—सामनीति बुधजनोंके लिए कही गयी है, इसे आप अपने मनमे भलीभाँति समझ लीजिए। जलचरोंसे युक्त कीचड़-मिश्रित जल कनकफलके बिना निर्मल नही हो सकता। कर्कश-वाणी बोलनेसे क्रोधका विस्तार होता है, जबकि कोमल-वाणीसे वह (क्रोध) उपशम धारण करता है। ५

जिस प्रकार दावानल पवनसे बढ़ता है किन्तु मेघों द्वारा छोड़े गये जलसे वह शान्त होता है, जो सामनीति द्वारा शान्त किया जा सकता है, उसके ऊपर गुरु-शस्त्र नही छोड़ा जाता। हे नरेन्द्र, अरिजनोंको सामनीतिके उपायों द्वारा साध्य करना चाहिए अन्य उपायोसे क्या प्रयोजन? बुधजनों द्वारा ऐसा कहा गया है कि यदि क्रियाशील, दुष्टको सामनीतिसे साध लिया जाये, तो १० उसके परिणमन (विपरीत) हो जानेपर भी वह विकारयुक्त नही हो सकता। भीषण-अग्निको जलसे शान्त कर देनेपर फिर क्या वह पुनः जलनेकी चेष्टा करती है? कुलीन महापुरुष यदि क्रोधित भी हो जाये, तो भी उनका मन कभी भी विकृतिको प्राप्त नही होता। समुद्रका जल क्या फूसकी अग्निसे उष्ण किया जा सकता है?

घत्ता—जो नयवान्, इन्द्रिय-जयी तथा आत्म-संयमी है, उसका शत्रु कोई नही होता। जो १५ पथ्य-भोजन करता है अथवा जो श्रुत-सम्मत भाषण करता है, क्या वह रोगसे (पक्षमे संसार रूपी पीड़ासे) पीड़ित हो सकता है? ॥८४॥

१५

सामनीतिके प्रयोग एवं प्रभाव

मलयविलसिया

यदि दूधको कच्चे घड़ेमें रख दिया जाये, तो क्या वह सहज शीघ्र ही दही-भावको प्राप्त हो सकता है?

सम्मुख उपस्थित एवं उपलक्षित शत्रु भी अत्यन्त कोमल वचनोंसे धीरे-धीरे भेद (फोड़) लिया जा सकता है। क्या नदियोंका प्रवाह—वेग महान् पर्वतोंका भेद करके उन्हें विदीर्ण नही कर डालता? तेजस्विता भी शुभ गुणोंके भाजनस्वरूप मृदु-गुणके साथ ही सनातन (शाश्वत) रूपमे ५ रह पाती है। घर-पिण्डको प्रकाशित करनेवाला दीपक स्नेह—तेल रहित होनेपर भी क्या बत्तीके बिना बुझ नही जाता? अतः उस हयग्रीवके साथ निश्चय ही सामनीतिका व्यवहार कीजिए, किसी अन्य नीतिका व्यवहार नही।"

यह कहकर जब (मन्त्रिवर) सुश्रुतने विराम लिया तब नयगुणका भाजन तथा विजयरूपी लक्ष्मीका पति (त्रिपृष्ठका बड़ा भाई—विजय) क्रोधसे अपनी आँखे लाल करके मुँह ऊपर उठाकर १० बोला— "सम्बन्ध रहित अक्षर तो तोतेको भी नही पढ़ाये जा सकते? किन्तु विद्वानोने नय-दक्ष उसे ही कहा है, जो शास्त्रकी बातको ही अपने कथन द्वारा सार्थक रूपमें प्रकाशित करे।

घत्ता—परितप्पइ कुप्पइ जो पुरिसु णिरणिय-हियइ सकारणु।
सो गुणहरु मणहरु उवसमइ अणुणएण मय-धारणु ॥ ८५॥

१६

मलया

अणु [1]अंतरुसहो उवसमु पुरिसहो।
[2]किर एकेणं वप्प णएणं।
अइकुवियहो हिउ-पिउ-वयणुल्लिउ कोव-णिमित्तु हवइ पशिल्लिउ।
सिहि-संतत्त-तुप्प-णिवडंतउ णीरु जाइ जलणत्तु तुरंतउ।
5 अहिमाणिहे पुरिसहो पिउ हासिउ अह सो होइ हियइ अणुहासिउ।
णउ पुणु तव्विवरीयहो सामें किं अणुकूलु होइ खलु सामें।
सिहि-संतत्तउ जाइ मिउत्तणु जलएँ सिंचिउ लोहु खरत्तणु।
इय रिउ पीडिउ विणयहो गच्छइ इयरहं खलु न कयावि नियच्छइ।
वेयायरहिं रिसिय णयवंतहिं सप्पुरिसहं णिमित्तु गइवंतहिं।
10 विणउ सबंधिवि धरिय कुलक्कमु पाण-हरणु पडिवक्ख-परक्कमु।
अइ तुंगो वि जणेण खमाहरु लहु लंघिज्जइ [4]फंसिय-जलहरु।
कहं ण होइ अहवा सुहकारणु णरहो खमा-परिभूइहे कारणु।

घत्ता—दुब्भेएँ तेएँ विणु रवि वि लहु अच्छवइ दिणक्खए।
तेँ ण मुवइ महमइ तेयसिरि जउ इच्छंतु सपक्खए ॥ ८६ ॥

१७

मलया

अहिउ णिसग्गउ वइरेँ लग्गउ।
ण समइ सामेँ पयणिय-कामेँ।
सो सामेँ पज्जलइ णिरारिउ वडवाणलु व जलेहिं अवारिउ।
ता गज्जइ मइमत्तु करीसरु णिल्लूरिय स-भसल णलिणीसरु।
5 [2]जाण पुरउ पेक्खइ पंचाणणु परिविहुणिय-केसरु भीमाणणु।
काणणे जेण करिंदु णिहालिवि णिहणिज्जइ णहरहिं ओरालेवि।
तेण स[3]वास गुहा-मुहे पत्तउ किं सो परितज्जियइ पमत्तउ।
तुम्हहँ तणउ वयणु उल्लंघेवि किण्ण वप्प समणे णासंघिवि।

१६. १. D. अत्तरु। २. D. कीरइकेणं। ३. D. खमॅ। ४. D. फॅ। ५. D. प्रति में ते ण मुवइ मइ तेयसिरि॰ पाठ है।
१७. १. D. आ॰। २. V. ज॰। ३. J. V. सहास।

घत्ता—जो पुरुष अपने हितके निमित्तविशेपसे क्रोध करता है अथवा परिताप करता है, तब उस गुणगृह, मनोहर एवं अहंकारी पुरुषको निश्चय ही अनुनय-विनय पूर्वक शान्त किया जा सकता है ॥८५॥ १५

१६

सामनीतिके प्रयोग एवं प्रभाव

मलयविलसिया

"किन्तु जो पुरुष बिना किसी निमित्तके ही हृदयमे रुष्ट हो जाता है, उसे किस विशेष नीतिसे शान्त करना चाहिए ?

अत्यन्त क्रोधी व्यक्तिके लिए हितकारी प्रिय-वचन उलटे उसके क्रोधके निमित्त ही बनते है। अग्निसे सन्तप्त घीमे यदि पानी पड़ जाये, तो वह तुरन्त ही अग्नि बन जाता है। अभिमानी पुरुष, यदि वह हृदयसे सुकोमल है, तभी उसे प्रिय वचन प्रभावित कर सकते है, किन्तु जिसका ५ हृदय कर्कश है, उसके लिए रम्य सामनीति क्या अनुकूल पड़ सकती है ? अग्निसे तपाये जानेपर ही लोहा मृदुताको प्राप्त होता है, किन्तु जलसे सिंचित कर देनेपर वही कर्कश हो जाता है। इसी प्रकार शत्रु शत्रु द्वारा पीड़ित होकर ही नम्र बन सकता है, अन्य किसी उपायसे नही। वेदोंका आचरण करनेवाले ऋषियों, नयनीतिवन्तों एवं मतिवन्तोंने सत्पुरुषोंके निमित्त दो उपाय बताये हैं—सम्बन्धीजनों (बन्धु-बान्धवों) के प्रति विनय धारण कर कुलक्रमका निर्वाह अथवा, प्राणोंका १० अपहरण करनेवाले शत्रुके प्रति पराक्रम-प्रदर्शन। गगनचुम्बी क्षमाधर—पर्वत (पक्षमें क्षमा—शान्तिको धारण करनेवाला अथवा राजा) उन्नत (पक्षमे प्रतिष्ठित) होनेपर भी लोगों द्वारा वह सहज ही लाँघ लिया जाता है। ठीक ही है, वह क्यों न लाँघा जाये ? (कहा भी गया है—) 'पुरुषके लिए क्षमागुण, सुखका वारक तथा पराजयका कारण होता है'।

घत्ता—दुर्भेद्य तेजके विना रवि—सूर्य भी दिवसावसानके समय अस्ताचलगामी हो जाता १५ है। इसीलिए कोई भी महामति यदि अपने पक्षकी विजय चाहता है, तो वह अपनी तेजस्विताको न छोड़े ॥८६॥

१७

राजकुमार विजय सामनीतिको अनुपयोगी सिद्ध करता है

मलया

"स्वभावसे ही अहितकारी तथा शत्रुकर्मोमे लगा हुआ व्यक्ति प्रेम अथवा सामनीतिके प्रदर्शनसे शान्त नही हो सकता।

बल्कि सामनीतिसे वह उसी प्रकार प्रचण्ड हो जाता है, जिस प्रकार वडवानल अपार जल राशिसे। भ्रमर सहित श्रेष्ठ कमलिनीको छिन्न कर देनेवाला हाथी मदोन्मत्त होकर तभी गरजता है जबतक कि वह दूसरो (हाथियों) के विदीर्ण कर देनेके कारण अस्त-व्यस्त केशर (जटा) ५ तथा भयानक मुखवाले पंचानन—सिंहको अपने सम्मुख नही देखता। जो करीन्द्र सिंहके नखों द्वारा वनमे चारों ओरसे खोज-खोजकर मारा जाता हो वही प्रमत्त करीन्द्र जब सिंहके निवास-स्थान गुफा-मुखपर आ गया हो, तब क्या वह उस (सिंह) के द्वारा छोड़ दिया जाता है ? आपके वचनो (यद्यपि वे अनुल्लंघनीय है तो भी उन) का उल्लंघन कर सामनीति द्वारा उस अश्वग्रीवसे

कलहु व गंधगएण निहम्मइ महु अणुवेण तुरयगलु दुम्मइ ।
10 हउँ पुणु एयहो मुणमि परक्कमु णण्णु कोवि पायडिय परक्कमु ।
दइउ अमाणुस-भुव-वल जेण जे तुम्हहँ मउणे विहूसणु तेणजि ।
इय भणे विरमिए विजए गुणायरु इयरु वि मंति भणइ गुणसायरु ।

घत्ता—फुडु सजएँ विजएँ वज्जरिउ सयलुँ कज्जु किं पभणमि ।
अमुणिय-गइ जड-मइ देवहउँ तहवि भंति तुह णिहणमि ॥ ८७ ॥

१८

मलया

किन्न कमल मुह कहिउ पुरा तुह ।
जोइसिएणं इउ विमणेणं ।
तइं विहु करमि परिक्खणु एयहो असणु व जइ सिरिवइहे अजेयहो ।
पवियारिउ किउ कम्म-भयंकरु परिणामेँ वि ण होइ दुहंकरु ।
5 जेण-तेण किरिया-विहि मइवरु अवियारिवि ण कयावि करइ णहु ।
जेण समरि चक्कवइ जिणेव्वउ विप्फुरंत-चक्केण हणेव्वउ ।
इह सत्तहि दिवसहि वर-विज्जउ साहिज्जउ सो हरि जाणिज्जउ ।
इय कण्णीउ वयणु पडिवज्जेवि तहो असेसु संसउ परितज्जिवि ।
एत्थंतरे विहि-विविह करेविणु जलणजडीसेँ पाणि धरेविणु ।
10 पुरु-विज्जागण-साहण-वर-विहि उवएसिय तहो पयणिय-सुह-णिहि ।
जा बारह वरिसेहि ण अवरहिँ साहिज्जइ विहिणा णर पवरहिँ ।
सा सयमेव पुरउ हुव रोहिणि तहो सहसत्ति अहिय-विणिरोहिणि ।

घत्ता—जुवि-जिय-रवि अवर वि पुरओ तहो विज्जउ सयलपरिट्ठिय ।
विगय रुवहँ गरुवहँ किन्न लहु रणे पडे भड-हणणट्ठिय ॥ ८८ ॥

१९

मलया

विजया विजयहो सिद्धिं अजयहो ।
अवर पहंकरि सयल सुहंकरि ।

---

४. D. प्रति में प्रतिलिपिकर्ता के प्रमादवश या अन्य किसी कारणवश ४।१७।९ के अन्तिम चरण °डियसे ४।१७।११ के अन्तिम चरणके वि तक पाठ त्रुटित (अलिखित) है ? ५. D. °ल कज्जु ।

१८. १. J. °क° ।

१९. १. D. J. V. °द्धी ।

गठबन्धन नही किया जायेगा बल्कि मेरा अनुज (त्रिपृष्ठ) उस दुर्मति तुरयगल (अश्वग्रीव) का उसी प्रकार वध करेगा, जिस प्रकार कि गन्धहस्ति कलभको मार डालता है। मै इस (त्रिपृष्ठ)-के पराक्रमको जानता हूँ। संसारमे ऐसा प्रकट पराक्रमवाला अन्य कोई नही, जिसकी भुजाओंमे अमानुष—दैव-बल है (उसे समझकर) उस विषयमें (आपका केवल) मौन ही विभूषण होगा।" इस प्रकार कहकर जब गुणाकर विजय चुप हुआ, तब दूसरा गुणसागर-मन्त्री इस प्रकार बोला— १०-१५

घत्ता—"अपनी विजयमें स्पष्ट ही विजयने अपना समस्त कर्तव्य-कार्य कह दिया है। तो भी हे देव, भविष्यको जाननेमें असमर्थ एवं जड़बुद्धि होनेपर भी मै आपकी कुछ भ्रान्तियोको दूर करना चाहता हूँ।" ॥८७॥

१८

गुणसागर नामक मन्त्री द्वारा युद्धमें जानेके पूर्व पूर्ण-विद्या सिद्ध कर लेनेकी मन्त्रणा

मलया

"हे कमलमुख, श्रेष्ठ ज्योतिषीने क्या पहले ही आपको यह सब नही कह दिया था ? (अवश्य कही थी) तो भी मै उस अजेय विजेता, एवं अमानुषिक श्रीलक्ष्मीपति (—त्रिपृष्ठ) की परीक्षा करना चाहता हूँ। क्योंकि विचार कर लेनेके बाद किया हुआ भयंकर कार्य भी परिणाममें दुःखकर नही होता। अतः जो विवेकी है, वे बिना विचारे ऐसा कोई यद्वा-तद्वा कार्य न करें कि जिससे युद्धमे वह (त्रिपृष्ठ) उस विद्याधर चक्रपति हयग्रीव द्वारा जीत लिया ५ जाये तथा उसके स्फुरायमान चक्रके द्वारा वह मार डाला जाय। जो सात ही दिनोंमे श्रेष्ठ विद्याओंको साध लेगा वह इस पृथिवी-मण्डलपर नारायण समझा जाता है। यह अवश्य ही करणीय है"। इस प्रकार उस गुणसागर नामक मन्त्रीके कथनको सभी सभासदोने संशयरहित होकर स्वीकार किया। इसी बीचमे विविध विधियाँ सम्पन्न करके प्रभु ज्वलनजटीने हाथपर हाथ धरकर प्रचुर सुख-निधिको उत्पन्न करनेवाले विद्या-समूहके सिद्ध करनेकी उत्तम विधिका (उस १० त्रिपृष्ठ एवं विजयको) उपदेश दिया तथा जो विद्या अन्य महापुरुषोंको बारह वर्षोंमे भी विधि-पूर्वक सिद्ध न हो सकी, वह अहित-निरोधिनी रोहिणी नामक विद्या स्वयमेव सहसा ही उसके सम्मुख प्रकट हो गयी।

घत्ता—द्युतिमें रविको भी जीत लेनेवाली अन्य समस्त विद्याएँ भी उसके सम्मुख आकर उपस्थित हो गयी। युद्धमें शत्रुओंका हनन करनेकी इच्छा करनेवाले निरहंकारी महान् पुरुषोके १५ लिए तत्काल ही क्या-क्या प्राप्त नही हो जाता ॥८८॥

१९

त्रिपृष्ठ और विजयके लिए हरिवाहिनी, वेगवती आदि पाँच सौ विद्याओंकी मात्र एक ही सप्ताहमें सिद्धि

मलया

अजेय विजयके लिए भी समस्त सुखोंको प्रदान करनेवाली विजया, प्रभंकरी आदि सिद्धियाँ प्राप्त हो गयी।

इनके साथ ही समरांगणमें दुर्जेय शत्रुजनोंकी भुजाओंको तोड़ देनेवाली हरिवाहिनी, वेगवती आदि समस्त विशुद्ध एवं सुप्रसिद्ध पाँच सौ विद्याएँ सात दिनमें ही उस (विजय) के वशीभूत हो गयीं। इस प्रकार विद्याओसे अलंकृत विजयके अनुज उस त्रिपृष्ठको राजा प्रजापति ५ एवं खेचरराज ज्वलनजटीने अपनी तलवारोंसे क्रूर-करीन्द्रोंका विदारण करनेमे समर्थ समस्त विद्याधरों एवं राजाओंमे शिरोमणि घोषित कर दिया।

इसी बीचमे संग्राममे शत्रुके हननके लिए जानेकी इच्छावाले, उस त्रिपृष्ठकी श्री-समृद्धिकी कामनासे तोरण एवं ध्वजा-पताका आदिसे नगरको सजाया गया। अपने उस नगरसे निकलते समय राजाओं एवं विद्याधरोंके दानसे आनन्दित रत्नाभरणोसे अलंकृत, अपनी समस्त सेनासे १० परिचरित, मंगलकारी शुभ-शकुनोंसे समृद्ध, निःशेप अवनितलपर प्रसिद्ध उस त्रिपृष्ठपर, भवनोंके आगे खड़ी होकर अपनी भृकुटियोसे देवोंको भी स्तम्भित कर देनेवाली सीमन्तिनियाँ चारों ओरसे अपने मदमाते नयनोंके साथ-साथ लावाजलियाँ फेंकने लगी।

घत्ता—ऐसा प्रतीत होता था, मानो उन लावोके रूपमें इन दुर्जेय त्रिपृष्ठकी अमलकीर्ति ही विस्तारी जा रही हो। अथवा मानो समरके मुखमें आये हुए शत्रुके तेजका ही निवारण किया १५ जा रहा हो ॥८९॥

२०

त्रिपृष्ठका सदल-बल युद्ध-भूमिकी ओर प्रयाण

मलया

हाथियोंपर लगी हुई गगनमें फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे केवल निर्मल आकाश ही नहीं ढक गया था।

अपितु इस संसारमें अन्य दूसरे महाराजाओके लिए दुस्सह, चक्रवर्तीके कुलरूपी आकाशका समस्त तेज भी ढक गया था। हीसते हुए एवं समुद्र-तरंगोको भी जीत लेनेवाली उत्तुंग तुरगोंकी चपलतासे उन (घोड़ों) के तीव्र खुरोंसे आहत होकर उड़नेवाली धूलिसे मात्र गगन ही मलिन ५ नही हुआ अपितु शत्रुका यशरूपी शरीर भी मलिन हो गया। सेनाके पद-भारसे पीड़ित होकर मात्र धरणी ही चलायमान न हुई अपितु पवनाहत होकर हरिके हृदयसे निर्मल लक्ष्मी भी चलायमान होकर भाग गयी। प्रतिपक्षी—हाथियोंके मनके दर्पका निवारण करनेमे समर्थ, मद-जलस्रावी हाथी पीलवानोके वशीभूत होकर ही निकले, मानो प्रलय-कालमे महान् दिग्गज ही मिल बैठे हों। तीक्ष्ण खुरोंसे पृथिवीको क्षत करनेवाले, मनोहर स्कन्धोसे युक्त फेनसे भरे हुए मुखवाले तथा तुंग १० शरीरवाले, घोड़े सवारों सहित चले। विविध आयुधोंसे परिपूर्ण, फेरोसे रहित उत्तम घोड़े जुते हुए रथ भी चले। अपने मनमे इच्छित सुन्दर वाहनपर चढ़कर वह त्रिपृष्ठ भी शीघ्र ही रणके भारका निर्वहन करने हेतु चला।

घत्ता—दूसरेकी पृथिवीका अपहरण करनेवाले योग्य वेश-भूषा युक्त अन्य महाराजा भी सूर्य-किरणोंके तापका हरण करनेवाले श्वेत-छत्रोको लगाकर अपने-अपने दाहिने हाथोमे तलवार १५ लेकर उस त्रिपृष्ठके पीछे-पीछे चले ॥९०॥

२१

विद्याधर तथा नर-सेनाओंका युद्ध-हेतु प्रयाण

मलया

रज, सेनाकी धूलिके भयसे भूतलको छोड़कर नभस्तलमें चली गयी और वहाँ जाकर उसने व्याकुल होकर विकसितवदना विद्याधर-सेनाको विधूलित कर दिया।

परस्परमें एक दूसरेको देखनेमें प्रवृत्त वे सभी शूरवीर नर अपने-अपने हृदयोंमें आश्चर्य-चकित थे। पोदनपुर-नरेशकी सेना (विद्याधरोंको देखने हेतु) अपना मुख ऊँचा कर तथा विद्याधरोंकी सेना (पोदनपुरकी सेनाको देखने हेतु) अधोमुख किये हुई चल रही थी। खेचराधिपने ५ प्रवर-विमानमे चढ़कर तथा आकाश-मार्गमें जाते हुए देखा कि बल एवं सौन्दर्यमें अपने समान तथा जाति, बल एवं द्युतिमें कमलोंको भी जीत लेनेवाले गाम्भीर्यादि समस्त गुणोंकी सीमा-स्वरूप, वज्ररेखाके समान (तेजस्वी), तथा अति सौम्य एवं अतिभीम, अपने दोनों ही (विजय एवं त्रिपृष्ठ) पुत्रोंके आगे-आगे प्रजापति-नरेश चल रहे थे, ऐसा प्रतीत होता था मानो नय एवं पराक्रमके आगे महान् प्रशम (शान्ति एवं कषायोंका अनुद्रेक) ही चल रहा हो। १०

अपनी-अपनी कामिनियोंके साथ विद्याधरों तथा विकसित मुखवाले शत्रु विद्याधरोंने एक ऊँट देखा। (ठीक है आप ही) कहिए कि कान्ति-विमुख होनेपर भी कौतूहलकारी वस्तु क्या अपूर्व सुखकारी नहीं होती? नूपुरोंसे जटिल अलंकृत, एवं मनोहर शिविकापर आरूढ़ नरनाथोंके अन्तःपुरको मार्गमे चलते हुए पामरजनोंने देखा तथा तत्काल ही परस्परमें कहने लगे—

घत्ता—"अनेक कहार मिलकर परिजनोंको तथा बड़े-बड़े सुन्दर चरुवा, कलश, कड़ाही १५ लेकर शीघ्रतासे लीला-क्रीड़ा पूर्वक जा रहे है।" ॥९१॥

२२

नागरिकों द्वारा युद्धमें प्रयाण करती हुई सेना तथा राजा प्रजापतिका अभिनन्दन तथा आवश्यक वस्तुओंका भेंट-स्वरूप दान

मलया

करीशको देखकर तथा अत्यन्त भयभीत होकर अतिचपल अंगवाले तुरंग तत्काल ही भागे।

वसुनन्दा नामक खड्ग से विभूषित हाथोंवाले महाअभिमानी उद्भट भट नृपतिके घोड़ेके आगे-आगे दौड़ रहे थे। शीघ्रतामे वे लता-प्रतानोमे गुल्मोंको भी लाँघते जाते थे। मार्गमे अत्यन्त वेग पूर्वक दौड़ते हुए प्रजापति नामक उस धरणीधरसे 'स्वामिन् रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए', इस प्रकार कहती हुई तथा सिर झुकाकर प्रणाम करती हुई महिलाएँ भेंटस्वरूप प्रदान करने हेतु ५ गोरसको ढो-ढोकर ला रही थी। पामरजन बारम्बार उसे देख रहे थे (और कह रहे थे) कि हमारे स्वामीके शत्रु—नगरका घिराव करनेवाले ये सब मनोहर भट हैं, यह घण्टोंके रवसे मुखरित गजोकी घटा है। अपनी चपल-गतिसे आश्चर्यचकित करनेवाले ये उत्तम घोड़े है। ये क्रमेलक (ऊँट) है और ये कामुकजनोंके मनको उल्लसित करनेवाली विलासिनियाँ है। अनेक राजाओंसे वेष्ठित तथा अपने प्रतीन्द्र (नारायण) पुत्र (त्रिपृष्ठ) सहित सिंहके समान यह राजा प्रजापति १० है। इस प्रकार कहते हुए जनपदके लोग उनका आदर कर रहे थे तथा आश्चर्यचकित होकर कटक (सेना) की श्री-शोभाका निरीक्षण कर रहे थे।

घत्ता—णिज्झर-जल-पविमल-कण धरणु करि भग्गागरु वासिउ।
गिरिमासउ हयरुउ करइ सुहु सिण्णहो मंद गुणासिउ ॥९२॥

२३

मलया

गयवर दंतइँ हरिणइँ कंतइँ।
अडवि सचित्त हो दिंति वयंत हो।
घण-थण सवरिहिँ रूउ णियंतउ गिरि-तीरिणि-कूलइँ विदलंतउ।
तरुवर-सघण-वणइँ चूरंतउ सरवर-जलु कद्दमु विरयंतउ।
5 रह-रहंग-रावहिँ पूरंतउ जणवय-सुइ-विवरइँ भिंदंतउ।
रेणुहिँ गयणंगणु छायंतउ वर-दुरयहिँ घण-सिरि दरिसंतउ।
तरल-तुरंगहिँ महि लंघंतउ पउराउह-दित्तिए दिप्पंतउ।
इय णिय-पहुवलु वित्थारंतउ अरियण-मण-भउ पइसारंतउ।
हरि परिमियहिँ पयाणिहिँ पढमउ णिम्महियाहियमाणस-गुणमउ।
10 पडि पियणाठिय साणु-पएसए वहु विह सेवय-जण-कय-वासए।
विउल-रहावत्तायले केसउ संपत्तउ णं सामरु वासउ।
वहु जल-तिण-तरु-राइय-धरणिहे सेणावइ-वयणेँ सुह-करिणिहे।

घत्ता—पह-सम-हउ गय-भउ हरिहे वलु तडिणि-तीरि-आवासिउ।
गय-गामिहे सामिहे[2] समइं किंकरयणु आवासिउ ॥ ९३ ॥

२४

मलया

पड-मंडविया तक्खणे रइया।
गुडरउब्भिय अरियण खुब्भिय।
वणि-यणेहिँ वित्थारिउ आवणु णाणावत्थु-चएण सुहावणु।
णिय णिय घरे चिन्हइँ णिब्भिच्चहिँ पुरउ गएहिँ समुब्भिय भिच्चिहिँ।
5 उत्तारिवि गुड गरुव समुहवड साउह चामर सारिस धयवड।
कय जल-गाह करडि करिवालहिँ वणरुक्खेसु णिवद्ध सुभालेहिँ।
गय-परिपाण-खलिण-परिभारइँ लुलेवि पीय सलिलइँ मणहारइँ।
सम-जल-लव-पूरिय सयलंगइँ वीसमियइँ वद्धाइँ तुरंगइँ।

---

२३. १. D. रेणुहिं गयणंगणु° । २. D. प्रतिमे "सामिहे तहिं समइँ...." पाठ मिलता है।
२४. १. D. वि° । २. D. J. V. °लि° ।

घत्ता—निर्झर-जलके निर्मल-कण विन्दुओंको धारण करनेवाली, हाथियों द्वारा मग्न अगुरु वृक्षोंसे सुवासित तथा पर्वतोंके आश्रयमें वहनेवाली मन्द गुणाश्रित वायु उस राजा प्रजापतिकी सेनाको सुख प्रदान कर रही थी ॥९२॥ १५

२३

त्रिपृष्ठ अपनी सेनाके साथ रथावर्त शैल पर पहुँचता है

मलया

उत्तम गजोंके दन्तों एवं हरिणोंसे कान्त वह अटवी प्रस्थान करती हुई उस उत्साही सेनाको (सुख) प्रदान कर रही थी।

पीनस्तनी शवरियोंके रूपको निहारती हुई, पर्वत तथा नदियोंके किनारोंको विदलित करती हुई, तरुवरोंके सघन वनको चूर-चूर करती हुई, सरोवरोंके जलोंको कीचड़-युक्त करती हुई, रथ-रथांगों (चक्रों) के शब्दोंसे (दिशाओंको) पूरती हुई, तथा जनपदोंके श्रुत-विवरों (कानों) को ५ भेदती हुई, धूलिसे गगनांगनको छाती हुई, श्रेष्ठ द्विरदों (गजोंके माध्यम) से घनश्रीको दर्शाती हुई, चपल तुरंगोंसे पृथिवीको लाँघती हुई, प्रचुर आयुधोंकी दीप्तिसे दीप्त तथा इस प्रकार अपने प्रभुके वलको विस्तारती हुई, अरिजनोंके मनमे भयको फैलाती हुई, गुणज्ञोमे सर्वप्रथम-विजयके साथ हरि—त्रिपृष्ठ द्वारा नियन्त्रित प्रयाणोसे शत्रुजनोंके अहंकारको चूर करती हुई वह सेना, अनेक प्रकारके सेवकजनों द्वारा सेवित प्रतिपक्षी सेनासे व्याप्त विपुल रथावर्त नामक पर्वतके एक १० सानु प्रदेशमें पहुँची। वहाँ वह केशव—(त्रिपृष्ठ) इस प्रकार पहुँचा, मानो देवों सहित इन्द्र ही आ पहुँचा हो। विपुल जल, घास, वृक्षराजि आदिसे सुखकारी उस पर्वतपर सेनापतिके आदेशसे समस्त सेना रुक गयी।

घत्ता—तथा पथके श्रमसे थकी हुई निर्भीक हरि (त्रिपृष्ठ) की उस सेनाने नदीके किनारे अपना पड़ाव डाल दिया। गजगामी स्वामीके (आनेके) साथ ही किंकरजनोंने भी वहाँ डेरा १५ डाल दिया ॥९३॥

२४

रथावर्त पर्वतके अंचलमें राजा ससैन्य विश्राम करता है

मलया

तत्काल ही पट-मण्डप खड़े कर दिये गये तथा अरिजनोंको क्षुब्ध कर देनेवाली 'गुहार' (युद्धमें प्रयाण करने हेतु) ध्वनि कर दी गयी।

(वहाँपर) वणिक्जनोंने विविध आवश्यक एवं सुहावनी वस्तुओंका एक वाजार फैला दिया। निर्भीक सेवकोंने उस सैन्य नगर स्थित लोगोंके अपने-अपने डेरोंके सम्मुख (अपने-अपने विशेष) चिह्न (डेरा पहचानने हेतु) खड़े कर दिये तथा उनके सामने गुड़ आदि भारी वस्तुओंके ५ ढेरके ढेर उतारकर, आयुध सहित चामर सदृश ध्वज-पताकाएँ लगाकर, हाथियोंके सुन्दर गण्डस्थलोंवाले वच्चोके साथ हाथियोंको भी डुवकियाँ लगवा-लगवाकर वन्यवृक्षोंसे वाँध दिया, घोड़ोंके परियाण (रक्षण) खलीन (लगाम), आदि भारोंको उतारकर (थकाव मिटाने हेतु) जमीनमे लिटवाकर एवं मनोहर (शीतल) जल पिलाकर श्रम-जल-कणों (पसीना) से पूरित

परि-दूरुज्झिय वाणासण-सँर[3] मरु-धुध-सेय-पसुत्तणरेसर ।
10 विगय जंतु कुरु करहु महीयलु पीयहिँ सम्मज्जहिँ जलु सीयलु ।
देहि कंडवडु अवणय रहवरु इत्थु णिवज्झइ सुंदरु हयवरु ।
णेहि वसहु वणि काइँ नियच्छहिँ तण-जल-कंठएँ तेलहु गच्छहिँ ।
इय मिच्चयणु ससामिहिँ वुत्तउ किंकरु होइ न अप्पाइत्तउ ।
नरवर-विंदइ पविसज्जंतेँ णिय णिवासि हरिणासइँ जंतेँ ।
15 किय पयज्जणिसुणंतहँ सव्वहँ सामंतहँ मंडलियहँ भव्वहँ ।

घत्ता—तोडेवि गलु हयगलु जइ न खउ णेमिचंद जसु पयडमि ।
जण-मण-हरु सिरिहरु परिहरिवि ता हुववह-मुहि निवडमि ॥ ९४ ॥

इय सिरि-वड्ढमाण-तित्थयर-देव-चरिए पवर-गुण-रयण-णियर-भरिए विबुह-सिरि-सुकइ-सिरिहर विरइए साहु सिरि-णेमिचंद अणुमण्णिए सेणाणिवेस-वित्थरणो णाम चउत्थो-परिछेओ समत्तो ॥ संधि ४ ॥

श्रीमज्जिनाधिप-पद-द्वयगन्धवारि-
धाराभिवन्दनपवित्रितसर्वगात्रः ।
गीर्वाणकीर्तितगुणो गुण-संग-कारी
जीयाच्चिरं चतुरधीरिह नेमिचन्द्रः ॥

३. D. रस ।

सकलांगवाले घोड़ोंको विश्राम करने हेतु बाँध दिया। वाणासण-सर—धनुषबाणको दूर ही छोड़कर १० पसीनेसे तर नरेश्वर वायु-प्रवाहमे सोने लगे। "भूमिको जीव-जन्तु रहित करो, ऊँटोंको शीतल जल पिलाकर स्नान कराओ। (यहाँ) काण्डपट (एकान्त विभागीय परदा) लगा दो, (अपने) रथको हटा लो, यहाँपर उत्तम कोटिके सुन्दर घोड़ोंको बाँधा जाये। बैलोंको लेकर (चराने हेतु) कोई जंगलमें चला जाये और कोई घास, जल, काष्ठ (इंधन) तथा तेल लाने हेतु चला जाये।" इस प्रकार स्वामियों (हाकिमों) ने भृत्यजनोंको आदेश दिये। ठीक ही कहा गया है कि सेवकोंका १५ अपने ऊपर कोई अधिकार नही होता। हरि—त्रिपृष्ठके साथ ही साथ अन्य नरेन्द्र अपने-अपने सुसज्जित आवासोंमें प्रविष्ट हुए। (उस समय) सभी भव्य सामन्तों एवं माण्डलिकोने (त्रिपृष्ठकी प्रतिज्ञा सुनकर) इस प्रकार प्रतिज्ञा की—

घत्ता—हयगल (अश्वग्रीव) का गला तोड़कर यदि उसका क्षय न कर दूँ तो मै नेमिचन्द्र-जैसे प्रकट यशका भागी न होऊँ और श्रीगृहके समान जन-मनका हरण करनेवाले श्रीधर कविको २० छोड़कर अग्निके मुखमें जा पड़ूँ ॥९४॥

चतुर्थ सन्धिकी समाप्ति

इस प्रकार प्रवर गुण-रत्न-समूहसे परिपूर्ण विबुध श्री सुकवि श्रीधर द्वारा विरचित साधु (स्वभावी) श्री नेमिचन्द्र द्वारा अनुमोदित श्री वर्धमान तीर्थंकर देवके (प्रस्तुत) चरित काव्यमें 'सेना-निवेश-विस्तार' नामक चतुर्थ परिच्छेद समाप्त हुआ ॥सन्धि ४॥

आश्रयदाताके लिए कविका आशीर्वाद

श्री मज्जिनाधिपके चरणयुगलकी गन्धोदक-धाराके अभिवन्दनसे पवित्र हुआ है समस्त गात्र जिसका, ऐसा तथा देवों द्वारा प्रशंसित गुणवाला, एवं गुणीजनोंकी संगति करनेवाला वह चतुर बुद्धि नेमिचन्द्र (कवि श्रीधरका आश्रयदाता) इस लोकमे चिरकाल तक जीवित रहे।

संधि ५

१

एक्कहिं दिणे केसरि-णिद्दलणु आइवि हयगल दूवें।
पणवेवि सहंतरि विण्णविउ पणयसिरेण सरूवें ॥

दुवई

तुह णायरु[1] एहु धीरत्तणु पयडइ मणहे[2] उण्णइ।
5 जलहि-जलहो महत्तु आहासइ किण्ण तरंग संनइँ ॥

आणंदु जणइँ गुण-गण-घणाहँ केवलु णिसुणंतहँ बुहयणाहँ।
अवलोयंतहँ मणहारि देहु दुल्लहु पइँ लद्धउ जुअलु एहु।
तुह णिरुवम-वयणहिं कोमलेहिँ विमलयर सुहारस[3] [4]सीयलेहिँ।
विहा विय णरु कड्ढिणु वि करेहिँ चंदहो चंद मणि व सुहयरेहिँ।
10 गुण-णियर णिरउ चक्कवइ जेण तुह उअरि करइ सो णेहु तेण।
जुत्तउ तुम्हहँ दोहिमि जणाहँ संधाणु करणु सपणय मणाहँ।
पवियारि कज्ज विरइयइ जं जे विहडइ ण कयावि णिरुत्त तं जे।
सामिउ-सेवउ-माया-कलत्तु बंधउ-जणेरु-गुरु-मित्तु[6]-पुत्तु।
भायउ-पित्तिउ[7]यँण णय-पवीण [5]रसवहि महामइ जुअ-अहीण।
15 चिरु तेण सयंपह-सुंदरेण मंगिय चक्कालंकिय करेण।

घत्ता—एवहिँ पुणु णिच्छउ इउ वयणु तुह कण्णभरेँ णिवडिउ।
जाणंतु पुरा यहु मणु करइ को अविणउ णेहेँ जडिउ ॥९५॥

२

दुवई

अवरुवि चक्कवट्टिणा जंपिउ साकुल कमण बंधुना।
अमुणंतेण पडि गाहिय मज्झु परोक्ख बंधुणा ॥

---

१. १. J. V. णायारु। २. J. V. °हे। ३-४. D. सुहारसी सयलेहिं। ५. D. दूजी प्रतिमें यह पूरा चरण अलिखित ही है। ६. D. J. V. मेत्तु। ७. V. पित्तियउण। ८. D. तू।

सन्धि ५

१

(विद्याधर-चक्रवर्ती) हयग्रीवका दूत सन्धि-प्रस्ताव लेकर त्रिपृष्ठके पास आता है

अन्य किसी एक दिन पंचानन—सिंहका निर्दलन करनेवाले उस त्रिपृष्ठकी सभामे हयगल—अश्वग्रीवके एक सुन्दर दूतने आकर प्रणाम कर और प्रणत सिर होकर (इस प्रकार) निवेदन किया ।

दुवई

"हे नागर, आपकी धैर्यशीलता आपके समुन्नत मनको प्रकट कर रही है । समुद्रकी तरंग-पंक्ति, क्या उसके जलकी अति-गम्भीरताको नही बतला देती ?" ५

"बुधजनों द्वारा आपके गम्भीर-गुण-समूहका (परोक्ष) श्रवण मात्र भी हमारे लिए आनन्दका जनक रहा है और (अब तो साक्षात् ही) आपकी देहका दर्शन हमारे मनका अपहरण कर रहा है । यथार्थतः आपने ये दोनों ही (—गम्भीर गुण-समूह एवं मनोहारी देह)—दुर्लभ (वस्तुएँ) प्राप्त की है । आपके निरुपम, कोमल, निर्मलतर सुधारसके समान शीतल एवं वचनोंसे कठोर पुरुष भी उसी प्रकार विद्रावित हो जाता है, जिस प्रकार चन्द्रमाकी सुखकारी किरणोंसे चन्द्रकान्त मणि । इन्ही कारणोंसे गुण-समूहका धारक वह चक्रवर्ती हयग्रीव आपके ऊपर स्नेह करता है अतः आप दोनों प्रणय मनवाले जनोंके लिए यही युक्तिसंगत होगा कि (परस्परमे) सन्धि कर ले । क्योंकि ऐसा कहा गया है कि गम्भीर-विचारके बाद किया गया जो भी कार्य है, वह कभी भी बिगड़ता नहीं । नय-नीति-प्रवीण महान् एवं महामतिवाले स्वामी, सेवक, माता, कलत्र, बन्धु-बान्धव, पिता, गुरु, मित्र, पुत्र, भाई, चाचा आदि कभी रूसते नही हैं । चक्रसे अलंकृत हस्तवाले उस सुन्दर हयग्रीवने चिरकालसे स्वयंप्रभाको ही तो माँगा था— १० १५

घत्ता—किन्तु यह ठीक है कि (चक्रवर्ती हयग्रीवकी) उक्त माँग निश्चय ही आपके कानोंमें अभी-अभी ही सुनाई दी होगी । यदि प्रभु (हयग्रीव) पहले ही इस बातको जानते (कि आप उसे चाहते हैं) तो वे आपके मनके अनुसार ही करते । स्नेह-विजडित होकर कोई अपने स्नेही व्यक्तिकी भला अविनय करेगा ?" ॥९५॥ २०

२

(हयग्रीवका) दूत त्रिपृष्ठको हयग्रीवके पराक्रम तथा त्रिपृष्ठके प्रति अतीतकी परोक्ष सहायताओंका स्मरण दिलाता है

दुवई

"अपने कुल रूपी कमलके लिए बन्धुके समान उस चक्रवर्ती (हयग्रीव) ने यह भी कहा है कि परोक्ष-बन्धु (त्रिपृष्ठ) ने मेरी परिस्थितिका विचार किये विना ही उस स्वयंप्रभाके साथ पाणिग्रहण कर लिया है ।

को एत्थु दोसु तहो[1] इय वियप्पु विरमेविणु जो परिहरइ दप्पु ।
पणवंतिहिँ सो वि णिय-जीवियव्वु ण गणइ कयावि चक्कवइ भव्वु ।
5 सो सुर-णर-खेयर-मण-पियाइँ आयइँ कंताए समप्पियाइँ ।
किं मण संचिंतिउ देइ णण्णु चक्काहिउ हय-कंधरु पसण्णु ।
किं णत्थि ण तहो सुमणोरमाउ णारिउ सुरपिय-समरइ-खमाउ ।
परिसहइ अइक्कमु[2] माणु तासु थोउवि पयडिय दूसह-पयासु ।
अणुणीय चक्कवइ जं मणुज्जँ[3] अणुहुंजहि सुहु तुहुँ वप्प सज्जँ ।
10 तं कह भणु होइ सयंपहाहे चललोयणाहे सुंदरपहाहे ।
जो णिज्जिय करणु सयणरासु[4] परिभूइ परहो ण हवेइ तासु ।
जीविउ सलग्घु वुहयणहँ तं जे मगुवहँ अवजस परिहरिउ जं जे ।

घत्ता—सुणि तुह विवाहु दुज्जय खयर समरंगणे अणिवारिय ।
उट्ठिय दट्ठाहर तुह हणण सइं पहुणा विणिवारिय ॥९६॥

३

दुवई

सं पेसिवि समंतियणु मइसिहुँ[1] अप्पहे तहो सयंपहा ।
णेह-णिमित्तु अण्ण णारीयणे णिप्पिहु सो सुहावहा ॥

इय भणेवि वयणु तुन्हीकरेवि हयगलहो दूउ ठिउ ओसरेवि ।
एत्थंतरे वलु णय-हियय-वाणि वाहरइ सयल[2]-गुण-रयण-खाणि ।
5 अहो एरिसु वयणु न एत्थु णण्णु वज्जरइ कोवि सुहयरु पसण्णु ।
सप्पुरिसहँ वल्लहु णायवंतु हयगलु मुएवि को वुद्धिवंतु ।
तारिसु[3] विणु जाणइँ वप्प जाणि भो इयरु कोवि सुव सयल णाणि ।
जो वरइ कण्ण वरु भुवणे कोवि किं कहेवि ताहे वरु सोवि होइ ।
इय दइउ हेउ मण्णियइँ णण्णु लंघइ ण कोवि तं णरु समण्णु ।
10 इय जुत्ति-हीणु तुह पहु करंतु किं पइँ ण णिवारिउ अणइँ जंतु ।
अहवा वुहो वि मण्णइँ णिरुत्तु णय-रहिउ असंतु वि पहु अजुत्तु ।
मणहारि वत्थु जायइ ण कासु पुव्वज्जिय वर पुण्णेँ णरासु ।
किं वलिणा णिब्भच्छियइ सोवि मण्णइ न सुवणु विहिएह कोवि ।

---

२. १. D. हु । २. D. अक्कमु । ३-४. D. °ज्जु । ५. D. सय° ।
३. १. D. इं । २. D. सय । ३. D. तासु वि जाणइं° ।

इस प्रकारके विकल्पमे विरमकर कभी, जो दर्पका परित्याग किये हुए है, उसका इस स्थितिमे दोष ही क्या ? वह भव्य चक्रवर्ती तो, जो उसे प्रणाम करते हैं, उनके लिए (समय आनेपर) अपने प्राणोंको भी कुछ नही समझता (अर्थात् अपने लिए प्रणाम करनेवालोंके लिए वह अपने प्राण भी न्यौछावर कर सकता है)। ५

जब उस हयकन्धर चक्रवर्ती, हयग्रीवने प्रसन्न मनसे देवों, मनुष्यों एवं खेचरोंके मनको प्रिय लगनेवाली अनेक कान्ताओंको पूर्वमें भी समर्पित (प्रदान) कर दिया, तब क्या आपकी मन-चिन्तित स्वयंप्रभाको भी वह न छोड़ देते ? क्या उनके पास अप्सराओंके समान रतिमे समर्थ सुमनोरम नारियाँ नही हैं ? फिर भी स्वाभिमान इस अतिक्रम (इच्छाके विरुद्ध कार्य) को सहन कर रहा है तथा उस दुःसह कार्यको थोड़ा भी प्रकटित न होने देनेके दुःसह प्रयासको कर रहा है। अतः उस मनोज्ञ चक्रवर्तीकी अनुनय-विनय कर उसे प्रसन्न करके तुम जिनसुखोका अनुभव करोगे, उन्हें, तुम ही कहो, कि क्या सुन्दर प्रभावाली उस स्वयंप्रभाके चंचल नेत्रोसे पा सकोगे ? जिस व्यक्तिने सदाके लिए अपनी इन्द्रियोंको जीत लिया है, उसका दूसरोंके द्वारा पराभव नही हो सकता, बुधजनोंने मनुष्यके उसी जीवनको श्लाघनीय माना है, जिसने अपयशका तिरस्कार कर दिया हो। १० १५

घत्ता—आपके विवाहको सुनकर दूसरोंके द्वारा रोके जानेमें कठिन दुर्जेय विद्याधर गण जब अधरोष्ठ दबाकर समरांगणमें आपको मारने हेतु उठ खड़े हुए थे तब हमारे प्रभु (हयग्रीव) ने स्वयं ही आकर उन्हे रोका था" ॥९६॥ २०

३

विजय हयग्रीवके दूतको डाँटता है

दुवई

"अन्य नारी जनोंमें निस्पृह रहनेवाले उस प्रभु हयग्रीवके लिए समर्पित करने हेतु तथा उसके स्नेहकी प्राप्तिके निमित्त आप अपने मन्त्रिजनोंके साथ स्वयंप्रभाको मेरे साथ भेज दीजिए इसीमें (आपकी) भलाई है।"

अश्वग्रीवका दूत इस प्रकार कहकर और चुप्पी साधकर सरककर बैठ गया। इसी बीचमें समस्त गुणरूपी रत्नोंकी खानि तथा न्याय-नीतिपूर्वक हृदयकी वाणीवाले बलदेव (विजय) ने कहा—"अरे (दूत), इस प्रकारके वचन हयग्रीव जैसे हितैषी प्रसन्न व्यक्तिको छोड़कर अन्य दूसरा कोई नही बोल सकता। सत्पुरुषोंके वल्लभ एवं चतुर हयग्रीवको छोड़कर अन्य दूसरा कौन न्याय-नीतिमें निपुण हो सकता है, तथा उसके समान दूसरा कौन ज्ञानी सुना गया है ? फिर भी हाय, वैसा जानकर हयग्रीव यह भी (लोक व्यवहार) नही जानता कि संसारमे जो कोई भी वर किसी कन्याका वरण कर लेता है तब कहो कि वही उसका वर क्यों हो जाता है ? तो, (सुनो) इसमें दैव ही प्रमुख कारण माना गया है, अन्य कोई कारण नही। कोई भी सामान्य-व्यक्ति इस नियमका उल्लंघन नही कर सकता। (फिर भी) ऐसे अन्यायपूर्ण एवं युक्तिहीन कार्यको करते हुए भी अपने स्वामीको तुमने क्यों नही रोका ? अथवा न्यायनीति रहित असन्त एवं अयुक्त (कार्य करनेवाले) प्रभुको तुम जैसे बुद्धिमान् दूत भी मान्यता दे रहे हो (यही आश्चर्यका विषय है)। पूर्वार्जित उत्तम पुण्यके प्रभावसे किस व्यक्तिको मनोहर वस्तुओंकी उपलब्धि नही हो जाती ? वह बलवान ही क्या, जो तिरस्कृत होकर डाँट-फटकार खा जाये, जो कोई सुवर्णो (युक्तियुक्त कथन) को न माने, वह दैवका मारा ही (कहा जाता) है। ५ १० १५

घत्ता—जुत्तउ अँवेक्खि संसग्गु सइँ णिक्कारणु खलु कुप्पइ।
नहि निम्मल जोन्हणिए विणु मंडलेण को विप्पइ ॥९७॥

४

दुवई

जो गच्छइ कुमग्गि मय-भाविउ णिरु अविवेय-थक्कओ।
सो खलु लहुण केण दंडिज्जइ पसु विसाण-मुक्कओ॥

पत्थण-विहि-परिगय-जीवियव्वु मागणु वि जुत्तु मग्गइ वि गव्वु।
एरिस पत्थण विहि तुरयगीउ पर मुणइँ भुवणेणावरु महीउ।
5 सुंदरयर सिरि महुँसइँ कहंतु दुज्जउ हउं-इय गव्वुव्वहंतु।
परिभवइ परइं जो हेउ-हीणु सो णरु कित्तिउ जीवइ णिहीणु।
ते णर पडिहासहिँ सज्जणाहँ संसियइ जम्मु वुहयणहिँ ताहँ।
जो जाइ ण मोहहो भए समाएँ जसु मणु ण पमाइज्जइ रमाएँ।
दप्पणु व साहु निम्मलु वहंतु वित्तंत भूइ-संगमु धरंतु।
10 भीसणु हवेवि खलु दुट्ठ-चित्तु सूलुव मसाण-भूमिहिँ णिहित्तु।
दंतिवि मय-हय-वेयण-सहाउ णिब्भउ पुक्खरि ण घिवइ सपाउ।
गय खेमु महा-मय-मत्त-चित्तु किं णियइ ण भणु तुह पहु अतित्तु।

घत्ता—णयणुब्भव विससिहि दूसहहो कारणेण विणु तम्मइँ।
को वप्प स इच्छइँ संगहइँ फणिहे फणा-मणि दुम्मइँ ॥९८॥

५

दुवई

वण-करि-करड-दलण-लीलारय-सीहहो[१] केसर छडा।
किं भणु जंबुएण परिलुप्पइ णिद्दं गयहो विछडा॥

चित्ताहिलासु जसु णाय-हीणु सो खयरुकेहे[२] पभणियइँ दीणु।
किं णहेण जाइ उण्णइ वहंतु वायस धुणंत-तणुजाय-चत्तु।
5 इय भणिवि थक्कु करि मउणु जाम णय-सहिउ अणुत्तरु विजउ ताम।
सिरिवइहे पीढ-सम्मुहुँ सरंतु वाहरइ दूउ मच्छरु धरंतु।
इय बुद्धि विमुक्कँ[३] ण चित्त तंजे अप्पहो हिउ अवगच्छइ ण जं जे।
इउ महु अच्छरिउ ण मणि मुणेइ जं वप्प परुत्तउ णउ गणेइ।

---

४. D. J. V आ°।

४. १. D. °इं।

५. १. D. सीसहोसरछडा। २. J. V. कोह। ३. D. मुक्क।

घत्ता—उपर्युक्त संसर्गको देखकर दुर्जन व्यक्ति स्वयं ही अकारण कोप करने लगता है। किन्तु आकाशमें निर्मल ज्योत्स्नाको देखकर क्या कोई उसपर मल-मूत्र फेकता है ?" ॥९७॥

४

विजय हयग्रीवके असंगत सिद्धान्तोंकी तीव्र भर्त्सना करता है

दुवई

"मदसे युक्त, अविवेकमे पड़ा हुआ जो व्यक्ति कुमार्गकी ओर जाता है, वह निश्चय ही सीगोसे रहित पशु है। अवसर आनेपर वह किसके द्वारा दण्डित नहीं किया जाता ?

जो प्रार्थना-विधिसे जीवित रहता है तथा याचनाकी युक्ति पूर्वक जो स्वाभिमान हीन होकर माँगता फिरता है, वह प्रार्थना-विधिवाला तुरगग्रीव सोचता है कि इस पृथिवी-मण्डलपर उससे बढ़कर अन्य कोई है ही नही। अपने आपको 'सुन्दरतर श्रीसे विभूषित' कहता हुआ मै 'दुर्जेय हूँ' इस प्रकारका अहंकार करता हुआ, जो अकारण ही दूसरोंका तिरस्कार करता चलता है, वह अधम (भला) कितने समय तक जीवित रहेगा ? ऐसे व्यक्ति सज्जनोंकी हँसीके पात्र ही बनते है। विद्वज्जन तो उन व्यक्तियोके जन्मकी प्रशंसा करते हैं, जो मोहके कारण मायायुक्त नही होते और जिनका मन रमणीके कारण प्रमादयुक्त नही होता। सज्जन मन तो उस दर्पणके समान है जो वृत्तता (सदाचार—दूसरे पक्षमे गोलाई) को धारण करता हुआ तथा भूति (वैभव, ऐश्वर्य, दूसरे पक्षमे भस्म) का संगम पाकर निर्मलताको धारण करता है। (इसके विपरीत) दुष्ट चित्त दुर्जन श्मशान-भूमिमे गाड़े गये शूल समान भयंकर होता है। मदके कारण वेदना-शून्य स्वभाववाला हाथी भी निश्चिन्त होकर पोखरमे अपना पाँव नही डालता। तब तुम ही कहो कि क्षेम रहित महान् मदोन्मत्त चित्तवाला तुम्हारा अतृप्त स्वामी, क्या यह सब (कर्तव्याकर्तव्य) नही जानता ?

घत्ता—बाप रे, ऐसा कौन दुर्मति होगा, जो अकारण ही नेत्रोसे निकलती हुई दुस्सह एवं दुखद विषशिखावाले भुजंगके फणिकी मणिको छीन लेनेकी इच्छा करेगा ? ॥९८॥

५

हयग्रीवका दूत त्रिपृष्ठको समझाता है

दुवई

जंगली हाथियोंके झुण्डका लीलाओमे ही दलन कर देनेके कारण बिखरी हुई सटावाले सिंहके सो जानेपर क्या जम्बुक (शृगाल) उसकी सटाको लोच लेता है ?

जिसके मनकी अभिलाषाएँ न्याय-नीति विहीन है, वह दीनहीन (अधम) विद्याधर कैसे कहा जायेगा ? ऊँचाईको धारण करनेवाले उस आकाशसे क्या जिसमे उड़कर कौवा भी अपने शरीरको कँपाता हुआ जिसे छोड़कर भाग जाता है।

इस प्रकार न्यायपूर्ण एवं निरुत्तर कर देनेवाला कथन कर जब वह विजय चुप हुआ तब श्रीपति त्रिपृष्ठके सिंहासनकी ओर खिसककर मात्सर्यधारी वह (हयग्रीवका) दूत (त्रिपृष्ठसे) बोला—"इस संसारमे जिनका चित्त [illegible] विहीन है वे अपने हितको नही पहचान सकते, इसमे मुझे कोई भी [illegible] नही है [illegible] झे तो उस समय आश्चर्य होता है, जबकि, बाप रे,

रसणावस गउ दाढाकरालु पय-पाणकरणु इच्छइ विरालु।
10 ननियइ दुम्मइ दिढ-दंड-घाउ अइ-दूसहयरु णिद्दलिय-काउ।
सोसइ कहणिय-पोरिस-सहाउ पयडइ अजुत्तु सुवणहँ वराउ।
ण कयावि जेण णारायराइ संधंतु निहालिउ रणे अराइ।

घत्ता—किं संगरे कोवि वयण सरिसु णिय विक्कमु संदरिसइ।
जिह कण्ण-भयंकरु गडयडइ तिह किं जलहरु वरिसइ ॥९९॥

६

दुवई

णिय-णारी-णिवासि जिह रण-कहवि रइज्जइ सइच्छए।
को भू-भंग-भीम-भड-भीसणु तिंह वीरमुहुं पेच्छए ॥

साहिउ असेसु जेणारि-वग्गु णिम्मल-जसेण धवलिउ धरग्गु।
रंजिउ गुणेहि वुहयणु सवंधु समरंगण भरे उड्डिउ सरे [प] वंधु।
5 गंभीरिमाइँ णिज्जिउ समुद्दु दंडिउ वलेण खलु पिसुणु खुद्दु।
तणु-तेएँ नित्तेइउ दिणिंदु णिय-बल-भरेण चप्पिउ फणिंदु।
वंदियण-रोरु दाणेण छिण्णु सयरेहिँ पर-णर-मण-मंतु-भिण्णु।
तारिसु जुत्तउ ण णिरुत्तु अण्णु मणिमय कुंडल मंडिय सुकण्णु।
तिक्खण-धारा-किरणोलि-दित्तु कंपाविय-महिहर-खयर-चित्तु।
10 जक्खहि रक्खिउ हय-वइरि-चक्कु किं ण मुणहिं तहो सहसारु चक्कु।
इय वज्जरंतु विणिवारि दूउ पभणइ पुरिसोत्तमु सइँ सरूउ।
तहो महु विसेसु विणु संगरेण ण मुणिज्जइ इय भणि मुक्कु तेण।
गउ माणवि वज्जिउ दूउ जाम तक्खणे तहो आणइँ जुत्ति ताम।

घत्ता—गंभीर-घोस रण-भेरि-हय सयलवि दिसपडिसद्दिय।
15 भय-वेविर-विग्गह गयणयर णरवर चित्त-विमद्दिय ॥१००॥

---

६. १. D. सरवंधु।

दूसरा कोई उसे समझाता है, और फिर भी वह उसे समझना नहीं चाहता। विकराल दाढ़वाला ५
विराल (—बिलाव) अपनी जिह्वाके वशीभूत होकर दुग्धपान तो करना चाहता है, किन्तु वह
दुर्मति अत्यन्त दुस्सह एवं शरीरको तोड़-मरोड़कर रख देनेवाले घनके समान डण्डेके प्रहारको
नही देखता। जिसने रणभूमिमें शत्रुकी नाराचराजि—बाणपंक्तिको जोड़ते हुए कभी भी नही
देखा, वह बेचारा विजय अपने स्वाभाविक पौरुषको क्यों (व्यर्थ ही) सुखा डालना चाहता है?
वह सुन्दर वर्णोमे अयुक्ति-संगत कथन क्यों कर रहा है? १०

घत्ता—जैसा मुखसे कहा जाता है, वैसा क्या कोई युद्धमें भी (अपना) पराक्रम दिखा सकता है? जिस प्रकार मेघ कानोंको भयंकर लगनेवाली गड़गड़ाहट करता है, क्या वैसी ही जलवर्षा भी करता है? ॥९९॥

६

हयग्रीवके पराक्रमकी चुनौती स्वीकार कर त्रिपृष्ठ अपनी सेनाको युद्धकी तैयारीका आदेश देता है

दुवई

अपने अन्तःपुरसे (बैठे-बैठे ही) जिस किसी प्रकार अपनी इच्छानुसार युद्धकी वात रचायी जा सकती है, किन्तु (महिलाके) तीक्ष्ण-भ्रू-भंगोंसे भी डर जानेवाला भट युद्ध भूमिमे शत्रु-वीरोंका सामना कैसे कर सकता है?

जिसने समस्त शत्रु-वर्गको वशमें कर लिया है, अपने निर्मल-यशसे धराग्रको धवलित कर
दिया है; बन्धु-बान्धवों सहित जिसने वुधजनोंको अपने सद्गुणोंसे रंजित कर लिया है, समरांगणमे ५
धनुष-बाण लेकर जो उड़ता रहता है, (अर्थात् वेगपूर्वक बाण-वर्षा करता है)। जिसने अपने
गाम्भीर्यादि-गुणोसे समुद्रको भी जीत लिया है, क्षुद्र चुगलखोरों एवं दुर्जनोंको जिसने वलपूर्वक
दण्डित किया है। जिसने अपने शारीरिक तेजसे दिनेन्द्रको भी निस्तेज कर डाला है। तथा अपने
बल (सेना) के भारसे जिसने फणीन्द्रको भी चाँप दिया है। वन्दीजनोंको उरु-दानसे जिसने छिन्न
कर दिया है, जिसने अपने प्रयत्नोसे शत्रुजनोंके मनके रहस्योंको भी भेद लिया है। मणिमय १०
कुण्डलोसे मण्डित कर्णवाले उस अश्वग्रीवके समान अन्य कोई दूसरा युक्तिवान् नही कहा जा
सकता।

"अपनी तीक्ष्ण खड्गधाराकी किरणावलिसे दीप्त अश्वग्रीवने पृथिवीके विद्याधरोके मनको
आतंकित कर दिया है, जो यक्ष द्वारा रक्षित है तथा जिसने वैरि-चक्रका क्षय कर डाला है।
क्या उसके सहस्र आरावाले चक्रको नही जानते?" यह कहते हुए जब (हयग्रीवका वह) दूत १५
रुक गया, तब स्वभावसे ही सुन्दर वह पुरुषोत्तम—त्रिपृष्ठ बोला—"उसका एवं मेरा विशिष्ट
पराक्रम तो युद्धके विना नही जाना जा सकता।" इस प्रकार कहकर उसने उस दूतको विदा कर
दिया। जब मान-मर्दित वह दूत चला गया, तब तत्काल ही उस त्रिपृष्ठने युक्तिपूर्वक (युद्ध हेतु)
आज्ञा दे दी।

घत्ता—गम्भीर घोषवाले रणभेरीके शब्दोंसे समस्त दिशाएँ प्रतिध्वनित हो उठी तब भयसे २०
कम्पित शरीरवाले गगनचरों एवं नरवरोंके चित्त विमर्दित हो गये ॥१००॥

७

दुवई

जलभर-नमिय-वारिहर दसा[1] संकिय मणहँ सुहयरो।
मोरहँ समर-भेरि-रउ पूरइ दिवस यणाइँ सुंदरो॥

तं सद्दु णिसुणेवि जय जयहि पभणेवि।
केण वि सुहडेण भुवण-यल-पयडेण।
5 तो लियउ करवालु महवलए करवालु।
भडु कोवि णं कालु उण्णमिय-वर-भालु।
कय-वेरि-वल-भंगु रण-हरिस-भरियंगु।
ण उमाइ सण्णाहु णवे[2]-जलय-सरिसाहु।
केणे[3] वि कुसलेण रिउ-दलण-मुसलेण।
10 सहसत्ति सेयंगे भय-मत्त-मायंगे।
सइँ घित्त गुडसारि सुर-खयर-मणहारि।
पक्खरिय वर तुरय खुर खणिय-खोणि-रय।
जोतिय तुरंगाइँ दिढ-यर-रहंगाइँ।
संदणइँ सधयाइँ साउहइँ णीहाइँ।
15 भूगयहि मणुएहिँ परिगहिय-कवएहि।
पहुवास-पंगणइँ वहु-भूरि-मग्गणइँ।
कर-कमलि केणावि णिय चित्त संभावि।
गुण-लच्छि-परिणमिउँ वर-वंस-संकमिउँ।
भंगेहि परिहरिउ णिय-सरिसु धणु धरिउ।

20 घत्ता—संगे[4]हिय-कवय भड जस-भरिय सत्थु सजोगु धरेविणु।
संठिय सम्मुहँ णिय-सामियहँ पहु-पसाउ सुमरेविणु॥१०१॥

८

दुवई

कुसुमंबर-विलेव-तवोलहिं णिय-हत्थेहिं सेवया।
सइँ निरु पुव्वमेव सम्मे[1]णिय राएँ वारियावया॥

अइ-वहल-गरुय-रंगिय-मयंग संझा-जुव-घण-संकास तुंग।
जोहहि आयड्ढिय निट्ठरंग परिणिग्गय करफंसिय-पयंग।
5 दिढ-वद्ध-चारु-कवयहिं भडेहिँ वेढिउ असंख-हय-वर-थे[2]डेहिँ।

७. १. D. सदा। २. D. °उ। ३. D. केणावि। ४ D. संगं°।
८. १. D. सम्मणिय। २. D. घ°।

७

सैन्य समुदाय अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित होकर अपने स्वामी त्रिपृष्ठके सम्मुख उपस्थित हो गये

दुवई

समरमेरीकी ध्वनि, जो कि जलके भारसे नम्र हुए मेघोंकी स्थितिसे शंकित मनवाले मयूरोंको सुन्दर लगनेवाली एवं आनन्दित करनेवाली थी, दिशाओंमे फैल गयी।

समरभेरीके उस शब्दको सुनकर जय-जयकार बोलकर भुवन तलमें प्रसिद्ध कोई सुभट तो महावलयमे भी भयंकर तलवार तौलने लगा।

वैरीके वलको भंग करनेवाले, रणके हर्षसे फूले अंगवाले, किसी भटने अपना माथा ऊँचा ५ तान दिया, मानो काल ही आ गया हो। नवीन मेघके समान आभावाले किसी (काले) भटका शरीर (हर्षसे फूल जानेके कारण) कवचमें ही नहीं समा रहा था। मुसल द्वारा रिपुका दलन करने हेतु किसी कुशल भटने सहसा ही मदोन्मत्त श्वेतांग हाथीको देवों एवं विद्याधरोंके मनको हरण करनेवाले गुडसारि—कवचसे सज्जित कर दिया। खुरोंसे भूमिरजको खोदनेवाले उत्तम घोड़ोंको पक्खर नामक कवचसे सज्जित कर दिया गया। दृढ़तर चक्रवाले रथोंको ध्वजाओंसे १० अंकित कर तथा आयुधोसे भरकर उनमे घोड़े जोत दिये गये। भूमिगत (पैदल सेनाके) मनुष्य भी कवचोसे युक्त होकर तथा विविध बाणोंको लेकर प्रभुके आवासके प्रांगणमें पहुँचे। किसी-किसीने अपना चित्त एकाग्र कर कर-कमलोमे गुण (ज्या) रूपी लक्ष्मीको नवाकर (झुकाकर) उत्तम वंस (बाँस) से बने हुए अपने समान ही नही टूटनेवाले धनुष धारण कर लिये।

घत्ता—यशस्वी भट कवचोसे सज्जित होकर तथा अपने योग्य शस्त्रोंको धारण कर प्रभुकी १५ कृपाओंका स्मरण कर अपने स्वामीके सम्मुख उपस्थित हो गये ॥१०१॥

८

राजा प्रजापति, ज्वलनजटी, अर्ककीर्ति और विजय युद्धक्षेत्रमें पहुँचनेके लिए तैयारी करते है

दुवई

राजाने सर्वप्रथम स्वयं अपने ही हाथों द्वारा आपत्तियोंके निवारक पुष्प, वस्त्र, विलेपन, ताम्बूल आदिके द्वारा सेवकोंको सम्मानित किया।

अत्यधिक गेरुसे रंगे जानेके कारण सन्ध्याकालीन मेघके समान प्रतीत होनेवाले उत्तुङ्ग हाथियोंपर सवार होकर निष्ठुर योद्धागण अपने हाथोसे सूर्यका स्पर्श करते हुए निकले। सुन्दर कवचोंको दृढ़ता पूर्वक बाँधे हुए कवचवाले असंख्य भटोसे युक्त उत्तम घोड़ो द्वारा परिवेष्टित ५

आरुहिउ पयावइ वारणिंदे सहसत्ति विहिय मंगल[3] अणंदे ।
खेयरहिँ कवय-संजुवहिँ जुत्तु आरुहेवि करीसरे समरे धुत्तु ।
असि-मुट्ठिहिं सयरु परिट्ठवंतु जलणजडि विणिग्गउ तेयवंतु ।
वित्थिण्ण-वंसि सिक्खा-समाणे गंभीर-घोसि गरुवइ सदाणे ।
10 दंसणमित्तेँ विद्दावि-सूरे आरुहेवि समरे संगाम सूरे ।
दप्पापहारे दुज्जय-करिंदि लहु अक्ककित्ति दारिय-गिरिंदि ।
दंभोलि सरिसु महु तणउँ देहु ण गणइ महु मणु सण्णाहु एहु ।
इय भणेवि समर-जय-सिरि रएण विजएण ण धित्तउ णिच्छवेण ।

घत्ता—पविमल-तणु वलयंजण-सरिसे काल मेह-मह-मयगले ।
15 आरुहिउ सहइ अवियल-ससिरे काममहे मंडिय-गले ॥१०२॥

९

दुवई

महु महि-वलउ सयलु रइकंतहो कह पोरिसु न थक्कओ ।
इय भय-वज्जिएण सण्णाहु ण णिरु हरिणा विमुक्कओ ॥

सरयंवर रुवि उरयारि-केउ विसरिस-गुण-गण-लच्छी णिकेउ ।
संठिउ हिमगिरि-सण्णिह-करिंदे णं णव-जलहरु रुप्पय-गिरिंदे ।
5 तहो परियरेवि ठिउ देवयाउ सुंदर-यर गयणंगण-गयाउ ।
णव-रवि-विंवु वरुवि-संपयाउ तहो आणए[1] वसु चलियउ सराहु ।
मह-धयवड रुंधिय-वारिवाहु
संपेसिय अवलोयणिय-णाम देवी हरिणा संजणिय काम ।
देक्खण-णिमित्तु [illegible] सावि तक्खण-णिमित्तु संपत्त धावि ।
10 भासंति तुरय-[illegible]लु सहुँ णिवेहिँ उट्ठिउ खयरिंदु विणिक्किवेहिँ ।
पुव्वहँ तुह तेएँ सयल छिन्न खयरेसराहँ विज्जा-विभिण्ण ।
णिरसिय-पक्खाइँ य ण हयराइँ संगरे गिण्हइँ णरु को वि ताइँ ।
अरि-सिण्ण-वत्त वज्जरिय तासु विरमिय विज्जाहर वइरियासु ।
णिय-कर-जुएण सिरि विक्खिरंति कुसुमंजलि सुरयण-मणु हरंति ।

15 घत्ता—गय-लंगलु मुसलु अमोहु मुहुँ देवयाइँ वलहद्द[हो] ।
दिण्णइ विजयहो विजयहो कएण णव-णीरहरु णिणद्दहो ॥१०३॥

---

३. D. °णिं° ।
९. १. D. °ह ।

अनिन्द्य वारणेन्द्रपर राजा प्रजापति मंगल-विधियों पूर्वक शीघ्र ही सवार हुआ। कवचोसे सज्जित खेचर सेनासे युक्त होकर, समरमें धूर्त्त (कुशल) वह तेजस्वी ज्वलनजटी विद्याधर भी तलवारकी मूँठ हाथमे पकड़े हुए तथा श्रेष्ठ हाथीपर सवार होकर निकला। विस्तीर्ण वंशमे शिक्षाके समान, गम्भीर घोपमे निरन्तर महान्, अपने दर्शन (आँखे दिखा देने) मात्रसे ही शूरवीरोको विद्रावित-कर देनेवाला, रणभूमिमें युद्ध करनेमे शूर, (शत्रुजनोंके—) दर्पका दलन करनेवाला, अर्ककीर्ति भी तत्काल ही गिरीन्द्रोंको विदीर्ण कर डालनेवाले दुर्जेय करीन्द्रपर सवार हो गया। 'मेरी देह तो वज्रके समान ही है अतः मै इस कवचको तुच्छ समझता हूँ।' इस प्रकार कहकर समर-जयरूपी श्रीमे रत विजयने निश्चय ही उस कवचको छुआ तक नही। १०

घत्ता—निर्मल तनुवाला वह बलदेव (—विजय) अंजनके समान काले 'कालमेघ' नामक महान् हाथीपर सवार होकर ऐसा सुशोभित हुआ, मानो कामदेवके मण्डित गलेपर शिशिर-कालीन पूर्णचन्द्र ही विराजमान हो ॥१०२॥ १५

९

त्रिपृष्ठ अपनी अवलोकिनी विद्या द्वारा शत्रु-सैन्यकी शक्तिका निरीक्षण एवं परीक्षण करता है

दुवई

"मैं समस्त महिवलयका रतिकान्त हूँ, मेरा पौरुष कभी भी नही थका।" इस प्रकार (कहकर) भय-विवर्जित उस सन्नाथ हरि—त्रिपृष्ठने कवचका सर्वथा परित्याग कर दिया (धारण ही नही किया)।

सौन्दर्यमें जो शरद्कालीन मेघके समान था, ऐसा तथा गरुड़ध्वजके समान एवं विसदृश गुण-गणरूपी लक्ष्मीका निकेत वह हरि—त्रिपृष्ठ हिमगिरिके समान अपने करीन्द्रपर सवार हो गया। वह (उस समय) ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो रौप्य गिरीन्द्र (विन्ध्याचल ?) पर नवीन जलधर ही स्थित हो। सुन्दरतर गगनांगणमे आये हुए देवगण उसे चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये। ५

नवीन सूर्यविम्वके समान रूप-सम्पदावाले उस त्रिपृष्ठकी आज्ञासे दर्पोद्धत वे (सभी भट) चले। उनके महान् गरुड़ध्वजोसे वारिवाह—मेघगति रुक गयी। × × × × ×। हरि—त्रिपृष्ठने इच्छित कार्यको पूर्ण कर देनेवाली अपनी अवलोकिनी (विद्या) नामकी देवीको शत्रु-सेनाके देखने हेतु (अर्थात् उसके प्रमाण एवं शक्तिका पता लगाने हेतु) भेजा। वह देखने हेतु दौड़कर वहाँ (शत्रु-स्थलपर) जा पहुँची तथा (सारे रहस्योंको ज्ञात कर वहाँसे) लौटकर वोली—"दुष्ट राजाओंके साथ वह खेचरेन्द्र तुरगगल (हयग्रीव जैसे ही) तैयार होकर उठनेवाला था कि उसके पूर्व ही आपके तेजके प्रभावसे उन (समस्त) शत्रु-विद्याधरोंकी विद्या छिन्न-भिन्न हो गयी। समस्त विद्याधरोके पक्ष काट लिये गये। अव युद्धमे कोई भी मनुष्य उन्हे पकड़ सकता है।" (इस प्रकार) उन विद्याधरोके वैरियों (त्रिपृष्ठ आदि) को शत्रुसेनाका वृत्तान्त सुनाकर वह (अवलोकिनी-विद्या नामकी) देवी चुप हो गयी तथा अपने दोनों हाथोसे देवोके मनको हरण करनेवाली कुसुमांजलियाँ उस त्रिपृष्ठके सिरपर विखेर दी। १० १५

घत्ता—देवोने नवीन नीरधर—मेघके समान गर्जना करनेवाले वलभद्र—विजयको उसकी विजय हेतु गदा, लांगल, मुसल एवं अमोघमुखी शक्ति प्रदान की ॥१०३॥ २०

१०

दुवई

गय-पंचयेण्णु-खग्गु कोत्थुहमणि चाउ अमोहसत्तिया ।
एयहि हुउ अजेउ विजयाणुउ गय-सव्वत्थ-वित्तिया ॥

एत्थंतरे हयगल-तणिय सेण आवंति णिहालिय रण-रसेण ।
सलिणी सेइणि मंडल-रएण णं णिय-तेएँ विजयाणुवेण ।
5 दोहिंसि वलाहँ गल गज्जियाइँ हयहिंसिय-पडहइँ वज्जियाइँ ।
भय-भरिय-भीरु वाहुडिवि जंतु धीरंतरंगु रण-मज्झि थंतु ।
इय भणि आवाहहि रण-निमित्तु तहँ कालें वीरु करि धीर चित्तु ।
खुर-घाय-जाउ रउ हयवराहँ णव-जलय-जाल सम मणहराहँ ।
दोहं वि वलाहँ हुउ पुरउ भाइ रणु वारइ निय-तेएण णाइ ।
10 इयरेयराहँ जीविय-रवाइँ णित्तासिय-हय-गय-भड़-सयाइँ ।
णिसुणेवि तं सरु हरिसिय सकाउ जोहहिँ वर-वीर-रसाणु राउ ।
भडु भडहो तुरिउ तुरयहो तुरंगु मायंगहो गउ कूरंतरंगु ।
रहु रहहो सयल वि रइ सगव्व इय अवरुप्परु अब्भिडिय सव्व ।

घत्ता—तिक्खण-वाणासण-मुक्क-सर दूरट्ठियह विसुहडहँ ।
15 ट्ठिय देहि ण महियले गुणरहिय कोवइद्ध जुव पयडहँ ॥१०४॥

११

दुवई

अवरुप्परु हणंति सदेविणु सुहडइँ सुहड सुंदरा ।
णिय-सामिय-पसाय-निक्खय-रय धणु रव-भरिय-कंदरा ॥

छिण्णिवि जंघ-जुवले परेणं णिवडिउ ण सूरु भडु असिवरेण ।
ठिउ अप्प-सत्तु वर-वंस-जाउ अवलंबिय संठिउ चारु चाउ ।
5 आयड्ढिवि धणु फणिवइ-समाणु घण-मुट्ठि-मुक्कु जोहेण वाणु ।
भिंदेवि कवउ सुहडहो णिरुत्तु कि भणु न पयासइ सुप्पहुत्तु ।
गयवालु ण मुह-वडु विवइ जासु गय मत्त-मयंगहो सत्ति तासु ।
पडिणय जोहें सो णिय-सरेहिं विणिहउ पूरिय गयणोवरेहिं ।
पडिगय-मय-पवण कएण भीसु सयरेण रुसंतु महा-करीसु ।
10 मुह-वडु फाडेवि पलंव-सुंडु करिवालु लंवि णिवडिउ पयंडु ।
णरणाहहँ सिय छत्तइँ वरेहिं णिय-णामक्खर-अंकिय-सरेहिं ।
सहसा मुणंति संगरे सकोह सिक्खाविसेस वरिसंति जोह ।

---

१०. १ D J V. कोच्छुह । २ D °ल । ३. J. V. °ख । ४ D. मायगउ कूरं तरंगु ।
११. १ D °रिं ।

१०

त्रिपृष्ठ और हयग्रीवकी सेनाओंका युद्ध आरम्भ

दुवई

गदा, पांचजन्य, खड्ग, कौस्तुभमणि, चाप (—धनुष) एवं सभी प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त करानेमें प्रसिद्ध अमोघ शक्तिसे विजयका छोटा भाई त्रिपृष्ठ अजेय हो गया।

इसी बीचमे, रणके रसमें रँगे हुए त्रिपृष्ठने हयगलकी, मेदिनी-मण्डलकी रजसे मलिन सेनाको आते हुए इस प्रकार देखा मानो वह अपने (त्रिपृष्ठके) तेजसे ही मलिन हो गयी हो। दोनों ओरकी सेनाओंकी गल-गर्जना होने लगी, घोड़े हीसने लगे, पटह (नगाड़े) बजने लगे। ५ 'भयभीत एवं डरपोक ही (रणभूमिके) बाहर भागता है, किन्तु जो धीर-वीर होता है, वह रणमे शत्रुका सामना करता है।' इस प्रकार कहकर धीर-चित्त वीर (त्रिपृष्ठ) ने उसी समय रणके निमित्त अपने योद्धाओंका आह्वान किया। मनोहर उत्तम घोड़ोके खुरोके घातसे नवीन मेघजालके समान धूलि उड़कर दोनों ओरकी सेनाओके आगे इस प्रकार सुशोभित हुई, मानो वह त्रिपृष्ठके तेजका प्रभाव ही हो, जो उस युद्धको रोकनेके लिए (बीचमे) आ गया हो। दोनों पक्षोके होने- १० वाले ज्याके शब्दोंने घोड़ों, हाथियों और अनेक भटोंको त्रस्त कर दिया। (ज्याके) उस शब्दको सुनकर उत्तम वीर-रसके अनुरागसे भरे योद्धाओंने रोमांचित-काय होकर स्वयं ही हर्ष-ध्वनि की। तुरन्त ही भट भटोंसे, घोड़े घोड़ोंसे, क्रूर अंतरंग वाले हाथी हाथियोंसे तथा रथ रथोसे, इस प्रकार सभी दर्प युक्त होकर परस्परमे एक दूसरेसे आ भिड़े।

घत्ता—बाणासनोसे छोड़े गये तीक्ष्ण बाण दूरस्थित सुभटोंके शरीरोंपर न ठहर सके। १५ ठीक ही है, जो गुण (ज्ञानादिक, पक्षान्तरमें धनुषकी डोरी) को छोड़ देता है, ऐसा कोई भी क्या पृथिवीमें प्रतिष्ठा (सम्मान, पक्षान्तरमे ठहरना) को पा सकता है ॥१०४॥

११

दोनों सेनाओंका घमासान युद्ध—वन्दीजनोंने मृतक नरनाथोंकी सूची तैयार करने हेतु उनके कुल और नामोंका पता लगाना प्रारम्भ किया

दुवई

सुन्दर सुभट परस्परमे अन्य सुभटोंको बुला-बुलाकर मारने लगे और अपने-अपने स्वामियो- के प्रसादसे निक्षिप्त वेगवाले धनुषके शब्दोसे कन्दराओको भरने लगे।

किसी भटने असिवरसे अन्य शूरवीरकी दोनों जंघाएँ काट डाली, फिर भी वह (भूमिपर) गिरा नही; बल्कि उत्तम वंश (कुल, पक्षान्तरमे बाँस) मे उत्पन्न होनेवाला वह चाप—धनुष तथा आत्म-सत्त्वका अवलम्बन कर वही (रणभूमिमे ही सक्रिय) स्थित रहा। फणीन्द्रके समान अपना ५ धनुष खीचकर किसी योद्धाने कठोर मुट्ठीसे बाण छोड़ा, जिसने दूसरे सुभटके कवच तकको भेदकर (आप ही) कहिए कि क्या अपना सशक्त प्रभुत्व नही दिखा दिया ? मदोन्मत्त हाथीके मुखपर महावत कपड़ा भी न डाल पाता था कि शत्रु-योद्धा गगनके ऊपरसे ही अपने बाणोकी वर्षा कर उसे शक्तिहीन बनाकर मार डालते थे। प्रतिपक्षी हाथीके उछलकर गमन करनेके कारण भीषण महाकरीश्वर अपने चर (महावत) से ही रूठ गया तथा अपनी प्रचण्ड लम्बी सूँड़से मुख वस्त्र १० फाड़कर तथा महावतके आदेशका उल्लंघन कर भाग गया। कुछ क्रुद्ध योद्धागण अपनी शिक्षा- विशेषको दिखलाते हुए युद्धमे सहसा ही स्वनामाक्षरांकित उत्तम बाणोसे नरनाथोके श्वेत वर्णके छत्रोंकी वर्षा करने लगे।

घत्ता—चिरुकालु धरिवि[2] रण-धुर-मयहँ णरणाहहँ तेइल्लहँ।
कुल णासु समासहिँ वंदियण पुच्छंताहँ सुइल्लहँ ॥१०५॥

१२

दुवई

संजाया दिणे विनिर्तिसाहय दुरयहँ मणोहरी।
किं तहो उच्छलंत मुत्तालिहिं तारंकिय रणं सिरी ॥

अणवरया यड्ढिय-चारु-चाव — कमल यरइ भाइवि सुक्ख भाव।
रेहंति रणंगणे जोह केम — चित्तयरें[1] भित्तिहि लिहिय जेम।
5 दूसह-पहार पीडाउलो वि — तो पाणइँ धरइ महंतु कोवि।
किं जीवहि परिथक्कहिँ दयाइँ — जा ण वयणु पहु पभणइँ[2] पराइँ।
चक्केण छिण्णु भू-भिउडि-भीसु — वामेण करेण धरेवि सीसु।
कोवेण कोवि विंभउ जणेइ — चालेण ससम्मुहुँ रिउ हणेवि।
धणु-लय अणत्थ-संतावणेय — वायरहुं जाय विहियाहि जेम्व।
10 अरि-सर-लुय-गुण केण वि भडेण — पिय इव विमुक्क हय-गय भडेण।
घण-पंक-मज्झि पविलीण-चक्क — मणि जडिय-निविड-रह णिवइ[3] थक्क।
सर-दलियहि कहव मणोरमेहिं — आयड्ढिय पवर-तुरंगमेहिं।

घत्ता—कासुवि भूउ आमूलहो लुणिउँ लेवि गेद्धु निट्टुर महिँ।
णं णहे जय जसु वीरहो भमइं सव्वत्थ वि दूसह गेहो[4] ॥१०६॥

१३

दुवई

दिढु धारेवि करेण वामउं पउ करिणा सुहड-पाडिओ[1]।
दाहिण-चरणु चप्पि नियसत्तिए[2] जम इव वीरुपाडिवो ॥

हत्थेण लेवि भडु वारणेण — गयणयले खित्तु दुव्वारणेण।
खेलरुइ किवाणिए[3] उल्लसंतु[4] — तहो कुंभे हरि व रेहइ दलंतु।
5 सर-घाय-जाय-भड-समर-हेउ — णिरसहि करिंद णिद्दलिय-तेउ।
कर-सीयरेहिं कोरासियाहँ — णिद्धउ आवइ गुण-वासियाहँ।
संपूरियंगे रेहंति जोह — णिच्चल गइंद अरि-विजय-सोह।

---

२. D. धरिविण धुर°।

१२. १. J. V. °लें°। २. D. °णइं। ३. D. °इं। ४. J. V. गउहो।

१३. १. D. °इ°। २. D. °त्थि°। ३. J. V. किवाइणिए। ४. J. V. वं°।

घत्ता—चिरकाल तक रणकी धुराको धारण करनेवाले मृतक हुए तेजस्वी नरनाथोंकी सूची तैयार करने हेतु वन्दीजनोंने उनका संक्षेपमें कुल एवं नाम पूछना प्रारम्भ कर दिया ॥१०५॥ १५

१२

तुमुल-युद्ध—अपने सेनापतिकी आज्ञाके बिना घायल योद्धा मरनेको भी तैयार न थे

दुवई

हाथियोंकी मनोहारी लड़ाई हुई, उसमे आहत उनके गण्डस्थलोंसे उछलकर गिरे हुए गज मुक्ताओंसे वह रणश्री ऐसी प्रतीत हुई, मानो दिनमें तारे ही निकल आये हों।

मुख्य भावका ध्यान करते हुए अपने ही हाथोसे अनवरत रूपसे सुन्दर चापको चढ़ानेवाले योद्धा रणांगणमे किस प्रकार सुशोभित थे ? ठीक उसी प्रकार (सुशोभित थे), जिस प्रकार कि चित्रकार द्वारा भित्ति-लिखित चित्र (सुशोभित होते है)। अर्थात् वे इतनी शीघ्रतासे बाणको ५ धनुषपर चढ़ाते और छोड़ते थें कि जिससे पासका भी व्यक्ति उनकी इस क्रियाको नही जान पाता था, इसीलिए वे चित्र-लिखित जैसे प्रतीत होते थे। दुःसह प्रहारोंकी पीड़ासे आकुल होकर भी कोई योद्धा तबतक प्राणोंको धारण किये रहा जबतक कि उसके स्वामीने उसे 'शत्रुजनोंकी दयापर जीवित रहनेसे क्या लाभ ?' इस प्रकारके वचन न कह दिये। चक्र द्वारा उच्छिन्न भ्रू-भृकुटिसे भयानक शीशको बाये हाथमे पकड़कर उसने क्रोधित होकर सम्मुख आये हुए शत्रुको तलवारसे १० मारकर आश्चर्य-चकित कर दिया। जिस प्रकार शत्रुका दमन कर उसे चूर-चूर कर दिया जाता है, उसी प्रकार किसी भटने टूटी हुई धनुर्लताको अनर्थ एवं सन्तापकारी जानकर तोड़ताड़कर फेंक दिया तथा शत्रुके वाण द्वारा उच्छिन्न गुण (रस्सी) वाले धनुषको अश्वभटों एवं गजभटों द्वारा उसी प्रकार छोड़ दिया गया, जिस प्रकार भ्रष्ट स्त्रीको छोड़ दिया जाता है। गहरी कीचड़ में फँसे चक्रवाले मणिजड़ित जिस दृढ़ रथपर नृपति बैठा था, वह वाणोंसे घायल हुए मनोहर १५ प्रवर-तुरंगों द्वारा जिस किसी प्रकार खीचा गया।

घत्ता—(युद्धकी) निष्ठुर भूमिसे किसी योद्धाकी मूलसे कटी हुई भुजाको लेकर गृद्ध आकाशमें उड़ गया। वह ऐसा प्रतीत होता था, मानो उस दुर्जेय वीर पुरुषकी जय एवं यशोगाथा ही सर्वत्र भ्रमण कर रही है ॥१०६॥

१३

तुमुल-युद्ध—घायल योद्धाओंके मुखसे हुआ रक्त-वमन ऐन्द्रजालिक-विद्याके समान प्रतीत होता था

दुवई

(मदोन्मत्त) हाथीने (किसी) योद्धाको पटककर उसके वायें पैरको अपनी सूँड़से दृढता-पूर्वक पकड़कर तथा उसके दाये पैरको चॉपकर यमराजके समान ही अपनी पूरी शक्तिपूर्वक उसे दो भागोंमें चीर डाला।

दुर्वार हाथीने किसी योद्धाको अपनी सूँडसे पकड़कर आकाशमें फेंक दिया। किन्तु वह (योद्धा) भी (कम) खिलाड़ी न था, वह (ऊपरसे गिरकर) अपनी कृपाणसे उसके कुम्भस्थल- ५ का उल्लासपूर्वक दलन करता हुआ सिंहके समान ही सुशोभित हुआ। करीन्द्रोंके तेजको भी निर्दलित कर देनेवाले युद्धमें योद्धागणोंके वाणोसे आक्रान्त हो जानेपर हाथियोने अपनी सूँड़ द्वारा शीतल जल-कणोंसे गुणाश्रित पदाति सेनाश्रित उन भटोंकी आपदाका निवारण किया। शत्रुओंपर

फग्गुण-खय-दल-कीलिविवग्गे तयसार-गुणा इव महिहरग्गे ।
चुव-रूर-णिग्गय-लोहिय-पवाहु पविरेहइ मत्तउ पयड-णाहु ।
10 णावइ अंजण-महिहरु सुतंतु साणुगलिय-गेरुअ-णिज्झरंतु ।
णिरसेवि मुच्छाविण दुक्ख-जाय पुणु भिड्डिय वेरि वण रसियकाय ।
ते धारिय कहव महा भडेहिं । सुह संगहु भणु कीरइ ण केहिँ ।
अवलोएँविणु विंभल-सरीरु मारण-मणु करवालेण वीरु ।
केणवि णउ णिहउ दयावरेण दुग्गउ ण णिहम्मईं महँवरेण ।

15 घत्ता—वयणेण पहारँाउलिय मणु लोहिउ कोवि वमंतउ ।
सहइ व समरंगणे णरवरहँ इंदयालु दरिसंतउ ॥१०७॥

१४

दुवई

ण हरेई सत्ति कासु वि उरे णिवडंती अवारणं ।
तं ण कहंति किंपि जं वीरहँ दप्प-विणास-कारणं ॥

उरे निवडंती दंतुज्जलाए सामंगइ चारु पओहराए ।
किउ असिलेयाइँ तासिय-विवक्खु भडु कंतइँ इव सुह-मीलियक्खु ।
5 अरिणा कुंतेण हियए विहिण्णु धावंतु कोवि दुक्खेण खिण्णु ।
तं रसइ कंठ-कंदलि स-कोउ दंसाणिउ विसहर इव सुभोउ ।
केणवि सहसाणिय-कोसलेण करि धरिय छुरिय सिढिलावणेण ।
मिच्चुहे कारणु णिय वइहिँ हूअ दुट्ठंतरंग भज्जवि विरूव ।
दलियए दाहिण-भुए हयकवालु अवरेण करेण धरेवि वालु ।
10 केणवि हउं रिउ पहरंतु जोइ आवइ कासु वि उवयारि होइ ।
सर-णिहयंगेण वि हयवरेण परिहरिउ सयँउ सिक्खाहरेण ।
करणीउ णासु वारहो ण वंतु समुहोइ विहुरसुहे जाइवंतु ।

घत्ता—वर कंठि णेव हारु ण चमरु सुण्णासणु धारंतउ ।
तासंतु दंति णामेण हरि करण न वे हरिजंतउ ॥१०८॥

---

५. J. V. °ले° । ६. D. °इं° । ७. D. °इ° ।
१४. १. D. °इ । २. D. °लायइं । ३. J. V. °हे । ४. D. °व । ५. D. °ज° । ६. D. णासवरहो° ।

की गयी विजयसे सुशोभित तथा शत्रु-बाणोंसे क्षत-विक्षत योद्धागण निश्चल रूपसे गजेन्द्रोंपर बैठे हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानो पर्वतके अग्रभागपर स्थित वे ऐसे मुँड़े हुए वृक्ष हों, जिनके पत्ते फाल्गुन-मासकी धूपसे झड़ गये हों और जिनका मात्र त्वचासार ही शेष बचा हो। प्रचण्ड हाथियोंमें श्रेष्ठ गजराजकी सूँड़के कट जानेसे स्रवते (चूते) हुए लोहूका प्रवाह इस प्रकार सुशोभित हो रहा था, मानो अंजनगिरिके शिखरसे गेरुमिश्रित झरना ही बह रहा हो। मूर्च्छाके दूर होते ही दुख-रहित होकर घावोंसे रिसते हुए शरीरवाले योद्धा बैरियोंसे पुनः जा भिड़े और जिस किसी प्रकार महाभटो द्वारा वे पकड़ लिये गये। कहिए, कि शुभका संग्रह किसके द्वारा नहीं किया जाता? घावोंसे विह्वल शरीर देखकर उसे तलवारसे मार डालनेकी इच्छा होनेपर भी किसी दयावीर सुभटने उसे मारा नही। ठीक ही कहा गया है,—'दुर्गतिमे फँसे हुए शत्रुको महाभट मारते नही।'

घत्ता—तीक्ष्ण प्रहारसे आकुलित मनवाले किसी योद्धाके मुखसे खूनकी कै हो रही थी। वह योद्धा इस प्रकार सुशोभित हो रहा था, मानो समरांगणमे वह राजाओंके सम्मुख इन्द्रजाल-विद्याका प्रदर्शन कर रहा हो ॥१०७॥

१४

तुमुल-युद्ध—आपत्ति भी उपकारका कारण बन जाती है

दुवई

किसीके वक्षस्थलपर असह्य 'शक्ति' (नामक विद्याकी मार) पड़ी तो भी वह (अर्थात् उस शक्ति नामक अस्त्रने) उस (शक्तिकी मार खाये) योद्धाकी शक्ति-सामर्थ्यका अपहरण न कर सकी। निश्चय ही (शास्त्रोंमे) ऐसी कोई बात नहीं कही गयी है, जो (युद्धकी इच्छा रखनेवाले) वीरोके दर्पके विनाशका कारण बने।

(नील कमलके समान), श्याम-आभावाली दन्तोज्ज्वला (जिसकी नोंक उज्ज्वल है, पक्षान्तरमे, उज्ज्वल दाँतोवाली), चारु पयोधरोरु (अच्छे पानीवाली और महान्; पक्षान्तरमे सुन्दर स्तन एवं जंघाओंवाली) कान्ताके समान असिलताने शत्रुको वक्षस्थलपर पड़ते ही उस त्रस्त विपक्षी भटको ऐसा मारा कि उसने शीघ्र ही अपने नेत्र निमीलित कर लिये। शत्रुके कुन्त द्वारा विदीर्ण हृदयवाले तथा उसके दुखसे पीड़ित होकर भी किसी योद्धाने क्रोधित होकर (उसके पीछे) दौड़ते हुए उस शत्रु-भटकी कण्ठ-कन्दलिमे इस प्रकार काटा, जिस प्रकार कि सर्प अपने फणसे (अपने शत्रुको) काट लेता है। किसी अन्य शत्रु-योद्धाके द्वारा अपने कौशलसे सहसा ही, शिथिलता-पूर्वक हाथमें धारण की हुई छुरी उसके धारककी ही मृत्युका इस प्रकार कारण बना दी गयी जिस प्रकार कि दुष्ट अन्तरंगवाली अपनी ही भार्या दुश्चरित्र होकर (दूसरेके चंगुलमे फँसकर) अपने ही पतिकी मृत्युका कारण बन जाती है। किसी भटने अपने कपोलके हत हो जाने तथा दाहिनी भुजाके कट जानेपर भी बाये हाथसे करवाल धारण कर प्रहार करते हुए शत्रुको मार डाला। सच ही हैं—कभी-कभी आपत्ति भी उपकार करनेवाली हो जाती है। बाण द्वारा निहत अंगवाले घोड़े अपने सवारों द्वारा परित्यक्त कर दिये गये। हाथी भी घायल महावतोंको छोड़-छोड़कर व्याकुल होकर भाग गये।

घत्ता—जिस घोड़ेके उत्तम कण्ठमे न तो हार था और न चामर ही, तथा जिसका आसन खाली था, ऐसे सिंहासनवाला वह (घोड़ा) हाथियोंको त्रस्त करता हुआ नाममात्रसे ही नही; अपितु क्रियासे भी 'हरि' हो गया ॥१०८॥

१५

दुवई

रण धारइ यवेण सव्वत्थ वि सर-हय-तणु वि हयवरो।
णिय-मय-पहुहे झत्ति पयडंतउ सूरत्तणु व सुहयरो॥

सिरि मुग्गरेण अहिएण कोवि परिताडिउ लोहमएण तोवि।
ण मुअइ णियंगु विवसो वि वीरु रण-रंगे होइ अच्चंत-धीरु।
5 भिंदेवि अभिज्ज वि देहताणु पाणइ सुहडहो अवहरइ वाणु।
सो एण फलेण विवज्जिओ वि पुण्णइँ दिणे को ण हवइँ परोवि।
रक्खंतेँ सरसंचयो सासि ससरीरहिँ निरु मायंग गामि।
केण वि किउ अत्थायारु देहु किं किण्णे[1] करइ पवहंतु णेहु।
लज्जाहिमाणु-कुलु-पहु-पसाउ मणि मण्णिवि णिय-पोरिस-पहाउ।
10 वण-भरिय-सरीर वि सूर तोवि णिवडंति ण अप्प ण-परु पलोवि।
करि अवयवेहि हय-धय-वडेहिँ छिण्णेहिँ अणेयहिँ रह-वडेहिँ।
संकिण्णु रणंगणु तं पहूउ अइ दुग्गु भमिर-खयरहिँ विरुउ।

घत्ता—विरएवि पाणु रुहिरासवहो मत्त णरंतालंकिय।
णिरु जाउहाण णच्चंति सहुँ सुहड धडेहिँ असंकिय॥१०९॥

१६

दुवई

इय तहो वाहिणीहु अवरोप्परु दप्पुद्धरहँ जायओ।
हय-गय-रह-भडाहरण दूसहु पेयाही सुवायओ॥

इत्थं तरम्मि सुह सागरम्मि।
कोवेँ[1] पलित्तु दिणयरुव्व दित्तु।
5 चमुवइ रहत्थु रह-मंडलत्थु।
रणे उत्थरंतु धणुलय धरंतु।
हरि विस्सणामु महियले सणामु।
णयवंतु मंति णाराय पंति।
संधंतु चावे णिट्ठुर सहावे।
10 धायउ तुरंतु अग्गिउ सरंतु।
मरु-मरु भणंतु विभिउ जणंतु।
कज्जी समण्णु ....अण्णु[2]।
हेलए सरेहिँ णहयले चरेहिँ।
भडयण-सिराए सीसय-हराए।

---

१५. १. D किं ण।

१६. १. J. V. केवे। २. D. कज्जी समण्णु अण्णु। V. प्रतिमे कज्जी समण्णुके बाद अनुपलब्धि सूचक सात डैश देकर अण्णु पाठ है।

१५

तुमुल-युद्ध—राक्षस-गण रुधिरासव पान कर कबन्धोंके साथ नाचने लगते हैं

दुवई

बाणोंसे शरीर के क्षत-विक्षत हो जानेपर भी आज्ञाकारी उत्तम घोड़े वेगपूर्वक युद्ध कर रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था, मानो अभी-अभी मृतक हुए अपने स्वामियोंकी शूरवीरताको ही वे प्रकट कर रहे हों।

शत्रुने किसीके सिरपर लौहमय मुग्दर पटक दिया, तो भी विवश होकर रणरंगमें अत्यन्त धीर उस वीरने अपना शरीर त्याग न किया। पैने अग्रभागसे रहित बाणने भी अभेद्य देहत्राण— ५ लौहकवचको भेदकर सुभटके प्राण ले लिये। ठीक ही है, दिनों (आयु) के पूर्ण हो जानेपर कौन किसको नहीं मार सकता ? किसी योद्धाने अपने शरीरसे ही हाथीपर सवार हुए स्वामीकी ओर आनेवाले शर-समूहोंसे उसकी रक्षा करते हुए उसे (अपने शरीरको) अस्त्राकार वना दिया। ठीक ही है, स्नेहवश व्यक्ति क्या-क्या नहीं कर डालता ? शूरवीर आपसमे एक दूसरेकी ओर देखकर और (विपुल) लज्जा, (क्षत्रिय वंशका—) अभिमान, (उत्तम—) कुल प्रभुका प्रसाद तथा अपने १० पौरुपके प्रभावका स्मरण करते हुए शरीरके घावोंसे परिपूर्ण होनेपर भी वे शूरवीर रणक्षेत्रमें गिरे नही। हाथियों एवं घोड़ोके अंग-प्रत्यंगों, ध्वजा-पताकाओं तथा अनेक रथवरोंके छिन्न-भिन्न हो जानेसे वह विकराल रणांगण एकदम पूर गया तथा भ्रमणशील खेचरोंके द्वारा वह अति दुर्गम हो गया।

घत्ता—मनुष्योंकी अँतड़ियों (की माला) से अलंकृत तथा रुधिररूपी आसवका पान १५ करनेके कारण मदोन्मत राक्षसगण सुभटोंके धड़ोंके साथ-साथ नि.शंक मनसे नाचने लगे ॥१०९॥

१६

तुमुल-युद्ध—अश्वग्रोवके मन्त्री हरिविश्वके शर-सन्धानके चमत्कार। वे त्रिपृष्ठको घेर लेते है

दुवई

इस प्रकार उन दोनों ही सेनाओके हाथी, घोड़े, रथ एवं दर्पोद्धत भट प्रेतोंकी उदरपूर्तिके हेतु परस्परमें दुस्सह युद्ध करने लगे।

इसी बीच सुखरूपी सागरमे क्रोधसे प्रज्वलित दिनकरके समान दीप्त, रथ-मण्डलमे एकान्तमें स्थित सेनापति रणमें उछलता हुआ धनुर्लताको धारण किये हुए महीतलमे 'हरिविश्व' इस नामसे सुप्रसिद्ध नीतिज्ञ मन्त्री चापमे निष्ठुर स्वभाववाली नाराच-पंक्ति—वाण पंक्तिका सन्धान करता ५ हुआ तुरन्त दौड़ा और 'मारो'–'मारो' कहता हुआ जन-मनको विस्मित करता हुआ आगे वढ़ा। युद्धभूमिमे (उसके) समान अन्य (योद्धा न था ?)। × × × × × नभस्तलमे वेगपूर्वक चलाते

15 भुव-संगरेहिँ चामर-परेहिँ ।
णहे कय-णडेहिँ मह-धय-वडेहिँ ।
वुह वूह-वंधु भिण्णउ निरंधु ।
परिवडिय छत्त विद्दविय गत्त ।
करि दंसणेण मह भीसणेण ।
20 सुन्नासमग्ग उम्मग्ग लग्ग ।
सतवण पणट्ठ सहसत्ति कट्ठ ।
कुद्धेण तेण मारण-मणेण ।
अगणिय-सरेहिँ रवि-रुचि[3]-हरेहिँ ।

घत्ता—णीयहो संकोयहो कन्ह-वलु जिह ससिणा णिसिय किरणहिँ ।
25 सव्वत्थ विरयणिए कमल-वणु तिमिरुक्कर-संहरणहिँ ॥११०॥

१७

दुवई

णिय वाहुवलु एम पयडंतउ सो भीमेण सद्दिओ ।
दूरुज्झिय-भएण गुण सद्दें गयणुवि पडि णिणद्दिओ ॥

तं णिसुणेविणु सिरु विहुणेविणु ।
तहो रिउ भीमहो संगरे भीमहो ।
5 पवणु व जाइवि अहिमुहुँ ठाइवि ।
तेण सरोसेँ रण भर तोसेँ ।
साहंकारेँ गुण-टंकारेँ ।
भुवणु भरेविणु हुंकारु करेविणु ।
जोतिय-हयवरु वाहेवि रहवरु ।
10 करिवि महाहउ सो सहसा हउ ।
अगणिय वाणहिँ हय पर-पाणहिँ ।
तहो वाणोहइँ झत्ति सलोहइँ ।
मणे परिकलियइँ अंतरिं दलियइँ ।
णियसर-पंतिहिँ गयणि वयंतिहिँ ।
15 वेरि-करिंदहँ दलिय-गिरिंदहँ ।
हरिणा हीसेँ संगरे भीसेँ ।
परिगय-संकेँ अद्ध-मियंकेँ ।
धणु विब्भाडिउ धयवडु फाडिउ ।

घत्ता—सहसत्ति तुरंगम रहु मुएवि हाहाकारु करंतहँ ।
20 ओलग्गि विलग्गा गयणयर सुरणरवरहँ णियंतहँ ॥१११॥

---

३. D. V. °वि ।
१७. १. D. पर ।

हुए बाणोंसे भटजनोंके शिरस्त्राणोंसे युक्त सिरोंको ही उड़ा दिया। युद्धभूमिमें चामर ढुरते हुए आकाशमें नाचती हुई महाध्वज पताकाओंसे चतुर योद्धाओंके निरन्ध्र व्यूह-बन्धको भी छिन्न-भिन्न कर दिया। छत्र गिर गये, गात्र ढीले पड़ गये, महाभयंकर हाथीको देखते ही, सवाररहित घोड़े १० भागकर उन्मार्गगामी हो उठे और मारनेको इच्छावाले उस क्रुद्ध हरिविश्व द्वारा सूर्यकिरणोंको भी ढँक देनेवाले अगणित शरों द्वारा लगे हुए सैकड़ों घावोंसे पीड़ित होकर सहसा ही मृत्युको प्राप्त हो गये।

घत्ता—(हरिविश्वके बाणों ने) कृष्ण (त्रिपृष्ठ) की सेनाको चारों ओरसे उसी प्रकार संकोच (घेर) लिया, जिस प्रकार रात्रिमें चन्द्रमा तिमिर-समूहका संहार करनेवाली अपनी १५ तीक्ष्ण किरणोंसे सर्वत्र ही कमलवनको संकुचित कर देता है ॥११०॥

१७

तुमुल-युद्ध—हरिविश्व और भीमकी भिड़न्त

मन्त्री हरिविश्वको अपने बाहुबलको इस प्रकार प्रकट करते हुए देख निर्भीक भीम नामक (त्रिपृष्ठ के) योद्धाने उसे ललकारा और उस (भीम) के धनुष की टंकारसे गगन प्रतिध्वनित हो उठा।

भीमकी ललकारको सुनकर, अपना सिर धुनकर, रणभारसे सन्तुष्ट, युद्धशूर, भीमके शत्रु उस हरिविश्वने पवनके (वेगके) समान जाकर, उस भीमके सम्मुख उपस्थित होकर, दर्पके साथ ५ धनुषकी टंकारसे भुवनको भर दिया तथा 'हुंकार' करके उत्तम घोड़े जोतकर रथको हाँककर शत्रुओंके प्राणोंको हरनेवाले अगणित बाणोंसे महान् संहार किया, किन्तु वह (हरिविश्व) स्वयं भी सहसा घायल हो गया। तत्काल ही उसके लौहमय बाण-समूह (शत्रुओंके) हृदयोंमें उतरने लगे, (उनके) वक्षस्थलोंको दलने लगे। उसने आकाशमें चलती हुई अपने बाणोकी पंक्तियोंसे वैरियोंके करीन्द्रों एवं गिरीन्द्रोंका दलन कर डाला। तब संगरमें भीषण हरिणाधीशने निःशंक १० होकर 'अर्धमृगांक' नामक बाणसे उस (हरिविश्व) [illegible] षको तोड़ डाला और ध्वजपटको फाड़ डाला।

घत्ता—(भीम—हरिणाधीशके उस [illegible] गण सहसा ही तुरंग [illegible] छोड़-छोड़कर हाहाकार करते हुए देवों और [illegible] ते ही उलटे हो-होकर [illegible] लगे ॥१११॥

१८

दुवई

हरि मज्झु मंतिणा दंतिव संगाएणद्धओ।
धावंतेण चारु वच्छत्थले सित्तिए भीमु विरुद्धओ॥

मेल्लेवि सरासणु लेवि खग्गु णिय-किरणुज्जोविय-गयण मग्गु।
करणेण ससंदणु परिहरेवि तहो दंतणि रोसें पाउ देवि।
5 भालयले हणिवि खग्गेण झत्ति विणिउ सो भीमें भीम-सत्ति।
धूमसिहहो खंडिवि माण-सेलु णिय-भुव-बल-हरिगिय-खयर-मेलु।
रण मज्झें सयाउहु सहइ केम णिद्दारिय-मयगल-सीहु जेम।
सुरवर करि-कर-संकास-वाहु अणवरय-दाण-जिय-सरि-पवाहु।
जिउ असणिघोसु संगामे जाम सघउ सत्तुंजउ हुवउ ताम।
10 परि कंपाविय णिस्सेस सेण्णु गय-कंपु अकंपणु वद्ध-मण्णु।
पाडिउ जणवउ सए-संचएण णं हय गल-जय-धय-वड-रएण।
कड्ढिवि गुण थिरदिट्ठिए णिएवि णिसियाणण-बाणावलि मुएवि।
णिज्जिणिवि अक्ककित्तिहिँ असेसु वित्थिण्णु सेण्णु रणमहि विसेसु।
पय-जुव-पाडिय खेयर-महीउ पुणु पुरउ परिट्ठिउ तुरय-गीउ।
15 घत्ता—सो अवलोएवि लीलए पुरओ अक्ककित्तिणा खयरें।
सलवट्टि विहंजिय भालयलु रण-गय-पडिभड-खयरें॥११२॥

१९

दुवई

णिय करे करेवि चाउ संधेविणु मुक्काविसिह-पंतिया।
गयणयरावलीव पविरेहइ गयणंगणे व पंतिया॥

अणवरयहिँ तेहिँ सरेहिँ तेण मण-जाय-दुसह कोवारुणेण।
तहो चिंधवंस लट्ठी विलुत्त सुह वंस लच्छि-वल्लीए जुत्त।
5 हय-कंठेण वि लीलावहाणे जय लच्छिहे सुर करिकर समाणे।
वामयरें तहो दिढ-बाहुदंडे णिक्खित्त बाण तिक्खण-पयंडे।
एक्केण तासु दीहर-सरेण छिंदेवि छत्तु धउ निब्भरेण।

१८, १. J. V. मे°। २. D. स°। ३. D. मि°। ४. D. °ण। ५. D. °त्तं°। ६. D. °सिं°।
१९, १. J. V. °घे°।

१८

तुमुल-युद्ध—हरिविश्व और भीमकी भिड़न्त

दुवई

हरिविश्व मन्त्रीने अपने दौड़ते हुए हाथीके समान घोड़े द्वारा हरिको बीचमें ही रोक दिया तथा भीमका सुन्दर वक्षस्थल शक्ति द्वारा वेध डाला ॥

तब शरासन छोड़कर अपनी किरणोंसे गगन-मार्गको उद्योतित करनेवाले खड्गको लेकर भीम-शक्तिवाले भीमने उस हरिविश्वको देखते ही क्रुद्ध होकर उसे उसके रथसे खींच लिया और लात मारकर तत्काल ही उसके माथेपर तलवारसे वार किया। ५

अपने भुजबलसे विद्याधरोंको हर्षित करनेवाले धूमशिखके मानरूपी पर्वतको खण्डित कर वह शतायुध भीम रणके मध्यमे किस प्रकार सुशोभित हुआ ?—

ठीक उसी प्रकार—जिस प्रकार कि मदोन्मत्त हाथीका विदारण करनेवाला सिंह (सुशोभित होता है)।

अनवरत मद-प्रवाहसे सरित्प्रवाहको भी जीत लेनेवाले ऐरावत हाथी की सूँड़के समान भुजाओंवाले अशनिघोष (हयग्रीव का पक्षधर) को जब उस (भीम) ने युद्धमे जीत लिया तब उस (भीम) का 'शत्रुंजय' यह नाम सार्थक हो गया। १०

समस्त क्रुद्ध सैन्य-समुदायको भी कँपा देनेवाले, कम्प (भय) रहित क्रोधी अकम्पनने अपने तीव्र वेगवाले बाण-समूहसे जनपदको पाट दिया। (तब) ऐसा प्रतीत होता था मानो वे (बाण-समूह) हयगल (अश्वग्रीव) की जय-ध्वज ही हों। ज्याको खींचकर स्थिर दृष्टिसे देखकर तीक्ष्णाग्र बाणावलि छोड़कर अर्ककीर्तिने रणभूमिमे विस्तृत समस्त सैन्य विशेषको पराजित कर जब उस खेचर महीप हरिविश्वको अपने चरणोंमें झुका लिया तब वह तुरगग्रीव पुनः सम्मुख उपस्थित हुआ। १५

घत्ता—उस तुरगग्रीवने लीलापूर्वक देखा कि उस अर्ककीर्ति (विद्याधर) ने रणमें आये हुए प्रतिपक्षी खेचरोंके भालतल शैलवर्तसे कुचल डाले है ॥११२॥ २०

१९

तुमुल-युद्ध—अर्ककीर्तिने हयग्रीवको बुरी तरह घायल कर दिया

दुवई

(उस तुरगगलने) अपने हाथमें धनुष लेकर तथा विशिख (बाण) पंक्तिका सन्धान कर (उसे) छोड़ा। वह (बाणपंक्ति) इस प्रकार सुशोभित हो रही थी, मानो गगनांगणमें गगनचरों (विद्याधरो) की पंक्ति ही हो।

मनमें उत्पन्न दुस्सह क्रोधसे लाल होकर उस हयग्रीवने जयरूपी लक्ष्मीके लिए लीलावधान पूर्वक, अनवरत छोड़े गये अपने बाणोसे उस अर्ककीर्तिकी सद्वंशवाली लक्ष्मी-लताके साथ-साथ ध्वजाकी वंश-यष्टि (बाँसकी लाठी) को भी नष्ट कर डाला तथा ऐरावत हाथीकी सूँड़के समान अपने बाये हाथसे उस अर्ककीर्तिके प्रचण्ड एवं सुदृढ़ बाहुदण्डमें स्थित तीक्ष्ण बाणको छेद डाला। ५

अण्णेण मउडु मणि-पज्जलंतु उम्मूलिउ णिवडिउ पक्खलंतु ।
तहो अक्ककित्ति कोवंड कोडि महियले पाडिय भल्लेण तोडि ।
10 तेण वि [2]पच्चालिवि चारु चाउ विरएविणु दारुणु दुट्ठ भाउ ।
णारायहिँ सिहिगल तणउँ पुं[3]त्तु हणि हयगलु सण्णाहेण जुत्तु ।
गज्जिउ गहीरु रणरंगे केम पाउसि णव-जलवाहेण जेम ।

घत्ता—रणे कामएउ दुज्जउ परहिँ जिउ पोयणपु[4]रणाहेँ ।
चिरु विरयंतेँ तउ जिह भुवणे कामएउ जिणणाहेँ ॥११३॥

२०

दुवई

ससि सेहरहो दप्पु पविहंजिउ सिहिजडिणा रणंगणे[1] ।
पडिहरि-तुरयगीव-विजयासए सिहु तोसिउ रणंगणे ॥

चित्तंगयाइँ[2] विज्जाहराइँ जिणिसत्तसयाइँ मणोहराइँ ।
मणि रेहंतेण जणिय अणिट्ठु विजएण णील रहु पुरउ दिट्ठु ।
5 हरिणाहीसेण वि वणे मयंगु पुक्खर-जल-कण सिंचिय पयंगु ।
विण्णि वि भय-वज्जिय चारुचित्त कोवाणल जालावलिहिं छित्त ।
णिय-णिय भुव-वल भडवाय भग्ग पुव्वावर-वारिणिहिय पवग्ग ।
वल-कलिय वलहो वच्छयलु चारु विणिहउ गया[3]ए लोलंत-हारु ।
वित्थारंतेँ सिक्खा-विसेसु विज्जाहरेण तोसिउ सुरेसु ।
10 तहो रंधुपावि कय-कलयलेण गय-घायं गज्जंतेँ वलेण ।
सिर-सेहरु मणि किरणहिँ फुरंतु महियलि पाडिउ जण-मणु हरंतु ।
दिक्खंतह खयरेसरहँ तेम कुलिसेण घणेण व सिहरि जेम ।

घत्ता—तहो मउडु[4] गलिय मुत्ता मणिहि सहइ रणंगणु संदहिँ ।
णं वित्थरि खयराहिव-सरिहेँ वाह-वारि-वर विंदुहि ॥११४॥

---

२. D. J. V. °व्वा° । ३. D. मु° । ४. D. °मु° ।

२०. १. D. णारंगणे J. णाणंगणे । २. D. °इ । ३. D. गयए । ४. D. °ड ।

उसके एक ही दीर्घ एवं फैलनेवाले वाणने उस (अर्ककीर्ति) के छत्र एवं ध्वजाका छेदन कर दूसरे बाणने उसके मुकुटकी प्रज्वलित मणिका उन्मूलन कर उसे भूमिपर गिरा दिया। तब अर्ककीर्तिने अपने भालेसे उस हयग्रीवकी कोदण्ड–कोटि तोड़कर उसे धूलमे मिला दिया। यह देखकर उस हयग्रीवने दारुण दुष्ट भावपूर्वक अपना सुन्दर धनुष चला दिया। तब उधर शिखिगत (ज्वलन-जटी) के कवचधारी पुत्र (अर्ककीर्ति) ने नाराचों द्वारा उस हयग्रीवको घायल ही कर डाला। वह गम्भीर अर्ककीर्ति रणरंगमे किस प्रकार गरजा ? ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार कि वर्षाऋतुमे नव जलवाहन (—नवीन मेघ)। १०

घत्ता—युद्धमें शत्रुजनों द्वारा दुर्जेय कामदेवको पोदनपुरनाथ (राजा प्रजापति) ने उसी प्रकार जीता, जिस प्रकार कि इस पृथिवी-मण्डलपर चिरकाल तक तपस्या करते हुए जिनेन्द्र आदिनाथने कामदेवको जीता ॥११३॥ १५

२०

तुमुल-युद्ध—ज्वलनजटी, विजय और त्रिपृष्ठका अपने प्रतिपक्षी शशिशेखर, चित्रांगद ,नीलरथ और हयग्रीवके साथ भीषण युद्ध

दुवई

(अर्ककीर्तिके पिता—) शिखिजटी (—ज्वलनजटी) ने रणरंगमें शशिशेखर (नामक विद्याधर) के दर्पको चूर कर दिया। इधर सन्तोषको प्राप्त प्रतिहरि अश्वग्रीव विजयकी अभिलाषासे रणांगणमे आया।

चित्रांगद आदि सात सौ मनोहर विद्याधरोंको जीतकर मणियोंसे सुशोभित विजयने नीलरथ (विद्याधर) की ओर अनिष्ट-जनक दृष्टिसे देखा। हरिणाधीश—त्रिपृष्ठ भी पुष्कर जल-कणोंसे सूर्यका सिंचन करनेवाले वन्य मातंगपर सवार हुआ। इस प्रकार अपने-अपने भुजवलसे भट-समूहको भगा देनेवाले, पूर्व एवं पश्चिम समुद्रकी तरह बढ़े हुए पराक्रमके धारक, कोपाग्नि-रूपी ज्वाला-वलयसे प्रज्वलित, निर्भीक एवं चारु-चित्तवाले वे दोनों—त्रिपृष्ठ एवं विजय युद्धके लिए तैयार हो गये। ५

अपनी शिक्षा-विशेषसे सुरेश—इन्द्रको भी सन्तुष्ट करके उस विद्याधर (हयग्रीव) ने अपने नाना रूपोंका विस्तार करते हुए पराक्रमी वलदेवके दीप्त एवं चलायमान हारसे सुशोभित सुन्दर वक्षस्थलको गदासे विनिहत कर दिया। तब अवसर पाकर गदाघातके कारण गर्जते हुए उस (विजय) ने देखते-देखते ही खेचरेश्वर (हयग्रीव) के जनमनोहारी, मणि-किरणोसे स्फुरायमान सिर-शेखरको उसी प्रकार भूमिमें गिरा दिया, जिस प्रकार कि वज्रमेघ पर्वत-शिखरको भूमिपर गिरा देता है। १० १५

घत्ता—उस हयग्रीवके शेखर (मुकुट) से धीरे-धीरे गिरती हुई मुक्ता-मणियों द्वारा रणांगण इस प्रकार सुशोभित था, मानो (वे मणियाँ) खेचराधिपरूपी सरिताके जल-प्रवाहके सुन्दर जल-कणोकी विस्तार ही हों ॥११४॥

२१

दुवई

तहो दोहंपि दिक्खि दुज्जउ वलु हुउ कोहु गओ जणे।
को जिणिहइँ न एत्थु रणे एयहँ इय संदेह-हय-मणे ॥

अवरहो असज्झु संगरे वलेण णीलरहु हलेण हणेवि[1] वलेण।
विरइउ कयंत-गोयरु करिंदु हरिणेव दाण धवियालि-विंदु।
5 इय खयर-पहाणइँ विणिहयाइँ अवलोइवि पाण-विवज्जियाइँ।
धाविउ हय कंधरु-कूरभाउ वामेण करेण करेवि चाउ।
तज्जेवि इयरहँ सयलइँ वलाइँ दरिसिय तणु-वण-णिग्गय-पलाइँ।
कहिं सो सरोसु णारियण-इट्ठु दुज्जउ उट्ठासउ रिउ तिविट्ठु।
इय पुव्व-जम्म कोवेण दित्तु पासेय विसाल पुडिंग सित्तु।
10 पुच्छंतु मत्त-मायंग-रूढु तहो पुरउ थक्कु अच्चंत गूढु।
विजयाणुअ दंसणे[2] हियइँ तुट्ठु हयगीउ चक्कवइ दलिय-दुट्ठु।
'महु जोग्गु एहु रिउ' एउँ भणेवि[3] मज्झंगुलीए धणु-गुणु हणेवि।

घत्ता—विज्जामय-बाणइँ तेण लहु पविमुक्कउँ असरालइँ।
विहिणा दिप्पंत कुलिस-हलइँ दूसह-यरइँ करालइँ ॥११५॥

२२

दुवई

ते सर अंतरालि पविहंजिय विजय-कणिट्ठ-भाइणा।
णिय छाणेहिँ फुल्ल-मय तहोहुव असिदारिय अराइणा ॥

तहे अवसरि कंपाविय धरेण तमुवाणु मुक्कु हय कंधरेण।
विरइय णिसि-घोरं धार तेण एक्कहिँ कय महिमरुवहु खणेण।
5 सो[1] णिण्णासिय विजयाणुवेण रविसम कोत्थुह-मणि-करचएण।
पडिहरिणा पेसिय फणि-फणाल आसी विसग्गि-जाला-कराल।
ते विद्धंसिय हरि वइरिएण गरुडेण समरि अणिवारिएण।
हयकंठें पच्छाइ ससोमु गिरिवरहि तुंग सिंगेहिं वोमु।
ते दलिय तिविट्ठें सुंदरेण पविणालहु णाइँ पुरंदरेण।
10 हयकंधरेण मुक्कउ हुवासु धूमाविल-जालावलि-हुआसु।
तो सुरतिय-णयणाणंदणेण पोयण-पुर वइ-लहु णंदणेण।
पसमिउँ विज्जामय जलहरेहिँ धारा[2]हि सित्त धरणीहरेहिँ।

घत्ता—पजलंति[3] सत्ति परिमुक्क लहु हयगीवेण गरिट्ठहो।
विप्फुरिय-किरण वर-हार-लय सोहुव[4] हियइँ तिविट्ठहो ॥११६॥

---

२१. १. D. °णे° । २. D. °णि । ३. J. V. घ° ।

२२. १. D. J. V. सा । २. D. प्रतिमें यह अन्तिम चरण नहीं है । ३. D. पजलंत । ४. D. J. V. साहुअ ।

२१

तुमुल-युद्ध—युद्धक्षेत्रमें हयग्रीव त्रिपृष्ठके सम्मुख आता है

दुवई

उन दोनों (—विजय एवं नीलरथ) के दुर्जेय बलको देखकर लोग कौतुकसे भरकर सन्देहास्पद मनवाले हो गये कि इस युद्धमें कोई जीतेगा भी या नही।

जिस प्रकार भ्रमर-समूहसे व्याप्त मद-जलवाले करीन्द्रको पंचानन—सिंह कृतान्त-गोचर बना देता है, उसी प्रकार संग्राममे दूसरोंके लिए असाध्य नीलरथ (विद्याधर) को भी बलवान् हलधर (विजय) ने अपने पराक्रमसे मार डाला। इस प्रकार विनिहत खेचर-प्रधानोंको प्राण-विवर्जित ५ देखकर हयकन्धर—हयग्रीव बाये हाथमें धनुष लेकर क्रूर भावसे झपटा। अवशिष्ट समस्त सेनाको डाँट-फटकारकर तथा घावोंसे मांस निकलते हुए अपने शरीरको उसे दिखाकर उस (हयग्रीव) ने रोषपूर्वक पूछा—"नारी जनोंके लिए इष्ट, दुर्जेय, दुष्टाशय (वह) शत्रु त्रिपृष्ठ कहाँ है?" इस प्रकार पूर्व-जन्मके क्रोधसे दीप्त, पसीनेसे तर, विशाल शरीरवाला वह हयग्रीव मत्त-मातंगपर आरूढ़ होकर पूछता-पाछता हुआ अत्यन्त गम्भीर उस (त्रिपृष्ठ) के सम्मुख (अनजाने ही) आ १० पहुँचा। दुष्टजनोंका दलन करनेवाले विजयके अनुज—त्रिपृष्ठको देखते ही वह चक्रवर्ती हयग्रीव अपने हृदयमे सन्तुष्ट हुआ और—"यह शत्रु तो मेरे योग्य है" इस प्रकार कहकर वह मध्य अँगुलीसे धनुषकी डोरीको ठोकने लगा।

घत्ता—उस हयग्रीवने तत्काल ही विधिपूर्वक, देदीप्यमान, वज्रफलवाले दुर्निवार एवं कराल वज्रमय बाणोंको छोड़ा ॥११५॥ १५

२२

तुमुल-युद्ध—त्रिपृष्ठ एवं हयग्रीवकी शक्ति-परीक्षा

दुवई

विजयके कनिष्ठ भाई—त्रिपृष्ठने (हयग्रीवके) उन बाणोंको बीच (मार्ग) में ही काट डाला। शत्रु हयग्रीव द्वारा इस त्रिपृष्ठपर किये गये खड्ग-प्रहार अपने-अपने स्थानपर फूल बनते गये।

उस अवसरपर हयकन्धरने धरातलको भी कँपा देनेवाला 'तम-बाण' छोड़ा। उस एक बाणने क्षणभरमे ही रात्रि-जैसा घोर अन्धकार करके पृथिवीतलको मरुवत् बना डाला। ५ किन्तु विजयानुज उस त्रिपृष्ठने उस (तम—) बाणको भी रविके समान अपने कौस्तुभ-मणिकी किरण-समूहसे नष्ट कर दिया। तब प्रतिहरि (हयग्रीव) ने आशीविषकी अग्निज्वालाके समान विकराल फणि-फणाल (—नागबाण) छोड़ा। हयग्रीवके शत्रु हरि—त्रिपृष्ठने समर-युद्धमें अनिवार 'गरुड़बाण' से उसका भी विध्वंस कर दिया। तब हयकण्ठने चन्द्रसहित आकाशको तुंग शृंगोंवाले गिरिवरोसे ढँक दिया। तब त्रिपृष्ठने उन गिरिवरोंको पुरन्दर—इन्द्रके वज्रके समान सुन्दर १० वज्रबाणसे दलित कर दिया। तव हयकन्धरने धूमसे व्याप्त ज्वालामुखीवाली अग्निसे युक्त अग्निबाण छोड़ा। तव देवांगनाओंके नेत्रोंको आनन्दित करनेवाले पोदनपुर-पतिके लघु पुत्र उस त्रिपृष्ठने विद्यामय मेघवर्षा द्वारा धरणीधरोंकी अग्निको शान्त कर दिया।

घत्ता—तब हयग्रीवने गरिष्ठ त्रिपृष्ठपर शीघ्र ही प्रज्वलित शक्ति दे मारी, किन्तु वह शक्ति उस (त्रिपृष्ठ) के वक्षस्थलपर स्फुरायमान किरणोंसे युक्त हारलता बन गयी ॥११६॥ १५

२३

दुवई

इय वियलिय समत्थ दिट्ठाउहु हयगलु करेवि करयले ।
हयरिउ चक्क चक्कु धारालउ पभणइ रणे सकलयले ॥
तुह चिंतिउ चूरइ एहु चक्कु धरणहँ वलेण सक्कु वि असक्कु ।
महु चरणइँ सुमरि परत्त हेउ तं सुणेवि समासइ गरुडकेउ ।
5 भीरुहे भीयरु तुह एउ वुत्तु नव धीर-वीर-सूरहिँ निरुत्तु ।
वण-गय-गज्जिउ भीसणु सयावि वण-सावयाहँ ण हरिहे कयावि ।
को मण्णइँ सूरउ तुज्झु चक्कु महु भावइ णाइँ कुलाल-चक्कु ।
तहो वयण-जलण-संदीविएण णर-नहयरेहिँ अवलोइएण ।
आमुक्कु चक्कु हयकंधरेण गल गज्जिवि णिज्जिय-कंधरेण ।
10 णिय-कर-णियरेहिँ फुरंतु चक्कु उज्जोविय-नहु णं पलय-चक्कु ।
मयवइ-विरोहे करि चडिउ जाम कोलाहलु किउ देवेहिँ ताम ।
तं लेवि तुरयगलु वुत्तु तेण महु पाय-पोम पणवहि सिरेण।
इय भणिउ जाम विजयाणुवेण सर-पूरिय-सुरगिरि साणुएण ।
भुवेंवल तोलिय वल मइँ-गलेण तातेण वि ण सहिउ हयगलेण ।
15 को तुहुँ सइँ मण्णहिँ अप्पुराउ महु पुणु पडिहासहि णं वराउ ।
ता हरिणा पभणिउ किं अजुत्तु रे-रेण मुणहिँ संगाम-सुत्तु ।
किं भासहिं कायर णय णिहीणु तुहुँ मइँ अवलोइउ णिच्च दीणु ।
पेक्खंतहँ देवहँ दाणवाहँ उभय वलहँ खेयर माणवाहँ ।
णित्तुलउ अज्जुँ तोड़ेवि सीसु तुह तणउँ मउड मणिकंति सीसु ।
20 घत्ता—करे कलेवि चक्कु विजयाणुवेण णेमिचंद कुंदुज्जलु ।
इय भणि तहो सिरु चक्कें खुडिउ उच्छलंत-सोणिय-जलु ॥११७॥

इय सिरि-वड्ढमाण-तित्थयर-देव-चरिए पवर-गुण-णियर-भरिए विबुह सिरि सुकइ सिरिहर विरइए साहु सिरि णेमिचंद अणुमण्णिए तिविट्ठ-विजय-लाहो णाम पंचमो परिच्छेओ समत्तो ॥संधि–५॥

जगदुपकृति रुन्द्रो जैन पादार्च्चनेन्द्रः
सुकृत कृत वितन्द्रो वन्दिदत्तोतु चन्द्रः ।
गुरुतर गुण सान्द्रो ज्ञात तारादि मन्द्रः
स्वकुल-कुमुद-चन्द्रो नन्दतान्नेमिचन्द्रः ॥

---

२३. १. ब्यावर प्रतिमें महुपायपोम....से....मइगलेण तक पृ. ४३ क. पृष्ठके बदली हुई लिपिमें निचले हाँसिएमें लिखा हुआ है । २. J, V, भुवलि° । ३. D. °य । ४. J. °ज्ज ।

२३

तुमुल-युद्ध—त्रिपृष्ठ द्वारा हयग्रीवका वध

दुवई

इस प्रकार अपनी सामर्थ्यवाले आयुधोंको विगलित हुआ देखकर उस हयगलने रिपु-चक्रका घात करनेवाले (अपने) धारावलि चक्रको हाथमें ले लिया और रणक्षेत्रमें कलवलाता हुआ इस प्रकार बोला—

"अब यह चक्र तेरे चिन्तित (मनोरथ) को चूरेगा। धरणेन्द्रके बलसे अब इन्द्र भी (तेरी रक्षा करनेमें) असमर्थ रहेगा। अतः अपनी सुरक्षा हेतु मेरे चरणोंका स्मरण कर।" हयग्रीवका ५ यह कथन सुनकर गरुडकेतु (त्रिपृष्ठ) बोला—'तेरा यह कथन भीरुजनोंको भले ही भयभीत कर दे, किन्तु धीर-वीर शूरोंके लिए व्यर्थ है। वन्य गजोंकी गर्जना जंगलके श्वापदोंके लिए निरन्तर ही भीषण होती है, किन्तु सिंहके लिए कदापि नहीं। कौन ऐसा शूरवीर है जो तेरे इस चक्रको मानेगा? मुझे तो वह (मात्र) कुलाल-चक्रके समान ही प्रतीत होता है।" उस त्रिपृष्ठकी वचन-रूपी अग्निसे सन्दीप्त, मनुष्यों एवं नभचरों द्वारा अवलोकित उस निर्जित-ग्रीव हयकन्धरने गल- १० गर्जना कर अपना चक्र छोड़ दिया। अपनी किरण-समूहसे स्फुरायमान उस चक्रने आकाशको उद्द्योतित कर दिया, वह ऐसा प्रतीत होता था, मानो प्रलयचक्र ही हो। जब पंचानन—सिंह विरोधी त्रिपृष्ठके हाथपर वह चक्र चढ़ा तब देवोंने कोलाहल किया। उस चक्रको लेकर त्रिपृष्ठने उस तुरगगलसे कहा—"मेरे चरणकमलोंमें सिर झुकाकर प्रणाम करो," अपने स्वरसे पर्वतीय अंचलोंको व्याप्त कर देने वाले विजयके अनुज—त्रिपृष्ठने जब यह कहा तब हत-बुद्धि वह हयगल १५ अपने भुजयुगलके बलको तौलकर त्रिपृष्ठके उस कथनको सहन न कर सका और बोला— "तू कौन है, जो अपने आप ही अपनेको राजा मान बैठा है। मुझे तो तू दीन-हीनकी तरह ही प्रति-भासित होता है।" तब हरि—त्रिपृष्ठने कहा कि अरे नीच (मेरे राजा बननेमे) अयुक्त क्या है? तू तो रणनीतिका एक सूत्र भी नही जानता है। रे कायर, नय-नीतिविहीन, तू क्या बोल रहा है? तू तो मुझे नित्य ही दीन-हीन-जैसा दिखाई देता है। देवों, दानवों तथा खेचरों एवं मानवों दोनों- २० की सेनाओके देखते-देखते ही मुकुट-मणियोंकी कान्तिसे देदीप्यमान तेरा अनुपम शीश आज ही तोड़ डालूँगा।

घत्ता—इस प्रकार कहकर विजयके अनुज—त्रिपृष्ठने नेमिचन्द्रके कुन्दोज्ज्वल यशके समान धवल वर्णवाले चक्रको हाथमें लेकर उस हयग्रीवके सिरको चक्रसे फोड़ दिया, जिससे श्रोणित (रक्त) रूपी जल उछल पड़ा ॥११७॥ २५

पाँचवीं सन्धि समाप्त

इस प्रकार प्रवर-गुण-समूहसे भरे हुए विबुध श्री सुकवि श्रीधर द्वारा विरचित साधु स्वभावी श्री नेमिचन्द्र द्वारा अनुमोदित श्रीवर्धमान तीर्थंकर देवके चरितमें त्रिपृष्ठ और विजयका विजयलाभ नामक पाँचवाँ परिच्छेद समाप्त हो गया॥

आशीर्वचन

जगत्के उपकार करनेमें विशाल, जिनेन्द्रके पादार्चनमें इन्द्र, सुकृतोंके करनेमे तन्द्राविहीन, वन्दियों द्वारा स्तुत, गुणगणोंसे सान्द्र, तारादि ग्रह-नक्षत्रोंके जानकार अपने कुलरूपी कुमुदके लिए चन्द्रमाके समान नेमिचन्द्र आनन्दित रहें।

संधि ६

१

एत्थंतरे पुज्ज करेवि जिणहो विजएण ।
अहिसिंचिउ कन्हु सहुँ णर खयर रएण ॥

तेण वि णिय-चक्कु समच्चियउ परियणु हरिसें रोमंचियउ ।
थंदियण-विंद-दारिद्द हरि विरएविणु पुरउ रहंगु हरि ।
5 संचलिउ जिगीसए दस-दिसहँ देक्खंतहँ खेयर सहसिसहँ ।
साहेविणु मागहु सुरु पवरु पुणु वरतणु णामें सुरु अवरु ।
पुणरवि पहासु सुंदर सवल इय अणुकमेण अवर वि सवल ।
भय भरियंगाइं समागयाइँ गिरि दीवेसइँ सोवायणाइँ ।
पयिवज्जिवि सो परिमिय दीणेहिँ संथुउ णाणा-पाढय जणेहिँ ।
10 तेएण तिखंडइँ वसि करिवि णिय कित्तिए धर धवलीकरेवि ।
पुणु पुज्जिउ खेयर-सुर गणहिँ परियणु पइट्ठु पविमल मणहिं ।
पोयणपुरे उब्भिय धय-णियरे सुरहर सिरि विंभिय सुरखयरे ।

घत्ता—वर उत्तर-सेणि कण्ह पसाएँ पावि ।
जलणजडि कयत्थु हुउ अहियइँ संतावि ॥११८॥

२

तुम्हहँ पइएहु गयणयरहँ वेयड्ढ-सिरोवरि कय-घरहँ ।
एयहो वर-विज्जहो आण लहु सेविज्जहो तुम्ह सया दुलहु ।
इय भासिवि सम्माणेवि वरइँ सहुँ तेण विमुक्कइँ खेयरइँ ।
पोयणपुरवइ छुडु पुच्छियउ खयरिंदें ससणे समिच्छियउ ।
5 तातहो वर-चरणइँ हलि-सहिउ पुरिसुत्तमु णिवडिउ सुरमहिउ ।
सिर सेहर मणियर विप्फुरिउ कम कमले जुवले पणमिउँ तुरिउ ।
रविकित्ति कलंक-विवज्जियउ दोहिंवि आलिंगिवि सज्जियउ ।

---

१. १. D. °वि । २. D. °व° । ३. D. J, V. °णं° ।
२. १. D. °कि ।

१

मागधदेव, वरतनु व प्रभासदेवको सिद्धकर त्रिपृष्ठ तीनों खण्डोंको वशमें करके पोदनपुर लौट आता है

इसके बाद नर व खेचर राजाओंके साथ विजयने जिनपूजा की तथा कृष्ण—त्रिपृष्ठका (गन्धोदकसे) अभिषेक किया।

उस त्रिपृष्ठने भी अपने (विजयी—) चक्रकी पूजा की, हर्षित होकर परिजनोंको (मनो-रंजनों द्वारा—) रोमांचित किया। वन्दीजनोंके दारिद्र्यको दूर किया। (पुनः) वह त्रिपृष्ठ अपने चक्रको सम्मुख करके दशों-दिशाओंको जीतनेकी इच्छासे तथा प्रफुल्लित होकर खेचरोंकी ओर देखता हुआ चला। सुर प्रवर 'मागधदेव' तथा अन्य 'वरतनु' एवं 'प्रभास' तथा अनुक्रमसे अन्य सुन्दर एवं सबल देवोंको सिद्ध किया। पर्वतों एवं द्वीपोंके राजा भी भयाक्रान्त होकर भेंटोंके साथ आये, किन्तु उसने उन्हें वहीं छोड़ दिया। विद्वज्जनों द्वारा संस्तुत वह त्रिपृष्ठ कुछ ही दिनोंमें अपने तेजसे तीनों खण्डोंको वशमें करके तथा अपनी कीर्तिसे पृथिवीको धवलित करके खेचर एवं देवगणोंसे सम्मानित होकर निर्मल मनसे परिजनोंके मध्यमें उपस्थित हुआ। स्वर्गके समान गृहोंकी शोभासे आश्चर्यचकित देवों और खेचरोंके साथ वह त्रिपृष्ठ ध्वजा-पताकाओंसे सज्जित पोदनपुरमें आया। ५ १०

घत्ता—कृष्ण–त्रिपृष्ठके प्रसादसे विद्याधरोंकी उत्तम विजयार्ध पर्वत श्रेणीको प्राप्त करके रिपुजनोंको सन्तप्त करनेवाला वह ज्वलनजटी कृतार्थ हुआ ॥११८॥

२

पोदनपुरनरेश प्रजापति द्वारा विद्याधर राजा ज्वलनजटी आदिकी भावभीनी विदाई तथा त्रिपृष्ठका राज्याभिषेक कर उसकी स्वयं ही धर्मपालनमें प्रवृत्ति

"वैताढ्य (विजयार्ध) पर्वत-शिखरपर निवास करनेवाले तुम-जैसे समस्त विद्याधरोंके स्वामी अब ये ही ज्वलनजटी घोषित किये गये हैं। उत्तम विद्याओंसे सम्पन्न इन (स्वामी) की दुर्लभ आज्ञाओंका पालन तुम लोग शीघ्रतापूर्वक करते रहना।"

विद्याधरोंको यह आदेश देकर प्रजापतिने उस ज्वलनजटीका श्रेष्ठ सम्मान कर उसे अन्य खेचरोंके साथ विदाई दी। खेचरेन्द्र ज्वलनजटी (राज्यसम्बन्धी) मनोरथ-प्राप्तिका मनमें विचार कर पोदनपुरपति प्रजापतिसे आज्ञा लेकर जब चलने लगा तब देवोंमें भी महिमा प्राप्त हलधर सहित पुरुषोत्तम (त्रिपृष्ठ) तत्काल ही अपने उस ससुर ज्वलनजटीके चरणोंमें गिर गया और मणि-किरणोंसे स्फुरायमान मस्तक-मुकुट उसके दोनों चरणोंपर रखकर प्रणाम किया। कलंक-रहित अर्ककीर्त्तिने भी दोनों (बहनोइयों विजय एवं त्रिपृष्ठ) का आलिंगन कर उन्हें विसर्जित किया। ५

देविणु सिक्खा दुहियहे लुहिवि णयणंसु-पवाहइँ तहे कहेवि ।
गउ रहणेउरु लहु सुवण हिउ जलणजडि-वाउवेया-सहिउ ।
10 सोलह-सहसेहिँ णरेसरेहिँ अमरेहिँ अणेयहिँ किंकरहिँ ।
सोलह-सहसेहिँ वहू-यणहिँ सोहइ तिविट्ठु[2] सयणय-मणहिँ ।
घत्ता—सुव-रज्जे[3] णिएवि तुट्ठु पयावइ चित्ति ।
सहुँ वंधु-जणेहिं जिण-धम्मेण पवित्ति ॥११९॥

३

हरि पणवंतहँ खेयर-णरहँ वियसिय-वयणहँ मउलिय-करहँ ।
मउडेसु णिवेसिवि पय-णहहँ किरणावलि णयण-सुहावहहँ ।
आसा-मुहेसु जसु णिम्मलउ पाइवि तिखंड-मेइणि-वलउ ।
तहो पुण्णें[1] मंदु तवइ तरणि सइँ जाय सास-पूरिय-धरणि ।
5 णाऽकाल-मरणु पाणिहुँ[2] हवइ जलहरु सुगंधु पाणिउ सवइ ।
पवहइ समीरु तणु-सुह-यरणु पासेय-खेय-उवसंहरणु ।
विहलइँ[3] न हवंति मणोरहइँ फल-दल-फुल्लड्ढ महीरुहइँ ।
अव्वेरिय[4] कारि अवसरिसु हरिहे संजाउ पहुत्तणु हय-हरिहे ।
इय तहो परिक्खंतहो धरहे अणवरय-समप्पिय-वर-करहे ।
10 सजणिय-मयगलहि णिहिल-जलह जलणिहे जल-घोलिर-मेहलहे ।
सुव जणिय[6] कमेण सयंपहइँ सहुँ एक्कु सुवाइँ ससिप्पहइँ ।
घत्ता—णं पयणिय चोज्जु[7] सव्वत्थवि रमणीए ।
सहुँ पवर-सिरीए कोस-दंड धरणीए ॥१२०॥

४

सिरिविजउ समीरिउ पढमु सुउ वीयउ विजयक्खु पलंव-भुउ ।
जुइपह-णामेण भणिय दुहिय संपुण्ण चंद-मंडल-मुहिय ।
दोहिमि हय-गय रोहण मुणिया णीसेसाउह-विज्जा-गुणिया ।
विण्णिवि पर-वल-दारण मुसल कण्ण वि हुव सयल-कला-कुसल ।
5 एत्थंतरे दूव-मुहाउ सुणि णहयर-वइ ठिउ तवे सिरु विहुणि ।
चिंतइ पोयणपुर-वइ समणे सो पर धण्णउं मण्णेवि भुवणे ।
रहणेउर-सामिउं जासु मइ[1] अणुदिणु संचिंतइ परमगइ ।
ए हय-गय-वंधव एहु धणु इउ किंकर-यणु भत्तिल्ल-मणु ।

---

२. D. °व° । ३. D. °ज्जु ।

३. १. V. °मे° । २. D. °हि । ३. D. °इ । ४. D. °हरा° । ५. J. V. °व्व° । ६. J. V. जा° ।
७. D. °ज्ज ।

४. १. J, V, °इं ।

अपनी पुत्री स्वयंप्रभाको भी शिक्षाएँ देकर तथा उसके नेत्रोंसे बहते हुए आँसुओंको जिस किसी प्रकार पोंछकर स्वजनोंका हितकारी वह ज्वलनजटी वायुवेगके साथ रथनूपुर लौट आया। १०

इधर वह त्रिपृष्ठ सोलह सहस्र नरेश्वर, सेवकोंके समान सेवा करनेवाले अनेकों देव तथा सोलह सहस्र प्रणयिनी वधुओंके साथ सुशोभित होने लगा।

घत्ता—प्रजापति अपने पुत्रका राज्य-संचालन देखकर चित्तमें बड़ा सन्तुष्ट हुआ और बन्धुजनोंके साथ जिन-धर्ममें प्रवृत्ति करने लगा ॥११९॥ १५

३

त्रिपृष्ठ व स्वयंप्रभाको सन्तान-प्राप्ति

विकसित बदन, मुकुलित हाथोंवाले खेचरजनों द्वारा प्रणत तथा उन्हीके मुकुटोंमें प्रविष्ट अपने पद-नखोंकी नयन-सुखावह किरणावलीसे युक्त होकर तथा त्रिखण्ड पृथिवी-वलयको प्राप्त कर दसों दिशाओंमें निर्मल-यशसे युक्त उस त्रिपृष्ठके पुण्यसे सूर्य मन्द-मन्द तपता था; धरती (बिना बोये) स्वयं ही शस्योसे परिपूर्ण रहती थी; प्राणियोंका अकाल-मरण नही होता था, मेघ सुगन्धित जलोंकी रिमझिम-रिमझिम वर्षा किया करते थे; तन-वदनके लिए सुखकारी समीर प्रवाहित रहती थी; जो पसीना एवं थकावटको समाप्त करती रहती थी; जहाँ मनोरथ विफल नहीं होते थे; वृक्ष-समूह फल, दल-पत्र एवं पुष्पोंसे लदे रहते थे। इन सभी आश्चर्यकारी अवसरोंपर प्रतिहरि—हयग्रीवका वध करनेवाला उस हरि—त्रिपृष्ठके लिए प्रभुत्व प्राप्त हो गया। ५

इस प्रकार अनवरत रूपसे प्रचुर-करों (चुंगियों) को समर्पित करनेवाली तथा समुद्रके जलसे घुली-मिली मेखला (सीमा) वाली एवं मद जल प्रवाही मत्तगजोसे सुसज्जित पृथिवीका वह त्रिपृष्ठ परिरक्षण कर रहा था तभी उसकी शशिप्रभावाली पट्टरानी स्वयंप्रभाने क्रमशः एकके बाद एक इस प्रकार दो पुत्रों और एक पुत्रीको जन्म दिया। १०

घत्ता—मानो (उस त्रिपृष्ठको प्रसन्न करनेके लिए) उसकी रमणीरूपी धरणीने प्रवरश्रीके साथ-साथ सभीको आश्चर्यचकित कर देनेवाले उत्तम कोष एवं दण्डको ही उत्पन्न कर दिया हो ॥१२०॥ १५

४

उस सन्तानका नाम क्रमशः श्रीविजय, विजय और द्युतिप्रभा रखा गया

प्रथम पुत्रका नाम श्रीविजय रखा गया तथा दूसरा दीर्घभुजाओंवाला पुत्र विजय नामसे प्रसिद्ध हुआ। पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान मुखवाली कन्याका नाम द्युतिप्रभा रखा गया। दोनों पुत्रोंने अश्वारोहण व गजारोहण विद्याका मनन किया तथा समस्त आयुध विद्याको गुन लिया। दोनों ही पुत्र शत्रुदलके विदीर्ण करनेमें मुसल समान थे। कन्या भी समस्त कलाओंमे कुशल हो गयी। ५

इसी बीच दूतके मुखसे सुना कि नभचरपति (ज्वलनजटी) संसार त्याग कर तपके शिखर-पर जा बैठा है, तब पोदनपुरपति (प्रजापति) ने अपने मनमें विचार किया कि "संसारमे रथनूपुर स्वामी (ज्वलनजटी) ही धन्य है जो स्व-पर (के भेद) को मान गया तथा जिसकी बुद्धि अहर्निश परमगति (मोक्ष) का सुन्दर चिन्तन किया करती है। इस गति एवं मतिमें कुमनवाला नर यही सोचा करता है कि ये हय, गज, बन्धु-बान्धव, यह धन, ये भक्तमनवाले सेवकगण, शत्रुजनोंको १०

ए भड पर वल-णिद्दलण-खमा ए सुहि-सुअ-पिय सहु पाण-समा।
10 इह गइ-मइ चिंतइ णरु कुमणु सेवइ सुधम्मु एक्कु वि ण खणु।
घत्ता—मइं पुणु संपत्तु कुलु वलु लच्छि समाणु।
णर जम्मु सुरम्मु दूसहु तेण समाणु ॥१२१॥

॥ ५ ॥

वर-पुत्त-कलत्त-महंतु सुहु सुहरज्जे[1] पउरु विग्गहँ पमुहुं।
संपत्तु णिहिलु णर-जम्म-फलु एवहि मुणंतु संसारु चलु।
णहु[2] अच्छमि गच्छमि पुत्त तहिं साहमि सुंदरु णिय-कज्जे[3] जहिं।
इय वोल्लिवि मेल्लिवि[4] लच्छि-घरु महि रज्जु सुअहो अप्पेवि पवरु।
पणवेवि पिवियासव[5] मुणिवरहो पय-पंकयाइं जिय-रइवरहो।
सहुँ सत्त-सएहि[6] णरेसरहिं तउ धित्तु दवत्ति दया-वरहिं।
पोयणपुरणाहें तउ वरिवि जिण-भणियायम-भावइँ सरेवि।
घाइ-क्खएण केवलु कलेवि कम्मट्ठ-पास-वंधणु दलेवि।
गउ अट्ठम-महिहे महिंद-थुओ णामेण पयावइ पयडिचुओ।
10 एत्थंतरे जोव्वण-सिरि-सहिया हरिणा अवलोइवि णिय-दुहिया।
घत्ता—पुणु पुणु चिंतेइ मणि झिज्जंतु अजेउ।
को आयहे जोग्गु वरु वर-गुणहिँ समेउ ॥१२२॥

६

सुअ चिंताउलु चित्तेँ तुरिउ हरिणा हलहरु वहु-गुण-भरिउ।
मंतण-हरे सहुँ मंतिहि णविवि भासिउ भालयले सयर ठवेवि।
पिउ पच्चक्खे वि कुलद्धरणु तुहुँ अम्हहँ सुह-सय-वित्थरणु।
पिउणा संतोसें सविसममइ तुह रवि दित्ति व हय-तिमिर-गइ।
5 सयलत्थहँ दंसणु जणवयहँ विरयइ[1] आराहिय पहु-पयहँ।
इउ जाणिवि अक्खहिं कवणु वरु कुल-रूव-कलाइ मुणेवि वरु।
तुह धीयहे जोग्गु महायरहँ चिंतेविणु अहवा खेयरहँ।
तं सुणि संकरिसणु वाहरइ गल-घोसेँ गयणंगणु भरइ।
सो होइ कणिट्ठु वि पहु सिरिए जो अहिउ महीए मणोहरीए।
10 इय वयस भाउण समक्खियए इउ जाणिउं तासु गुणरक्खियए[2]।
तेण जि तुहुँ अम्हहँ पउर-गइ कुल दीवउ लोयणु णण्णु लइ।
घत्ता—णउ णहे णक्खत्तु चंद-कला-समु जेम।
दीसइ रूवेण इह वरु दुहियहि तेम ॥१२३॥

---

५. १. D. °ज्जु। २. D. °उ। ३. D. ज्जु। ४. J. V. में यह पद नही है। ५. D. J. V. पयासव।
६-७. D. सत्तएहिं।

६. १. D. °इ। २. D. °णु।

चूर-चूर कर डालनेमें समर्थ योद्धागण, प्राणोंके समान प्रिय पुत्र एवं मित्रजन मेरे ही हैं किन्तु वह एक भी क्षण सुधर्मका सेवन नही करता।"

घत्ता—"मैने दुर्लभ कुल, वल, लक्ष्मी, सम्मान और तदनुसार ही सुरम्य नरजन्म प्राप्त किया है।" ॥१२१॥

५

राजा प्रजापति मुनिराज पिहिताश्रवसे दीक्षित होकर तप करता है और मोक्ष प्राप्त करता है

"उत्तम पुत्र व कलत्रोंके महान् सुख, हितकारी-राज्य एवं प्रमुख-विग्रह आदि, नर-जन्मके समस्त फलोंको मैने प्राप्त कर लिया, इस प्रकार चंचल संसारको (अपना) मानते हुए अव मै यहाँ नही रह सकता, हे पुत्र, मैं तो अव वहाँ जाना चाहता हूँ जहाँ अपने परम-लक्ष्य (मोक्ष) की साधना कर सकूँ।"

इस प्रकार बोलकर प्रवर लक्ष्मीगृह (राज्यलक्ष्मी) को ठुकराकर पृथिवीका राज्य ५ पुत्रको अर्पित कर, काम विजेता मुनिवर पिहिताश्रवके चरण-कमलोंमे प्रणाम कर उनसे दया-धर्मसे अभिभूत सात सौ नरेश्वरोके साथ तप धारण कर लिया। पोदनपुरनाथने तपश्रीका वरण कर जिनेन्द्रभणित आगमोंके भावोंका स्मरण कर घातिया चतुष्कोंको घातकर केवलज्ञान प्राप्त कर अष्ट कर्मोके पाश-वन्धनका दलनकर कर्म-प्रकृतियोसे च्युत होकर वे प्रजापति नरेश महेन्द्रों द्वारा स्तुत आठवे माहेन्द्र स्वर्गमे उत्पन्न हुए। १०

और इधर, वह हरि—त्रिपृष्ठ अपनी पुत्री द्युतिप्रभाको यौवनश्रीसे समृद्ध देखकर।

घत्ता—अपने मनमें वारम्वार चिन्ता करने लगा कि इस कन्याके योग्य, अजेय एवं श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त वर कौन होगा? ॥१२२॥

६

त्रिपृष्ठको अपनी युवती कन्याके विवाह हेतु योग्य वरके खोजनेकी चिन्ता

पुत्रीकी चिन्तासे आकुल चित्तवाले हरि (त्रिपृष्ठ) ने अन्य मन्त्रियोंके साथ तत्काल ही प्रवर गुणोंसे युक्त हलधर (विजय) को मन्त्रणा-गृहमें (वुलाकर तथा) माथेपर हाथ रखकर प्रणाम करते हुए कहा—"आप पिताजीके सम्मुख भी कुलके उद्धारक तथा हमारे सुखोंका विस्तार करनेवाले थे, तव अव तो पिताके (गृहत्याग कर देनेपर उनके) सन्तोषके लिए आप ही हमारे लिए विपमकालमे सुवुद्धि देनेवाले हैं। आप ही हमारे लिए तिमिर-समूहको हरनेवाली सूर्य-किरणें ५ है, जनपदोंको समस्त पदार्थोका दर्शन करानेवाले तथा प्रभुपदोंकी आराधना करानेवाले हैं। आप सवके जानकार हैं अतः विचार कर कहिए कि आपकी पुत्री (भतीजी) के योग्य महानरों अथवा विद्याधरोंमे कुल, रूप, कला आदिमें श्रेष्ठ वर कौन हो सकता है?" तब वह संकर्पण—बलदेव अपनी गल-गर्जनासे गगनांगनको भरता हुआ वोला—

"कोई छोटा भी हो, किन्तु राज्य-लक्ष्मी तथा सौन्दर्यमें जो अधिक है वह श्रेष्ठ ही माना १० जायेगा। इस विपयमें वय-भावकी समीक्षा नहीं की जाती। यह जनाकर भी उस गुणरक्षिता कन्याके लिए (वर चुनावके लिए) आप ही हम लोगोंकी अपेक्षा प्रवर-गतिवाले कुलदीपक एवं अनन्य लोचन स्वरूप है।

घत्ता—जिस प्रकार आकाशमे चन्द्रकलाके समान सुन्दर अन्य नक्षत्र नही हो सकता, उसी प्रकार अपनी दुहिताके लिए कही भी कोई भी योग्य वर दिखलाई नही देता ॥१२३॥ १५

७

णियवुद्धिए चिंतिवि तुज्झु हउँ णिरवज्ज¹ पयत्तें फुडु कहउँ ।
जइ सा अणरुंचंतहो वरहो दीयइ कासु वि खेयर-णरहो ।
किं वड्ढइ अणुराएण सहुँ इउं जाणे विणु करि ²कन्हु तुहुँ ।
अविरोहु सयंवरु सइँ दुहिया णिय जोग्गु वरउ वर-ससि मुहिया ।
5 इय भणियँ³ वलु कन्हु मणोहरहो सहुँ मंतिहिँ णिग्गय तमहरहो ।
हरि-बल पायडिय-सयंवरहो वित्तंतु विविह-दूवहि वरहो ।
तं सुणि रविकित्ति कलंकचुओ पुत्तेण अमिय तेएण जुओ ।
णिय-सुवइँ सत्तारइँ⁴ पत्तु तहिँ खयरेहिं सयंवरु विहिउ जहिँ ।
णाणा णरवर सय-संकुलउ आवंत वयंत जणाउ लउ ।
10 तोरण अंतरि हर-हलहरइँ अवलोइवि पर भुँववल हरइँ⁵ ।
चक्किहे कमलंमल पुरा णविया अवलोइवि णिय-लोयण-धविया ।
तेहिँ चि सो भुव-दंडेहिँ लहु आणंदेँ आलिंगिउ दुलहु ।
घत्ता—णिव-पायहिँ लग्ग अक्ककित्ति-सुउ धीय ।
ते दिक्खिविजय थिर लोय रमणीय ॥१२४॥

८

सिरिविजएँ सहुँ विजएण निरु नियमाउलु णमियउँ महुर-गिरु ।
तहो दंसणेण हुउसो¹ वि सुहि गंभीरिम-गुण-णिज्जिय-उवहि ।
पुणु पइसिवि उच्छवे लच्छिहरु हरि-हलहरेहिँ सिहुं रायहरु ।
पणवंतहे पियहे सयंपहहे पविइण्णाऽऽसीस मणोरमहे ।
5 थिउ अमियतेउ देक्खिवि पयहँ पणवंत सुतारा गय-रयहँ ।
णिय-सुव-जुवलेण सयंपहए संजोएँ पुण्णमणोरहए ।
वहु सोक्खयारि पणयंद्धियए³ सुसयंवरेण विहुणिय-हियए ।
चक्कवइ दुहिय पविउलरमणा हुअ अमियतेय विणिवद्ध-मणा ।
णं णिय मायाए सिय-तियहँ मणु मुणइँ पुरा पइरइगयहँ ।
10 सिरिविजयहो माणसु संगहिउ सहसत्ति सुतारइँ संखुहिउ ।
परियाणिवि तेण वि तहो तणउँ तक्खणे वित्थारिय-रणरणउँ² ।
घत्ता—इत्थंतरे जोत्त सहियहिँ सोख-णिहाणे ।
जोइप्पह पत्त चारु सयंवर ठाणे ॥१२५॥

७. १. D. °ज्जु । २. D °न्ह । ३. J. V. भणि । ४. D सतारइं J. V. संतारइं । ५. J. V. भुवलरहइं ।
८. १. D. सुहं । २. D. °इं । ३. J. V. पणद्धि° ।

७

अर्ककीर्ति अपने पुत्र अमिततेज और पुत्री सुताराके साथ द्युतिप्रभाके स्वयंवरमें पहुँचता है

"अपनी बुद्धिसे विचार कर मै तुम्हें स्पष्ट कहता हूँ कि निर्दोष प्रयत्न करके उस कन्याकी अनिच्छापूर्वक यदि उसे किसी विद्याधर अथवा मनुष्य वरके लिए प्रदान कर भी दें तो क्या (उसका) उसके साथ अनुराग बढ़ेगा ? हे कृष्ण, यही जानकर तुम अविरोध रूपसे स्वयंवर रचो, जिससे वह चन्द्रमुखी कन्या ही अपने योग्य वरका वरण कर सके।"

अन्धकारको नष्ट करनेवाले मनोहर कृष्णको यह जनाकर बलदेव मन्त्रियोंके साथ बाहर चले गये। कृष्ण और बलदेव (त्रिपृष्ठ और विजय) ने अपने दूतोंके द्वारा वरकी खोज हेतु स्वयंवर सम्बन्धी वृत्तान्त प्रसारित कर दिया। ५

यह सुनकर निष्कलंक (चरित्रवाला) रविकीर्ति अपने पुत्र अमिततेज तथा सुन्दर पुत्री ताराके साथ उस स्थानपर पहुँचा, जहाँ विद्याधरोने स्वयंवर रचाया था, तथा नाना प्रकारके नर श्रेष्ठोंसे व्याप्त, आते-जाते हुए लोगोंके कोलाहलसे युक्त, तोरणोंके भीतर शत्रु-जनोके भुजबलका अपहरण करनेवाले कृष्ण और बलदेवको देखा। चक्री—त्रिपृष्ठके निर्मल चरण-कमलोंमे नमस्कार कर उनके दर्शन करके उन्होंने अपने नेत्रोको पवित्र किया। कृष्ण-बलदेवने भी आनन्दित होकर तत्काल ही दुर्लभ उन दोनों (रविकीर्ति एवं अमिततेज) को अपने भुजदण्डोंसे आलिंगित कर लिया। १०

घत्ता—अर्ककीर्तिकी पुत्री सुताराने नृप त्रिपृष्ठके चरणोंका स्पर्श किया। लोकमें अत्यन्त रमणीक उस कन्याको देखकर विजय (—बलदेव) भौचक्का रह गया ॥१२४॥ १५

८

श्रीविजय और सुतारामें प्रेम-स्फुरण

(त्रिपृष्ठ-पुत्र) श्रीविजयके साथ विजयने अर्ककीर्तिको नियमानुकूल नमस्कार कर मधुर-वाणीमे वार्तालाप किया। अपने गम्भीर गुणोंसे समुद्रको भी जीत लेनेवाला वह अर्ककीर्ति भी उस (श्रीविजय एवं विजय) को देखकर बड़ा सुखी हुआ।

पुनः हरि-हलधरने उत्साहपूर्वक लक्ष्मीगृहके समान सुख देनेवाले राजगृह (राजभवन) मे उन्हें (अर्ककीर्ति, अमिततेज एवं सुताराको) प्रविष्ट कराया। सिर झुकाकर प्रणाम करती हुई मनोरमा प्रियदर्शनी स्वयंप्रभाके लिए अर्ककीर्तिने आशीष दी। एकाग्र चित्तवाले अमिततेज तथा स्नेह विह्वल सुताराने स्वयंप्रभाके चरणोंका दर्शन कर उसे प्रणाम किया। अपने पुत्र-युगलके साथ मनोहरा स्वयंप्रभाका यह संयोग (पूर्व-) पुण्यका फल ही था। ५

विविध सुखकारी, प्रणयस्थिता तथा अनुकूल स्वयंवरसे विधुनितहृदया चक्रवर्तीकी वह कम्पितहृदया पुत्री द्युतिप्रभा अमिततेजके प्रति आकर्षित हृदयवाली हो गयी. ऐसा प्रतीत होता था मानो यह कार्य उसने अपनी माताकी इच्छानुसार ही किया हो। प्रेममे आसक्त (यह) मन (नियमतः ही) पहलेसे ही अपने पतिको जान लेता है। श्रीविजयके आकर्षित मनने सुताराको भी सहसा ही क्षुब्ध कर दिया। उस सुताराका दीर्घ निःश्वासपूर्ण उद्वेग देखकर श्रीविजयने अपना भाव भी व्यक्त कर दिया। १०

घत्ता—इसी बीचमें सखियों सहित वह द्युतिप्रभा सुखनिधान सुन्दर स्वयंवर स्थलपर पहुँची ॥१२५॥ १५

९

परिहरेवि सहियए निवेइय अणुकमेण वररूव-राइय ।
लज्जमाणाए साणणं करि पेराणुहं सरमुहाणणं ।
अमियतेय-वर-कंठ-कंदले घित्त माल विहिणा सुकोमले ।
धय-वडोह-परि-झंपियंवरे णरह पेक्खमाणहँ सयंवरे ।
5 कुसुममाल ताराए मालिया रुणुरुणंत-छप्पय-रालिया ।
मुक्क झत्ति सिरिविजय-कंधरे खयर-मणु हरंतीए बंधुरे ।
करि विवाहु णिय-सुवह सोहणं खेयरावणीसर-विमोहणं ।
चक्कवट्टि-हलहर-विसज्जिओ अक्ककित्ति अहियहि अणिज्जिओ ।
तुट्ठमाणु कहकहव णिग्गओ तणुरुहेण सहुँ णियपुरं गओ ।
10 भुंजिऊण चक्कवइ-लच्छिया सहि तिखंड जुत्ता समिच्छिया ।
णिय-णियाण-वसु कन्हु मुत्तओ मरेवि रुद्द-झाणेण पत्तओ ।

घत्ता—दुत्तरदुक्खोहे सत्तम णरइ सपाउ ।
तक्खणे मेत्तेण तेतीसंवुहि-आउ ॥१२६॥

१०

तं पेक्खेवि विलवइ सीरहरु णयणंसु वाहेँ सिंचिय-अहरु ।
विहुणिय-सिरु कर हय-उरु वि तिह गुणिवरहँ विमणु विद्दवइ जिह ।
थविरहि मति-यणहिँ वोहियउ वर वयणहि कहव विमोहियउ ।
तेण वि परियाणेवि गइ भवहो असरण-दुहयर खण-भंगुरहो ।
5 परिमोक्क सोउ अणु-मरण-मणा हरिकंत सयंपह विहुरमणा ।
विणिवारिवि वयणहिँ सुहकरहिँ मह-मोह-जाय-पीडा-हरहिँ ।
णिय जस धवलिय पिहियंवरहो हुववहु देविणु पीयंवरहो ।
सिरिविजयहो अप्पिवि सयल महिँ भव-दुह-भय-भीएँ लच्छि सहिं ।
हलिणा पणवेवि णिप्पंकयएँ मुणि कणयकुंभ पय-पंकयइँ ।
10 जिण-दिक्ख गहिय सिक्खा सहिया सहुँ णिव-सहसेँ माया-रहिया ।
तव तेएँ घाय-चउक्क हणि केवलणाणेण तिलोउ मुणि ।

घत्ता—पुव्वहँ संवोहि सेस-कम्म-परिचत्तु ।
गइ धम्मु सहाय वलु मोक्खालए पत्तु ॥१२७॥

---

९. D. पा° ।
१०. १. D. वकं । २. D. °य° ।

९

द्युतिप्रभा-अमिततेज एवं सुतारा-श्रीविजयके साथ विवाह सम्पन्न तथा त्रिपृष्ठ—नारायणकी मृत्यु

सखियों द्वारा अनुक्रमसे निवेदित श्रेष्ठ सौन्दर्यादि गुणोंवाले राजाओंको छोड़कर सरस–सुहावनी तथा लज्जितमुखी उस द्युतिप्रभाने अपना मुख फेरकर अमिततेजके सुकोमल कण्ठ-स्थलमें विधिपूर्वक जयमाला डाल दी।

ध्वजपटोंके समूहसे परिझम्पित आकाशस्थित स्वयंवर-मण्डपमें नर-राजाओंके देखते-देखते ही खेचरोंके मनको हरण करनेवाली सुताराने रुणझुण-रुणझुण करते हुए भ्रमरों द्वारा सुशोभित पुष्पमालाको शीघ्र ही श्रीविजयके सुन्दर गलेमें डाल दी। ५

इस प्रकार खेचर-राजाओको मोहित करनेवाले अपनी पुत्रीके शुभ-विवाहको सम्पन्न करके शत्रुजनों द्वारा अनिर्जित वह अर्ककीर्ति चक्रवर्ती (त्रिपृष्ठ) एवं हलधर (विजय) द्वारा विसर्जित किया गया। वह अर्ककीर्ति भी सन्तुष्ट होकर जिस किसी प्रकार (बहन स्वयंप्रभाको छोड़कर) अपने पुत्रके साथ वहाँसे निकलकर अपने नगर पहुँचा। १०

तीनों खण्डवाली पृथ्वीसे युक्त चक्रवर्ती-पदरूपी लक्ष्मीका समिच्छित भोग करके सोते-सोते ही अपने निदानके वशसे रौद्रध्यानपूर्वक मरकर पापी त्रिपृष्ठ—

घत्ता—तत्काल ही दुस्तर दुखोंके गृह-स्वरूप तेंतीस सागरकी आयुवाले सातवें नरकमे जा पहुँचा ॥१२६॥

१०

त्रिपृष्ठ—नारायणकी मृत्यु और हलधरको मोक्ष-प्राप्ति

उस त्रिपृष्ठ—नारायणकी दुर्गति देखकर नयनाश्रुप्रवाहसे सिंचित अधरवाला वह सीरधर (—विजय) विलाप करने लगा। उसने अपने हाथोंसे सिर-उरु आदिको ऐसा विधुनित कर डाला जिस प्रकार कि मुनिवरोंका मन विद्रवित हो जाता है। स्थविर मन्त्रियोंने उसे बोधित किया तथा उपदेश-प्रद प्रवचनोंसे जिस किसी प्रकार उसे विमोहित—(मूर्च्छारहित) किया। उस (हलधर) ने भी अशरणरूप दुखकारी एवं क्षण-भंगुर भव-गतिको जानकर तथा अनुजके मरण सम्बन्धी मनके शोकको छोड़कर, विधुर मनवाली हरिकान्ता-स्वयंप्रभाको भी महान् मोहके कारण उत्पन्न पीड़ाको हरनेवाले सुखकारी वचनोंसे सान्त्वना देकर; अपने यशसे धवलित आकाश रूपी वस्त्रसे आच्छादित पीताम्बरधारी त्रिपृष्ठ—नारायणका अग्निदाह कर तथा संसारके दुखसे भयभीत होकर, श्रीविजयके लिए लक्ष्मी सहित समस्त पृथ्वीका राज्य सौंप दिया (तत्पश्चात्) उस हली (विजय) ने निष्कम्प मुनिराज कनककुम्भके चरण-कमलोंमें प्रणाम कर मायाविहीन एक सहस्र राजाओं सहित शिक्षाविधिपूर्वक जिन-दीक्षा ग्रहण कर ली और अपने तप-तेजसे उसने घातिया-चतुष्कका हनन कर केवलज्ञान द्वारा त्रिलोकको सुना। ५ १०

पूर्व-सम्बोधित शेष अघाति-कर्मोको भी नष्ट कर गतिमें सहायक धर्म द्रव्यकी सहायतासे वल (—विजय) ने मोक्षालय प्राप्त किया ॥१२७॥

११

एत्थंतरे णरइ विचित्तु दुहु अणुहुंजे विणु अलहंतु सुहु ।
कह-कहव विणिग्गउ कय हरिसे[1] सरि-सर-सिहरिहिं भारह वरिसे[2] ।
सो चक्कपाणि पिंगल-णयणु भंगुर-दाढा-भासुर-वयणु ।
सीहयरिहि भीसणु सीहु हुओ णं वइवसुसइ अवयरिउ हुओ ।
5 अविरय-दुरियासउ पुणुवि हरि गउ पढमणरइ करि पाउ गरि ।
जो हरि गउ णरइ मइंद मुणि[3] सो तुहुं संपइ एवहिं णिसुणि ॥
णरय-भव-समुब्भउ दुहु कहमि णिय-मइ-अणुसारें णउरहमि ।
पावेवि कसणु किमि-कुल-वहणु दुग्गंध-हुंड-संठाण तणु ।
उवरासु पएसहो परिचडइ णं वाणु अहो-गइ पुणु पडइ ॥
10 भय-भरिय-चित्तु तं णिएवि णिरु णारय-जणु घग्घर-घोर गिरु ॥

घत्ता—जंपइ "मरु मारि– धरे धरे" तं णिसुणेवि ।
सो णारउ चित्ति चिंतइ सिरु विहुणेवि ॥१२८॥

१२

को हउँ किं मइँ किउ चिरु दुरिउ जेणेत्थ समुप्पण्णउँ तुरिउ ।
इय चिंततहो तहो हवइ लहो विवरीओवहि-पविहिय-कलहो ।
णाणेण तेण सव्वु चि मुणइँ पंचविह दुक्ख णिहणिउँ[1] कणइँ ।
हुयवहे घिवंति नारय मिलिवि पायंति धूमुहुँ[2] निद्दलिवि ।
5 पीलिज्जंतउ जंतेहिं णिरु विलवइ विमुक्क-कारुन्न-गिरु ।
अइ कूर-तिरिय-निद्दलिय तणु कंदंतु महामय-भरिय-मणु ।
सह-जाय-तन्ह घरि सुक्कु मुहुँ भज्जंतु झत्ति वइरिय-विमुहुँ ।
पइसइ वइतरणिहि तरियगइ विस-पाणिय-पाण-निहित्त-मइ ।
नारइयहिँ उहय-तड-ट्ठियहिँ कर-णिहिय-कुलिस-मय-लट्ठियहिँ ।
10 पुणु पुणु वि धरेविणु गाहियइँ णाणाविह दुक्खहे साहियइँ ।
कह कहव लहेविणु रंध पहु आरुहइ महीहर-सिहरि लहु ।

घत्ता—हरि-कंकराल पुंडरीय हउ तम्मि ।
अइ असुहु लहेवि पइसइ तरु-गहणम्मि ॥१२९॥

---

११. १. D. °सेव । २. D. °सि । ३. D. मणु ।
१२. १. D. णिणिउ । २. D. धूमुमुहुं ।

११

त्रिपृष्ठ—नारायण नरकसे निकलकर सिंहयोनिमें, तत्पश्चात् पुनः प्रथम नरकमें उत्पन्न । नरक-दुख-वर्णन

इसी मध्यमें त्रिपृष्ठ—नारायणने नरकमें विचित्र दुखोंको भोगा, वहाँ वह लेश मात्र भी सुखानुभव न कर सका । जिस किसी प्रकार वह चक्रपाणि नदी और तालावोंसे हर्षित भारतवर्षमें एक पर्वत-शिखरपर पिंगल-नेत्र, भयानक दाढ़ों एवं तमतमाते वदनवाला तथा सिंहोंमे भी भयानक सिंह योनिमें उत्पन्न हुआ । वह ऐसा प्रतीत होता था, मानो दूसरा वैवस्वत-पति—यमराज ही अवतरित हुआ हो । ५

निरन्तर दुरिताशय वह हरि—त्रिपृष्ठका जीव (सिंह) पापकारी कार्य करके पुनः प्रथम नरकमें जा पहुँचा ।

हरिका वह जीव—मृगेन्द्र जिस नरकमें जाकर उत्पन्न हुआ वहाँके दुखको अपनी बुद्धिके अनुसार कहना चाहता हूँ; (क्योंकि) उसे कहे बिना रहा नहीं जाता । अतः अब तुम उसे सुनो—"कृमि-समूहका वहन करनेवाले, दुर्गन्धि पूर्ण, हुण्डक सस्थानवाले तथा काले शरीरको १० प्राप्त कर (वे नारकी) जहाँ उत्पन्न होते हैं, उस स्थानसे बाणकी तरह नीचेकी ओर मुख करके वे (नरक भूमिपर) गिर पड़ते हैं। भयाक्रान्त चित्तवाले दूसरे नारकी उसे देखकर भयंकर घरघराती हुई आवाज में—

घत्ता—कहते हैं—'मारो', 'मारो', 'पकड़ो', 'पकड़ो' । उसे सुनकर वह नारकी अपना सिर धुनता हुआ मनमें विचारता है—॥१२८॥ १५

१२

नरक-दुख-वर्णन

"मै कौन हूँ ? मैने पूर्वभवमे क्या पाप किया था ? जिस कारण मै तत्काल ही यहाँ उत्पन्न हो गया ।" इस प्रकार विचार करते हुए उस नारकी (त्रिपृष्ठके जीव) को तत्काल ही कलह करानेवाला कुअवधिज्ञान उत्पन्न हो गया । उसने अपने उस कुअवधिज्ञानसे कण-कण तक जान लिया तथा पाँच प्रकारके दुखोंसे पीड़ित हो गया । उसे नारकी जन मिलकर अग्निमे झोंक देते थे, मुख फाड़कर धुआँ पिला देते थे, यन्त्रों (कोल्हू) से पेल डालते थे । वह करुणाजनक दहाड़ ५ मारकर विलाप करता रहता था । अति क्रूर तिर्यंचों द्वारा विदारित शरीरसे युक्त वह भयंकर भयसे आक्रान्त होकर क्रन्दन करता रहता था । सहज ही उत्पन्न प्यासके कारण मुख सूखता रहता था, फिर भी वैरीजन बार-बार शीघ्रतापूर्वक उसका विदारण करते रहते थे और विष-मिश्रित पानी पिलाकर मार डालनेके विचारसे उसे वैतरणी नदीमे त्वरित-गतिसे प्रवेश करा देते थे । वहाँ उस नदीके दोनों किनारोंपर बैठे नारकीजन हाथमे लिये हुए वज्रमय लाठियोसे १० बार-बार उसे मारकर डुबाते रहते थे और इस प्रकार नाना प्रकारके दुख देते रहते थे । जिस किसी प्रकार कोई छिद्र स्थल पाकर शीघ्र ही वह पृथिवीतलपर आ पाता था—

घत्ता—तब, वहाँ भी विकराल मुखवाले सिंह और व्याघ्रों द्वारा हत होनेके कारण अत्यन्त दुखी हो वह (बेचारा) सघन वृक्षोंवाले वनमें प्रवेश कर जाता था ॥१२९॥

१३

तहिं खेय[1]-खीणंगु खणु जाम वीसमइँ न लहेइ केणवि पयारेण नारमइँ ।
अइ निसिय-मुह-सत्थ-सम-पत्त-मुक्खेहिं तरुवरहिं दारियइँ परिचिछिन्न-दुक्खेहिं ।
दंसाइँ कीडेहिं[2] क्रूरेहिं दंसियइँ वज्जमय तुंडहिं भक्खिवि विहंसियइँ ।
हुयवहि घिवेऊण मुग्गर पहारेहिं धूरियइँ[3] मारियइँ पर-पाण-हारेहिं ।
5 करवत्त तिक्खग्ग-धाराहिं फाडियइँ दिढु वंधि लुट्टंति पुणु पुणु वि ताडियइँ ।
वज्ज-मय-नारीहु आलिंगणं देइ नारइय-वयणहिं कारुन्नु कंदेइ ।
अवि-महिस-मायंग-कुक्कुडहँ तणु लेइ असुरेरिउ झत्ति कोवेण धावेवि ।
आरत्त नयणेहि दिक्खेवि जुज्झेइ महुँ अवर-णारइयसंघेण जुज्झेइ ।
कर-चरण-जुय रहिउ तरुवरहिं आरुहइ नारइय-संदोहु देखेवि संकुहइ ।
10 निय-मइए सुहुमत्ति पविरयइ जं जं जि पयणेइ फुडु भूरि तहो दुक्खु तं तं जि ।
इय नरय-दुक्खाइँ सहिऊण तुहुँ जाउ खर-नहर-निद्दलिय करिकुंभ मयराउ ।

घत्ता—इय हरिणाहीस तुज्झु भवावलि वुत्त ।
एवहिं पुणु चित्तु थिरु करि सुणु समजुत्त ॥१३०॥

१४

अविरइ कसाय जोएहिं थिउ मिच्छत्त पमायहिं णिरउ जिउ ।
परिणाम वसिं तहो संभवइ फुडु वंधु तिलोयाहिउ चवइ ।
वंधेण चउग्गइ गइ लहइ गय अणुवंधिं विग्गहु धरइ ।
विग्गहहु होंति इंदियइँ लइ इंदियहि वि जायइँ विसयरइँ ।
5 विसयरइहि पुणरवि दोस चिरु भवसायरि हिंडइ तेहि निरु ।
वय-संजुउ आइ-वयहिं रहिउ इय वंधु जिणेहिं जीवहो कहिउ ।
सो मयवइ होहि पसम निलउ विरयहिं कसाय दोसहँ विलउ ।
कुमयाणुवंधु परिहरिवि लहु जिणवर-मउ मणि भावहिं दुलहु ।
ससमइँ सयलइँ जीवइ गणिवि वह-रह विहुणहिं जिणमउ मुणिवि ।
10 अहो जंपंतउ इंदियहि सुहु हर वर मणि जाणहि तं जि दुहु ।

घत्ता—णव-विवरहिं जुत्तु असुइ सुरालि-णिवद्धु ।
किम कुल-संपुन्नु खइ मलेण उट्ठद्धु ॥१३१॥

---

१३. १. D. खेयर । २. D. में यह पद नहीं है । ३-४. D. इं । ५. D. °ट्टॉ । ६. J. V. कुं° ।
७. . °णि ।

१३

नरक-दुख वर्णन

उस सघन-वृक्षमें खेद-खिन्न अंगवाला वह (त्रिपृष्ठका जीव) कुछ क्षण विश्राम करना चाहता था, किन्तु किसी भी प्रकार वहाँ आराम नही पाता था। शस्त्रोके समान अति तीक्ष्ण मुखवाले पैने पत्तोंसे युक्त वृक्षों द्वारा नानाविध दुखोंके साथ उसे विदीर्ण कर दिया जाता था। दंसमसक आदि दुष्ट कीड़ों द्वारा डस लिया जाता था, वज्रमयी चोचोंसे खाया जाकर नप्ट कर दिया जाता था फिर अग्निमें झोंककर प्राणापहारी मुद्गर-प्रहारोंसे चूरा जाता था। कर-पत्र— ५ आरारूपी तीक्ष्ण खड्ग-धारासे फाड़ डाला जाता था, दृढ़तापूर्वक वाँधकर तथा लिटाकर उसे वार-वार पीटा जाता था। वज्रमयी नारीसे आलिंगित किया जाता था। नारकियोंके सम्मुख वह करुण-क्रन्दन करता था, और भी, भैंसा, हाथी व कुक्कुटके शरीर धारण कर तथा असुर कुमार (जातिके देवों) द्वारा प्रेरित होकर वह शीघ्र ही क्रोधपूर्वक दौड़कर लाल-लाल नेत्रोंसे देखता था और अन्य नारकियोंके साथ हड़वड़ाकर जूझ पड़ता था। नारकियोंके झुण्डको देखते १० ही क्षुब्ध होकर दोनों हाथों और पैरोंसे रहित होनेपर भी (शाल्मलि—) वृक्षपर चढ़ जाता था। अपनी बुद्धिसे सुखप्रद मानकर (उसने) जो-जो भी उपाय किये वे-वे सभी उसे निश्चय ही अधिक दुखद ही सिद्ध हुए—इस प्रकारके नरकके दुखोंको सहकर तू अपने खर-नखोसे करि-कुम्भको विदीर्ण कर देनेवाला मृगराज हुआ है।

घत्ता—इस प्रकार हे हरिणाधीश, तेरी भवावलि कही। अव पुनः चित्त स्थिर कर आगे १५ की सुन ॥१३०॥

१४

अमिततेज मुनि द्वारा मृगराजको सम्बोधन। सांसारिक सुख दुखद ही होते हैं

अविरति, कपाय और योगोंमें स्थित तथा मिथ्यात्व और प्रमादमें निरत यह जीव, परिणामोंके वश (अपने योग्य) वन्ध—कर्मवन्ध करता है और (चारों गतियोंमें) उत्पन्न होता है, ऐसा त्रिलोकाधिपने स्पष्ट कहा है। वह वन्धसे चतुर्गति रूप गमनको प्राप्त करता है। गतियोके अनुवन्धसे ही वह विग्रहको धारण करता है। विग्रहसे शीघ्र ही इन्द्रियाँ मिलती हैं, इन्द्रियोंसे विषय-रति उत्पन्न होती है। विपय-रतिसे पुनरपि राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं। जिनके कारण वह ५ चिरकाल तक निरन्तर ही भवसागरमे घूमता-भटकता रहता है। जीवका यह कर्मवन्ध व्यय-युक्त अथवा आदि-व्ययसे रहित है, ऐसा जिनेन्द्रने कहा है। अतः हे मृगपति, तू शान्तिका निलय वन, तथा विरती वनकर कपाय-दोपोंका विलय कर, कुमति—मिथ्यात्वके अनुवन्धका शीघ्र ही त्याग कर, जिनवरके दुर्लभ मतकी अपने मनमें भावना कर, अपने समान ही समस्त जीवोंको गिन, जिनमतका स्मरण कर (जीवोंके) वधसे रतिविहीन हो, अरे, जिसे इन्द्रियोंका सुख कहा जाता १० है, हे सिह, उसे भी तू दुख ही जान।

घत्ता—यह काय नौ-छिद्रोंसे युक्त, अपवित्र, शिरा-समूहसे वँधा हुआ, क्रमि-समूहसे भरा हुआ, विनश्वर तथा मलसे परिपूर्ण रहती है ॥१३१॥

१५

दुग्गंधु चम्म-पडलिं छइउ णाणा विहु-वाहिहिँ परिलइउ।
पयडट्ठि-विहिय-दिढ-जंतु-समु रस-वस-रुहिरंतावलिय समु।
एरिसु सरीरु एउ जाणि तुहुँ कुरु सीह मगत्तहो मणु वि गुहुं।
जइ इच्छहि मयवइ मोक्ख सुह लहु दुविहु परिग्गहु मिल्लि तुहु।
5 घर-पुर-नयरायर-परियणइँ गो-महिसि-दास-कंचण-रुणइँ।
एयइँ वाहिरइँ परिग्गहइँ तज्जियहि समणि नं दुग्गहइँ।
मिच्छत्त-वेय-रायहिँ सहिया हासाइय-दोससया अहिया।
चत्तारि कसाय-समासियइँ अब्भंतर-संगइँ भासियइँ।
इय जाणि चिंति अप्पउ जे तुहुँ वर-बोह-सुदंसण-गुणहिं महु।
10 इय राय-समागम-लक्खणइँ भिण्णइँ भावाइँ विलक्खणइँ।
जइ णिवसहि संजम-धरणिहरे सम्मत्त गुहोयरि तिमिर हरे।
घत्ता—सम-णहहिँ दलंतु कूर कसाय गइंद।
ता तुहुँ फुडु भव्वु होहि मइंदु मइंद ॥१२२॥

१६

हिययरु ण किं पि सुहमाणसहो कम्मक्खउ ते ण होइ परहो।
जिण वयणु-रसायणु पविउलुवि कण्णंजलि-पुडहि पियहि खलु वि।
विसय-विस-तिसा णिरसिवि णरहो अजरामरत्तु विरयइ न कहो।
कोवग्गि समंवुहि उवसमहिँ अइमद्दवेण माणु वि दमहिं।
5 अज्जव गुणेण माया जिणहिँ मुत्र लोहु सउच्च उच्च मणहिँ।
भो वीहहे जइ ण परीसहहेँ उवसम रइ हरिवर दूसहहेँ।
ता तुज्झ विमलयरु जसु सयलु धवलइ धरणीयलु गयणयलु।
परमेट्ठि-पाय-पंकय-जुय हो विरयहि पणामु बुहयण-थुव हो।
परिहरु तिसल्ल दोसइँ भयइँ परिपालि पयत्तेँ अणुवयइँ।
10 घत्ता—णिय देह ममत्तु परिदूरुज्झहे चित्तु।
कुरु हरिणाहीस जो करुणेण पवित्तु ॥१२३॥

---

१५. १. J. V. मं।
१६. १. D. V. °प। २. D. J. V. पं°। ३. D. J. V. कण्णेण।

१५

मृगराजको सम्बोधन

यह काय दुर्गन्धरूप, चर्मपटलसे आच्छादित, नाना प्रकारकी व्याधियोंमें परिलिप्त, विकट हड्डियोंसे युक्त दृढ़ यन्त्रके समान है तथा पंचरस, वसा, रुधिर और अंतड़ियोंसे युक्त है। हे सिंह, यह जानकर तू ममत्वसे (अपने) मनको विमुख कर। हे मृगपति ! यदि तू मोक्ष-सुखको चाहता है तो शीघ्र ही दोनों प्रकारके परिग्रहोंको त्याग। दुर्ग्रहोंके समान ही घर, पुर, नगर, आकर, परिजन, गो, महिष, दास, कंचन और कठा (धान्य), रूप वाह्य परिग्रहोंको अपने मनसे हटा। ५ मिथ्यात्व, वेद, एवं राग सहित हास्य (रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा) आदि अहितकारी दोषोंसे युक्त तथा चार कषाये ये अभ्यन्तर-परिग्रह कहे गये है। इन्हें जानकर तू सम्यग्ज्ञान एवं सम्यग्दर्शनादि गुणोंसे युक्त आत्माका चिन्तन कर। इस प्रकार रागके समागमके लक्षणोंको विलक्षण भावरूप एवं भिन्न समझ। जब तू संयमरूपी पर्वतकी अज्ञानान्धकारका हरण करनेवाली सम्यक्त्वरूपी गुफामे निवास करेगा तथा— १०

घत्ता—हे मृगेन्द्र, वहाँ तू अपने उपशम भावरूप नखोंसे क्रूर कषायरूपी गजेन्द्रोंका दलन करेगा तब वहाँ स्पष्ट ही भव्य मतीन्द्र—ज्ञानी बनेगा ॥१३२॥

१६

सिंहको सम्बोधन—करुणासे पवित्र धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है

मनका विचारा हुआ कोई भी भौतिक सुख हितकारी नही होता, क्योंकि उससे कर्मक्षय नही हो पाता। (इस प्रकार) दुष्ट स्वभाव होते हुए भी उस सिंहने जिनवाणीरूपी रसायनका अपने कर्णरूपी अंजलि-पुटोंसे पान किया। विषयरूप विषकी तृषाका निरसन, कहो कि, किस भव्य-पुरुषको अजर-अमर नही बना देता ? (हे सिंह तू) अपनी क्रोधाग्निको शमरूपी समुद्रसे शान्त कर, अति उत्तम मार्दवसे मानका दमन कर, आर्जव-गुणसे मायाको जीर्ण (शीर्ण) कर, ५ शौच (अन्तर्बाह्य पवित्रता) पूर्ण उच्च मनसे लोभको छोड़। हे हरिवर, यदि तू दुस्सह परीषहोंसे न डरेगा (और) उपशममे रत रहेगा, तव तेरा समस्त निर्मल यश धरणीतल एवं गगनतलको धवलित कर देगा। (अव तू) वुधजनों द्वारा स्तुत पंच-परमेष्ठियोंके चरण-कमलोंमें प्रणाम कर। तीनों शल्यों, दोषों, मदोंको छोड़, तथा प्रयत्नपूर्वक अणुव्रतोंका पालन कर।

घत्ता—हे हरिणाधीश, अपने चित्तसे शरीरके प्रति ममत्व-भावका सर्वथा परित्याग कर १० तथा जो करुणासे पवित्र है उस (धर्म) को (पालन) कर ॥१३३॥

१७

तुह चित्ति विसुद्धि हवेवि जिह महसत्ति पयत्तें करहि तिह ।
वे पंक्ख मेत्तु हो पंचमुह णिच्छउ मुणि अच्छइ आउ तुह ।
भणु तियरण-विहिणा ताम णिरु णिय पावजाउ जो आउ थिरु ।
सार-यर-समाहिए णित्तु कुरु सण्णासु हियए धरि पंचगुरु ।
भो गय-भय तुहुँ एयहो भवहो हो होसि भरहे पाउब्भवहो ।
दहमइ भरि जिणवरु सुरमहिउ कमलोयरेण मुणिणा कहिउ ।
अम्हहुँ अग्गइँ किंपि ण रहिउ अम्हेहि वि नियमणे महहिउ ।
तुह वोहणत्थु तहो वयणु सुणि अण्णेत्थ समागय एउ मुणि ।
मुणिवर मणु णिप्पहु हुइ जइवि भव्वत्थे होइ सप्पिहु तइवि ।
वयविरु अणुसासेवि तच्चं पहु हरि-तणु फंसेवि स-यरेण लहु ।

घत्ता—समणिच्छिय वाणि गय मुणिवर गयणेण ।
अवलोविज्जंत हरिणा थिर-णयणेण ॥१३४॥

१८

एत्थंतरे अणरए जाय-मणे सीहहो मुणि-विरहें कहो-ण जणे ।
संतहॅ विओउ पयणइँ असुहु मयवइ मेल्लिवि मुणिवरह दुहु ।
सहुँ संगें सइ अणसणहिं ठिउ तत्थ वि सिल-उवरे मुणे विहिउ ।
विणिहिय-तणु णिवडिउ सिलए जिह ण चलइ दंडु व हरिणारि तिह ।
जह वर-गुण-गण-वर भावणेहिं हुउ सुद्ध-लेसु अइ-पावणेहिं ।
पवणायव-सीय-परीसहहॅ पीडा ण गणइं मण-दूसहहॅ ।
दंसमसय-दट्ठु विसम धरइ धीरत्तणु खणु वि न परिहरइ ।
छुह तण्हा विवसु न खणु वि हुउ जिणवर-गुरु-रंजिउ सीहु मुउ ।
सुह-धम्म-फलेण मइंदु गउ सोहम्म सग्गे करि पाव खउ ।
अमरहरे मणोरमे देउ हुउ णामेण हरिद्धउ पवल-भुउ ।

घत्ता—सत्त-रयणि-देहु णिरुवम-रूव-णिवासु ।
सम्मत्त हो सुद्धि पयणइँ सोखु न कासु ॥१३५॥

---

१७ १. J. V °लो । २. J. V, °व्व ।

१७

सिंहको प्रबोधित कर मुनिराज गगन-मार्गसे प्रस्थान कर जाते हैं

(हे सिंह—) तू ऐसा प्रयत्न कर, जिससे सहसा ही तेरे हृदयमें विशुद्धि उत्पन्न हो जाये। हे पंचमुख—सिंह, अब तेरी आयु मात्र दो पक्ष (एक माह) की ही शेष है, इसे तू निश्चय जान। अतः अब जो आयु शेष है उसमे (तू) बतलायी गयी, त्रिकरण-विधिसे अपने (समस्त) पापोंको दूर कर। हृदयमे पंचगुरु धारण करके सारभूत समाधि द्वारा नित्य संन्यास धारण कर। हे निर्भय, एक ही भवमे तेरा प्रादुर्भाव भरतक्षेत्रमे होगा। दसवें भवमें तू देवों द्वारा प्रशंसित 'जिनवर' बनेगा। ऐसा कमलाकर नामक मुनिराजने (तुम्हारे विषयमे) कहा है। (उन्होंने जो कहा था सो सब तुम्हें कह ही दिया) अब आगे हमारा कुछ भी (कार्य शेष) नही रहा। (उनके उपदेश-पर) हमने भी अपने मनमें श्रद्धान किया है। तथा तुम्हें भी सम्बोधित करनेके लिए उन मुनि (कमलाकर) का आदेश सुनकर ही मै यहाँ आया हूँ। यद्यपि मुनिवर तो अपने मनमे निष्पृह ही होते है तथापि भव्य जनोके लिए वे स-स्पृह होते है। इस प्रकार कहकर, तत्त्व-पथका अनुशासन कर तथा शीघ्र ही सिंहके शरीरका स्पर्श कर।

घत्ता—समभावसे निश्चित वाणीवाले वे मुनिवर हरिवरके स्थिर नेत्रो द्वारा देखे जाते हुए गगन-मार्गसे चले गये ॥१३४॥

१८

सिंह कठिन तपश्चर्याके फलस्वरूप सौधर्मदेव हुआ

उन मुनिराजके चले जानेपर उनके विरहमे सिंहका मन अन-रत अर्थात् दुखी हो गया। सन्त-जनोंका वियोग, कहो कि, किसके दुखका कारण नहीं बनता ? किन्तु वह मृगपति मुनिवरके वियोगका दुख अन्तर्बाह्य परिग्रहोके साथ ही त्यागकर तथा (मुनि द्वारा कथित विधिसे) अपना हित मानकर अनशन हेतु एक शिलापर बैठ गया। जब वह हरिणारि—सिंह अपना शरीर स्थिर कर शिलातलपर पड़ गया तब वह दण्डकी तरह स्थिर हो गया (चलायमान न हुआ)। यतिवरके गुण-गणोंके प्रति अति पवित्र भावनाओसे वह सिंह शुद्ध-लेश्या परिणामवाला हो गया। मनको अत्यन्त दुस्सह पीड़ा देनेवाली पवनसे आतप और शीत-परीषहोंकी पीड़ाको भी वह कुछ न समझता था। दंश-मशकोसे डसा हुआ होनेपर भी वह समभाव धारण किये रहा तथा एक क्षणको भी उसने धैर्यका परित्याग न किया। क्षुधा और पिपासासे वह एक क्षणको भी विवश न हुआ। इस प्रकार वह सिंह जिनवरके गुणोंमे अनुरक्त रहकर ही मरा। शुभ धर्मध्यानके फलस्वरूप पापोंका क्षय कर वह मृगेन्द्र सौधर्म-स्वर्गमे गया और वहाँ मनोरम अमर विमानमें प्रबल-भुजाओ-वाला हरिध्वज नामका देव हुआ।

घत्ता—उस देवका अनुपम-सौन्दर्यका निवासस्थल शरीर सात रत्नि प्रमाण था। सम्यक्त्व-शुद्धि किसके लिए सुखप्रद नही होती ? ॥१३५॥

१९

जय जय सद्दिहिँ अहिणंदियउ देवेहि मिगयरिणु वंदियउ।
सुरणारिहिँ मंगल-धारिणिहिँ गायउ घण वय मण-हारिणिहिँ।
तहो सद्दें सो वि समुट्ठियउ चिंतंतउ मणे उक्कंठियउ।
को हउँ सुपुण्णु किं मइँ कियउ अवरेँ जम्मंतरे संचियउ।
तहिँ समइँ अवहिणाणेण मुणि णियचरिउ सयलु संसउ विहुणि।
तत्थहो जाएविणु सुरेहिँ सिहुँ कम-कमल जुवलु मुणिवरहो तहो।
पणवेप्पिणु तेण समच्चियउ कंचण कमलहिँ सुहु संठियउ।
पुणु-पुणु हरिसिय चित्तेण निरु जंपिउ अवलोएँ तेण चिरु।
जो दुरिय कूवे णिवडंतु हरे तुम्हेँ उद्धरियउ पुरउ सरि।
वर वयण वरत्तहिँ वंधिवरु सोहउ एवहि सुरु सीहचरु।
जाइउ जुवि-उज्जोविय गयणु उण्णइ ण करइ कहो मुणिवयणु।
इय भणि मुणि-पय-पुज्जेवि अमरु पणवेप्पिणु सहसा गउ सहरु।
तहिँ णिवसइ सो सुमरंतु मणे सुर णियरालंकिउ खणे जि खणे।
तं जसु णामेँ विहडइ दुरिउ जो वर केवल लच्छिए कलिउ।

घत्ता—विस-रह-चक्कासु णेमिचंद जस धामु।
जय सिरिहर मेत्तु परिणिण्णासिय कामु॥१३६॥

इय सिरि-वड्ढमाण-तित्थयर-देव-चरिए पवर-गुण-रयण-णियर-भरिए विवुह-सिरि-सुकइ-सिरिहर विरइए साहु सिरि णेमिचंद अणुमण्णिए सीह-समाहि-लंभो णाम पढो परिछेओ सम्मत्तो[1]॥ संधि ६॥

यः सर्व्वदा तनुभृतां जनितप्रमोदः
सद्बंध मानस समुद्भव तापनोदः।
सर्व्वज्ञ सद्वृष महारथ चक्रणेमि,
नंन्दत्वसौ शुभमतिर्भुवि नेमिचन्द्रः॥

१९ १. D. °इ. । २. D. चि. । ३. D. णॅ।
१. D. समत्तो।

१९

वह सौधर्मदेव चारण-मुनियोंके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने हेतु उनकी सेवामें पहुँचता है

देवोंने उस मृगरिपु (—सिंहके जीव) हरिध्वज—देवका जय-जय शब्दोंसे अभिनन्दन कर वन्दना की। मंगल-द्रव्य धारण करनेवाली मनोहारी देवियोने तार स्वरसे मंगल-गीत गाये। उन देवांगनाओके संगीतसे वह हरिध्वज देव भी जागृत हो उठा तथा उत्सुकतावश मनमे विचारने लगा कि—"मै कौन हूँ, पिछले जन्ममें मैंने कौन-से उत्तम पुण्योंका संचय किया था ?" उसी (विचार करते) समय उसने अवधि-ज्ञानसे समस्त संशयोंको दूर कर अपना समस्त पिछला ५ जीवन-चरित जान लिया।

वह हरिध्वज देव अन्य देवोंके साथ पुनः (भरतक्षेत्र स्थित) उन्ही मुनिवरके चरण-कमलोंमें पहुँचा और उसने प्रणाम कर स्वर्ण-कमलोसे उनकी पूजा की फिर प्रसन्नतापूर्वक वही बैठ गया। चिरकालके बाद (समाधि टूटनेपर) मुनि द्वारा देखे जानेपर हर्षित चित्तपूर्वक उसने कहा—"पिछले जन्ममें आपने अपने हितोपदेशरूपी बड़ी भारी रस्सीके द्वारा अच्छी तरह १० बाँधकर पापरूपी कुएँमे पड़े हुए जिस सिंहका उद्धार किया था, वही सिंहका जीव मै हूँ जो गगन-को उद्योतित करनेवाले इन्द्रके समान देव हुआ हूँ।" (आप ही) कहिए कि मुनि-वचन किसकी उन्नति नही करते ?

इस प्रकार कहकर तथा मुनि-पदोंकी पूजा कर वह देव प्रणाम कर शीघ्र ही अपने निवास-स्थानकी ओर चला गया। देव-समूहोसे अलंकृत वह हरिध्वज देव स्वर्गमें निवास करता हुआ भी १५ अपने मनमें प्रतिक्षण उन मुनिवरोंका स्मरण करता रहता था। जिनका नाम लेने मात्रसे ही पापोंका क्षय हो जाता था तथा जो उत्तम केवल-लक्ष्मीसे युक्त थे।

घत्ता—धर्मरूपी रथके चक्कोंको आशुगति एवं नियमित रूपसे चलाते रहनेवाले यशोधाम नेमिचन्द्र तथा कामवासनाको नष्ट कर, जयश्रीके निवास-स्थल श्री श्रीधर कविकी मैत्री (निरन्तर) बनी रहे ॥१३६॥ २०

छठवीं सन्धि की समाप्ति

इस प्रकार प्रवर गुण-रत्न-समूहसे भरे हुए विबुध श्री सुकवि श्रीधर द्वारा विरचित साधु श्री नेमिचन्द्र द्वारा अनुमोदित श्री वर्धमान तीर्थंकर देव चरितमें सिंह-समाधि लाभ नामका छठवाँ परिच्छेद समाप्त हुआ ॥सन्धि ६॥

आशीर्वाद

जो सदा जीवोंको प्रमुदित करता रहता है, जो सद्बन्धु जनोके मनके सन्तापका हरण करता रहता था, जो सर्वज्ञके हितकारी महारथके चक्रकी नेमिके समान था ऐसा वह शुभमति (आश्रयदाता) नेमिचन्द्र पृथ्वीतलपर जयवन्त रहे ॥

संधि ७

१

एत्थंतरे जीव णिरंतरे धादइसंडि सुदीवए।
वित्थिण्णइँ णयरे रवण्णइँ बारह ससि-रवि-दीवए॥

पुव्वामरगिरि-पुव्व विहाइए विउल-विदेहंतरि विक्खायए।
वच्छा-विसउ मणोहरु णिवसइ जहिँ मुणि-गणु भवियण-मणु हरिसइ।
5 सीया-सरि-तड-माय-विलग्गउ घर-सिहरावलि-णहयल-लग्गउ।
पंचवीस जोयण-उत्तुंगउ कीलमाण-गय-णयरहिँ चंगउ।
पंचास-जि-जोयण-वित्थिण्णउँ रुप्पय-मउ मणियर-गण चित्तउ।
जहिँ सव्वत्थ जंति णिव्भंगउ करे-करवाल-किरण-सामंगउ।
दूवियाउ दिवसे विस-रयणिउँ णहयले मुत्तिमंत णं रयणिउँ।
10 जसु कंतु वि ण कूडु सेविज्जइ अमर-विहूयणेण मेल्लिज्जइ।
दिक्खिवि खयरिहु कंति अमाणें णिय माणसे लज्जा वहमाणें।
तओ उत्तरसेणिए सुर-मणहरु णिवसइ पुरु कणयरु तिमिरहरु।
जिहिँ णिवडंतु खयरि-मुह-पंकए सासाणिल-वसेण णिप्पंकए।

घत्ता—करहउ पुणु अइ स-हरिस-मणु णिवडइ मय-मत्तउ अलि।
15 कोमल-करे णयण सुहंकरे रत्तुप्पल-संकए वलि॥१३७॥

२

तहिँ विज्जाहरवइ कणयप्पहु जेण जिणिवि अरियणु किउ णिप्पहु।
करइ रज्जु बुहयण-रंजंतउ माणिणि-माणुण्णइँ भंजंतउ।
भूसण-रुवि-विच्छुरिय-णहंगणु रूव लच्छि मोहिय-तियसंगणु।
जसु असिवरे णिवसइ जयसिरि सइ अचल भएणवमण्णेवि णुमइ।
5 संचरंति आरह णिसियाणण एवहे धार वइरि-खउ-आणण।
तित्थमलिं ण मुह णर-कुल-दिणमणि ण णियइ रणि इहु सुहड़-सिरोमणि।
एउ मण्णेवि ण पुरउ समहियए जसु पयाउ ओसारइ अहियए।

---

१. १. D. गिरि। २. D. °यं°। ३. D. घं°। ४. D. क्ख।
२. १. D. °णे°। २. D. °ल्लि°। ३. J. णु।

सन्धि ७

१

धातकीखण्ड वत्सादेश तथा कनकपुर नगरका वर्णन

इसके अनन्तर जीवोंसे निरन्तर व्याप्त १२ सूर्यो एवं १२ चन्द्रोंसे दीप्त, सुन्दर विस्तीर्ण नगरोंसे युक्त धातकी खण्ड द्वीपमें—

पूर्व-सुमेरुके पूर्व-विभाग स्थित विशाल विदेह क्षेत्रमे विख्यात एवं मनोहर वत्सा नामक देश है, जहाँ मुनि-गण भव्यजनोंके मनको हर्षित करते रहते हैं। वह वत्सादेश सीता नदीके तटसे लगा हुआ था तथा उसके भवनोंके शिखरसमूह नभस्तलको छूते रहते थे। वहाँ क्रीड़ा करते हुए ५ गमनचरोंसे युक्त २५ योजन ऊँचा एक चंगा (सुन्दर) विजयार्ध पर्वत है, जो ५० योजन चौड़ा, रौप्य वर्णवाला तथा मणि-किरणोंसे चित्र-विचित्र है। जहाँ सर्वत्र धुली हुई (अर्थात् पानी उतरी हुई) करवालकी किरण-रेखाके समान लगनेवाली श्यामांगियाँ—अभिसारिकाएँ दिनमे भी रात्रिके समान निराबाध होकर जाती-आती थी। वे ऐसी प्रतीत होती थी, मानो नभस्तलकी मूर्तिमती रात्रियाँ ही हों। जिस विजयार्द्धके कूटशिखर अति कान्तिमान् होनेके कारण अमरवधुओं द्वारा १० सेवित न थे, उनके द्वारा वे त्याग दिये गये थे। क्योंकि वे (अमरवधुएँ) खेचरोंको उन कूटोंकी अप्रमाण कान्ति दिखा-दिखाकर अपने मनमें लज्जित होती रहती थी।

उस विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें सुरोंके मनको हरण करनेवाला तथा तिमिरको नष्ट करने-वाला कनकपुर नामका एक नगर स्थित है, जहाँ विद्याधरियोंके निष्कलंक मुख-कमलोंपर श्वासकी गन्धके कारण पड़ते हुए तथा— १५

घत्ता—हाथोंसे हटाये जानेपर भी पुनः-पुनः अति हर्षित मनसे भ्रमर-समूह मदोन्मत्त होकर मँडराता रहता है तथा नेत्रोंको शुभ लगनेवाले (विद्याधरियोंके) कोमल करोंपर रक्त-कमलकी आशंकासे वह भ्रमर-समूह बलि-बलि हो जाता है ॥१३७॥

२

हरिध्वज देव कनकपुरके विद्याधर नरेश कनकप्रभके यहाँ कनकध्वज नामक पुत्रके रूपमें उत्पन्न होता है

उस कनकपुरमें विद्याधरोंका स्वामी कनकप्रभ (निवास करता) था, जिसने अरिजनोंको जीतकर उन्हें निष्प्रभ (अथवा निष्पथ) कर दिया था। जो बुधजनोंका मनोरंजन तथा मानियों के मानकी उन्नतिका भंग करता हुआ राज्य कर रहा था। उसके भूषणोंकी कान्ति नभांगणको भी विस्फुरायमान करती थी। उसके रूपकी शोभा त्रिदशांगनाओंको भी मोहित करनेवाली थी, जिसकी खड्गमे जयश्री स्वयं ही (आकर) अचल रूपसे निवास करती है, मानो वह (जयश्री) ५ उसके भयसे अपमानित होकर ही उसमे (अचल रूपसे) रहने लगी हो। वैरीजनोंके मुखोंका क्षय करनेवाली इसी तलवारकी धारसे (भयभीत होकर) वैरीजन आरम्भमे ही नीचा मुख करके चलने लगते थे, नरकुलके लिए सूर्य समान उस राजाके सम्मुख तीक्ष्ण सूर्य भी म्लान-मुख हो जाता था। वह रणक्षेत्रमे सुभट-शिरोमणियोंको नही देखता था, मानो यही समझकर उस (राजा) के प्रतापने शत्रुओंको वहाँसे हटा दिया हो। १०

तहो पिय पीवर-पीण-पओहर कणयमाल णामेण मणोहर।
10 पविमल-सीलाहरण-विहूसिय लावण्णालंकरिय अदूसिय।
एहहँ सग्गु मुएवि हरिद्धउ सुउ जायउ णामें कणयद्धउ।
घत्ता—उप्पण्णए कंचण वण्णए कुल सिरिजम्मि गुणट्ठिय।
तम णिग्गमे छण चंदुग्गमे जलणिहि-वेल व वट्टिय॥१२८॥

३

णिव-विज्जा-चउक्कु तहो वुद्धिए पडिगाहिउ महमत्ति विसुद्धिए।
आसाचक्कु विरेहइ दित्तिए धवलत्तण-जिय-ससहर-कित्तिए।
जो जोव्वण-सिरि-णिलयं भोरुहु सेलिंधालंकरिय-सिरोरुहु।
जेणंत रिउ-वग्गु विणिज्जिउ तिरयणेहिं परदारु विवज्जिउ।
5 जं अवलोइवि चिंतहिं पुरयण णिच्चलंग संठिय विंभिय-मण।
किं इउ मुत्तिवंतु मयरद्धउ किं वा रूवहो अवहि विसुद्धउ।
जसु मुह-कमले पडेविणु नवलइ पुर-कामिणि-कडक्ख-सिरि ण चलइ।
तन्हा-वस मेल्लंति सुतुट्टी दुव्वल-ढोरि व पंके चहुट्टी।
तेण सजणणा एसें सुंदरि मार-मइंद-महीहर-कंदरि।
10 मणि गणं जडियाहरण पसाहिय वर कणयप्पह कण्ण विवाहिय।
घत्ता—सो भज्जए सलज्जए सहइ ताव-हरु लोयहँ।
महियलि तिह णव-जलहरु जिह विज्जुलियए गय-सोयहँ॥१२९॥

४

तो विण्णि वि सपणय-मण थक्कहिं परवर-विहडण खणु वि न सक्कहिं।
णं लावण्ण-विसेसालंकिय जलहि-वलय अहणिसु णिस्संकिय।
तेण विउल-वणे कोणणे[1] लयहरे णव-पल्लव-सेज्जायले मणहरे।
पणय-कोव-वस-विप्फुरियाहर [2]सामा[3]णिज्जइ तुंग-पओहर।
5 ताए सहिउ सो जाएवि मंदरे सुरहरेण सुर-सेविय सुंदरे।
गुरु-भत्तिए पुज्जइ जिण-गेहइँ पवर-पसूण-णिलीण-दुरेहइँ।
एक्कहिँ दिणे देविणु णिव-सिरि तहो भव भीएण णरिंदें पुत्तहो।
सुमइ-मुणीसर-पय पणवेप्पिणु लइय [4]दिक्खकरणारि जिणेप्पिणु।

४. १. J. की°। २. J. सो। ३. J. V. म.। ४. D. द°।

६

रानी प्रियकारिणी द्वारा रात्रिके अन्तिम प्रहरमें सोलह स्वप्नोंका दर्शन

महाधनपति—कुबेर यक्षने मनकी भ्रान्तिको तोड़कर तथा भक्तिपूर्वक नमस्कार कर साढ़े तीन करोड़ श्रेष्ठ मणिगणोंसे युक्त निधि कलश हाथमें लेकर गगनरूपी आँगनसे (कुण्डपुरमें) तब तक बरसाता रहा, जबतक कि छह मास पूरे न हो गये। महान् सुखदायक उत्तम हंसके समान शुभ्र रुईसे बने हुए गद्देपर लोगोंके लिए दुर्लभ सुखों-पूर्वक सोती हुई, परचित्ता-पहारी, सिद्धार्थकी उस नारी—प्रियकारिणीने रात्रिके अन्तिम प्रहरमें, मनके लिए अति सुन्दर, सुखद एवं उत्तम स्वप्नोंको विपरीत ज्ञानसे रहित होकर क्रमशः (इस प्रकार) देखे—(१) चन्द्राभ देहवाला ऐरावत हाथी, (२) धीरातिधीर धवल, (३) अधीर—शूरवीर मृगपति, (४) अम्भोज-कमलयानवाली ललाम—सुन्दर लक्ष्मी, (५) अलिकुलसे मनोहर शैलीन्ध्र-पुष्पमाला, (६) भगणोंमें प्रधान पूर्णमासीका चन्द्रमा, (७) किरणोंसे दीप्त बाल सूर्य, (८) निर्मल जलमें हर्षसे क्रीड़ा करती हुई मीन, (९) जलसे परिपूर्ण कनक कलश, (१०) विशाल सरोवर, (११) सुन्दर सागर, (१२) रत्नोंसे घटित सिंहपीठ, (१३) मणियोंसे भासमान सुरपति-विमान, (१४) फहराती हुई केतुओंसे युक्त फणिपति निकेत, (१५) उत्तम किरणोंसे देदीप्यमान मणि-समूह तथा (१६) दिशाओंको उज्ज्वल बना देनेवाला अग्निशिखर-समूह।

घत्ता—उन स्वप्नोंको देवी प्रियकारिणीने जिनपद (कुण्डपुर) के हृदयभूत अपने प्रियतम राजा सिद्धार्थको (यथाक्रम) कह सुनाये। दुर्ग्रह—मिथ्याभिमानको नष्ट करनेवाले उन स्वप्नोंको [illegible]नकर वह राजा भी हर्षित-गात्र हो गया ॥१७६॥

७

श्रावण शुक्ल षष्ठीको प्रियकारिणीका गर्भ-कल्याणक

प्रियकारिणी द्वारा स्वप्नावलि सुनकर सम्मुख विराजमान राजा सिद्धार्थ अत्यन्त [illegible] (सन्तुष्ट) हुए, तथा उन्होंने उस देवीको उन ([illegible] फल (इस प्रकार) बताया। "(१) गजेन्द्रके देखनेसे पापोंको (सर्वथा) धो [illegible] [illegible]न होगा, (२) वृषभके दर्शनसे वह शुभ कार्योंका आचारी तथा सौम्य स्वभावी [illegible] [illegible] देखनेसे वह (पुत्र) [illegible] विक्रमी तथा (४) लक्ष्मीके दर्शनसे वह समस्त [illegible] [illegible] बनेगा, (५) [illegible] पुष्पमाला-युगलके दर्शनोंसे वह यशका आलय [illegible] ।—चन्द्रमाके दर्शनसे [illegible] मोक्षावलीका महान् स्वामी बनेगा। (७) [illegible] वह भव्य [illegible]

घडाणं जुवेणं जए णाणधारी सरेणं जणाणं सया चित्तहारी ।
समुद्देण गंभीर-धीरंतरंगो मइंदासणा लोयणेणावरंगो ।
समावेसए देउ देवालएणं करेही सुलच्छी फणिंदालएणं ।
मणीणं चएणं पसंसालहेही हुवासेण कम्मावणीयं डहेही ।
10 सुणेऊण एयं कमेणं मुहाओ स-कंतस्स धारेवि साणंदभाओ ।
गया सुंदरे मंदिरे जाम देवी तुरंती तिलोए गणासार सेवी ।
तओ सो सुराहीसु पुप्फुत्तराओ विमाणाय आवेवि सोक्खायराओ ।[1]

घत्ता—सिविणए पवरु गय-रूव-धरु णिसि पविट्ठु देवी-मुहे ।
मुणिवर भणिया सावण तणिया सिय [2]छट्ठिहे जिय-सररुहे ॥१७७॥

८

उत्तर फग्गुणे [1]संठिए णिसेसे किरणेहिँ विहंसिय-तमे विसेसे ।
तहिँ समए सविट्ठर-कंपणेण जाणेवि सुर-[2]सामिय णिय-मणेण ।
एविणु सम्माणिवि अरुह-माय गय णिय-णिय-णिलए स-हरिस-काय ।
सिरि-हिरि-दिहि-लच्छि-सुकित्तियाउ मइ तणुजुवि-दीविय भित्तियाउ ।
5 आयउ सेवहिँ जिण-जणणि-पाय इंदाणए जुवि-जिय-सलिल जाय ।
धणवइ वसु वरिसिउ पुणुवि तेम णव मासु सुपाउसे मेहु जेम ।
गब्भ-ट्ठिओवि णाणत्तएण सो मुक्कु ण मुणिय-जयत्तएण ।
उवयायल-कडिणि परिट्ठिओवि रवि परियरियइ तेएण तोवि ।
गब्भब्भव-दुक्खहिँ दूसहेहिँ पीड़ियइ ण सा णाणा-विहेहिँ ।
10 पंकाणु लेव-परिवज्जियासु दुल्लहयर-लच्छि-विहूसियासु ।
सरे सलिलंतरे लीलहो अमेउ किं मउलिय-कमलहो होइ खेउ ।

घत्ता—गब्भंगयहो पवरंगयहो णाणे रिउ वड्ढंतइ ।
हय तहे[3]थणइँ णीलाणणइँ मोह तमु व मेलंतइं ॥१७८॥

---

७. १. D. °वो । २. D. J. V. °ट्ठे° ।
८. १. D. स° । २. D. स° । ३. D. J. V. य° ।

प्रकाशक तथा (८) मीन-युगलके देखनेसे वह चिन्ताओंको दूर करनेवाला होगा। (९) घट-युगलके देखनेसे वह संसार-भरमें ज्ञानधारी तथा (१०) सरोवरके देखनेसे वह लोगोंके हृदयोंको आकर्षित करनेवाला बनेगा। (११) सागर-दर्शनसे वह गम्भीर एवं धीर अन्तरंगवाला तथा (१२) मृगेन्द्रासन-के देखनेसे वह मिथ्यात्वरहित होगा, (१३) देवविमानके दर्शनसे वह सभा (समवशरण) में देव बनकर बैठेगा, (१४) फणीन्द्रालयके दर्शनसे वह सुलक्ष्मीका भोग करनेवाला होगा, (१५) मणिसमूहके दर्शनसे वह प्रशंसाका भागी एवं (१६) हुताशनके दर्शनसे वह कर्मवनको जला डालने-वाला बनेगा।" १०

राजा सिद्धार्थके मुखसे स्वप्नोंके फलको क्रमशः सुनकर उसकी कान्ता—प्रियकारिणी आनन्दलहरीसे भर उठी। त्रिलोकमें महिला-गणोंकी सारभूत महिलाओं द्वारा सेवित वह देवी शीघ्र ही जब अपने सुन्दर भवनमें गयी, तभी वह सुराधीश सुखकारी पुष्पोत्तर विमानसे चयकर १५

घत्ता—रात्रिके समय प्रवर स्वप्नमें देवी—प्रियकारिणीके मुखमें गजके रूपमें प्रविष्ट हुआ। (उसे) मुनिवरोंने कमलोंको जीतनेवाली श्रावण सम्बन्धी शुक्ल छट्ठी (तिथि) कही है ॥१७७॥

८

प्रियकारिणीके गर्भ धारण करते ही धनपति—कुबेर नौ मास तक कुण्डपुरमें रत्नवृष्टि करता रहा

उत्तरा-फाल्गुनी नक्षत्रके सम्पूर्ण होने तथा किरणों द्वारा अन्धकार-विशेषके नष्ट हो जाने-पर, उसी समय आसनको कम्पित जानकर सुर-स्वामी—इन्द्रने अपने मनमे (प्रियकारिणीके गर्भावतरण सम्बन्धी वृत्तान्तको) जान लिया। उसने आकर अरहन्तकी माताका सम्मान किया और हर्षित-काय होकर अपने-अपने निवासको लौट गये।

श्री, ह्री, धृति, लक्ष्मी, सुकीर्ति, मति आदि द्युति पूर्ण शरीरवाली देवियाँ वहाँ सेवा कार्य हेतु आयी और उन्होंने इन्द्रकी आज्ञासे कमलोंकी द्युतिको भी जीत लेनेवाले जिनेन्द्र-जननीके चरणोंकी सेवा की। जिस प्रकार वर्षा ऋतुके नव (आषाढ़) मासमे मेघ बरसते हैं, उसी प्रकार धनपति—कुबेर भी पुनः नौ मास तक रत्नवृष्टि करता रहा। ५

गर्भमें स्थित रहनेपर भी वे भगवान् मति-श्रुत एवं अवधिरूप तीन ज्ञानोंसे मुक्त न थे। वे तीनों लोकोंको जानते थे। (उचित ही कहा गया है कि) उदयाचलकी कटनी—तलहटीमें स्थित रहनेपर भी रवि क्या तेजसे घिरा हुआ नही रहता? गर्भके कारण उत्पन्न नानाविध दुस्सह दुखोंसे वह (प्रियकारिणी) पीड़ित नही हुई। जिनेन्द्र भी पंक-लेपसे रहित तथा दुर्लभतर आत्म-लक्ष्मीसे विभूषित थे। (सच ही कहा है) सरोवरमें जलके भीतर अमेय लीलाएँ करनेवाले मुकुलित कमलको क्या खेद होता है? १०

घत्ता—प्रवर अंगवाला वह (गर्भगत प्राणी) गर्भके भीतर रहता हुआ भी ज्ञानसे प्रेरित रहकर वृद्धिको प्राप्त करता रहा। उसी समय उस माता (प्रियकारिणी) के स्तन भी नीले मुख-वाले हो गये। वे ऐसे प्रतीत होते थे मानो मोहरूपी अन्धकार ही छोड़ रहे हों ॥१७८॥ १५

९

हुव पंडु गंड तहो अणुकमेण णावइ गब्भत्थ-तणय-जसेण ।
चिरु उवरु सहइ ण वलि-त्तएण तिह जिह अणुदिणु परिवड्ढणेण ।
अइ-संथर-गइ-हुव साभरेण गब्भत्थ-सुवहो णं गुण-भरेण ।
सु-णिरंतर सा ऊससइ जेम सहसत्ति पुणुवि णीससइ तेम ।
5 मेल्लइ णालसु तहे तणउ पासु जंभाई-सहिउं णाइँ दासु ।
तण्हा विहाणु तं सा धरंति गब्भत्थ सुवण माणसु हरंति ।
पीडिय ण मणिच्छिय-दोहलेहिँ संपाडिय-सुंदर सोहलेहिँ ।
सुउ-जणिउ ताए उत्थट्ठिएसु महु-मासे सेय तइयहे गहेसु ।
उत्तर-फग्गुणिए सतेइ चंदे वियसाविय-कइरव-कलिय-वंदे ।
10 आसा पसण्ण संजाय जेम सहुँ णहयलेण सुहि हियय तेम ।

घत्ता—रइ वस-मिलिया अलिउल-कलिया पुप्फविट्ठिता णिवडिय ।
दुंदुहि रडिया पडिआरडिया दिसि णावइ गिरि-विहडिय ॥१७९॥

१०

तम्मि जायए जिणेसेँ भव्व-कंज-वासरेसेँ ।
सुप्पसिद्ध तित्थणाहे तप्पमाण-कंचणाहे ।
हेलए सुरेसराहँ तेय-जित्त-णेसराहँ ।
कंपियाइँ आसणाइँ अंधयार-णासणाइँ ।
5 सुप्पहूव-संट-सद्द देव-चित्त-संविमद्द ।
ता सहस्स-लोयणेण णिम्मला वहिक्खणेण ।
जाणि ऊण चित्त-रम्मु वीयराय-देव-जम्मु ।
विट्ठरं पमेल्लिऊण मत्थ यंसु-णामिऊण ।
भत्तिए जिणेसरासु णाण-दित्ति-भासुरासु ।
10 चिंतिओ महा-करिंदु दाण-पीणियालि-वंदु ।
सो वि तक्खणे पहुत्तु चारु-लक्खणालि-जुत्तु ।
लक्ख-जोयण-प्पमाणु कच्छ-मालिया-समाणु ।
भूसणंसु-भासमाणु सीयराइँ मेल्लमाणु ।
उद्ध-सुंडु-धावमाणु णीरही व गज्जमाणु ।
51 दंत-दित्ति-दीवियासु दिग्गइंद-दिन्न-तासु ।
सायरब्भ कूर भासु पूरियामरेसरासु ।
कुंभ-छित्त-वोम-सिंगु कण्ण-वाय-धूवलिंगु ।
देवया-मणोहरंतु सामिणो पुरो सरंतु ।

घत्ता—तं णिएवि हरि आणंदु करि तहि आरुहियउ जावेहिँ ।
20 अवर वि अमर पयडिय-डमर चलिय सपरियण तावेहिँ ॥१८०॥

---

९. १. D °य । २. D. सहियउं । ३. D. ताउ एउ छट्ठिएसु ।
१०. J १. °लि° ।

९

माता प्रियकारिणीकी गर्भकालमें शारीरिक स्थितिका वर्णन । चैत्र शुक्ल त्रयोदशीको बालकका जन्म

उस माता—प्रियकारिणीके गाल पीड़े गये, ऐसा प्रतीत होता था मानो वे अनुक्रमसे गर्भस्थ बालकके यश (से ही वैसे हो गये) हों। चिरकालसे उस माताका उदर त्रिवलि पड़नेसे उस प्रकार सुशोभित नहीं होता था, जिस प्रकार उस (उदर) के अहर्निश बढ़ते रहनेसे वह (त्रिवलियुक्त होकर) शोभने लगी। भारके कारण उसकी गति अति मन्थर हो गयी, ऐसा प्रतीत होता था मानो गर्भस्थ बालकके गुण-भारसे ही उसकी वह गति मन्द हो गयी हो। वह निरन्तर जिस प्रकार उच्छ्वास लेती थी, उसी प्रकार वह सहसा निश्वास भी छोड़ती थी। जँभाई सहित आलस्य उसे (उसकी समीपताको) छोड़ता न था मानो वह उसका दास ही हो। तृष्णा विधानको वह धारण करती थी, ऐसा प्रतीत होता था, मानो वह गर्भस्थ पुत्रके मनको ही हर रही हो। मनमें स्थित दोहलेसे वह पीड़ित न थी क्योंकि वह सुन्दर सोहलोंसे सम्पादित थी।

उस माता प्रियकारिणीने ग्रहोके उच्चस्थलमे स्थित होते ही मधुमास चैत्रकी शुक्ल त्रयोदशीके दिन कैरव-कलियोको विकसित करनेवाला तेजस्वी चन्द्रमा जब उत्तरा-फालगुनी नक्षत्रमें स्थित था, तभी (उस जिनेन्द्र) पुत्रको जन्म दिया। जिस प्रकार गगन-तलके साथ ही समस्त दिशाएँ प्रसन्न—निर्मल हो गयी, उसी प्रकार प्राणियोंके हृदय भी आह्लादित हो उठे।

घत्ता—रति एवं कामदेवके सम्मिलनके समान भ्रमरोंसे सुशोभित पुष्पोंकी वृष्टि प्रारम्भ हो गयी, दुन्दुभि बाजे गडराने लगे, पटह बाजे हड़हड़ाने लगे ऐसा प्रतीत होता था, मानो दिशाओंमें पर्वत ही विघटित होने लगे हों ॥१७९॥

१०

सहस्रलोचन—इन्द्र ऐरावत हाथीपर सवार होकर सदल-बल कुण्डपुरकी ओर चला

भव्यरूपी कमलोंके लिए दिनकरके समान तथा तप्त कांचनकी आभावाले सुप्रसिद्ध तीर्थनाथ जिनेशके जन्म लेते ही अपने तेजसे सूर्यको भी जीत लेनेवाले सुरेश्वरोके तत्काल ही अन्धकारका नाश करनेवाले सिंहासन काँप उठे और देवोंके चित्तको विमर्दित कर देनेवाले घण्टे तीव्रताके साथ बज उठे।

तभी निर्मल सहस्रलोचन इन्द्रने अपने अवधिज्ञानरूपी नेत्रसे वीतरागदेवका हृदयापहारी जन्म जानकर, सिंहासन छोड़कर भलीभाँति माथा झुकाकर, ज्ञान-दीप्तिसे भास्वर उन जिनेश्वरकी भक्ति की तथा दान—मदजलसे प्रसन्न अलिवृन्दोंसे युक्त सुन्दर लक्षणोंसे अलंकृत, शक्तिशाली, एक लाख योजन प्रमाण, कुन्द-मल्लिकाके समान शुभ्र, आभूषणोंकी किरणोंसे भासमान जलकणों-को छोड़नेवाले, ऊँची सूँड़ कर भागनेवाले समुद्रकी तरह गरजना करनेवाले दिग्गजेन्द्रों द्वारा प्रदत्त दीपिकाओंसे दीप्त दन्तपंक्तिवाले, सागर एवं मेघकी क्रूरभाषा (गर्जना) के समान अमरेश्वर—इन्द्रकी आशाको पूरा करनेवाले, अपने गण्डस्थलोसे व्योम-शिखरको छूनेवाले एवं कानोंकी हवासे धूप (की सुगन्धि) को विखेरनेवाले महाकरीन्द्र ऐरावत हाथीका चिन्तन किया। देवताओके मनका हरण करनेवाला वह [illegible] हाथी (तत्काल ही) स्वामी—इन्द्रके सम्मुख आ पहुँचा।

घत्ता—उसे देखकर हरि—इन्द्रने हर्ष [illegible] जब उसपर आरूढ़ हुआ [illegible] अन्य देवगण भी डमरू बजाते हुए अपने परिजनों [illegible] ०॥

११

कप्पवासम्मि णेऊण णाणामरा चल्लिया चारु घोलंत स-चामरा।
भत्ति-पब्भार-भावेण फुल्लाणणा भूरि-कीला-विणोएहिँ सोक्खाणणा।
णच्चमाणा समाणासमाणा परे गायमाणा अमाणा अमाणा परे।
वायमाणा विमाणाय माणा परे वाहणं वाहमाणा सईयं परे।
5 कोवि संकोडिऊणं तणू कीलए कोवि गच्छेइ हंसट्ठिओ लीलए।
देक्खिऊणं हरी कोवि आसंकए वाहणं धावमाणं थिरोवंकए।
कोवि देवो करा फोड़ि दावंतओ कोवि वोमंगणे झत्ति धावंतओ।
कोवि केणावि तं एण आवाहिओ कोवि देवो वि देक्खेवि आवाहिओ।
कत्थए देवि उच्चारए मंगलु कत्थए णिब्भरं सुम्मए मंदलु।
10 कत्थए मेसु दूसेण आलोइउ संगरत्थो वि साणोरु सोणाइउ।
कत्थ इत्थं पमाणं वयंतं पुरं कर-मज्जार-भीयाउरं उंदरं।
देक्खे देवीण रूवं सुरो तक्खणे कोरई वंधए वप्प-णिल्लक्खणे।

घत्ता—इय सुंदरहँ कप्पामरहँ संतइँ इंति पलोइय।
णारी णरहिँ विज्जाहरेहिँ[2] णं जिण-पुण्णेँ चोइय ॥१८१॥

१२

पंचप्पयार जोइसिय देव हरि-सद्दु सुणेवि रयंति सेव।
जिणणाहहो जम्मुच्छव-णिमित्तु संचल्लिय धम्मे णिवेसि चित्तु।
भवणामर सहुँ भिच्चिहिँ जवेण जय-जय भणंत संखारवेण।
विंतर-सुरेस विच्छिण्ण-भाल सेवयहिँ रुद्ध-ककुहंतराल।
5 पडु-पडह-रवेण विमुक्क-गव्व इय चउ-णिकाय सुर मिलिय सव्व।
संपत्त पुरंदर अइ अमेय णिय-णिय-सवेय-वाहण-समेय।
कुंडल-मणि-जुइ-विप्फुरिय-गंड विणयाइ विमल-गुण-मणि करंड[2]।
पावेविणु सहली-कय-भवेण रायउलु समाउलु उच्छवेण।
मायहे पुरत्थु सो गुण-गरिट्ठु णय-सीसहि देविंदेहिँ दिट्ठु।
10 मायामउ मायहे वालु देवि इंदाणिए जिणु णिय-करहिँ लेवि।
अप्पिउ सहसक्खहो हत्थि जाम तेण वि करि-खंधे णिहित्तु ताम।

---

११. १. D. °र। २. D. °रि°।
१२. १. D. जे°। २. J. क।

११

कल्पवासी देव विविध क्रीड़ा-विलास करते हुए गगन-मार्गसे कुण्डपुरकी ओर गमन करते हैं

कल्पवासियोंमे विविध देव सम्मिलित होकर प्रशस्त चामर ढोरते हुए भक्ति-भाराक्रान्त भावनासे प्रफुल्लित वदन तथा अनेक प्रकारके विनोदोंसे प्रसन्न मुख-होकर चल पड़े। कोई-कोई देव समान, असमान रूपसे नृत्य करते हुए, तो अन्य दूसरे देव मानरहित होकर अप्रमाण रूपसे (अत्यधिक) संगीत करते हुए, तो अन्य देव-समूह गर्वरहित होकर अप्रमाण (अत्यधिक) रूपसे बाजे बजाते हुए, तो कही कोई देवगण अपने-अपने वाहनोंको (होड़ लगाकर) आगे बढाते हुए, ५ तो कोई अपने शरीरको ही सिकोड़-सिकोड़कर क्रीड़ाएँ करते हुए, तो कही कोई हंस (-विमान) पर बैठकर लीलापूर्वक जाते हुए, तो कोई हरि—इन्द्रको (जाता हुआ) देखकर तथा उसके प्रति आशंकासे भरकर अपने दौड़ते हुए वक्रगतिवाले वाहनको सहसा ही (उससे पूछने हेतु) रोकते हुए, तो कोई अन्य देव अंगुली-स्फोट (फोड़) करके उसे उसकी आशंकाको दूर करते हुए, तो कोई व्योमरूपी आँगनमें वेगपूर्वक दौड़ते हुए चल रहे थे। कोई देव किसी अन्य देव द्वारा वेगपूर्वक १० पुकारा गया, तो कोई देव देखकर (अपने से) ही वहाँ आ गया।

कही देवियाँ मंगलोच्चार कर रही थी, तो कही व्यापक मन्दल (मर्दल) गान सुनाया जा रहा था। कलहप्रिय मेष, विशाल हाथी एवं कुत्ते आदि भी एक दूसरेको रोषयुक्त होते हुए नहीं देखे गये। कोई इधर-उधर उछलते-कूदते हुए नगरकी ओर चल रहे थे, मानो भयातुर चूहोके पीछे क्रूर मार्जार चल रहे हों। उस समय निर्लक्षण देवगणो एवं देवियोंके रूपको देखकर भला १५ कौन रतिको बाँधता ?

घत्ता—इस प्रकार सुन्दर कल्पवासी देवों द्वारा प्रेरित एवं अवलोकित नारी, नर, विद्याधर सभी वहाँ आ रहे थे। ऐसा लगता था, मानो जिनेन्द्रके पुण्यसे प्रेरित होकर ही वे आ रहे हैं ॥१८१॥

१२

इन्द्राणीने माता प्रियकारिणीके पास (प्रच्छन्न रूपसे) एक मायामयी बालक रखकर नवजात शिशुको (चुपचाप) उठाया और अभिषेकहेतु इन्द्रको अर्पित कर दिया

पाँच प्रकारके ज्योतिषी देव सिंहनाद सुनकर सेवा-कार्यमें तत्पर हो गये। जिननाथके जन्मोत्सव के निमित्त अपने चित्तको धर्ममे निविष्ट कर भवनवासी देव भी भृत्योके साथ शंख-ध्वनि-पूर्वक जय-जयकार करते हुए वेगपूर्वक चल पड़े। पटह (भेरी) नामक बाजेकी पट-पट करनेवाली ध्वनिसे दिशाओंके अन्तरालको भर देनेवाले सेवकोके साथ विस्तीर्ण-भालवाले व्यन्तर देवेन्द्र भी चल पड़े। (इस प्रकार) कुण्डल-मणियोंकी द्युतिसे स्फुरायमान गण्डस्थलवाले, विनयादि ५ विमल गुणरूपी मणियोंके पिटारेके समान वे सभी चतुर्निकायके देव गर्व विमुक्त होकर अपरिमित संख्यामें अपने-अपने वेगगामी वाहनों समेत सौधर्मेन्द्रके पास जा पहुँचे।

जिनेन्द्रके जन्मोत्सवसे अपने जन्मको सफल मानकर वे सभी (देव-देवेन्द्र मिलकर) राजकुल (सिद्धार्थके राजभवनमे) आये। गुण-गरिष्ठ एवं नतशिर उस देवेन्द्रने जिनेन्द्र-माताके सम्मुख आकर उनके दर्शन किये तथा इन्द्राणीने माताके पास (प्रच्छन्न रूपसे) एक मायामयी १० बालकको रखकर तथा (बदलेमें वास्तविक) बालकको अपने हाथोंमे लेकर जब उसे सहस्राक्ष—इन्द्रको अर्पित किया, तब उसने भी उसे ऐरावत हाथीपर विराजमान कर दिया।

घत्ता—(ऐरावत हाथीके ऊपर) पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान, जो तीन प्रकारके छत्र थे, उन्हें भक्तिभारका विस्तार करनेवाले ईशानेन्द्रने भवऋणसे उऋण करनेवाले जिनेन्द्रके आगे धारण किया ॥१८२॥ १५

१३

इन्द्र नवजात शिशुको ऐरावत हाथीपर विराजमान कर अभिषेक हेतु सदल-बल सुमेरु पर्वतपर ले जाता है

(ऐरावत हाथीपर विराजमान नवजात-शिशु—जिनेन्द्रके ऊपर) सानत्कुमार—इन्द्र स्वयं ही चमर ढुरा रहे थे तथा माहेन्द्र जिन-कुमारकी वन्दना कर रहे थे। भृंगार, चमर, ध्वजा, कलश, विशाल ताल वृन्त (पंखा), दर्पण, प्रसून—पुष्प पटल एवं रजोवारण (छत्र) रूप मांगलिक अष्ट मंगल-द्रव्योंको भव्यजनोंने धारण किया। अन्य देवगण उन जिनेन्द्रके चरणोंके सम्मुख सेवाएँ करते हुए विविध प्रकारसे अपनी भक्ति प्रकट कर रहे थे। ५

आनन्दित हुए वे चतुर्निकाय देव मिलकर वेगपूर्वक उस सुमेरु-पर्वतपर पहुँचे, जो स्वर्ण एवं मणि निर्मित जिनेन्द्र-प्रतिमाओसे अलंकृत अकृत्रिम मन्दिरोंसे शोभायमान एवं भुवनमे अद्वितीय था तथा जो ऐसा प्रतीत होता था, मानो दस सहस्र फणावलियोवाला शेषनाग ही हो।

वहाँ केवलज्ञानरूपी नेत्रधारी महामुनियों द्वारा कथित १०० योजन लम्बी, लम्बाईसे आधी चौड़ी (अर्थात् चौड़ाईमें ५० योजन) तथा ८ योजन मोटी— १०

घत्ता—चन्द्रमाके समान, हर्षको प्रकट करनेवाली, श्रेष्ठ पाण्डु नामक एक शिला है, जो ऐसी प्रतीत होती है, मानो जिनवरका गम्भीर यश ही उस शिलाके बहाने वहाँ आकर स्थित हो गया हो ॥१८३॥

१४

१००८ स्वर्ण कलशोंसे अभिषेक कर इन्द्रने उस नवजात शिशुका नाम राशि एवं लग्नके अनुसार 'वीर' घोषित किया

उस पाण्डुकशिलामें रत्नजटित तीन पीठ बने हुए है तथा माणिक्य-राजियोंसे स्फुरायमान प्रत्येक पीठ पाँच-पाँच सौ धनुष प्रमाण है। उस पाण्डुक-शिलाकी ऊपरी पीठपर एक मृगेन्द्रासन सुशोभित है जो ऊँचाईमे ५०० धनुष तथा पृथुलतामें २५० धनुष प्रमाण है। उसपर पाप-विकार रहित त्रैलोक्यनाथ, परमेश्वर, तीर्थंकरको विराजमान करके मध्यके पार्श्ववर्ती सिंहासनपर दोनों ओर प्रथम एवं द्वितीय—सौधर्मेन्द्र (दायी ओर) एवं ईशानेन्द्र (वायी ओर) ने स्वयं ही स्थित ५ होकर देवों द्वारा जय-जयकारकी ध्वनियोंके साथ विधिपूर्वक जन्माभिषेक प्रारम्भ कर दिया।

जिननाथके न्हवनकी विधिका स्मरण कर सुमेरु पर्वतसे लेकर क्षीरसागर तक देवोंने समुद्रको रौद देनेवाली अविरल पंक्ति बनायी और परस्परमें "लो (लीजिए)" "दो (दीजिए)" इस प्रकार कहने लगे। दूरसे ही लोचनोंकी टिमकारको छोड़ देनेवाले (अर्थात् निर्निमेष दृष्टि-वाले) देवेन्द्रोने १२ योजन प्रमाण प्रदेशमे जलसे परिपूर्ण एवं नील-कमलों द्वारा आच्छादित मुख- १० वाले १००८ स्वर्ण कलशोंसे झल्लर एवं काहल बजाते हुए तथा देवों द्वारा जय-जयके कोलाहल-पूर्वक जिनेश्वरका अभिषेक किया।

घत्ता—भवरूपी भयको हरनेवाले, शिव-सुखको देनेवाले तथा अनन्त वीर्यवाले जिनेन्द्र ध्रुव हैं, इस प्रकार मनमें विचार कर इन्द्रने (राशिफल आदिकी गणना कर) उस नवजात शिशुका नाम वीर घोषित कर उनकी (इस प्रकार) स्तुति की ॥१८४॥ १५

१५

जय तिजय-णलिण-घण-दिवसयर खल-पलय ।
जय विगय-मल कमल-सरिस-मुह गय-विमल ।
जय अमर-णर-णियर-गयण यर-सिर-तिलय ।
जय अभय भर हिय विमलयर-गुण-निलेय ।
5 जय अलस ससि-किरण जय भरिय-भुवण-यल ।
जय अमर-विहिय-थुवि-रव-झुणिय-गयण-यल ।
जय सदय दिय दुरिय हय-जणण-जर-मरण ।
जय विहिय जय दमण रइ रमण विसमरण ।
जय विसय विसि विसम-विसहरण मह-पिवर ।
10 जय ण्हवण-जले[2]-धवल-पवह-धुव-गिरि-विवर ।
जय असम-समसरण सुविरयण-सिरिसहिय ।
जय णिहिल-णय-णिवहँ विहि-कुसल पर-सहिय ।
जय सयणु जुइ-पहय-सिरि तविय-सुह-कणय ।
जय दुलहयर-परम-पय-पउर-सुह-जणय ।
15 जय दुसह मय जलहि परिमहण सुक्खुहर ।
जय असम-सिरि-सहिय पहरिसिय-सुर-कुहर ।

घत्ता—पुणु तम हरहिँ सुरमण हरहिँ सो भूसणहिँ समच्चिउ ।
सहुँ अच्छरहिँ गय मच्छरहिँ सइँ सुरणाहु पणच्चिउ ॥१८५॥

१६

पुणु मरुवहे णीयउ सुरवरेहिँ सो वीरणाहु जिणु णियकरेहिं ।
गेहग्ग वद्धधये[1] रम्ममाणे कुंडउरि सुरेसर-पुर-समाणे ।
पियरहँ अप्पिउ खय देह रुक्खु पुत्तावहरण-संजाउ दुक्खु ।
तुम्हहँ महोउ इय तणुरुहासु पडिविंवु करेवि सररुह-मुहासु ।
5 णेविणु सुर-महिहर-णिम्मलेण अहिसिंचिउ खीरोवहि-जलेण ।
अहिणउ तुम्हहँ सुउ अरिहु एहु संतत्त-सुवण्ण-सरिच्छ-देहु ।
इय भणि कुसुमाहरणं वरेहिँ पुज्जेवि जिण-पियर विलेवणेहिँ ।
आहासिवि णामु जिणाहिवासु कुल-कमल-सरोय-दिणाहिवासु ।
आणंद-भरिय मणि णिय-विमाणे गय सुरवरे मणियर-भासमाणे ।
10 जिण जम्महो अणुदिणु सोहमाण णियकुल-सिरि देक्खेवि वड्ढमाण ।
सियभाणु-कला इव सहुँ सुरेहिँ सिरि-सेहर-रयणिहिं भासुरेहिँ ।
दहमें[2] दिणि तहो भववहु णिवेण किव वड्ढमाणु[3] इउ णामु तेण ।

१५. १. D. °ले° । २. D. °य° ।
१६. १. J. V., वद्धय । २. D. दहमइं दिणि तहो भव° । ३. J. V. °ढ° ।

१५

इन्द्र द्वारा जिनेन्द्र-स्तुति

"त्रिजगत्‌रूपी कमल वनके लिए सूर्यके समान तथा कर्मरूपी खलोंको नष्ट करनेवाले (हे देव) आपकी जय हो। विगत मल, कमल सदृश मुखवाले तथा विमल गतिवाले (हे देव), आपकी जय हो। देवों, मनुष्यों एवं विद्याधरोंके शिरोमणि (हे देव) आपकी जय हो। अभयदान-से परिपूर्ण हृदयवाले तथा विमलतर गुणोंके निलय (हे देव) आपकी जय हो। शशि-किरणोके समान सौम्य वाणी वाले (हे देव) आपकी जय हो। अपनी जयसे भुवनको भर देने वाले (हे देव) आपकी जय हो। देव विहित-संगीतसे ध्वनित गगनतलवाले (हे देव) आपकी जय हो। हे दयालु, पापोंको नष्ट करनेवाले, जन्म, जरा एवं मरणको नष्ट करनेवाले (हे देव) आपकी जय हो। इन्द्रियों एवं मनपर विजय प्राप्त करनेवाले, इन्द्रिय-दमनमें रतिवाले तथा काम-भोगोंका विस्मरण करनेवाले (हे देव) आपकी जय हो। विषयरूपी विपम-विषधरके महाविवरको निर्विष करनेवाले (हे देव) आपकी जय हो। अपने अभिषेकके जलके धवल प्रवाह द्वारा गिरि-विवरको धो डालने वाले (हे देव) आपकी जय हो। अनुपम समवशरण की शुभ-रचनाकी श्रीसे सुशोभित (हे देव) आपकी जय हो। निखिल नयोंकी विधिमें कुशल एवं परहितकारी (हे देव) आपकी जय हो। तप्त निर्मल स्वर्णके समान सुन्दर शरीरकी द्युति—प्रभाकी श्रीसे सम्पन्न (हे देव) आपको जय हो। दुर्लभतर परमपदके प्रचुर सुखोंके जनक (हे देव) आपकी जय हो। दुस्सह मत-रूपी समुद्रके परिमथनसे उत्पन्न (झूठे—) सुखोंको हरनेवाले (हे देव) आपकी जय हो। अनुपम श्रीसे समृद्ध तथा देव-पर्वतको हर्षित करनेवाले (हे देव) आपकी जय हो।

घत्ता—पुनः उस इन्द्रने देवोंके मनका हरण करनेवाले तथा अन्धकारके नाशक आभूषणों द्वारा वीरकी पूजा की और अप्सराओंके साथ मात्सर्य रहित होकर सुरनाथ—इन्द्रने स्वयं ही नृत्य किया ॥१८५॥

१६

अभिषेकके बाद इन्द्रने उस पुत्रका 'वीर' नामकरण कर उसे अपने माता-पिताको सौंप दिया। पिता सिद्धार्थने दसवें दिन उसका नाम वर्धमान रखा

(स्तुति-पूजाके बाद) पुनः वे सुरवर (सुमेरु पर्वतसे) वीर-जिनको हाथोंहाथ लेकर वायु-मार्गसे चले और इन्द्रपुरीके समान उस कुण्डपुरमे ध्वजा-पताकाओसे सुसज्जित भवनमें ले आये और देहरूपी वृक्षके क्षयकारी पुत्रापहरणके दुखसे दुखी माता-पिताको अर्पित किया (और निवेदन किया)—आपके महान् उदयवाले कमल सदृश मुखवाले पुत्रकी प्रतिकृति बनाकर उसे रखकर तथा इस पुत्रको लेकर सुमेरु पर्वतपर (ले गये थे फिर) क्षीरोदधिके निर्मल-जलसे उसका अभिषेक किया है। तपाये हुए सोनेकी कान्तिके समान देहवाला आपका यह अभिनव (नवजात) शिशु अरहन्त-पदके योग्य होगा।" इस प्रकार कहकर श्रेष्ठ पुष्पाभरणों तथा विलेपनोसे जिनेन्द्रके माता-पिताकी पूजा कर कुलरूपी कमल-पुष्पोके लिए सूर्यके समान उन जिनाधिपका 'वीर' यह नाम बताकर आनन्दसे परिपूर्ण मनवाले सुरवर मणि-किरणोंसे भासमान अपने विमानमे बैठकर वापस लौट गये। जिनेन्द्रके जन्मकालसे ही प्रतिदिन अपने कुल-श्रीको चन्द्रकलाके समान शोभा समृद्ध एवं वृद्धिगत देखकर मस्तक मुकुटोंमें जटित, रत्नकिरणोसे भास्वर सुरेन्द्रोंके साथ उस राजा सिद्धार्थने दसवे दिन अपने उस पुत्रका नाम 'वर्धमान' रखा।

घत्ता—जिण पय रय हो दह सय-भवहो आणए धणउ समप्पइ।
तहो भूसणइँ [गँय दूसणइँ] हियइ न किंपि वियप्पइँ ॥१८६॥

१७

सिय पक्खे ससि वँ वँड्ढइ सुहेण जिण वरु सहुँ भव्व-मणोरहेण।
अण्णहिँ दिणे तहो तिजए सरासु किउ सम्मइ णामु जिणेसरासु।
चारण-मुणि-विजय-सुसंजएहिँ तद्दंसण-णिग्गय-संसएहिँ।
एक्कहिँ दिणे वड-महिरुहि स-डिंभु सम्मइँ रमंतु परिमुक्क-डिंभु।
5 देक्खेवि सुरेण सइँ संगमेण विउ रूववेविणु तासण-कएण।
वेढिउ वडमूलु फणावलीहिँ दह-सयहिँ णीहिँ दीवावलीहिँ।
तं णिएवि वाल णिवडिय-रएण जो जेत्थु तेत्थु भाविय भएण।
लीलएँ ठवंतु पय-वड्ढमाणु तहो फणिणाहहो सिरि लद्ध माणु।
उत्तरिउ वडुहो गयसंकु जाम जाणेवि णिब्भउ देवेहिँ ताम।
10 हरिसिय-मणेण तहो जिणवरासु हरिसिउ सरूउ परमेसरासु।
अहिसिंचिवि कणय-कलस-जलेहिँ पुज्जिवि आहरणहिँ णिम्मलेहिँ।
महवीरु णामु किउ तक्खणेण जाणिउ असेस-तिहुवण-जणेण।

घत्ता—सो परम जिणु कवडेण विणु रमइँ जाम सहु वालहिँ।
खेयर-णरहिँ फणिवइ-सुरहिँ मणु हरंतु सोमालहिँ ॥१८७॥

१८

परिहरियउ ताम सिसुत्तणेण कइवय-वच्छरहिँ अणुक्कमेण।
आलिंगिउ णव-जोव्वण-सिरीए पियकारिणि-पुत्तु मणोहरीए।
तहो तणु सह-जायहिँ दहगुणेहिँ भूसिउ णस्सेय-पुरस्सरेहिँ।
हुउ सत्त-हत्थ-विग्गहु रवण्णु कणियार-कुसुम-संकास-वण्णु।
5 अमरोवणीय-भोयइँ भवारि भुंजंतु कोह-सिहि-समण-वारि।
जावच्छइ जिणु ता गलिय तासु वच्छरइँ तीस णिज्जिय-सरासु।
एत्थंतरे किंपि णिमित्तु देक्खि खण भंगुरु तणु भउ-भोउ लेखि।
अवहिए चिंतइ सभवाइँ णाहु परिवाडिया वि पयणय सणाहु।
इंदिय-वितित्ति विसएसु जाम लोयंतिय देव पहुत्त ताम।
10 मउडामर णाणा-मणियरेहिँ सुरधणु करंतु णहेसुहयरेहिँ।

घत्ता—तहो पयजुवइँ सुरयण-थुवइँ णवेवि सविणउ पयासहिँ।
ते विमल-मण मणरुह-दलण गयणट्ठिय आहासहिँ ॥१८८॥

---

४. D. J. V. प्रतियोंमें यह चरण त्रुटित है। प्रसंगवश अनुमानसे 'गय दूसणइं' पद संयुक्त किया गया है। ५. ब्यावर प्रतिमें ९।१६।११ एवं ९।१६।१२ की पंक्तियाँ मूल प्रतिकी पृष्ठ सं. ६६ ख के ऊपरी हाँसिएमें परिवर्तित लिपिमें अंकित है।

१७. १-३. D. ससि वड्ढइ। J. V. ससिउ वट्टइ। ४. D. °इ। ५. J. V. णी°। ६. D. णि।

घत्ता—इन्द्रकी आज्ञासे धनदने बिना किसी विकल्पके समस्त भवोंको जला डालनेवाले जिनेन्द्रके पदोंमें [निर्मल] उन आभूषणोंको समर्पित कर दिया ॥१८६॥

१७

वर्धमान शीघ्र ही 'सन्मति' एवं 'महावीर' हो गये

शुक्ल पक्षमें जिस प्रकार चन्द्रमा वर्धनशील रहता है उसी प्रकार वे जिनवर भी भव्य-मनोरथोंके साथ सुखपूर्वक बढ़ने लगे। विजय एवं संजय नामक चारण मुनियोंका उन जिनेश्वरके दर्शन मात्रसे ही (तात्त्विक) सन्देह दूर हो गया अतः उन्होंने अगले दिन ही उन त्रिजगदीश्वर जिनेश्वरका 'सन्मति' यह नामकरण कर दिया।

अन्य किसी एक दिन वे सन्मति वर्धमान अन्य बालकोंके साथ वृक्षारोहणका खेल खेल रहे ५ थे। उसी समय उन्हें अपने साथी बालकोंसे दूर हुआ देखकर संगम नामक देवने उन्हें सन्त्रस्त करने हेतु स्वयं ही विक्रिया ऋद्धि धारण की तथा दीपावलिके समान प्रज्वलित सहस्र फणावलियोंवाले भुजंगका वेश धारण कर उस वटमूलको घेर लिया। उस भुजंगको देखकर अन्य बालक तो वेगपूर्वक कूद पड़े और भयभीत होकर जहाँ-तहाँ भाग गये। किन्तु सम्मान प्राप्त वे वर्धमान लीला-पूर्वक ही उस फणिनाथके सिरपर अपने पैर जमाकर निःशंक भावसे उस वट-वृक्षसे उतरे, तब १० उस संगमदेवने निर्भय जानकर हर्षित मनसे उन परमेश्वर जिनवरको अपना (वास्तविक) स्वरूप दिखाया एवं स्वर्ण कलशके निर्मल जलोसे अभिषेक कर आभरणोसे सम्मानित किया और उनका नाम 'महावीर' रख दिया, जिसे समस्त त्रिभुवनके लोगोंने तत्काल ही जान लिया।

घत्ता—निष्कपट वे परम जिन महावीर जब अपनी सौन्दर्य-श्रीसे बालकोंके साथ रम रहे थे और विद्याधरों, मनुष्यों एवं नागदेवोंके मनोंका अपहरण कर रहे थे ॥१८७॥ १५

१८

तीस वर्षके भरे यौवनमें ही महावीरको वैराग्य हो गया। लौकान्तिक देवोंने उन्हें प्रतिबोधित किया

प्रियकारिणीके उस पुत्र महावीर—वर्धमानने कतिपय वर्षोंके बाद अनुक्रमसे शैशवकाल छोड़ा और नवयौवनरूपी मनोहर श्रीका आलिंगन किया। अर्थात् वे युवावस्थाको प्राप्त हुए। उनका शरीर जन्मकालसे ही निःस्वेदत्व आदि दस (अतिशय) गुणोंसे विभूषित तथा कनेर-पुष्पके वर्णके समान सुन्दर एवं सात हाथ (ऊँचा) था। क्रोधरूपी शिखि (—अग्नि) को शमन करनेके लिए (वारि—) जलके समान तथा भवोंको नाश करनेवाले वर्धमान देवोपनीत भोगोको ५ भोग रहे और (इस प्रकार) कामबाणको जीत लेनेवाले उन प्रभुकी आयुके जब ३० वर्ष निकल गये, तब उसी बीचमें किसी निमित्तको देखकर (उन्होंने) शरीरभोगोंकी क्षण-भंगुरताको समझ लिया। नय-नीतिवान् उन जिनेन्द्रनाथने अवधिज्ञानसे अपने पूर्व-भवों तथा तत्सम्बन्धी विपत्तियों-की परिपाटीका विचार किया। जब उन्हे इन्द्रिय-विषयोमें वितृप्ति हो रही थी कि उसी समय नाना प्रकारकी सुखकारी मणि-किरणोंसे नभस्तलमे इन्द्रधनुषकी शोभा करनेवाले मुकुटधारी १० लौकान्तिक देव वहाँ आ पहुँचे।

घत्ता—देवगणोंने उनके पद-युगलमें विनयपूर्वक नमस्कार कर स्तुति प्रकाशित की। निर्दोष मनवाले तथा कामबाणका दलन करनेवाले गगनस्थित उन देवोंने उन महावीरको (इस प्रकार) प्रतिबोधित किया—॥१८८॥

१९

णिक्खवण-वेल्ल-संपत्तएहिँ वज्जिय घर-पुर-परिवारणेहिँ।
तव लच्छिए णं सइँ सहरसेण पेसिय दूई संगम-कएण।
सह-जाय-विमल-णाणत्तएण जुत्तहो तुह मुणिय-जयत्तएण।
पडिबुद्ध भव्व लेसहिँ परेहिँ किह कीरइ संबोहणु सुरेहिँ।
5 णिग्घाइ कम्म-पयडिउ तवेण उप्पाइवि केवलु तक्खणेण।
भासेविणु पुणु सिद्धिहे उवाउ णिण्णासिय-भीसण-भवसहाउ।
संबोहि भव्व-जीवहँ जिणेस भव वास-विहीयइँ सुद्धलेस।
इय-भणि सुररिसि गय गेहि जाम सरहसु संपत्त तुरंत ताम।
गुरु-भत्ति-णविउ साणंदकाउ चउविहु विसुद्ध मणु सुर-णिकाउ।
10 पुज्जिउ विहिणा भयवंतु तेहिँ अहिसिंचेवि मणि-मय-भूसणेहिँ।
सइँ णिग्गउ णयणाणंदिरासु जिणु सत्त पयाइँ ससंदिरासु।

घत्ता—पुणु रयणमय गयणयले गय ससिपह सिवियहिँ चडिवि जिणु।
चल्लिउ पुरहो सुर-मणहरहो जण वेढिउ चुव-मुच-रिणु ॥१८९॥

२०

वणु णायसंडु णामेण एवि जाणहो जिणु-सामिउ उत्तरेवि।
फलिहमय-सिलायले वइसरेवि पुव्वामुहेण सिद्धइँ सरेवि।
विप्फुरियाहरणइँ परिहरेवि सुह-रिउ तिण-मणि-समु मणु करेवि।
आगहणमासे दसमी दिणम्मि अत्थइरि-सिहरि पत्तइ इणम्मि।
5 विरएवि छट्ठ दिक्खिउ जिणिंदु हरिसिउ सुरवइ-णरवइ-फणिंदु।
लुअ पंचमुट्ठि केसइँ जिणासु तणु कंति-पराजिय-कंचणासु।
मणि-भायणे करेवि सुरेसरेण सयमेव संभरिय जिणेसरेण।
खीराकूवारि-णिवेसियाइँ अमयासणगणहिँ पसंसियाइँ।
तं पणवेप्पिणु गय णिहिल देव णिय-णिय णिवासे विरएवि सेव।
10 तक्खणे मणपज्जवु[२] णाणु तासु उप्पण्णउँ सहु रिद्धिहिँ जिणासु।
अवरहिँ दिणे जिणु मज्झन्न-यालि दस-दिसि पसरिय रवि-किरण-जालि।
कूलउरि दयालंकरिय-चित्तु सम्मइ पइट्ठु भोयण-णिमित्तु।

घत्ता—णिउ तहो पुरहो मोहिय-सुरहो णामें कूलु भणिज्जइ।
अणुवय-सहिउ संसय रहिउ जो पाढयहि पढिज्जइ ॥१९०॥

---

१९. १. D. णे।
२०. १. D. J. V. °णे। २. D. °उ।

१९

लौकान्तिक देवों द्वारा प्रतिबोध पाते ही महावीरने गृहत्याग कर दिया

"हे भव्य, अब निष्क्रमण वेला आ गयी है। घर, पुर एवं परिवारको छोड़िए। तपोलक्ष्मीने समागम करनेकी इच्छासे हर्षपूर्वक स्वयं ही मानो उस बेलारूपी दूतीको (आपके पास) भेजा है। (हे भव्य) जन्मकालसे ही आपको विमल ज्ञानत्रय उत्पन्न है। आप जगत्त्रयका विचार करनेवाले तथा उत्कृष्ट लेश्याओंसे प्रतिबुद्ध है। (हम-जैसे सामान्य) देव आपको क्या सम्बोध करे? तपस्या कर (आप) कर्म प्रकृतियोंका घात कीजिए और तत्क्षण ही केवलज्ञानको उत्पन्न कीजिए।" ५ उन देवोंने मोक्षसिद्धिके उपायोंको बताते हुए (आगे) कहा—"भीषण भव-स्वभाव (जन्म) का निर्दलन करनेवाले तथा शुद्ध लेश्याधारी हे जिनेश, आप भव-वाससे भयभीत भव्य प्राणियोको सम्बोधित कीजिए।"

इस प्रकार प्रतिबोधित कर वे सुर ऋषि (लौकान्तिक देव) जैसे ही अपने निवास-स्थलको लौटे कि तभी तुरन्त ही वहाँ हर्षित मनवाला इन्द्र आ पहुँचा। उसने आनन्दसे भरकर गुरुभक्तिपूर्वक वर्धमानको नमस्कार किया। उसके साथ विशुद्ध मनवाले चारों निकायोंके देव भी थे। १० मणिमय आभूषणोंवाले उन देवोंने भगवानूका विधिवत् अभिषेक कर पूजा की। नेत्रोंको आनन्दित करनेवाले वे जिनेन्द्र स्वयं ही अपने राजभवन (का परित्याग कर वहाँ) से निकले और सात पद (आगे) चले—

घत्ता—पुनः नभस्तलमे स्थित रत्नमय 'चन्द्रप्रभा' नामकी शिविका—पालकीमे चढ़कर १५ वे जिनेन्द्र देवोंके मनको अपहरण करनेवाले उस कुण्डपुरसे (बाहरकी ओर) चले। ऐसा प्रतीत होता था, मानो भव्यजनोंसे वेष्टित इस भुवनका ऋण चुकाने ही जा रहे हों ॥१८९॥

२०

महावीरने नागखण्डमें षष्ठोपवास-विधिपूर्वक दीक्षा ग्रहण की। वे अपनी प्रथम पारणाके निमित्त कूलपुर नरेश कूलके यहाँ पधारे

नागखण्ड नामक वनको आया हुआ जानकर महावीर जिनेन्द्र शिविकासे उतर पड़े और एक स्फटिक मणि-शिलापर बैठकर पूर्वाभिमुख होकर सिद्धोंका स्मरण कर स्फुरायमान आभूपणोका परित्याग कर, मित्र, शत्रु एवं तृण-मणिमें समभाव धारण कर अगहन मासकी दसमीके दिन जबकि सूर्य अस्ताचल शिखरपर पहुँच रहा था उसी समय वे षष्ठोपवासकी प्रतिज्ञापूर्वक दीक्षित हो गये। (यह देखकर) सुरपति, नरपति एवं नागपति हर्षित हो उठे। ५

स्वर्णाभाको भी पराजित कर देनेवाली शरीरकी कान्तिवाले उन जिनेन्द्रने पंचमुष्टि केशलुंच किया। तब सुरेश्वरने जिनेश्वरका स्मरण कर स्वयं ही (लुंचित केश) मणिभाजनमे बन्द कर देवगणों द्वारा प्रशंसित क्षीरसागरमे प्रवाहित कर दिये। (तत्पश्चात्) उन जिनेन्द्रको प्रणाम कर समस्त देव-समूह (अपने-अपने योग्य) सेवाएँ (अर्पित) करके अपने-अपने निवास-स्थानपर लौट गये। उसी समय उन जिनेन्द्रके ऋद्धियों सहित मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ। अगले दिन मध्याह्न- १० कालमें जब सूर्य-किरणें दसो दिशाओंमे फैल रही थी, तभी दया से अलंकृत चित्तवाले वे सन्मति जिनेन्द्र भोजन—पारणाके निमित्त कूलपुरमे प्रविष्ट हुए।

घत्ता—देवोंको भी मोहित करनेवाले उस पुर (नगर) के नृपका नाम 'कूल' कहा जाता था (अर्थात् कूलपुरके राजाका नाम कूल अथवा कूलचन्द्र था)। जो अणुव्रतोंका पालक तत्त्वार्थोंके प्रति संशयरहित था तथा जिसने पाठको (पाठक पदधारी विद्वान् साधुओं) के पास पढ़ा था ॥१९०॥ १५

२१

विइन्नउँ तेण करेविणु माणु　　जिणिंदहो भत्तिए भोयण-दाणु ।
करेविणु भोयणु वीरु विसुद्धु　　विणिग्गउ गेहहो काले सुलद्धु ।
णहाउ तओ पडिया वसुधार　　पसूणहँ विट्ठि जुवा मणहार[2] ।
पवज्जिउ दुंदुहि धीर-णिणाउ　　सुअंधु समुल्ललिओ वर-वाउ ।
5 पघोसिउ देवहिँ साहु स साहु　　सवंभउ तुट्ठु मणे महि-णाहु ।
महा अइमुत्तय-णाम मसाणे　　भमंत रमंत णिरंतर झाणे ।
जिणो रयणी-पडिमत्थु भवेण　　ण जित्तु महा-उवसग्ग-बलेण ।
तओ सुहरेण महाइयवीरु　　कओ तहो णामु थुणेविणु धीरु ।
अलं परिहार विसुद्धि जएण　　जिणेण महातव लच्छि-रएण ।
10 णिवारिय वम्मह-बाण-चएण　　समा-परिपूरिय-बारह तेण ।
महत्तणई रिजुकूलहे कूले　　सिलायले ठाइ विसालहो मूले ।

घत्ता—छट्ठि जुएण इक्के मणेण वइसाहहो सियपक्खहे ।
दसमीहि दिणे संपत्तइणे अत्थइरिहे तिमिरिक्खए ॥१९१॥

२२

णिड्डहेवि घाइ-कम्मेंधणाइँ　　झाणाणले जालोहिँ घणाइँ ।
उप्पायउ केवलणाणु तेण　　सिद्धत्थ-णरिंद-धणंधएण ।
एत्थंतरे सो सहियउ वरेहिँ　　घाइक्खइ दह-अइसय वरेहिँ ।
हेलइ चिंतंतु असेसु लोउ　　केवल-बलेण सम्मइय लोउ ।
5 गुरु-भत्ति करेविणु सुरवरेहिँ　　वंदिउ सिरि विणिवेसिय-करेहिँ ।
एत्थंतरे हरिणा भणिउ जाम　　किउ समवसरणु जक्खेण ताम ।
पविउलु बारह-जोयण-पमाणु　　णीलमउ गयणङलु भासमाणु ।
वलय समु रयणमय धूलि सारु　　चउदिसहि माण-थंभेहिँ चारु ।
चउसरवरु जललहरीहि मंजु　　परिहा-पाणिय-पायडिय कंजु ।
10 मणिमय वेइय-वल्ली-वणेहिँ　　वेढिउ जण-णयण-सुहावणेहिँ ।

घत्ता—वर विहि रइय मणिगण खइय कणय परिहे परिपुन्नइँ ।
रुप्पय मयहि णहयल गयहिँ[3] गोउर मुहहिँ रवण्णइँ ॥१९२॥

---

२१. १. J. V. तो° । २. J. V. जुवाण ।
२२. १. J. V. °ड्ड° । २. D. °ण्ण° । ३. D. J. V. °हे ।

२१

राजा कूलके यहाँ पारणा लेकर वे अतिमुक्तक नामक श्मशान-भूमिमें पहुँचे, जहाँ भव नामक रुद्रने उन पर घोर उपसर्ग किया

उस राजा कूलने विनयपूर्वक सम्मान कर जिनेन्द्र महावीरको भक्तिसहित आहार-दान दिया। समयानुसार उपलब्ध विशुद्ध आहार ग्रहण करके वे वीर जिनेन्द्र उस राजाके भवनसे पुनः वापस लौट गये। उसी समय आकाशसे युवाजनोके मनको हरनेवाली ऋद्धिपूर्ण रत्नवृष्टि तथा पुष्पवृष्टि पड़ने लगी। गम्भीर निनाद करनेवाले दुन्दुभि बाजे बजने लगे। मन्द-सुगन्धिपूर्ण वायु बहने लगी। देवोंने साधु-साधुका जयघोष किया। (इन दिव्य पंचाश्चर्यो से) कूल नामक वह नृप ५ बन्धु-बान्धवों सहित मनमे बड़ा सन्तुष्ट हुआ।

निरन्तर भ्रमण करते रमते हुए वे जिनेन्द्र एक महाभीपण अतिमुक्तक नामक श्मशान-भूमिमें रात्रिके समय प्रतिमायोगसे स्थित हो गये। उसी समय भव नामक एक बलवान् रुद्रने उन-पर महान् उपसर्ग किया, किन्तु वह उन्हें जीत न सका। इसी कारण उस रुद्रने उन जिनेन्द्रको धीर-वीर समझकर उनके अतिवीर एवं महावीर नाम घोषित किये। १०

जिनेन्द्र महावीर परिहार-विशुद्धि संयमपूर्वक महातपरूपी लक्ष्मीमें रत रहे और मन्मथके बाण-समूहका निवारण कर उन्होंने १२ वर्ष पूर्ण कर लिये। उन्होने ऋजुकूला नदीके तटवर्ती महान् शाल वृक्षके नीचे एक शिलातलपर बैठकर–

घत्ता—षष्ठोपवासपूर्वक एकाग्र मनसे वैशाख शुक्ल पक्षकी दसमीके दिन, अन्धकारका क्षय करने वाला सूर्य, जब अस्ताचलकी ओर जा रहा था—॥१९१॥ १५

२२

महावीरको ऋजुकूला नदीके तीर पर केवलज्ञानकी उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् ही इन्द्रके आदेशसे यक्ष द्वारा समवशरणकी रचना की गयी

तब ध्यानरूपी अग्निज्वालासे गहन घातिया कर्मरूपी ईंधन जलाकर सिद्धार्थ नरेन्द्रके उस स्तनन्धय—पुत्रको केवलज्ञान उत्पन्न हो गया।

इसी समय घातिया कर्मोंके क्षय होनेके कारण वे उत्तम दश अतिशयोंको धारण कर सुशोभित हुए। केवलज्ञानके बलसे उन्होंने शीघ्र ही समस्त लोकालोकको समझ लिया। सुरवरोने भी गुरु-भक्ति करके तथा माथेपर हाथ रखकर (उनकी) वन्दना की। ५

इसी बीचमें जब हरि—इन्द्रने आदेश दिया तब यक्षने एक समवशरणकी रचना की। वह १२ योजन प्रमाण विशाल था, जो गगनतल मे नीला-नीला जैसा भासता था। तथा जो रत्नमय धूलिसे बने वलयके समान शाल (परकोटों), चतुर्दिक् निर्मित चार मानस्तम्भोंसे सुशोभित मंजुल जल-तरंगोंवाले चार सरोवरों, जलसे परिपूर्ण तथा कमल पुष्पोसे समृद्ध परिखाओं तथा लोगोके मनको सुहावनी लगनेवाली वल्ली-वनोसे वेष्टित मणिमय वेदिका—(से वह समवशरण १० शोभायमान था) और—

घत्ता—उत्तम विधियोंसे रचित, मणियों द्वारा खचित (जटित), कनक-मय परिधिसे परिपूर्ण, रौप्यमय एवं गगनचुम्बी गोपुर मुखोंसे रमणीक—॥१९२॥

२३

तोरणहिँ विहंसिय धंघलेहिँ	वर अट्ठोत्तर सय मंगलेहिँ ।
णउ सालि वोहि चउ उववणेहिँ	....
तिपयार वावि मणि मंडवेहिँ	कीला महिहर लय मंडवेहिँ ।
अमरा जंतेहि विहिय रईहे	पासाय सुहालय घर तईहे ।
5 अट्ठोत्तर-अट्ठोत्तर सएहिँ	एक्केक्कु अलंकरियउ धएहिँ ।
दह भेय महा धुव्विर धएहिँ	किंकिणि रव तासिय रवि-हएहिँ ।
किंकिणि-णिम्मिय-साले सुहेण	पर पउमराय-गोउर-मुहेण ।
मणिमय थूहहिँ फंसिय णहेहिँ	किरणावलि पिहिय महागएहिँ ।
फलिहामल-पायारेँ वरेहिँ	हरि मणि मय-णेउर-सिरिहरेहिँ ।
10 तिपयारहिँ पीढहिँ सुंदरेहिँ	वारह-कोट्ठेहिँ मणोहरेहिँ ।
रयणमय-धम्म-चक्कहिँ फुरंतु	गंधउ इहिँ सुरहर-सिरिहरंतु ।

घत्ता—सक्कें थुवि जिणु काम रिउ थम्मरहंगहो मणहरु ।
कय गमणचिहि वित्थरिय दिहिँ णेमिचंद-जय-सिरिहरु ॥१९३॥

इय सिरि-वड्ढमाण-तित्थयर-देव-चरिए पवर-गुण-रयण-णियर-भरिए विवुह-सिरि-सुकइ-सिरिहर विरइए साहु सिरि णेमिचंद अणुमण्णिए वीरणाह कल्लाण चउक्क वण्णणो णाम णवमो परिच्छेउ समत्तो ॥ संधि ९ ॥

जीवाद्यो जगदेकनायकजिनाधीशक्रमाम्भोजयो—
स्त्रैलोक्याधिपतित्रयेण नुतयोर्नित्यं सपर्यारतः ।
संवेगादिगुणैरलंकृतमनाः शङ्कादिदोषोज्झितः
स श्रीमानिह साधुसुश्रुतमतिः श्रीनेमिचन्द्रश्चिरम् ॥

२३. १. D. J. V. °हे । २. D. J. V. सं° ।

२३

समवशरण की अद्भुत रचना

मेघ-समूहका विध्वंस कर देनेवाले तोरणोंपर उत्तम १०८–१०८ अंकुश, चँवर आदि मंगल द्रव्य सुरक्षित थे, जो भगवान्‌की विभूतिको प्रकट कर रहे थे। तथा (गोपुरोंके भीतर) नाट्यशालाएँ, वीथियाँ, अशोक, सप्तच्छद्र, चम्पक एवं आम्र नामक चार उपवन [अशोक आदि चार प्रकारके वृक्ष ?] नन्दा, नन्दवती एवं नन्दोत्तर नामक तीन प्रकारकी वापियाँ तथा मणि-मण्डप, क्रीडा पर्वत एवं लता-मण्डप वने हुए थे। देव-यन्त्रों द्वारा विधिपूर्वक रचित प्रासाद, सभामण्डप, भवन आदिकी पंक्तियाँ भी सुशोभित थीं। (वीथियोंके चारों ओर) एक-एक (वीथी) पर मयूर, माला आदि दस भेदवाली तथा किंकिणी रवोंसे सूर्यके घोड़ोंको भी त्रस्त कर देनेवाली ऊँची-ऊँची फहराती हुई १०८-१०८ ध्वजा-पताकाएँ थी। किंकिणियों द्वारा निर्मित सुन्दर शाल बनाये गये जो कि पद्मराग मणियोंके द्वारा बनाये गये गोपुर मुखोंसे युक्त थे। गगन-चुम्बी मणिमय स्तूप बने हुए थे, जो अपनी किरणावलिसे महागजोंको भी ढँक देनेवाले थे। स्फटिकके निर्मल एवं श्रेष्ठ प्राकार हरिन्मणियोंसे निर्मित तथा नूपुरोंसे युक्त श्रीगृह (श्रीमण्डप) तीन प्रकारके सुन्दर पीठ एवं मनोहर १२ कोठे बने हुए थे। इसी प्रकार रत्नमय चक्रसे स्फुरायमान तथा स्वर्ग-श्रीका हरण करनेवाली गन्धकुटीसे वह समवशरण शोभायमान था।

घत्ता—धर्मरूपी रथके लिए चक्रके समान मनोहर तथा कामरिपु उन जिनेन्द्रकी इन्द्रने स्तुति की। नियमित रूपसे धर्मरूपी रथके चक्रका नियमन करनेवाले नेमिचन्द्रके लिए जयश्रीके गृह-स्वरूप कवि श्रीधरने महावीरके समवशरणमें गमनविधि (रूपकथा) का विस्तार दिशाओं-दिशाओंमें किया है ॥१९३॥

नौवीं सन्धिकी समाप्ति

इस प्रकार प्रवर गुण-रत्न-समूहसे भरे हुए विबुध श्री सुकवि श्रीधर द्वारा रचित साधु श्री नेमिचन्द्र द्वारा अनुमोदित श्री वर्धमान तीर्थंकर देवचरित्रमें श्री वीरनाथके चार कल्याणकोंका वर्णन करनेवाला नौवाँ परिच्छेद समाप्त हुआ ॥ सन्धि ९ ॥

आशीर्वाद

जो जगत्‌के एकमात्र नायक, त्रिलोकोंके अधिपति, सुरेश, चक्रेश एवं असुरेशों द्वारा नमस्कृत चरणरूपी कमलोंकी पूजा-अर्चामें निरन्तर संलग्न रहता है, जो संवेगादि गुणोंसे अलंकृत मनवाला है, जो शंकादि दोषोंसे रहित है वह श्रीमान् सुश्रुत मति एवं साधु स्वभावी नेमिचन्द्र इस संसारमे चिरकाल तक जीवित रहे।

संधि १०

१

तहो वीरणाहहो दाहिण-दिसहे ठिय गुण राइय गणहर ।
पुणु कप्पामर रमणिउँ पवर कढिणुन्नय घण-थणहर ॥

पुणु अज्जिय उवइट्ठ सकंतिय — जोइस-विंतर-भवणामर तिय ।
भावण-विंतर-जोइसियामर — पुणु कमणीय कयं कप्पामर ।
5 पुणु वइट्ठ णर-तिरिय महिट्ठउ — इय वारह-विह-गणु उवविट्ठउ ।
हरे विट्ठरे ठिउ सहइ जिणेसरु — भामंडल जुइ णिज्जिय णेसरु ।
उहय दिसहिँ परिणिवडहिँ[1] चामर — जय जय सद्द भणंति णरामर ।
भणइ व तिजय पहुत्तणु भेदिहे[2] — छत्तत्तउ तहो[3] किंकिणि सद्दहिँ ।
गंभीरारउ दुंदुहि वज्जइ — हरिसेण व रयणायरु गज्जइ ।
10 पुप्फविट्ठि णिवडइस-सिलीमुह — णहहो वास-वासिय आसामुह ।
सहइ असोउ सुसाहहिँ मंडिउ — रत्त-गुज्झ-लच्छी-अवरुंडिउ ।
एत्थंतरे णिण्णासिय मारवे — अण उप्पज्जमाण दिव्वारवे ।

घत्ता—तहो जिणणाहहो अवहिए मुणेवि गोतम-पासे तुरंतउ ।
गउ सुरवइ गणियाणण लइवि मउड-मणीहिँ फुरंतउ ॥१९४॥

२

तहिं अवलोएविणु गुण-गणहरु — गोत्तमु गोत्तणहंगण-ससहरु ।
विप्प वडूव रूवेण सुरेंदें — मेरु महीहरे ण्हविय जिणेंदें ।
सइँ वासवेण पुराणिउ तित्तहे — इंदभूइ जिणु सामिउँ जेत्तहे ।
माणथंभु अवलोएवि दूरहो — विहडिउ माणु तमोहु व सूरहो ।
5 पणय-सिरेण तेण गय-माणें — गोत्तमेण महियले असमाणें ।
पुच्छिउ जीव-ट्ठिदि परमेसरु — पयणिय-परमाणंदु जिणेसरु ।
सो वि जाय-दिव्वज्झुणि भासइ — तहो संदेहु असेसु विणासइ ।

---

१. १. V. परिणिवहिं । २. D. °हे° । ३. D. °हु ।

सन्धी १०

१

भगवान्‌की दिव्यध्वनि झेलनेके लिए गणधरकी खोज। इन्द्र अपना वेश बदलकर गौतमके यहाँ पहुँचता है

उन वीर प्रभुकी दायीं ओर गुण-विराजित गणधर (और मुनि) स्थित थे। उनके वाद सुपुष्ट, कठोर, मोटे एवं ऊँचे उठे हुए स्तनोंवाली कल्पवासिनी देवांगनाएँ बैठी थी।

उनके बाद अन्य महिलाओंके साथ आर्यिकाएँ फिर (क्रमशः) ज्योतिषी, व्यन्तर एवं भवनवासी देवोंकी देवियाँ विराजमान थीं। (उनके बाद) भवनवासी, व्यन्तर एवं ज्योतिषी देव और कमनीय (अत्यन्त सुन्दर) कल्पवासी देव। उनके बाद मनुष्य तथा पृथिवीपर तिर्यंच स्थित थे। इस प्रकार (१२ सभाओंमें) १२ प्रकारके गण (वहाँ) उपविष्ट थे। ५

भामण्डलकी द्युतिसे सूर्यको भी जीत लेनेवाले जिनेश्वर सिंहासनपर बैठे हुए सुशोभित हो रहे थे। उनके दोनों ओर चमर ढुराये जा रहे थे। मनुष्य और देव-समूह जय-जयकार कर रहे थे। (भगवान्‌के सिरके ऊपर लटकते हुए) तीनों छत्रोमें लगी किंकिणियोके शब्द, मानो भव्य-जनोंके लिए महावीरके त्रिजगत् सम्बन्धी प्रभुपनेको घोषित कर रहे थे। गम्भीर ध्वनिवाले दुन्दुभि-बाजे बज रहे थे, ऐसा प्रतीत होता था मानो हर्षसे समुद्र ही गरज रहा हो। नभस्तलसे समस्त दिशा-मुखोंको सुवासित करनेवाली तथा शिलीमुख—भ्रमरों सहित पुष्पवृष्टि हो रही थी। शाखा-प्रशाखाओंसे मण्डित तथा रक्ताभ गुच्छोंकी शोभासे सम्पन्न अशोक-वृक्ष शोभायमान था। १०

(किन्तु) उस समय जिननाथकी मिथ्यात्व एवं मार—कामनाशक दिव्यध्वनि नही खिर रही थी—

घत्ता—तब मुकुट-मणियोंसे स्फुरायमान इन्द्रने अपने अवधिज्ञानसे (उसका कारण) जाना और (विक्रिया ऋद्धिसे) गणितानन—गणितज्ञ—दैवज्ञ-ब्राह्मणका वेष बनाकर वह तुरन्त ही गौतमके पास पहुँचा ॥१९४॥ १५

२

पंच सयहिँ दिय-सुयहँ समिल्लें लइय दिक्ख विप्पेण समेल्लें[1]।
पुव्वण्हइँ सहुँ दिक्खए जायउ लद्धिउ सत्त जासु विक्खायउ।
10 तम्मि दिवसे अवरण्हए तेण वि सोवंगा गोत्तम णामेणवि।
जिण-मुह-णिग्गय-अत्थालंकिय वारहंग सुय-पय रयणंकिय।
घत्ता—संपत्त सयल अइसय जिणहो रयइ थोत्तु गुरु भत्तिए।
सेहर मणियर भासिय गयणु वित्त सत्तु णियखंतिए॥१९५॥

३

जय देवाहिदेव दुरियासण जीवाजीव-विभेय-पयासण।
जय रयणमय-पंचवयणासण चउ-गइ भव दुक्खोह पणासण।
जय सयलामल केवल-लोयण लोयालोय भाव-अवलोयण।
जय सयलंगि-वग्ग-मण-संकर सिद्धि पुरंधिय संकर संकर।
5 जय जिणवर-तित्थयर-दियंवर णिय जसोह णिज्जिय सरयंवर।
जय दयलय परिवड्ढण विसहर णिद्दारिय रइवर सर विसहर।
जय पंचेदिय-हरिण-मयाहिव छद्दव्वाईरिय तिजयाहिव।
जय लोहाहिय संथुय णीयर[1] मुह-पह-णिब्भच्छिय णवणीयर[2]।
जय दिव्वज्झुणि पूरिय सुरवह तिरयण विणिवारिय असुहरवह।
10 जय धणवइ पविरइय विहूसण परितज्जिय रयणमय विहूसण।
घत्ता—इय थुणेवि तियसणाहेण णिरु पुणु पुच्छिउ परमेसरु।
तहिँ सत्तहँ तच्चहँ भेउ णिरु तं णिसुणेवि जिणेसरु॥१९६॥

४

भासइ अहर-फुरण-परिवज्जिउ खयरामर नर नियरहिँ पुज्जिउ।
दोविह जीव सिद्ध-संसारिय संसारिय णिय-कम्मेँ भारिय।
णिच्चेयर[1]-मरु-महि-जल-तेयहँ सत्त-सत्त लक्खइँ फुडु एयहँ।

---

२. १. J. V. °ल्लि।
३. १. D. णीरय। २ D. °णीरय।
४. १. D. °रु।

का समस्त सन्देह दूर हो गया। अपने ५०० द्विज-पुत्रोंके साथ मिलकर उस गौतम-विप्रने (तत्काल ही) सब कुछ त्यागकर जिन-दीक्षा ले ली। पूर्वाह्णमे दीक्षा लेनेके साथ ही उसे (गौतमको) ७ विख्यात (अक्षीण) लब्धियाँ (—बुद्धि, क्रिया, विक्रिया, रस, तप, औषधि एवं वल) उत्पन्न हो गयी तथा उसी दिन अपराह्णमें उस गौतम नामक ऋषिने महावीर-जिनके मुखसे निर्गत अर्थोसे अलंकृत सांगोपाग द्वादशांग श्रुतपदोंकी रचना की। १०

घत्ता—मुकुटकी मणि-किरणोसे गगनको भी भास्वर वना देनेवाले तथा अपने क्षमागुणसे शत्रुको भी मित्र वना लेनेवाले (उस) इन्द्रने देवकृत अतिशयों द्वारा सम्मानित (उन) जिनेन्द्रकी गुरु-भक्तिपूर्वक (इस प्रकार) स्तुति की ॥१९५॥ १५

३

समवशरणमें विराजमान सन्मति महावीरकी इन्द्र द्वारा संस्तुति तथा सप्त-तत्त्व सम्बन्धी प्रश्न

"दुरितोंके नाशक तथा जीवाजीवके विभेदोंके प्रकाशक हे देवाधिदेव, आपकी जय हो। रत्नमय पंचवद नाशन—सिंहासनवाले तथा चतुर्गतिरूप संसारके दुख-समूहको नष्ट करनेवाले हे देव, आपकी जय हो। केवलज्ञान रूपी नेत्रसे समस्त पदार्थोंको यथार्थरूपमे जाननेवाले तथा लोका-लोकके भावोंका अवलोकन करनेवाले हे देव, आपकी जय हो। समस्त प्राणिवर्गके मनको शान्ति प्रदान करनेवाले हे देव, आपकी जय हो। सिद्धिरूपी पुरन्ध्रीको वशमें करनेवाले हे शंकर, आपकी जय हो। अपने यश-समूहसे शरद्कालीन मेघोको भी जीत लेनेवाले हे जिनवर, हे तीर्थंकर, हे दिगम्बर, आपकी जय हो। दयारूपी लतासे विषधरको भी परिवर्तित कर देनेवाले, रतिवर—कामदेवके विषैले शर—वाणोंका निर्दलन कर देनेवाले हे देव, आपकी जय हो। पंचेन्द्रियरूपी हरिणके लिए मृगाधिपके समान हे देव, आपकी जय हो,। छह द्रव्योंका कथन करनेवाले हे त्रिज-गाधिप देव, आपकी जय हो। लोकाधिपोंसे संस्तुत तथा नीतिमार्गके निर्माता हे देव, आपकी जय हो। अपने मुखकी ज्योतिसे नवनीतकी भी अवहेलना कर देनेवाले हे देव, आपकी जय हो। अपनी दिव्य ध्वनिसे सुरपथ (आकाश) को भर देनेवाले हे देव, आपकी जय हो। रत्नत्रयसे अशुभकारी पथ—मिथ्यात्वका निवारण करनेवाले हे देव, आपकी जय हो। धनपति—कुवेर द्वारा प्रविरचित समवशरणरूपी विभूपणसे युक्त तथा रत्नमय विभूषणोंका परित्याग कर देनेवाले हे देव, आपकी जय हो।" ५ १० १५

घत्ता—इस प्रकार स्तुति करके त्रिदशनाथ—इन्द्रने परमेश्वर महावीर जिनेन्द्रसे सप्त तत्त्वोंके भेद सम्बन्धी प्रश्न पूछा। उसे सुनकर जिनेश्वरने—॥१९६॥

४

जीव-भेद, जीवोंकी योनियों और कुलक्रमोंपर महावीरका प्रवचन

विद्याधरों, देवों और मनुष्यों द्वारा पूजित उन्होंने (महावीर जिनेन्द्रने) ओष्ठ-स्फुरणके विना ही सप्ततत्त्वों पर इस प्रकार प्रवचन किया—

सिद्ध और संसारीके भेदसे जीव दो प्रकारके होते हैं। अपने कर्मोंके भारको ढोनेवाले जीव संसारी कहलाते है। नित्य निगोद, इतर निगोद, वायुकायिक, पृथ्वीकायिक, जलकायिक और तेजोकायिक जीवोंकी (प्रत्येककी) स्पष्ट रूपसे ७-७ लाख योनियाँ है। ५

वियलिंदियहँ मुणिंद समक्खहिँ विण्णि-विण्णि लक्खइँ उचलक्खहिँ ।
5 चारि-चारि लक्खइँ णारइयहँ हुंति ण एत्थु भंति सुर तिरियहँ ।
पत्तेयावणियहँ दह लक्खइँ जिह तिहँ णरहँ चउदहँ लक्खइँ ।
इय चउरासी लक्खइँ जोणिउँ सयल मिलिय हवंति दुह खोणिउँ ।
महि-कायहँ जडयण दुल्लक्खइँ वाईस जि कुल कोडिउ लक्खइँ ।
जल कायहिँ सत्त जि सिहि कायहँ तिण्णि सत्त जाणहिँ मरु कायहँ ।
10 अट्ठावीस वणप्फइ कायहँ जिणवर भणियागम विक्खायहँ ।
वियलिंदियहँ कमेण समीरिय सत्त अट्ठ णव भंति णिवारिय[२] ।
पंचेंदिय जलयरहँ णरक्खिय अद्ध विमीसिय वारह लक्खिय ।
पक्खिहुँ वारह दह चउ चरणहँ णव पउत्त उर-परि संसरणहँ ।
पंचवीस णारयहँ णरह जिह चउदह छव्वीस जि अमरह तिह ।
15 घत्ता—पंचास कोडि सहसेहिँ णव णवइ कोडि लक्खेहिँ सहु ।
एक्क जि कोडा कोडी हवइ सयल मिलिय पुव्वुत्तरहँ ॥१९७॥

५

आयहिँ ते भमंति दुह-गंजिय अण्णण्णंगय राएँ रंजिय ।
हुंति अणेय वियल पंचेंदिय पंच पयार भणिय एइंदिय ।
मण-वय-तणु-कय-करणाहारहँ परमाणुवहँ सगुण-वित्थारहँ ।
जं णिव्वत्तणु करणहो कारणु तं पज्जतिओ फुडु अणिवारणु ।
5 तं जिणणाहेँ छव्विहु भासिउ मंद मइल्लहु संसउ णासिउ ।
भिण्ण-मुहुत्त थाइ अहमें जिउ अमुणंतउ स-हियए अप्पहो हिउ ।
दह वच्छर सहास णिवसइ जिह णरय-णिवास-सुरावासउ तिहँ ।
तेतीसंबुरासि परमें मुणि पल्लइ तीणि नरय तिरियहँ सुणि ।
एइंदियहँ चारि पज्जत्तिउ वियलिंदियहँ पंच पण्णत्तिउ ।
10 पंचेंदिउ असण्णि जा तावहिँ णाणवंत मुणिवर परिभावहिँ ।

---

२ J. V. णं ।

मुनीन्द्रोंने विकलेन्द्रियोंकी २-२ लाख योनियाँ उपलक्षित की हैं। नारकियों, देवों और पंचेन्द्रिय तिर्यंञ्चोंकी ४-४ लाख योनियाँ होती हैं, इसमें कोई भ्रान्ति नही।

प्रत्येक वनस्पतिकी जिस प्रकार १० लाख योनियाँ होती है, उसी प्रकार मनुष्योंकी १४ लाख। इस प्रकार कुल ८४ लाख योनियाँ होती है, वे सभी मिलकर दुखकी क्षोणी—भूमि हैं।

जड़जनों द्वारा दुर्लक्ष्य पृथिवीकायिक, जीवोंके २२ लाख कुलकोटि है। जलकायिक जीवोके ७ लाख कुलकोटि, अग्निकायिक जीवोके ३ लाख कुलकोटि एवं वायुकायिक जीवोके ७ लाख कुलकोटि और वनस्पतिकायिक जीवोंके २८ लाख कोटिकुल है ऐसा जिनवरों द्वारा कथन आगमोंमे विख्यात है। विकलेन्द्रियोंके क्रमशः ७, ८ और ९ लाख कोटि कुल कहे गये हैं। इस कथनसे (अपनी) भ्रान्तिका निवारण कर लीजिए। १०

पंचेन्द्रिय अमनस्क जलचर तिर्यंचोंके आधा मिलाकर १२ लाख (अर्थात् साढ़े बारह लाख) कुल कोटि हैं। पंचेन्द्रिय नभचर पक्षी तिर्यंचोंके १२ लाख कुल कोटि और पंचेन्द्रिय स्थलचर चतुष्पद तिर्यंच जीवोंके १० लाख कुल कोटि हैं। उरपरिसंसरण करनेवाले (सर्प आदि) पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके ९ लाख कुल कोटि है। जिस प्रकार नारकी जीवोंके २५ लाख कुल कोटि हैं उसी प्रकार मनुष्योंके १४ लाख कुल कोटि तथा देवोंके २६ लाख कुल कोटि है। १५

घत्ता—पूर्व उत्तरके सब कुलोंकी संख्या मिलाकर एक कोडाकोडी, ९९ लाख ५० हजार कोटि है। अर्थात् सम्पूर्ण कुलोंकी संख्या १ कोडी ९९ लाख ५० हजारको १ कोटिसे गुना करनेपर जितना लब्ध आये उतनी अर्थात् १९७५०००००००००० कुल संख्या है। २०

६

जीवोंके भेद, उनकी पर्याप्तियाँ और आयु-स्थिति

दुखोंसे पीड़ित वे समस्त संसारी जीव परस्परमें रागरंजित होकर संसारमें भटकते हुए जन्मते-मरते रहते हैं। पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक रूप पाँच प्रकारके स्थावर एकेन्द्रिय जीव होते हैं। अनेक बार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय-रूप विकलेन्द्रिय जीव हुए और इसी प्रकार अनेक बार पंचेन्द्रिय जीवके रूपमें जन्म लेते और मरते रहते हैं। ५

मन, वचन, काय, कृत, करण—चेष्टा और आहार वर्गणासे अपने खल रसभाग रूपादि गुणको विस्तारनेवाले परमाणुओंकी निवर्तनाकरण रूप जो अनिवार्य कारण है, वह स्पष्ट ही पर्याप्ति (कही गयी) है। जिननाथने उसे ६ प्रकारका बताया है और मन्द मतियोंके संशयको दूर किया है। यह मनुष्य व तिर्यंच जीव अपने हृदयमे अपने ही हितका विचार न करता हुआ अधम पर्यायोमे भिन्न—जघन्य मुहूर्त आयु पर्यन्त ठहरता है। जिस प्रकार नरक निवासमे १० सहस्र वर्षकी जघन्य आयु है, उसी प्रकार स्वर्ग-निवासमे भी जघन्य आयु १० सहस्र वर्षकी है। इन्हीमें उत्कृष्ट आयुका प्रमाण ३३ सागर जानो। १०

मनुष्य व तिर्यंचोंकी उत्कृष्ट आयु ३ पल्यकी सुनी गयी है।

एकेन्द्रिय जीवकी आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वासोच्छ्वास नामक ४ पर्याप्तियाँ तथा विकलेन्द्रियोकी आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास और भाषा नामक ५ पर्याप्तियाँ कही गयी हैं। ये ही पर्याप्तियाँ असंज्ञी व पंचेन्द्रियोंकी भी कही गयी हैं। ऐसा ज्ञानवन्त मुनिवर विचार किया करते है। १५

सण्णिउँ छह पज्जत्तिउ धारइ सिक्खा-भाव-रयणु परिभावइ ।
एयहिँ पंज्जप्पंति ण जे जिय अमरहि अपज्जता ते अगणिय ।

घत्ता—लग्गइ खणासु णित्तुलउ लइ जीवहो पज्जप्पंतहो ।
अंतर मुहुत्तु सव्वहो भुवणे भणइ वयणु अरहंतहो ॥१९८॥

६

णर-तिरियहँ ओरालिउ कायउ सुर-णारयहँ विउव्वणु जायउ ।
कासुवि आहारंगु मुणिंदहो तेउ कम्मु सयलहो जिय-विंदहो ।
दुविह भवंति तिरिय थावर-तस थावर पंच-पयार सतामस ।
पुहई आउ तेउ वाएँ सहु हरियकाय ण चलइ भासिउ महु ।
5 पुहईकाय मसूरी सण्णिहँ हुंति भणंति महामुणि णिप्पिह ।
सलिलेकाय संताव-णिवारण कुस-जल-लव-लीला सिरि धारण ।
तेय-काय परियाणि पुरंदर घण-सूई-कलाव-सम-सुंदर ।
वाउकाय णिण्णासिय-तणु-सम मारुव परि-विहुणिय-धयवड-सम ।
सरि-सर-सायर-सुरहर-राइहि तरु गिरि तोरण वसुवहिं वेइहिँ ।
10 पण्णारह कम्मावणि छेत्तहिँ अरुह पायगंधोय-पवित्तहिँ ।
गयणंगणि वंतेण सुसंठिय अंवरेसु वि गणेसु परिट्ठिय ।
एण पयारेँ तुह मइँ दाविउ एयहँ वासु कमेण न गोविउ ।

घत्ता—खर वालुआइ भिज्जइ णमहि णिब्भर सलिल-पवाहहिँ ।
सण्ही सिंचिय वंधणु लहइ वीयराय जिण साहहिं ॥१९९॥

६. १. D. ला । २. J. V. वि° ।

इसी प्रकार संज्ञीजीव मन पर्याप्ति सहित ६ पर्याप्तियोंको धारण करते है। वे शिक्षा, भाव-रचना अर्थात् संकेत आदिको समझ लेते हैं।

जिनके उक्त पर्याप्तियाँ (पूर्ण) नही होती, वे अपर्याप्त कहलाते हैं। जो मरणकालपर्यन्त अपर्याप्तक ही रहते है, वे लब्ध्यपर्याप्तक हैं, इनकी संख्या अगणित है (अथवा—देव भी अपर्याप्तक होते है, किन्तु उनकी गणना यहाँ नही की गयी ?)। २०

घत्ता—जिन जीवोकी पर्याप्ति अभी तक पूर्ण नही हुई है, किन्तु अन्तर्मुहूर्तके वाद हो जायेगी, संसारमे वे सभी जीव निर्वृत्यपर्याप्तक कहलाते है। ये अनुपम अरहन्तोके ही वचन हैं (मेरे अपने नही) ॥१९८॥ २५

६

जीवोंके शरीर-भेद

मनुष्यों और तिर्यंचोंके औदारिक शरीर तथा देवों और नारकियोंके वैक्रियक शरीर होता है। किसी-किसी मुनीन्द्रके आहारक शरीर भी होता है। समस्त जीवोके तैजस और कार्मण शरीर होते हैं।

तिर्यंच जीव दो प्रकारके होते हैं—(१) स्थावर और (२) त्रस। (इनमें से) स्थावर-जीव पाँच प्रकारके होते हैं, जो सभी तामस भाववाले होते हैं वे (—इस प्रकार) हैं—(१) पृथिवी-कायिक, (२) अप्कायिक, (३) तेजकायिक, (४) वायुकायिक और (५) हरितकायिक स्थावर जीव, यह मेरा अपना कथन नही है (अर्थात् यह जिनभाषित है जो यथार्थ है)। ५

पृथिवीकायिकके जीवोंका आकार मसूरके वरावर होता है, ऐसा निस्पृह मुनीश्वरोंने कहा है। सन्ताप निवारण करनेवाले जलकायिक जीव कुशाके जलांशकी लीलाश्रीको धारण करनेवाले होते हैं। (अर्थात् जलकायिक जीवोंका आकार जल-बिन्दुके समान होता है)। हे पुरन्दर, अग्निकायिक जीवोंका शरीर धन-सूची-कलापके समान सुन्दर जानो (अर्थात् खड़ी हुई सुईके समान अग्निकायिक जीव होते है)। वायुकायिक जीवोंके शरीरका आकार नष्ट हुए शरीरके समान अथवा वायु-प्रकम्पित ध्वजा-पताकाके समान जानो। १०

पाँच भरत, पाँच ऐरावत और पाँच विदेह इस प्रकार (कुल) १५ कर्मभूमियोंके क्षेत्र हैं, जो नदी, सरोवर, सागर और सुरधर (सुमेरु) से सुशोभित है। वे वैताढ्य गिरि, वृक्ष, तोरण, वर्ष, वर्षधर वेदिकाओसे सुशोभित तथा अरहन्तोंके चरणोके गन्धोदकसे पवित्र है। जहाँ गगनांगण पंक्तियाँ सुशोभित हैं तथा देव-विमानोंमें गणेश तथा इन्द्र परिस्थित (विचरण करते) रहते हैं। इस प्रकार (हे इन्द्र) मैने तुम्हे जीव भेद-प्रभेद आदि तो दर्शाये, किन्तु अभी उनके निवास-क्रम नही वताये हैं। १५

घत्ता—खर, बालुका ([illegible]—) पृथिवियाँ निरन्तर जल प्रवाहोसे भी नही भेदी जा सकती। किन्तु स्नेह [illegible] वन्धनको प्राप्त हो जाता है, ऐसा वीतराग जिन द्वारा कहा गया है ॥१९९॥ २०

७

पंचवण्ण मणि रुट्ठिय दुविहेवि होइ मिस्सणामें किर अवरवि ।
कसण-पीय-हरियारुण-पंडुर अवरवि पुणु उब्भासिय धूसर ।
एरिसमउ मेइणि महिकायहँ पंचवन्न-गुण-भासिय आयहँ ।
तउव-तंव-मणि-रुप्पय-कंचण खर-पुहवी पभणंति विवंचण ।
5 वंय महु मज्ज खीर खार सरिस जल जाई वि पयंपिय विसरिस ।
दूरहो दूसह-धूम-पयासणु पवि-रवि-मणि-तडि-जाइ हुवासणु ।
उक्कलि मंडलि आइ करंतउ मरुण ठाइ दिसि विदिसिहिँ जंतउ ।
गुच्छ-गुम्म-वल्ली-वण-पव्वहिँ एवमाइ ठाणहिँ लइ सव्वहिँ ।
वणसइ काय णिरारिउ णिवसहिँ पुव्वज्जिय णिय कम्मइँ विलसहिँ
10 पज्जत्तेयर सुहुमेयर जिह साहारण-पत्तेय वि मुणि तहँ ।
साहारणहँ होंति साहारण सयलवि आणा पाण आहारण ।
पत्तेयहँ फुडु पत्तेयंगइँ छिंदण-भिंदण वसहु अहंगइ ।
मिउमहि वरिस-सहासइँ वारह खरहु जाणि दुगुणिय एयारहँ ।
आउहे सत्त सहस अह रत्तए तिण्णि हुंति हुववहहो णिरुत्तइँ ।
15 घत्ता—ति-सहस-वरिसाइँ समीरणहो दह वणसइ-जीवइ जिह ।
परमें अहमें आउसु जियहँ भिण्णि मुहुत्तु भणिउ तिह ॥२००॥

८

अक्ख-कुरिक-किमि-सुत्ति-सुसंखइँ वेइंदियइँ हवंति असंखइँ ।
तेइंदिय मुणि गोभि-पियीलिय मइँ केवलणाणेण णिहालिय ।
चउरिंदिय दंस-मसय-मक्खिय मइँ जाणेविणु तुज्झु समक्खिय ।
किंपि णाणु परिवाड़ीए एयहँ जुत्तिए वियलहँ होइ ति-भेयहँ ।
5 रसु-गंधु-णयणु एक्केक्कें दिउ फासहो उप्परि चउर अणिंदिउ ।
पज्जत्तीउ पंच तहो लक्खिय छह सत्तट्ठ पाण कय संठिय ।

७. १. J. V. तउ । २. D. घज । ३. D. अ° ।
८. १. J. V. द° ।

७

स्थावर जीवोंका वर्णन

पाँच वर्णवाले मणियोंकी रुँधी हुई दो प्रकारकी मिट्टी है, वह मिश्र पृथिवी कहलाती है, उससे और भी कृष्ण, पीत, हरित, अरुण एवं पाण्डुर वर्ण तथा धूसर वर्ण उत्पन्न होता है, उसी वर्णके पृथिवीकायिक जीव भी होते है, जिन्हें आगमोंमें पाँच वर्ण गुणवाला कहा है।

शीशा, ताँबा, मणि, चाँदी एवं सोनेको विचक्षण पुरुष खर-पृथिवी कहते हैं।

घृत, मधु, मद्य, खीर एवं खारके समान विसदृश जीव जल-कायिक जीव कहे जाते हैं। 5

दूरसे ही दुस्सह, धूमको प्रकाशित करनेवाली, वज्र, रवि, मणि, विद्युत्से उत्पन्न जीव अग्निकायक जीव है।

उत्कलि, मण्डलि आदि करती हुई (साँय-साँय करती हुई) जो वायु ठहरती नही, दिशाओं-विदिशाओंमें चली जाती है वह वायुकायिक जीव है।

गुच्छ, गुलम (झाड़ी), वल्ली, बाण, पर्व (पोर) आदि स्थानोमे निश्चय ही वनस्पति-कायिक जीव रहते है और अपने पूर्वार्जित कर्मोका विलास-भोग करते है। जिस प्रकार पर्याप्त-अपर्याप्त सूक्ष्म-वादर जीव होते है उसी प्रकार साधारण प्रत्येक भी समझो। १०

साधारण जीवोंमे आयु, श्वासोच्छ्वास और आहार सभी समान होते है।

प्रत्येक जीवोंके निश्चय ही प्रत्येक शरीरांग होते है, उनकी छेदन, भेदनवशसे अधमगति हो जाती है। १५

मृदुभूमिवश (पृथिवीकायिक) जीवोंकी आयु १२ सहस्र वर्षोकी होती है। खर पृथिवी-कायिकके जीवोंकी आयु ११ की दुगुनी अर्थात् २२ सहस्र वर्षोकी जानो।

जलकायिक जीवोकी आयु सात सहस्र अहोरात्रकी तथा अग्निकायिक जीवोंकी तीन अहोरात्रकी कही गयी है।

घत्ता—जिस प्रकार समीरण—वायुकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट आयु तीन सहस्र तथा वनस्पतिकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट आयु दस सहस्र वर्ष कही गयी है उसी प्रकार उनकी अधम—जघन्य आयु भी भिन्न मुहूर्तकी कही गयी है ॥२००॥ २०

८

विकलत्रय और पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंका वर्णन

द्वीन्द्रिय प्राणी असंख्यात होते हैं, वे अक्ष, कुक्षि, कृमि, शुक्ति और शंख आदि भेदवाले होते है। गोमिन् पिपीलिका आदि त्रीन्द्रिय जानो, जिन्हे मैने अपने केवलज्ञानसे देखा है।

दंश-मशक, मक्खी आदि चतुरिन्द्रिय प्राणी जानो, उन्हे अपने केवलज्ञानसे जानकर ही मैने तुझे कहा है। कुछ ज्ञान-परिपाटीके अनुसार इन विकलत्रयोंके युक्ति-पूर्वक तीन भेद कहे गये हैं। ५

स्पर्शनेन्द्रियके ऊपर रसना, घ्राण तथा नयन नामकी एक-एक अनिन्द्य इन्द्रिय ऊपर-ऊपर बढ़ती है (यथा—दो इन्द्रियोंके स्पर्शन और रसना, तीन इन्द्रियोके—स्पर्शन, रसना और घ्राण, चार इन्द्रियोंके—स्पर्शन, रसना, घ्राण और नयन)।

उक्त विकलत्रयोंकी पाँच पर्याप्तियाँ कही गयी है तथा प्राण क्रमशः (द्वीन्द्रियोके—) छह (त्रीन्द्रियोंके—) सात एवं (चतुरिन्द्रियोके—) आठ संस्थित कहे गये हैं। १०

सण्णि-असण्णि दुविह पंचेंदिय मण परिहरिय हवंति असण्णिय ।
परिगिण्हंति ण सिक्खा-लावइ अण्णाणियण मुणहिँ पर-भावइ ।
पज्जत्तीउ पंच अमुणंतहुँ को अण्णारिसु करइ भणिउँ महुँ ।
10 पज्जत्ती छक्क दह पाणइ तिरिय जयंतिसु अमिय पमाणहि ।
पंचेदिय[2] तिरिक्ख आयण्णहि दह-सय-लोयणमा अवगण्णहि ।
जलयर पंचमेय मयरोहर सुंसुमार-झस-कच्छव मणहर ।
णहयर वियड फुडुग्गय पक्खइँ अवर चम्म वण-लोम सुपक्खइँ ।
थलयर चउ-भेयइँ चउ चरणइँ एय-दु-खुर करि-मंडल चरणइँ ।
15 घत्ता—उर-सप्प-सहोरय-अजयरहिँ जेहिं भइंदविवाइय ।
सरिसप्प वि हुंति अणेय विह सरढुंदुरु-गोहाइ य ॥२०१॥

९

जलयर जले णहयर गण नहिहरे थलयर गामे णयरे पुरे मणहरे ।
दीवोवहि मंडल अब्भंतरे पढमु दंडे पुर-गाम णिरंतरे ।
जोयण लक्खु एक्कु वित्थिन्नउँ सरि-सरवर-सुरतरुहिं रवण्णउँ ।
पुणु असंख ठिय वलयायारेँ दीवंबुहि किं बहु वित्थारेँ ।
5 जंबूदीउ सयलदीवेसरु धादईसंडु कमल-मंडिय-सरु ।
पुणु पुक्करु-वारुणि-खीरोवरु घय महुं णंदीसरु अरुणोवरु ।
अरुण भासु कुंडलें[2] नामालउ संख-रुजग भुजगवरु विसालउ ।
तहय कुसग्ग कुंचइय-सिवरवि दूण दीव दूणंबुहि पुणरवि ।
पभणइँ जिणु एएसु णिवासइ ठंति विसालइँ सुक्ख पयासइ ।
10 जलयर-थलयर-णहयरें[3] तिरियहँ छिंदण-भिंदण-वंधण दुरियहँ ।
एय वियल पंचेदियह वि पुणु तणु पमाणु भासमि सुरवइ सुणु ।
घत्ता—जोयण-सहासु सररुहुवइ वारहँ जोयण दुकरणु ।
तिरयणु ति-कोस जोयण पमिउँ पभणिउँ अट्ठद्ध करणु ॥२०२॥

---

२. D. चि ।
९. १. D °इं ! २. D °लु । ३. D णयर । ४. V. वाह ।

पंचेन्द्रिय जीव संज्ञी और असंज्ञीके भेदसे दो प्रकारके कहे गये है। जिनका मन नही होता वे असंज्ञी कहे गये है। वे शिक्षा-आलाप आदि ग्रहण नही कर पाते, वे अज्ञानी रहते हैं, परभावों अथवा चेष्टाओंको नही समझ पाते। इन अज्ञानियोंकी पाँच पर्याप्तियाँ होती है (ऐसा कथन) मुझे छोड़कर अन्य दूसरा कौन कर सकता है ?

पंचेन्द्रिय संज्ञी तिर्यंच-जीवोके छः पर्याप्तियाँ और दस प्राण होते हैं। इस संसारमे उनकी संख्या अमित प्रमाण (असंख्यात) है। हे सहस्रलोचन—इन्द्र, उन पंचेन्द्रिय तिर्यचोंको भी सुनो और उनकी अवगणना मत करो। १५

जलचर तिर्यंच जीवोके पाँच भेद होते है—(१) मकर, (२) ओघर, (३) सुंसुमार, (४) झष (—मीन) और (५) मनोहर कच्छप ।

नभचर तिर्यंच भी निश्चय ही उद्गत पंख, चर्म, घनरोम, सुन्दर पंख आदि अनेक प्रकार-के होते है। २०

स्थलचर तिर्यच भी चार प्रकारके होते हैं—१ खुरवाले, २ खुरवाले, २ हाथो और २ पैरोंवाले तथा मण्डल—गोल चरणवाले।

घत्ता—उरसर्प, महोरग, अजगर, मणिसर्प और विघातक मृगेन्द्र आदि सरीसृप भी अनेक प्रकारके होते हैं—सरट (छिपकली) उन्दुर (—चूहा), गोह आदि ॥२०१॥ २५

९

प्राणियोंके निवास-स्थान, द्वीपोंके नाम तथा एकेन्द्रिय और विकलत्रयोंके शरीरोंके प्रमाण

जलचर प्राणी जलमे एवं नभचर प्राणी नभस्तलमे तथा थलचर प्राणी मनोहर ग्राम, नगर व पुर तथा द्वीपों समुद्री-मण्डलोंके अन्दर और प्रथम दण्ड—वनोंमे निवास करते है।

पुरों व ग्रामोंसे निरन्तर व्याप्त एक लाख योजन विस्तीर्ण नदियों, सरोवरों तथा कल्पवृक्षो, से रमणीक और वलयाकार विस्तृत असंख्यात द्वीपों व समुद्रोंसे युक्त समस्त द्वीपोमे श्रेष्ठ जम्बूद्वीप है। फिर धातकी खण्ड द्वीप है। पुनः कमलोसे मण्डित सरोवरोंवाला पुष्करवर द्वीप है। फिर वारुणीवर द्वीप, क्षीरवर द्वीप, घृतमुखद्वीप, नन्दीश्वरद्वीप, अरुणवरद्वीप, अरुणाभासद्वीप, कुण्डल-द्वीप, शंखद्वीप, रुचकवरद्वीप, विशाल भुजगवरद्वीप तथा पुनः कुसर्ग कंचुकित अर्थात् भूमिपर व्याप्त दूने-दूने विस्तारवाले द्वीप और समुद्र है। ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है। वे सुखका प्रकाश करनेवाले एवं जीवोके लिए विशाल निवासस्थान है। ५

छेदन-भेदन एवं बन्धन आदि पापों सहित जलचर, थलचर, नभचर, स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीव एकेन्द्रिय, विकलत्रय एव पंचेन्द्रिय जो प्राणी कहे गये हैं उनके शरीरके प्रमाणोको कहता हूँ। हे सुरपति, उसे सुनो— १०

घत्ता—कमल नामका एकेन्द्रिय जीव एक सहस्र योजन प्रमाण होता है, द्वीन्द्रिय शख नामका जीव बारह योजन प्रमाण , त्रीन्द्रिय गोम (सहस्र पदवाला कानखजूरा) के शरीरका प्रमाण तीन कोस प्रमाण होता है तथा अष्टार्धकरण अर्थात् चतुरिन्द्रिय जीवके शरीरका प्रमाण एक योजन होता है। ॥२०२॥ १५

१०

लवणण्णवे कालणवे मीणइँ हुंति सलिल लीलारइ लीणइँ ।
जेम महंत तरंग रउद्दए तेण सयंभूरमण समुद्दए ।
सेसहिँ नत्थि निरिक्खिउ नाणेँ मइँ सुरिंद आयास-समाणेँ ।
लवणण्णवे जोयण अट्ठारह तिमि तडिणि मुहि तिवज्जिय वारह ।
5 कालण्णवे छत्तीस णईमुहे अट्ठारह कीला मय वर कहिँ ।
जे अवसाण मयरहर अणिमिस ते जोयण सय पंच पिहिय दिस ।
थलयर खयरहँ वड्ढिय णेहहँ सम्मुच्छिम गब्भुब्भव देहहँ ।
काहँ वि कय वय भाव अणिंदहिँ भासिय इय तणुमाणु मुणिंदहिँ ।
सम्मुच्छिमु जलयरु पज्जत्तउ जोयण सहसु कोवि फुडुवुत्तउ ।
10 जल गब्भुब्भउ णाणेँ दिट्ठउ पंच सयइँ जोयणइँ पघुट्ठउ ।
तिप्पयार समुच्छिम कायहँ पज्जत्ती कम रहियहँ एयहँ ।
भणहिँ वियत्थि अरुह गय साहण णर वियत्थि परमेणोगाहण ।
थल गब्भय तणु धरहँ ति कोसइँ उक्किट्ठेण जिणेण भणिय सइँ ।
जाणि जहण्ण सुहुम वायरहमि णियमणे दहसय-लोयण दोहमि ।
5 अंगुल-तणउँ असंखउ भायउ मइँ पंचम णाणेँ विण्णायउ ।

घत्ता—सुहुमणिगोयापज्जत्तयहो तइय-समइ संजायहो ।
णिक्किट्ठु देहु उक्किट्ठु सुणि मुइवि भंति जलजायहो ॥२०३॥

११

पुणुवि वीरु मण-मोहु विणासइ इंदहो इंदिय-भेउ समासइ ।
सण्णिउँ पज्जत्तिल्लउ जाणइँ सुइ पत्तउ पुट्ठउरउ निसुणइँ ।
एक्क-वि-तिकरण पोट्टा-पुट्ठउ परिमुणंति जिणणाहेँ घुट्ठउ ।
अप्परिमिट्ठउ रूउ णिरिक्खइ फासु-गंधु-रसु णवहि जि लक्खइ ।

---

१०. १. J. V. °व्वुँ ।
११ १. D. °रँ ।

१०

समुद्री जलचरों एवं अन्य जीवोंकी शारीरिक स्थिति

लवण समुद्र और काल समुद्रमें जलक्रीड़ाके विलासमें लीन (वड़े-वड़े) मत्स्य निवास करते है। जिन (महामत्स्यों) के कारण (समुद्रका) महान् तरंगोसे रौद्ररूप रहता है, वही स्वयम्भू-रमण समुद्र है (अर्थात् उसमें भी महामत्स्य निवास करते हैं)। शेष समुद्रोमे महामत्स्य निवास नहीं करते। हे सुरेन्द्र, मैने अपने आकाशके समान विशाल ज्ञानसे इसका (साक्षात्) निरीक्षण किया है। ५

लवण समुद्रके अन्तमें १८ योजन शरीरवाले तिमि नामक मत्स्य होते है। लवण समुद्रके ही तटवर्ती मुखोंमे तीन रहित बारह अर्थात् नौ योजन प्रमाण शरीरवाले तिमि मत्स्य होते हैं। कालार्णवमें छत्तीस योजन प्रमाणवाले तथा कालार्णवके ही नदीमुखोंमे अठारह योजन शरीर प्रमाणवाले तथा समुद्री-क्रीड़ाओंमे रत रहनेवाले मत्स्य होते हैं। अन्तिम समुद्रमे वे ही अनिमिष महामत्स्य पाँच सौ योजन प्रमाणवाले होते है, जो दिशाओंको भी ढँक देते है। १०

वहाँ थलचर और नभचर तिर्यंच भी होते है, जिनमे (परस्परमे) स्नेह-वर्धन होता रहता है। वे दोनों ही तिर्यंच सम्मूर्च्छन जन्म व गर्भ-जन्मसे उत्पन्न देहवाले होते हैं। अनिन्द्य मुनियो द्वारा कभी-कभी उनमे व्रतकी भावना भी जागृत कर दी जाती है (अर्थात् वे व्रतधारी भी हो सकते हैं) इस प्रकारके शरीरका प्रमाण मुनीन्द्रों द्वारा कहा गया है।

जलचर महामत्स्य पर्याप्त सम्मूर्च्छन जन्मवाला ही होता है तथा उसका शरीर एक सहस्र योजन प्रमाण होता है। ऐसा किसीने स्पष्ट ही कहा है। १५

जो जलजर जीव गर्भ, जन्म द्वारा उत्पन्न होते है उन्हे पाँच सौ योजन प्रमाण कहा गया है। यह केवलज्ञान द्वारा देखा गया है।

इन्हीं पर्याप्ति कर्मरहित तीनों प्रकारके सम्मूर्च्छन शरीरोंका विस्तारगत-साधन (अतीन्द्रिय-ज्ञानवाले) अरहन्त देवोंने कहा है। मनुष्यकी वितस्ति प्रमाण इनकी उत्कृष्ट अवगाहना है। २०

गर्भसे उत्पन्न थलचर जीवोंके शरीरका उत्कृष्ट प्रमाण तीन कोश है, ऐसा जिनेन्द्रने कहा है।

हे दशशत लोचन—इन्द्र, अपने मनमें यह समझ लो कि सूक्ष्मवादर जीवोंकी जघन्य अवगाहना अंगुलके असंख्यातवे भाग वरावर होती है। यह मैने (स्वयं अपने) पंचमज्ञान (केवलज्ञान) से जाना है। २५

घत्ता—सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक जीवोंकी तथा सम्मूर्च्छन जन्मवाले जलचर जीवोकी देहका जघन्य एवं उत्कृष्ट प्रमाण अपने मनकी भ्रान्ति छोड़कर सुनो ॥२०२॥

११

जीवकी विविध इन्द्रियों और योनियोंका भेद-वर्णन

पुनरपि वीरप्रभु इन्द्रके मनके मोहको दूर करते हैं तथा संक्षेपमें इन्द्रियोंके भेदोका कथन करते है।

संज्ञी पर्याप्तक जीव श्रुति प्राप्त शब्दोंको स्पृष्ट रूपसे सुनता है (इसी प्रकार) एकेन्द्रिय (स्पर्शन), द्वीन्द्रिय (रसना), त्रीन्द्रिय (घ्राण), स्पृष्ट और अस्पृष्ट रूपसे जानती है, ऐसा जिननाथने घोपित किया है। चक्षुरिन्द्रिय अपरिमृष्ट (विना स्पर्श किये हुए) रूपको देखती है। ५

5 दु-दुगुणिय छह जोयणइँ लहइ सुइ आहासहिँ जिणवेर पयडिय सुइ।
सत्ताहिय चालीस सहासइँ विण्णि सयाइँ तिसट्ठि वि मीसइँ।
चक्खु विसउ एरिसु परिवुज्झहिँ सयमुंह[2] भंति हवंति वि उज्झहि।
अइवंतय तुल्लउ गंध गहणु जवणाली-सण्णिहुँ मुणहि सवणु।
दिट्ठि मसूरी-पडिस-समाणी जीह खुरुप्प-सरिस वक्खाणी।
10 हरिय तसंग सोक्ख दुक्खालउ[3] फासु हवेइ भूरि भावालउ।
समचउरस संठाण सुहासिउ हुंडु पयंपिउ णरय णिवासिउँ[4]।
कुज्जउ वामणु णग्गोहंगउ[5] तिरिय णरहँ णियकम्म-वसंगउ।

घत्ता—संखावत्ता जोणी हवइ कुम्मुण्णय अवर विमुणि।
वंसावत्ता जोणी हवइ थिरु होइ विसयमह सुणि ॥२०४॥

१२

तहिँ णियमेण जिणाहिउ वुच्चइ संखावत्ता गब्भु विमुच्चइ।
कुम्मुण्णय जोणीए जिणाहिव होंति राम दोण्णिवि चक्काहिव।
सेस समुप्पज्जहि दुह खोणिहे वंसावत्ता णामेँ जोणिहे।
तिविहु जम्मु भासिउ जिणुराएँ गब्भुववाय समुच्छण भेएँ।
5 जोणि सचित्त अचित्त विमीसिय सीय-उण्ह-सीउण्ह समासिय।
संपुड तहय वियड[1] जाणेव्वी संपुड-वियड अवर पभणेव्वी।
पुत्त-जराउज-अंडज जीवइ गब्भेँ जम्मु होइ भव-भायइँ।
उववाएण देवणारइयहँ फुडु सम्मुच्छणेण पुणु सेसहँ।
उववायहो अचित्त पभणिज्जइ गब्भहो मिस्स जोणि जाणिज्जइ।
10 संमुच्छणहो सचित्त अचित्त वि होइ जोणि तह सयमह मिस्स वि।
उववायहो सीउण्ह भणिज्जइ उण्हे वयहु अववहहु मुणिज्जइ।
सेसह सीय उण्ह आहासिय जिणवरेण जाणेवि पयासिय।
मिस्स वि होइ तहय जिणु भासइ भव्वयणहँ आणंदु पयासइ।
एयकरण उववायहँ भासिय संपुड जोणि भंति णिण्णासिय।
15 वियलहँ वियड गब्भ संजायहँ संपुड विडय जोणि कय रायहँ।
वियलहँ सम्मुच्छिम पंचक्खइँ वियड जोणि जडयण दुलक्खहँ।
सासण्णेँ नव जोणि समक्खइँ वित्थरेण चउरासी लक्खइँ।
जीवहिँ वारह वरिसइँ विकरण उणवासइँ अहरत्तइँ तिकरण।

---

२. D. °मं। ३ D. °ल्ल°। ४. D. °हु। ५. D. °हगंउ।
१२. १. D. पवियड V. तहयड।

स्पर्शनेन्द्रिय, रसना इन्द्रिय तथा घ्राणेन्द्रिय क्रमसे स्पर्श, रस और गन्ध-विषयको नौ योजन तक जानती हैं। श्रुति—कर्णेन्द्रिय बारह योजन तक के शब्दको जानती है, ऐसा जिनवरोंने कहा है तथा यह आगमोंमे स्पष्ट है। हे शतमुख—इन्द्र, चक्षु इन्द्रियका विषय सैंतालीस सहस्र दो सौ त्रेसठ (४७२६३) योजनसे कुछ अधिक है, ऐसा जानो और होनेवाली भ्रान्तिको छोड़ो।

गन्ध ग्रहण करनेवाली घ्राणेन्द्रियका आकार अतिमुक्तक (तिलपुष्प) के तुल्य है। श्रव- १० णेन्द्रियका आकार जौकी नलीके समान जानो। नेत्रका आकार मसूरीके समान तथा जिह्वा-इन्द्रिय खुरपाके समान बखानी गयी है। स्पर्शनेन्द्रिय अनेक भावों (भाव-भंगिमाओं) का आलय है। हरित—वनस्पति एकेन्द्रिय, तथा त्रसजीवोंका शरीर सुख-दुखोंका घर है।

(छह प्रकारके संस्थानोंमे से) समचतुरस्र संस्थानको प्रथम कहा गया है जो सुखोंका आश्रय होता है (तथा वह उत्तम जीवोंको प्राप्त होता है)। छट्ठा हुण्डक संस्थान कहा गया है, १५ जो नारकी जीवोंके होता है। इसी प्रकार कुब्जक, वामन, न्यग्रोध (तथा स्वाति) नामक संस्थान तिर्यंचों व मनुष्योंको अपने-अपने कर्मानुसार प्राप्त होते हैं।

घत्ता—हे शतमख, शंखावर्तयोनि, कूर्मोन्नतयोनि और वंशपत्रयोनि नामक तीन आकार-योनियाँ होती हैं। उन्हे भी स्थिर होकर सुनो ॥२०४॥

१२

विविध जीव-योनियोंका वर्णन

इन योनियोंका वर्णन तो नियमतः जिनाधिप ही करते है। (उनके कथनानुसार) शंखावर्त योनिमें गर्भ नहीं ठहरता, (यदि ठहरता भी है तो वह नष्ट हो जाता है)। कूर्मोन्नत नामक द्वितीय योनिमें जिनाधिप तथा बलभद्र, राम और चक्रवर्ती दोनों ही जन्म लेते हैं। शेष जीव दुखों की भूमि रूप वंशपत्रयोनिमे जन्म लेते है। (जन्मोंका वर्णन)—जिनराजने गर्भ, उपपाद और सम्मूर्च्छनके भेदसे ३ प्रकारके जन्म बतलाये हैं। इन तीनों जन्मोंकी संक्षेपमे (१) सचित्त, ५ (२) अचित्त (३) विमिश्रित—सचित्ताचित्त, (४) शीत, (५) उष्ण, (६) शीतोष्ण, (७) संवृत (८) विवृत और (९) संवृत-विवृत नामक ९ गुण-योनियाँ कही गयी हैं।

पोतज, जरायुज और अण्डज नामक संसारी जीवों का गर्भ जन्म होता है। देवों और नारकियों का उपपाद जन्म होता है। पुनः शेष जीवोंका स्पष्ट ही सम्मूर्च्छन जन्म होता हैं।

उपपाद जन्मकी अचित्त योनि कही गयी है तथा गर्भ जन्मकी मिश्र—सचित्ताचित्त योनि। १० हे शतमख, सम्मूर्च्छन जीवोंकी सचित्त, अचित्त व मिश्र—सचित्ताचित्त योनि होती है।

उपपाद जन्मकी शीतोष्ण योनि कही गयी है, इसी प्रकार अग्निकायिक जीवोंकी उष्णयोनि समझना चाहिए। शेष जन्मों—जीवोंकी शीत एवं उष्ण योनि होती है ऐसा जिनवरों द्वारा जानकर प्रकट किया गया है तथा उनके (पूर्वोक्त जीवोकी) भव्यजनोंको आनन्दित करनेवाली मिश्रयोनि भी जिनेन्द्रने कही है। १५

एकेन्द्रिय जीव तथा उपपाद जन्मवालोंकी संवृत योनि होती है इसे जानकर अपनी भ्रान्ति दूर करो। विकलत्रयोंकी विवृत योनि होती है। राग करनेवाले गर्भ-जन्म वालोंकी संवृत एवं विवृत योनियाँ होती है। विकल सम्मूर्छन जड़ और दुर्लक्ष्य पंचेन्द्रिय जीवों की विवृत योनि होती है। इस प्रकार सामान्यतः ९ गुणयोनियाँ कही गयी हैं। विस्तारसे उनकी संख्या ८४ लाख है।

द्वीन्द्रिय जीवोंकी उत्कृष्ट आयु १२ वर्षकी तथा त्रीन्द्रिय जीवोंकी ४९ अहोरात्रकी उत्कृष्ट २० आयु होती है।

घत्ता—छम्मासाउसु चउरिंदियहँ पंचेंदियहि वि दिट्ठी।
कम्मावणि भूयर अणिमिसहिँ पुव्व कोडि उवविट्ठी ॥२०५॥ 20

१३

दुगुणियं[1]-एक्कवीस-सहसदइँ उरय जियंति गइंद विमदइँ।
ताइँ जिणेंदें भाव-णिवारिय वाहत्तरि णहयरहँ समीरिय।
कत्थवि खेत्तावेक्खइँ तिरियहँ पंचेंदियहँ सकम्मा वरियहँ।
भणिय तीन्ने पलिओवम एहउ उत्तमाउ मइँ भासिउ जेहउ।
माया जुत्तु[2] कुपत्तहँ दाणें अट्ठ-झाण-वस सरि अण्णाणें। 5
एए उप्पज्जहि इह तिरियइँ कहियइँ एवहिँ पभणमि मणुवइँ।
पुण्णें रह-दुगुणिय-पण्णारह अवरवि पुणु छण्णवइ वियारहँ।
तिरिय लोउ लच्छी अवजाढउ मणुसोत्तर-महिहर-परिवेढिउ।
तिगुणियँ[3] पण दह लक्ख पमाणउ जंबुदीउ तहि दीवहँ राणउ।
मह जोयण सय सहसें परिमिउँ भरहवरिसु तह दाहिण-दिसि ठिउ। 10
जोयण पंचसयइँ छव्वीसइँ वित्थरेण छकला परिमीसइँ।
एरावउ पुणु एण पयारें जाणिज्जइ किं वहु वित्थारें।
उत्तर-दाहिण दिसए परिट्ठिय विजयायल रुप्पमय अणिट्ठिय।
घत्ता—जोयण पंचास जि वित्थरइँ भणिउँ ताहँ पिहुलत्तणु।
णियँ[4] मणि जाणहिँ दह सय-णयण पंचवीस उच्चत्तणु ॥२०६॥ 15

१४

हिमवंतहो वित्थारु समासिउ एक्कु सहसु वावण्ण-विभीसिउ।
वारह कल सउ जोयण जाणहिँ उच्चत्तें सिहरिवि वक्खाणहिँ।
हैमवंत[1] खेत्तहो पंचाहिय एक्कवीस सय कलपण साहिय।
होइ हिरण्णवत्तु पुणु एत्तिउ णिसुणि महाहिसवंतहो जेत्तिउ।
चउ-सहास दो सय दह दह कल दो सय मुणि उच्चत्तें णिक्कल। 5
रुम्मि गिरिंदु वि एत्तिउ लक्खिउ जिणणाहेण ण भव्वहँ रक्खिउ।
एक्कवीस जुय चउरासी सय एक्क कलाहिय गणिय समागय।
हरिवरिसहो रम्मयहो वियाणहिँ एत्तिउ णिय मणि अणुहउँ[2] आणहिँ।
वेकल वेयाहिय चालीसइँ अट्ठ सयइँ दुगुणिय वसुसहसइँ।
णिसुढहो एउ पउत्तु पहुत्तणु चारि सयाइँ तहय उच्चत्तणु। 10
णीलिहे एउ माणु भासिव्वउ पुच्छंतहो संसउ णिहणेव्वउ।
पिहुलत्तणु देवेण विदेहहो भासिउ मण चिंतिय सुहणेहहो।
चउकल चउरासी छ सैयाहिय[3] सहसेयारहँ[4] तिगुणिय साहिय।

---

१३. १. D. °ण°। २. D. °त्त। ३. D. °ण°। ४. J. V. जिय।

१४. १. D. हई°। २. D. °उ। ३. D. छयाहिय। ४. D. °ह।

घत्ता—चतुरिन्द्रिय जीवोंकी उत्कृष्ट आयु ६ माहकी तथा पंचेन्द्रिय कर्मभूमिके भूचर, (स्थलचर) तथा अनिमिष—जलचर जीवोंकी उत्कृष्ट आयु एक कोटि पूर्वकी देखी गयी ऐसा कहा गया है ॥२०५॥

१३

सर्प आदिकी उत्कृष्ट आयु। भरत, ऐरावत क्षेत्रों एवं विजयार्ध पर्वतका वर्णन

हे इन्द्र, उरग जीवोंकी उत्कृष्ट आयु निश्चय ही २१ के दूने अर्थात् ४२ सहस्र वर्षोंकी होती है। जिनेन्द्रने संशय निवारण हेतु ऐसा कहा है। नभचर जीवोंकी उत्कृष्ट आयु ७२ सहस्र वर्ष की बतायी है। कहीं-कही क्षेत्रापेक्षया अपने-अपने कर्मार्जनके अनुसार पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंकी उत्कृष्ट आयु ३-पल्योपमकी जिस प्रकार कथित है, तदनुसार ही मैने भी कही है।

मायाचारी, कुपात्रोंको दान देनेवाले तथा आर्तध्यानके वश मरनेवाले अज्ञानी जीव तिर्यंच गतिमें उत्पन्न होते हैं, इनका कथन इसी प्रकार किया गया है। अव मनुष्योके विपयमे कहता हूँ। पुण्ययोग ऐसे ३० स्थान हैं; पुनः और भी ९६ अन्तर्द्वीप जानो। ५

तिर्यंच लोककी लक्ष्मीसे सुशोभित, मानुषोत्तर पर्वत द्वारा परिवेष्टित, १५ का तीन गुना अर्थात् ४५ लाख महायोजन प्रमाण, तथा द्वीपोंका राजा—प्रधान जम्वूद्वीप है, जो १ लाख महायोजन प्रमाण है। उसकी दक्षिण-दिशामें भरतवर्ष क्षेत्र स्थित है, जिसका विस्तार ५२६ योजन ६ कला सहित (अर्थात् ५२६$\frac{६}{१९}$) कहा गया है। १०

ऐरावत क्षेत्रका भी इसी प्रकार जानना चाहिए, अधिक विस्तारसे क्या लाभ ?

उसकी उत्तर तथा दक्षिण दिशामें अकृत्रिम रौप्यमय विजयार्ध पर्वत स्थित है।

घत्ता—हे दशशत नयन—इन्द्र, उसका विस्तार ५० योजन प्रमाण तथा उसकी मोटाई और ऊँचाई अपने मनमें २५ योजन प्रमाण जानो ॥२०६॥ १५

१४

विविध क्षेत्रों और पर्वतोंका प्रमाण

हिमवन्त पर्वतका विस्तार १०५२ योजन १२ कला सहित अर्थात् १०५२$\frac{१२}{१९}$ कहा गया है। उसकी ऊँचाई १०० योजन जानना चाहिए। इसी प्रकार शिखरी पर्वतका वर्णन भी जानना चाहिए। हैमवत क्षेत्रका विस्तार २१०५ योजन ५ कला सहित अर्थात् २१०५$\frac{५}{१९}$ कहा गया है। हैरण्यवत क्षेत्रका भी इतना ही विस्तार जानो। अव महाहिमवन्त पर्वतका जितना विस्तार है, सो उसे सुनो। महाहिमवान् पर्वत का विस्तार ४२१० योजन १० कला सहित अर्थात् ४२१०$\frac{१०}{१९}$ तथा उसकी ऊँचाई २०० योजन जानो। इतना ही विस्तार जिनेन्द्रने भव्योंके लिए रुक्मि-गिरीन्द्रका कहा है। हरिवर्ष और रम्यक क्षेत्रका विस्तार ८४२१ योजन १ कला सहित अर्थात् ८४२१$\frac{१}{१९}$ जानो तथा अपने मनमे उसका अनुभव करो। ५

निषध पर्वतका विस्तार १६८४२ योजन २ कला सहित अर्थात् १६८४२$\frac{२}{१९}$ जानो। उसकी ऊँचाई ४०० योजन जानो। नील पर्वतका भी इसी प्रकारका प्रमाण, विस्तार एवं ऊँचाई कहना चाहिए तथा प्रश्न करनेवालेका संशय दूर करना चाहिए। १०

इसी प्रकार अरहन्त देवने शुभ स्नेहपूर्वक मनमे चिन्तित विदेह क्षेत्रका विस्तार ३३६८४ योजन ६ कला सहित अर्थात् ३३६८४$\frac{६}{१९}$ कहा है।

घत्ता—देव कुरु हे एयारह सहसट्ठि सयइँ चेयालइँ ।
15 एउ जे पमाणु उत्तर कुरुहे जिण वज्जरहि गुणालइ ॥२०७॥

१५

जंबुदीव मज्झम्मि थक्कया भोयभूमि छत्ताण छक्कया ।
तिण्णि कम्मभूमिओ खणियया कइयणेहिं कव्वेहि वण्णिया ।
पोमणामुहिमवंत सुंदरो सहइ वारि पूरिउ सरोवरो ।
जोयणाइँ सयपंच वित्थरो दह गहीर दह सयइँ दीहरो ।
5 भणिउँ वप्प एयहो जे जेत्तओ हियइँ सक्क परियाणि तेत्तओ ।
सिहरे सीसे तह पुंडरीयहो भसल-पंति-धुव-पुंडरीयहो ।
एउ माणु महपुंडरीयहो दूणु हेम-सय-पुंडरीयहो ।
रुम्मिगिरि-सिरट्ठियहो वुत्तओ तिहि गुणेहिं जुत्तउ णिरुत्तओ ।
तासु दूणु केसरि सरोवरो णील-सेल-संठिउ मणोहरो ।
10 वित्तिओ वि तिगिंगछि जाणिओ णिसढ सीसि ठिय तियस-माणिओ ।
तासु अद्ध महपोमु सण्णओ सज्जणव्व णिच्चं पसण्णओ ।
[1]ट्ठिउ महाहिमवंतसेलए कीलमाण-गिव्वाण-सेलए ।
सिरी-हिरी-दिही-कंति-वुद्धिया तह य लच्छि नामा पसिद्धिया ।
मज्झे ताह सुरवरहँ देविया परिवसंति कीला-विभाविया ।
15 घत्ता—पोमहो महपोम तिगिंछ वि केसरिणाम-सरहो पुणु ।
महपुंडरीय-पुंडरियह वि णिग्गउ महसरियउ सुणु ॥२०८॥

१६

पढम णई[1] वर गंग पुणु अवर सिंधुसरे पुणु रोहिणीरोहि धाराहि भरिय-दरि ।
पुणु रोहियासा सरी अवर हरि णाम पुणु अवर हरिकंत सीया वरा साम ।
सीओयया अवर णारी वि णरकंत पुणु कणयकूलामरा तीरणिक्कंत ।
पुणु सुणिय णाणेण सई[2] रुप्पकूलक्ख पुणु वि रत्तोयया जाणि सहसक्ख ।
5 ए असरगिरि पंचकुल धरणिहर तीस वक्खारगिरि असिय खेत्ताइँ पणतीस ।
चउ गुणिय पणरह विहंग सरि पवहंति कुरु-दुमइँ दहवीस गयदंत दिप्पंति ।
वसहगिरि सत्तरि वि मीसियउ सउ जाणि वेयड्ढ गिरि होंति तित्तियइँ मणि माणि ।

---

१५. १ J. V. प्रतियोमे यह पाठ है ही नही ।
१६. १. J V. णाइ । २. J. V. °यँ ।

घत्ता—देवकुरुमें ११८०० चैत्यालय है। यही प्रमाण गुणालय जिनेन्द्रने उत्तरकुरुमे भी कहा है ॥२०७॥　　१५

१५
प्राचीन जैन भूगोल—पर्वतों एवं सरोवरोंका वर्णन

जम्बूद्वीपके मध्यमे ६ भोगभूमि क्षेत्र स्थित हैं तथा कवियो द्वारा वर्णित ३ रमणीक कर्मभूमि क्षेत्र है। हिमवत् पर्वतपर सुन्दर जलसे परिपूर्ण पद्म नामक सरोवर सुशोभित है। जिसका विस्तार ५ सौ योजन तथा वह १० योजन गहरा और १ सहस्र योजन दीर्घ है। हे शक्र, इस सरोवरका (इस प्रकार) जो जितना प्रमाण कहा है, उतना ही मनमे समझो।

शिखरिन् पर्वत के शिखरपर स्थित, भ्रमर-पंक्ति से सदा मण्डित पुण्डरीक सरोवर है,　५ जिसका प्रमाण स्वर्णमय कमलोंसे मण्डित महापुण्डरीक सरोवरसे दुगुना है। गुणोसे युक्त यह सरोवर रुक्मिगिरि शिखरपर स्थित कहा गया है।

नील पर्वतपर स्थित मनोहर केशरी नामक सरोवर है, जिसका प्रमाण उससे (महा-पुण्डरीकको अपेक्षा) दूना है।

निषध-पर्वतपर स्थित तथा देवो द्वारा मान्य तिगिछ सरोवरका भी उतना ही प्रमाण　१० जानो। सज्जनोंके मनकी तरह नित्य प्रसन्न, निर्मल जलवाले महापद्म नामक सरोवरका उससे आधा प्रमाण जानो। यह सरोवर महाहिमवत् पर्वतके शिखरपर स्थित है। जिसपर कि क्रीड़ा करते हुए देवोंका मेला-सा लगा रहता है।

उन सरोवरोंके मध्यमे श्री, ह्री, धृति, कान्ति (कीर्ति), बुद्धि तथा लक्ष्मी नामकी क्रीड़ाओमे कुशल एवं प्रसिद्ध देवोकी देवियाँ निवास करती है।　१५

घत्ता—पद्म, महापद्म, तिगिछ, केशरी, महापुण्डरीक, पुण्डरीक नामक सरोवरोसे जो नदियाँ निकली है, उन्हे भी सुनो ॥२०८॥

१६
भरतक्षेत्रका प्राचीन भौगोलिक वर्णन—नदियाँ, पर्वत, समुद्र और नगरोंकी संख्या

सर्वप्रथम (१) गगा व (२) सिन्धु नदी, तत्पश्चात् (३) अपनी निरोधक धाराओसे गुफाओ-को भर देनेवाली रोहित नदी। इसके बाद (४) रोहितास्या और (५) हरि नामकी नदियाँ है। पुन. (६) हरिकान्ता उत्तम, (७) सीता नामकी नदी तथा (८) सीतोदका और (९) नारी व नरकान्ता नामकी नदियाँ तत्पश्चात् निरन्तर जलप्रवाही (११) कनककूला नामकी नदी, पुनः मुनियोके ज्ञान द्वारा जानी गयी (१२) रूप्यकूला नामकी प्रसिद्ध नदी है। तदनन्तर (१३) रक्ता व　५ (१४) रक्तोदा नदियाँ है। इनकी सहस्रो सहायक नदियाँ भी है ऐसा जानो।

समस्त अमरगिरि—सुमेरु पर्वत ५ है। कुल धरणीधर ३० है। वक्षारगिरि ८० तथा कुल क्षेत्र ३५ है। १५की ४ गुनी अर्थात् ६० विभंग नदियाँ प्रवहमान रहती है। कुरुवृक्ष १० तथा देदीप्यमान २० गजदन्त हैं। समस्त वृषभगिरि ७० मिश्रित १०० अर्थात् १७० जानो। उतने ही विजयार्ध गिरि है, ऐसा अपने मनमे मानो।　१०

सय तिण्णि चालीस मीसिय गुहा वप्प वट्टलगिरि वि वीस जिण भणिय गय दप्प ।
इसुकार गिरियारि जल भरिय दह तीस मयरहर तह विण्णि भोयावणी तीस ।
10 तिहिँ गुणिय पंचेव तह कम्मभूमीउ छह गुणिय सोलह कुभोयाण भूमीउ ।

घत्ता—विज्जाहर-रायहँ पुरवरहँ सयमह सत्त सयाहिय ।
अट्ठारह सहस जिणेसरहिँ णाणा जाणिवि साहिय ॥२०९॥

१७

चउसय अट्ठावण्ण विमीसिय तिरिय लोय जिणवर आहासिय ।
सयल अकित्तिम मह मुणिणाहहिँ रयण-णियर मय णाण-सणाहहिं ।
जंबुदीउ मेल्लिवि पोयंतरे कइवय जोयण मयरहरंतरे ।
णिय सहाउ अविमुक्कइँ पोणइँ ठाण ति परियाणंचि अयाणइँ ।
5 पढम पएसे सयल संकिण्णए पुणु उवरुवरु हुंति विरिथण्णए ।
परियाणहि मल्लय-संकासइँ छुह-तण्हा-किलेस-णिण्णासइँ ।
उत्तमाइँ मज्झिमइँ जहण्णइँ अविणस्सर अणाइँ णिप्पणइँ ।
तिगुणिय सोलह जिह लवणन्नवे तह तित्तिय हवंति कालण्णवे ।
परिमिय जोयणेहिँ परिमाणिय केवलेण तित्थयरेँ जाणिय ।
10 तत्थ वसहिँ दो दोथी-पुरिसइँ विगय-विहूसण वत्थ सहरिसइँ ।
कोमलंग णिम्मलयर भावइँ दूरुज्झिय कसाय मय गावइँ ।
किण्ह-धवल-हरियारुण वण्णइँ कुंडल जुवलय मंडिय कण्णइँ ।
एक्कोरू-विसाण-वालहि-धर पुच्छा विसु हवंति वर-कंधर ।
उत्तरदिसि मासंसउ आणहिँ णिब्भासण रसु सर जाणहिं ।

15 घत्ता—पावण्ण कण्ण-ससकण्ण णर लंवकण्ण-उप्पज्जहि ।
जिह-तिह सक्कुलिकण्ण वि कुणर णउ अवरुप्परु लज्जहि ॥२१०॥

१८

हरि-करि-झस-जलयर-सामय मुह कइ-विस-मेस-सरह-दप्पण-मुह ।
सत्ताहिय दह-तरु हल भुंजहि इट्ठ-काम-सेवए मणु रंजहिँ
इक्कोरुअ पुणु केवलि अक्खहिँ धरणीहर-दरि-मट्टिय-भक्खहिँ ।
चउ गुणियहिँ चउवासहिँ लित्तहि पर थिरइय आवइ परिचत्तहिं ।
5 अट्ठारह जाईउ सु णिवसहि ओइउ कम्मु चिरज्जिउ विलसहिँ ।

---

१७. १. D. प° ।
१८. १. J. V. आइयउ ।

३४० गम्भीर गुफा स्थान हैं। गतदर्प जिनेन्द्रने २० बहुलागिरि कहे है। इष्वाकार पर्वत ४ है। जलसे भरे रहनेवाले ३० सरोवर है। मकरगृह—समुद्र २ कहे गये है। भोगभूमियाँ ३० तथा ३ गुणे ५ अर्थात् १५ कर्मभूमियाँ है और ६ गुने १६ अर्थात् ९६ कुभोग भूमियाँ है।

घत्ता—हे शतमख, विद्याधर राजाओंके पुरवरों (उत्तम नगरों) की संख्या जिनेश्वरने अपने ज्ञान से जानकर ७ सौ अधिक १८ हजार अर्थात् १८७०० कही है ॥२०९॥ १५

१७

प्राचीन भौगोलिक वर्णन—द्वीप, समुद्र और उनके निवासी

तिर्यग्लोक में अकृत्रिम समस्त जिनगृह ५८ मिश्रित ४ सौ अर्थात् ४५८ है, जो विविध रत्नमय है तथा ज्ञानी महामुनियोंसे युक्त रहते है, ऐसा जिनवरने कहा है।

जम्बूद्वीप को छोड़कर तटके भीतर कतिपय योजन जाकर समुद्रके मध्यमे नित्य प्रेम-स्वभाववाले अज्ञानी प्राणी ठहरते है, कभी-कभी वहाँ प्रयाण भी करते है।

वे सभी द्वीप प्रथम भागमें संकीर्ण है तथा ऊपर-ऊपरकी ओर विस्तीर्ण होते गये है। मल्लके ५ समान प्रयाण करते है। वे क्षुधा, तृपा और क्लेशसे रहित होते है। वे (द्वीप) उत्तम, मध्यम, जघन्य, अविनश्वर व अनादिकालीन निष्पन्न है।

३ गुने १६ अर्थात् ४८ ही लवणसमुद्रमे तथा उतने ही अर्थात् ४८ कालसमुद्रमे भी होते हैं। वे परिमित योजनोंसे प्रमाणित है तथा केवली तीर्थंकरो द्वारा ज्ञात है।

उन द्वीपोमें विभूषणोसे रहित, बच्चोके समान तथा हर्षपूर्वक २-२ स्त्री-पुरुष (के जोड़े) निवास १० करते है। उनका शरीर कोमल तथा भावनाएँ निर्मल रहती है। कषाय एवं मद-गर्वसे सर्वथा दूर तथा कृष्ण, धवल, हरित और लाल वर्णके होते हैं। उनके कान कुण्डल-युगलसे मण्डित रहते हैं। कोई तो एक ऊरु—पैरवाले और कोई विषाण (शृंग) धारी होते है। कोई वालधि—पुच्छधारी रहता है, तो कोई लम्बी पूँछधारी (और कोई वक्षधर है) तो कोई विशेष स्कन्धधारी है। उत्तर दिशामे कोई अज्ञानी मास भक्षण करनेवाला है तो कोई भाषणरहित (गूँगा) है, तो कोई १५ सुस्वर जानता है।

घत्ता—कोई प्रावरण कानवाले है (अर्थात् कान ही ओढ़ना कान ही बिछौना है) तो कोई शशके समान कर्णवाले है तो कोई मनुष्य लम्बकर्ण हैं और जहाँ-तहाँ कोई कुमनुष्य छिपकलीके कर्णके समान कानवाले भी है। वे परस्परमे लज्जा नही करते ॥२१०॥

१८

प्राचीन भौगोलिक वर्णन—भोगभूमियोंके विविधमुखी मनुष्योंकी आयु, वर्ण एवं वहाँकी वनस्पतियोंके चमत्कार

हरि (सिंह) मुख, करिमुख, झष (मीन) मुख, जलचर (मगर) मुख, श्वामुख, मृगमुख, कपिमुख, वृषमुख, मेपमुख, शरभमुख, दर्पणमुख नामके सत्त्वाधिक मनुष्य १० प्रकारके कल्पवृक्षके फलोका भोग करते है और इष्ट काम-सेवन कर मनोरंजन करते हैं।

अरहन्त केवली कहते है कि एक ऊरुवाले (मनुष्य) पर्वतकी गुफाओमे रहते हैं और वहाँ मिट्टी खाते है। चार गुणे अर्थात् सोलह वर्ष जैसे (आयुवाले) दिखाई पड़ते है। परस्त्री रचित ५ आपत्तिसे परित्यक्त है। अठारह वर्षकी आयु जैसे होकर निवास करते है और पूर्वोपार्जित कर्मोका

एक्कु पल्लु जीवेवि मरेप्पिणु तक्खणे वेउव्विय तणु लेप्पिणु।
भवणामरहँ मज्झे उप्पज्जहिं जहिं सुंदरयर संख पवज्जहिं।
तीस भोयभूमीय समुज्जल देव दित्ति-णिव्भच्छिय-विज्जुल।
णिय पुण्णें जस-भरिय-महीहल हुंति वलक्खारुण-हरि-पीयल।
15 कंकण-कुंडल-कडय-विहूसिय खलयण-खरवयणेहिं अदूसिय।
मइरंवर-भूसण-वज्जंगहिं जुइ-दीवय-भायण-कुसुमंगइँ।
भोयण-भवणंगहिं महि छज्जइ भोउ भोयभूमि-यणहिं दिज्जइ।

घत्ता—हिट्ठिस-मज्झिस-उत्तिम-तिविह हरि-लुलंत-वर चामर।
पल्लेक्कुदट्ठु तीणि जिएवि मरि हुंति कप्पवासामर ॥२११॥

१९

तीस भोयभूमिउँ धुव भासिय णिय-णिय-काल गुणाह् समासिय।
एवहिं अद्धुय दहविह जंपमि जिण भणियायम-वयण समप्पमि।
दह पंचप्पयार सयसह् सुणि कम्मभूमि-संभव माणव मुणि।
अज्ज-अज्ज-भावेण विहूसिय मिच्छ कम्म-कूरेण विदूसिय।
5 मिच्छ णिरुत्त निरंवर दीणइँ पारस-वव्वर-भास विहीणइँ।
अन्नइँ नाहल सवर पुलिंदइँ हरिण-विसाण-समुक्खय कंदइँ।
इड्ढि-अणिड्ढिवंत दो भेयइँ अज्जव माणुस हुंति अणेयइँ।
इड्ढिवंत तित्थयर-हलाउह केसव-पडिकेसव-चक्काउह।
अवर वि विज्जाहर चारण रिसि दूरुज्झिय पसुवहँ-बंधण-किसि।
10 हुंति अणिड्ढिवंत बहु भेयहिं निम्मल केवल-लोयण नेयहिं।
जिणवर जियइ जहन्नँ वरिसहँ वाहत्तरि कय नाणुक्करिसहँ।
अहिउ सहासु किंपि नारायणु तासुवि अहिउ सीरि सुह भायणु।
सत्त सयइँ चक्कवइहि अक्खिय सुणु परमाउस-विहि जिह लक्खिय।

घत्ता—पुव्वहँ चउरासी-लक्ख मुणि जिह हरिसीरिहुँ अल्लहिं।
15 कम्मावणि-जायहँ माणुसहँ पुव्व कोडि-सामन्नहँ ॥

१९. १. J. V. भो°।

भोग करते हैं। फिर एक पल्यकी आयु पाकर, जीवित रहकर, (तदनन्तर) मृत्यु प्राप्त कर तत्क्षण ही वैक्रियक शरीर प्राप्त कर भवनवासी देवोमे उत्पन्न हो जाते हैं जो कि सुन्दरतर शंख वजाया करते हैं। इस प्रकार तीस भोगभूमियोके समुज्ज्वल (देवोपम) जीव विद्युत्‌को भी नीचा दिखानेवाली अपनी देहकी दीप्तिसे युक्त तथा अपने पुण्य यशसे महीतलको भर देनेवाले और वलक्ष (धवल) अरुण, हरित, पीत वर्णवाले होते है। वे कंकण, कुण्डल एवं कटकसे विभूपित तथा खलजनोंके खर वचनोंसे अदूषित रहते हैं। १०

(१) मदिरांग, (२) वस्त्रांग, (३) भूषणांग, (४) वाद्यांग, (५) ज्योतिरंग, (६) दीपकांग (७) भाजनांग, (८) कुसुमांग, (९) भोजनांग एवं (१०) भवनाग नामक कल्पवृक्ष उन भोगभूमियोंपर छाये हुए रहते है, जो वहाँके मनुष्योंको भोग्य वस्तुएँ प्रदान किया करते है। १५

घत्ता—ये भोगभूमियाँ जघन्य, मध्यम और उत्तमके भेदसे तीन प्रकारकी हैं। वहाँ इन्द्रों द्वारा उत्तम चमर ढुराये जाते है। वहाँके जीव एक पल्य, दो पल्य एवं तीन पल्य तक जीवित रहकर पुनः मरकर कल्पवासी देव हो जाते है ॥२११॥

१९

प्राचीन भौगोलिक वर्णन—भोगभूमियोंका काल-वर्णन तथा कर्मभूमियोंके आर्य-अनार्य

तीस भोगभूमियाँ ध्रुव कही गयी हैं, (हैमवत, हैरण्यवत, हरि, रम्यक, देवकुरु, उत्तरकुरु इस प्रकार छह क्षेत्र, पाँच मेरु सम्बन्धी)। इस प्रकार तीस भोगभूमियाँ हुईं (इन्हें ध्रुव भोगभूमियाँ कहा गया है)। वे अपने-अपने कालके गुणोंसे समाश्रित हैं (अर्थात् देवकुरु-उत्तरकुरुमें पहला काल, हरि व रम्यक क्षेत्रोंमें दूसरा काल, हैरण्यवत व हैमवत क्षेत्रोमे तीसरा काल है)।

अव पाँच भरत तथा पाँच ऐरावत क्षेत्रकी दस अध्रुव कर्मभूमियोंको कहता हूँ। जिनभाषित आगम-वचनोंके अनुसार ही कहूँगा। हे शतमख, उसे सुनो— ५

पन्द्रह प्रकार की कर्मभूमियोमें मानवोंकी उत्पत्ति समझो। आर्य-अनार्य भावसे विभूपित दो प्रकारके मनुष्य है। जो मिथ्यात्वादि क्रूर कर्मोसे विदूषित है, वे अनार्य अथवा म्लेच्छ कहे गये हैं। वे निर्वस्त्र, दीन रहते है, वे कर्कश, वर्वर गूँगे होते हैं। अन्य अनार्य नाहल (वनचर), शवर, पुलिन्द आदि हरिणोंके सीगों द्वारा खोदे गये कन्दोंको खाते है। १०

आर्य मनुष्य ऋद्धिवन्त व ऋद्धि रहितके दो भेदोंसे अनेक प्रकारके होते है। ऋद्धिवन्त आर्य तीर्थंकर, हलायुध, केशव, प्रतिकेशव, चक्रायुध होते है तथा और भी विद्याधर चारण ऋषि होते है। जिन्होने पशुओके वध-बन्धनको दूरसे ही छोड़ दिया है, जो कृपिकार्य करते हैं, वे ऋद्धिरहित आर्य कहलाते है जो अनेक भेदवाले होते हैं, ऐसा निर्मल केवलज्ञानरूपी नेत्रसे देखा गया है। जिनवर जघन्य रूपसे ७२ वर्षकी आयु, अपने ज्ञानका उत्कर्प करते हुए जीवित रहते है। सुखोंके भाजन नारायण जघन्य रूपसे १ सहस्र वर्षसे कुछ अधिक जीवित रहते हैं। उनसे भी कुछ अधिक आयु सीरी—बलदेव को होती है। चक्रवर्तियोंकी संख्या ७०० कही गयी है। जैसा आगमोंमें वताया गया है उसके अनुसार उनकी उत्कृष्ट आयु सुनो। १५

घत्ता—जिस प्रकार नारायणकी उत्कृष्ट आयु ८४ लाख पूर्व कही गयी है, उसी प्रकार वलदेवकी भी समझो। कर्मभूमिमे जन्मे हुए मनुष्योंकी उत्कृष्ट आयु सामान्यतः एक कोटि पूर्वकी जानो ॥२१२॥ २०

२०

दिणु मासद्धु मासु छम्मासइँ संवच्छरु जीविय निहियासइँ ।
केवि जियंति कई वर-वच्छर वाहरंति जिणवर निम्मच्छर ।
नर सहसत्ति सेय-मल जायइँ सम्मुच्छिमइँ मरंति चरायइँ ।
केवि गलहिं गब्भेवि तुसारुव कइवय दिणहिँ अवर पयडिय तुव ।
5 उत्तमेण तणु माणु णिरायहँ पंच सयाइँ सवायइँ चावहँ ।
जिणवरेण निकिट्ठें भासिय एक्क रयणि भवियणहँ पयासिय ।
ताहँ विपासि मडहँ उप्पज्जहिँ कुज्जय-वामण रमहिँ न लज्जहिँ ।
नो पज्जहिँ सत्तम महि णारय णरहँ मज्झि अण्णोन्न वियारय ।
पइँ सुरेश ए अवहारिय जिह तेउ-वाउ कायविजाणहिँ तिहँ ।
10 केवि हुति तावस खर-वय-धर भावण-वितर-जोइस-सुरवर ।
परिवायय पंचम-सुरवासइँ आजीवय सहसारे सुभासए[1] ।
तितिय वि तित्थु[2] वयंति वयासिय नर सम्मत्ताहरण विहूसिय ।
सावय वयहँ पहाविं सुंदरु अच्चुव-सग्गि समुप्पज्जइ णरु ।
तासुप्परि मुणिवर वय रहियउ को वि ण जाइ जिणिंदे कहियउ ।
15 सुद्ध चरित्तालंकिय-भाव स-महव्वय जिणलिंग पहावें[3] ।

घत्ता—उवरिम गेवज्जहिं अभवियवि संभवंति णिग्गंथहँ ।
सव्वत्थसिद्धि वरि सूइ पर होइ ति-रयण-पसत्थहँ ॥२१३॥

२१

होइ मरेवि नारइउ न नारउ अमरु वि नामरु पिय-मण-हारउ ।
नरय निवासि वयइं नामरु जिह सग्ग-विमाणंतरि नारउ तिहँ ।
मणुव तिरिक्खवि चउगइ गामिय हुंति भमंति तिलोयहो सामिय ।
तिरियत्तणु पमियाउहुँ[1] तिरियहुँ नचिरुद्धउ मणु अत्तणु मणुअहो ।
5 मणुव तिरिय पलिओवम-जीविय उवसम अज्ज-सहाविं भाविय ।
तिहिँ गईहिं नउ हुंति णिरुत्तउ सग्गु लहंति जिणिंदें[2] वुत्तउ ।

---

२०. १. D. °रॅ° । २. D. °त्थ । ३. D. पवाहें ।
२१. १. D. °उ । २. D. जिणेंदिं ।

२०

प्राचीन भौगोलिक वर्णन—कर्मभूमिके मनुष्योंकी आयु, शरीरकी ऊँचाई तथा अगले जन्ममें नवीन योनि प्राप्त करनेकी क्षमता

कर्मभूमियोंके कोई जीव १ दिन, ½ मास, १ मास, ६ मास अथवा १ वर्ष तक जीते हैं। कुछ इससे भी अधिक जीनेकी इच्छावाले भी होते हैं। कोई-कोई कई वर्षों तक जीवित रहते हैं। ऐसा मात्सर्यविहीन जिनवरने कहा है।

कोई मनुष्य अचानक ही स्वेद-मल (पसीनेके मैलसे कॉख आदि अंगों) से उत्पन्न हो जाते हैं। वे वेचारे सम्मूर्च्छन जन्मवाले होते हैं और (श्वासके १८वें भागमें) मर जाते हैं। कोई मनुष्य तुषार—बर्फकी तरह गर्भमें ही गल जाते हैं और कुछ मनुष्य कतिपय दिन जीवित रहकर पड (मर) जाते हैं। मनुष्योके शरीरकी उत्कृष्ट ऊँचाई ५२५ धनुष (इतनी ही ऊँचाई बाहुबलिकी थी)। तथा निकृष्ट ऊँचाई १ अरत्नि प्रमाणकी होती है (यह छट्‌ठे कालमे अन्तमें होती है) ऐसा जिनवरने भव्यजनोंके लिए प्रकट किया है। उस कालमें जीव मरकर कुब्जक एवं वामन संस्थानवाले होते है। वे परस्परमे रमते है, लजाते नही। ५ १०

सातवीं पृथ्वीके नारकी जीव मनुष्योंमे उत्पन्न नहीं होते। हाँ, अन्य-अन्य जीव मनुष्योमें उत्पन्न हो सकते हैं, ऐसा विचारा गया है। हे सुरेश, जिस प्रकार यह (पूर्वोक्त विषय) समझा है, उसी प्रकार तेजोकाय एवं वायुकाय प्राणियोंके विषयमें भी जानो कि वे भी मनुष्योंमे जन्म नही ले सकते। कोई-कोई तपस्वी कठोर व्रतधारी होते है, वे भवनवासी, व्यन्तर एवं ज्योतिषी सुरवरोंमें उत्पन्न होते है। परिव्राजक साधु पॉचवे स्वर्ग तक जन्म ले सकते है। आजीविक साधु सहस्रार—बारहवे स्वर्ग तक जन्म लेते है। ऐसा जिनेन्द्रने कहा है। सम्यक्त्वरूपी आभरणसे विभूषित मनुष्य इन (पूर्वोक्त) देवोमे तथा इनसे भी ऊपरवाले देवोंमे उत्पन्न होते हैं। व्रताश्रित मनुष्य भी इन सब स्वर्गोमे जन्म ले सकते है। श्रावकके बारह व्रतोंसे प्रभावित सुन्दर मनुष्य सोलहवें अच्युत स्वर्ग तक उत्पन्न होते है। व्रतरहित कोई भी मुनि उसके ऊपर नही जा सकता; ऐसा जिनेन्द्रने कहा है। द्रव्यलिंगी व्रत सहित मुनि नव-ग्रैवेयक पर्यन्त जा सकते है। भाव सहित शुद्ध चारित्रसे अलंकृत मुनि जिनलिंगके प्रभावसे महाव्रत सहित ऊपर जाते हैं। १५ २०

घत्ता—अभव्य निर्ग्रन्थ व्रतधारी मुनि ऊपरके नौवें ग्रैवेयक तक उत्पन्न हो सकते है, तथा प्रशस्त रत्नत्रयवालोंकी उत्पत्ति ऊपरके सर्वार्थसिद्धि स्वर्ग तक हो सकती है॥२१३॥

२१

किस कोटिका जीव मरकर कहाँ जन्म लेता है ?

नारकी जीव मरकर नारकी नही होता। इसी प्रकार मनोहारी देव भी मरकर देव नही होता। जिस प्रकार नारकी जीव मरकर देव नही होते उसी प्रकार स्वर्ग-विमानोमे रहनेवाले देव भी मरकर नारकी नही होते। मनुष्य एवं तिर्यंच चारों ही गतियोंमे गमन करते हुए भ्रमते रहते है। वे तीनों लोकोंके स्वामी भी हो सकते है।

तिर्यंचके शरीर-प्रमाण आयुष्यको पाकर तिर्यंच प्राणी मरकर तिर्यंच होते है। इसी प्रकार मनुष्य शरीरसे मनुष्य जन्म पाना भी (सिद्धान्त-) विरुद्ध नही है। ५

मनुष्य एवं तिर्यंच (भोगभूमिमें) पल्योपम आयु प्रमाण जीवित रहकर उपशम-भावोंसे आर्य स्वभाव होकर फिर (अन्य) तीनों गतियोंमे नही जाते, वे निश्चय ही स्वर्गमे देव-शरीर प्राप्त करते है ऐसा जिनेन्द्रने कहा है।

परिमियाउ अन्नोन्न वियारण कोहानलहु वास जे मारण ।
पढम-नरइ महि जंति असन्निय जीव दुक्ख-पूरिय अपसन्निय ।
सक्कर पहि[3] गच्छंति सरीसव रउरव-नरइ पक्खि सुणि वासव ।
तुरियइ कँसण काय महि भीसण जंति महोरय कक्कस नीसण ।
10 पंचमियहि पयंड पंचाणण तम पहि महिलउ परणर-माणण ।
सत्तमियइँ नर तिमि उप्पज्जहिँ वइर-वसेण भिडंति ण भज्जहि ।
सत्तम नरइ नित्तु न हवइ नरु पावइ तिरियत्तणु दुह-तप्परु ।
मघविहि णिग्गउ कोवि णरत्तणु लहइ अरिट्ठहे देसवइत्तणु ।
अंजणाहि आयउ पंचमगइ पावइ पैंडेवि[5] केवल रांतइ ।
15 आइउँ सेलहि वंसहि घम्महिँ कोवि होइ तित्थयरु अरम्महि ।
नउ सलाय-पुरिसत्तणु पावहि नर तिरियवि मुणिवर परिभावहि ।

घत्ता—सव्वत्थवि माणुसु संभवइ एम भणहिँ जिण सामिय ।
उड्ढगइ गामि हलहर सयल कन्ह अहोगइ-गामिय ॥२१॥

२२

दुण्णिरिक्ख पडिसत्तु-वियारण णरयहो नीसरेवि णारायण ।
हुंति कयावि ण वप्प-हलाउह किं बहुवेण तहय चक्काउह ।
तिण्णि काय पावंति णरत्तणु जेम तेम जाणहि तिरियत्तणु ।
वायर-पुहवि-तोय पत्तेयइँ हुंति कयाविहु देवए एयइँ ।
5 पुण्ण-सलायत्तणु ण सतामस अमयासण लहंति आजोइस ।
तिरियलोउ अक्खिउ एवहिँ पुणु णरय-णिवासु सहसलोयण सुणु ।
पढमावणिपविचित्ता णामेँ आहासिय जिणेण मह-धामेँ ।
तहिँ खर-वहुलु खंडु पढमिल्लउ सोलह सहस वि जोयण भल्लउ ।
णव-पयार-भवणामर-भूसिउ पंक-बहुलु बीयउ जे समासिउ ।
10 सोवि पमिउँ चउरासी-सहसहि असुर-भूव[1] रक्खस तहि निवसहिँ ।
तिज्जउ जलवहलक्खु समक्खिउ सो असीइ-सहसेहिँ समक्खिउ ।
तहिँ णारय णिरु रणु पारंभहि अवरुप्परु विउरुव्वि विरुंभहिँ ।
पाव-बहुल छहं अवरावणियउँ जिणवरु मुएवि ण अण्णि मुणियउ ।

---

३. J V. °रि । ४. D. कँ° । ५. D J. पयडेवि ।
२२. १ D भव ।

परिमित आयुवाले जो मनुष्य परस्परमें विकारी (लड़नेवाले) तथा क्रोधाग्निकी ज्वालासे मारे जाते है वे दुखोसे परिपूर्ण प्रथम नरकमें जाते है। (इसी प्रकार) असंज्ञी तिर्यंच भी मरकर प्रथम नरकमें जाते है। सरीसृप आदि प्राणी मरकर शर्कराप्रभा नामकी दूसरी नरक भूमि तक जाते हैं। हे वासव, और सुनो—पक्षीगण तीसरे रौरव नामक नरक पर्यन्त जाते है। कृष्णकाय, पृथिवीपर भीषण एवं कर्कश आवाजवाले महोरग—सर्प चौथे नरक तक जाते है। प्रचण्ड पंचानन—सिंह पाँचवी नरक भूमि तक जाते है। परनरको माननेवाली महिलाएँ छठी नरकभूमि तक जाती है। नर एवं तिमि (मत्स्य) मरकर सातवी नरक भूमि तक जन्म लेते है। वहाँपर वे (पूर्व-जन्मके) बैरके वशीभूत होकर परस्परमें भिड़ जाते हैं, भागते नही। (१०, १५)

सातवें (माधवी) नरकसे निकलकर वह प्राणी मनुष्य नही हो सकता। दुखो मे तत्पर तिर्यंच शरीर ही पाता है। छठे (मघवी) नरकसे निकलकर कोई-कोई नारकी मनुष्य शरीर भी पा लेता है। वही मनुष्य पाँचवें अरिष्टा नरकभूमिमे देशव्रतीपनेको भी प्राप्त होता है। अंजना नामक चौथे नरकसे निकलकर वह प्राणी केवलज्ञान प्राप्त कर पंचमगति (मोक्ष) को प्राप्त करता है। शैला, वंशा एवं घम्मा नामके तृतीय, द्वितीय एवं प्रथम अरम्य नरकोंसे निकलकर कोई-कोई जीव तीर्थंकर हो सकते हैं। वे अन्य शलाका पुरुषोंके शरीरको प्राप्त नही करते। मनुष्य एवं तिर्यंच मरकर मुनिवर पदको प्राप्त करते है। (२०)

घत्ता—मनुष्य सभी विमानोंमे उत्पन्न होते है, ऐसा जिनस्वामीने कहा है। बलदेव आदि सभी ऊर्ध्वगतिगामी होते है। जबकि कृष्ण अधोगतिगामी ॥२१४॥ (२५)

२२

तिर्यग्लोक और नरकलोकमें प्राणियोंकी उत्पत्ति-क्षमता तथा भूमियोंका विस्तार

दुर्निवार प्रतिशत्रु (प्रतिनारायण) का विदारण करनेवाले नारायण नरकसे निकलकर कभी भी हलायुध (-बलभद्र) नही होते, अधिक क्या कहे; वे चक्रायुध भी नही हो सकते। अग्नि व वायुकायको छोड़कर जिस प्रकार पृथिवी, जल एवं वनस्पति इन तीनो कायोसे मनुष्य शरीर पाते है, उसी प्रकार तिर्यंचोंका भी जानो। कदाचित् देवगतिसे चयकर वह देव बादर पृथिवी, बादर जल, प्रत्येक वनस्पति कायमें जन्म लेते है। (५)

हे अमृताशन, तामस वृत्तिवाले ज्योतिषीदेव, पुण्य शलाकापुरुष शरीरको प्राप्त नही होते। हे सहस्रलोचन—इन्द्र, अभी तुम्हें तिर्यग्लोकके प्राणियोकी उत्पत्ति-क्षमता कही, अब नरक-निवासके विषयमे सुनो—

तेजोधाम जिनेन्द्रने चित्रा नामकी प्रथमा पृथिवी कही है। (उस पृथिवीके ३ खण्ड हैं—) खरबहुल नामका प्रथम खण्ड है, जो १६ सहस्र योजन (विस्तृत) है जो (कुछ व्यन्तरों तथा असुरकुमारोंको छोड़कर) ९ प्रकारके भवनवासी देवोसे विभूषित है। इसी प्रकार जो दूसरा पंकबहुल भाग कहा गया है, वह ८४ हजार योजन प्रमाण है, जहाँ असुरकुमार जातिके देव, भवनवासी देव तथा राक्षस नामक व्यन्तर देव निवास करते है। तीसरा जलबहुल नामका खण्ड कहा गया है, जो ८० हजार योजन प्रमाण है। वहाँ नारकी प्राणी विक्रिया ऋद्धि करके परस्पर-मे विरोध किया करते है और युद्ध करते रहते है। इसी प्रकार अन्य ६ पृथिवियोंके भी पाप-बहुल नारकी प्राणी है, जिनका विचार जिनवरको छोड़कर अन्य दूसरोने नही किया। (१०, १५)

मिय विज्जीवत्तीस-सहासहिँ तइय मुणेव्वी अट्ठावीसहिँ ।
15 चउवीसेहिँ चउत्थी वीसहिँ आहासीय पंचमिय रिसीसहिँ ।
छट्ठी पभणिय दुगुणिय अट्ठहिँ सत्तमियावणि जाणहिँ अट्ठहिँ ।

घत्ता—आयउ पिंडेण सुरिंद मुणि विगय-संख आयामेँ ।
एक्केक्की णारइयहिँ धरणि भणिउ जिणेँ जियकामेँ ॥२१५॥

२३

रयणप्पहा पढम सक्कर पहा दुइय वालुवपहा तइय पंकप्पहा तुरिय ।
धूमप्पहा पंचमी अवरंणिखुत्त तमपह महातमपहा सत्तमी वुत्त ।
एयाण भूमीहु दुह पवर अवराइँ तिमिरोह-भरियाइँ णिरु होंति विवराइँ ।
मुणि तीस-पणवीस-पंचदह-दह-तिण्णि पंचूणगु एक्कु सउसहसु मणि भिण्णि ।
5 पंचविल नारइय तहिं दुक्खु भुंजंति कसणाइँ काओय-लेसा-वसा हुंति ।
दरिसिय-मयाहीस-मायंग-रूवाइँ पंचक्ख हूवाइ णं णियइं दूवाइँ ।
महिगयइँ हेट्ठामुहोलंवियंगाइँ इच्छिय-महा-भीम-रण-रंग-संगाइँ ।
दुग्गंध देहाइँ दुग्गम तमोलाइँ खर-लोह-मय-कील-कंटय-करालाइँ ।
णर-तिरिय पर तेत्थु पावेण जायंति सहसा मुहुत्तेण हुंडंगु गिण्हंति ।
10 संभवइ तहिँ णाणु मिच्छा विहंगक्खु जिणमय वियक्खणहँ अवही मणे लक्खु ।
अंगार-संघाय-मसि-कसण संकास पायडिय-दंतालि संजणिय-संतास ।
पविरइय भू-भिउडि-भंगुरिय भालयल कवि लुद्ध धम्मिल्ल ख-भरिय गयणयल ।
जिह-जिहँ विहंगेण जाणति अप्पाणु तिह-तिह जे सुमरंति तं तं जि णिय-ठाणु ।

घत्ता—हेट्ठा मुहं ते असि पत्तवणे परिवडंति रोसारुण ।
15 'हणु हणु' भणंति जुज्झण-णिरय णिच्च-रइय-रण-दारुण ॥२१६॥

---

२ • १. D. J. V. दइय । २. D. पं° । ३. D. °याँ° । ४. D. °मँ° । ५. D. °रक्खु । ६. D. °मि । ७. D. तिह ।

(प्रथम नरक पृथिवीकी मोटाई एक लाख अस्सी हजार योजन है) दूसरी नरक पृथिवी की मोटाई बत्तीस हजार योजन तथा तीसरी नरक-पृथिवीकी मोटाई २८ हजार योजन जानना चाहिए। चौथी नरक-पृथिवीकी मोटाई चौबीस हजार योजन तथा ऋषियों द्वारा पाँचवी नरक-पृथिवीकी मोटाई २० हजार योजन कही गयी है। छठवी नरक-पृथिवीकी मोटाई ८ दूनी अर्थात् सोलह हजार योजन प्रमाण कही गयी है तथा सातवी नरक-पृथिवीका प्रमाण आठ हजार योजन जानो। २०

घत्ता—हे सुरेन्द्र, आयाममें असंख्यात प्रमाण (नारकियोकी) आयु सुनो। जैसा कि कामा रिजित जिनेन्द्रने एक-एक नरक-पृथिवीकी आयु कही है ॥२१५॥

२३

प्रमुख नरकभूमियाँ और वहाँके निवासी नारकी जीवोंकी दिनचर्या एवं जीवन

पहली रत्नप्रभा, दूसरी शर्कराप्रभा, तीसरी बालुकाप्रभा, चौथी पकप्रभा, पाँचवी धूमप्रभा अन्य निश्चित रूपसे छठवीं तमप्रभा एवं सातवी महातमप्रभा नामकी नरकभूमियाँ कही गयी हैं। ये समस्त नरकभूमियाँ प्रवर दुखोसे व्याप्त तथा तिमिरसमूह एवं विवरोसे भरी हुई होती है। उन सातों पृथिवियोंमें विवरोंकी संख्या क्रमशः (प्रथम नरकमे—) तीस लाख, (दूसरे नरकमे—) पचीस लाख, (तीसरे नरकमें—) पन्द्रह लाख, (चौथे नरकमें—) दस लाख, (पाँचवें-नरकमें—) तीन लाख, (छठवें नरकमें—) पाँचकम एक लाख, एवं (सातवे नरकमे—) केवल पाँच ही बिल जानो। कृष्ण, नील एवं कापोत लेश्याओंके वशीभूत होकर वे नारकी जीव उन विवरोंमे दुख भोगते रहते है। ५

वहाँ वे (विक्रिया ऋद्धिवश) मृगाधीश एवं मातंगके रूपोंको दरशाकर प्रत्यक्ष होते है, मानों वे स्वयं ही उस रूपवालोंके निजी दूत हों। १०

नारकी प्राणी जब जन्म लेकर वहाँ भूमिपर पहुँचते है, तब वे नीचे मुख लम्वे अंगवाले होते हैं तथा वहाँ आकर इच्छित महाभयंकर रणरंगमे संगत हो जाते हैं। उनका शरीर बड़ा ही दुर्गन्धिपूर्ण होता है। वहाँ दुर्गम तमाल वृक्ष होते है, जो लोहेके बने हुए कीलों व काँटों जैसे भयानक होते है। मनुष्य एवं तिर्यंच भयानक पापोंके कारण उन नरकोंमे जन्म लेते हैं। मुख्य रूपसे वे एकाएक हुण्डक संस्थान ही ग्रहण करते है। १५

वहाँ मिथ्याविभंगावधि नामका ज्ञान होता है, ऐसा जिनमतमे विचक्षणोंने अपने अवधिज्ञानसे मनमें (स्वयं) देखा है।

अंगारोंके संघातसे स्याहीके समान काली दन्तपंक्तिको उखाड़ फेंककर वे परस्परमें सन्त्रास उत्पन्न करते है।

कुटिल भालतलपर भौहें चढ़ाकर कभी-कभी तो केश-समूह उखाड़ डालते है और मारो-मारो कहकर आकाश को भर देते है। जिस-जिस विधिसे वे अपने पूर्वभव को जानते है उसी-उसी विधिसे वे अपने पूर्वस्थानोंका स्मरण करते है। २०

घत्ता— रोषसे लाल नेत्रवाले वे नीचा मुख कर तलवारके समान पत्तोंवाले वनमे गिरा दिये जाते है। और मारो-मारो कहते हुए नित्य ही दारुण युद्धमे जूझते रहते हैं ॥२१६॥

२४

ण मज्झत्थु णो मित्तु दुक्खावहारी ण सामी ण बंधू ण कारुणधारी।
पलोविज्जए जाहँ वेसो वियारी रुसारत्तणेत्तो अमुक्कोरु-खेरी।
फुडं तत्थु खेत्तस्सहावेण दुक्खं किमक्खिज्जए वप्प धत्थंग-रुक्खं।
सुई-सण्णिहो भूपएसो असेसो ण सुक्खावहो कोवि सारो पएसो।
5 खरो दुद्धरो चंडु सीउण्हवाओ महादुस्सहो णाइँ दंभोलि-घाओ।
महीजाय पत्ता सुणिंत्तिसु-तुल्ला फलोहा कठोरा अलं णो रसुल्ला।
पडंताणिसं णारयाणं सरीरं वियारंति तत्थुब्भवाणं अधीरं।
महोरंधि भक्खंति वेउव्वणाए मयाहीस-भीमाणणा भीसणाए।
पहाचिच्चि जालावली पज्जलंता पईसंति सव्वत्थ दुट्ठा मिलंता।
10 तुरं धावमाणा फुरंतासिहत्था अमाणा कुरुवाणणा णाइँ भत्था।
गिरिंदग्गि भवखंति रिक्कंदविंदा वियारेवि चंचूहिँ खुद्दा विणिंदा।

घत्ता—वइतरणिहँ पाणिउँ विस-सरिसु पीयमेत्तु मोछावइ।
हिययंतरे णिब्भरु परिडहइ बहुविह-वेयण दावइ ॥२१७॥

२५

कुंडइँ किम भरियइँ णारय वरियइँ दूरसइँ।
लोहिय पूवालइँ अइ-सु-विसालइँ असुगसइँ।
ण्हायहो णीसरियहो मह-भय-भरियहो करिवि रणु।
सहुँ तेण पयंडहिँ णिय-भुव-दंडहिँ तासु तणु।
5 उक्कत्तिवि णारय दिंति रणायर णिवसणइँ।
लोहमयइँ दिण्णइँ सिहि संतत्तइ भूसणइँ।
जहिँ-जहिँ परिपेच्छइ हियइँ समिच्छइँ वरसुहइँ।
तहिँ-तहिँ जम-सासणु पाव पयासणु बहु दुहइँ।
जहिँ जहिँ जोएविणु वइसइ लेविणु विट्ठरइँ।
10 तहिँ तहिँ पडिकूलइँ तिक्ख तिसूलइँ णिट्ठुरइँ।
जहिँ जहिँ आहारइँ तणु साहारइँ परिगसइँ।
तहिँ तहिँ दुग्गंधइँ फरुस विरुद्धइँ जिणु भसइँ।
आहारिय पुग्गल णिहिल णिरग्गल परिणवहिँ।

२५. १. J. V. प्रतियोमे यह पद नही है। २. J. V. भयरि।

२४

नरकके दुखोंका वर्णन

उन नरकोंमें न तो कोई मध्यस्थ है, और न ही कोई दुःखापहारी मित्र एवं करुणाधारी स्वामी अथवा बन्धु ही। वहाँ उन नारकियोंका विकारी वेश ही देखा जाता है (अर्थात् शरीरके तिल-तिल खण्ड करके फेंक दिया जाता है)। रोषसे जिनके नेत्र लाल बने रहते हैं तथा जो अपने महान् उद्वेगको नही छोड़ पाते।

वहाॅ क्षेत्रका स्वाभाविक दुख स्पष्ट है। वहाँ वृक्षों द्वारा किये गये ध्वस्त अंगोंके विषयमें क्या कहा जाये ? वहाॅके समस्त भूमि-प्रदेश सुईके समान नुकीले तेज हैं, कोई भी प्रदेश सुखदायक अथवा सारभूत नही है। ५

वहाँ खर, दुर्धर, चण्ड, शीत, उष्ण एवं शीतोष्ण वायुएँ वहा करती हैं। वे वज्राघातके समान ही महादुस्सह होती है।

महीजात वृक्षोके पत्ते अत्यन्त निस्त्रिंश (क्रूर) असिके समान रहते है। उन वृक्षोके फल-समूह कठोर एवं रसरहित होते हैं। वे नारकियोंके अधीर शरीरों पर देखते ही देखते उनपर गिर पड़ते हैं और उनका विदारण कर डालते है। अपनी भीषण विक्रिया ऋद्धिसे मृगाधीशका भयानक मुख बनाकर (परस्परमें अपने ही) महान् हृदय-रन्ध्रोंको खा जाते है तथा वे नारकी दुष्ट परस्परमे मिलकर प्रज्वलित प्रभासे चट-चट करनेवाली ज्वालावलीमे प्रवेश कर जाते है। तुरन्त दौड़ते हुए, स्फुरायमान, तलवारके समान हाथोवाले, प्रमाणरहित शरीरवाले तथा कुरूप एवं धौकनीके समान मुखवाले होते हैं। क्षुद्र निद्रारहित ऋक्षेन्द्र-समूह अपनी चंचुओं द्वारा विदीर्ण करके गिरीन्द्र जैसी अग्नि भी खा जाते हैं। १० १५

घत्ता—वहाँ वैतरणी (नदी बहती है जिस) का पानी विषके समान है, जिसके पीने मात्रसे मूर्च्छा आ जाती है तथा जो हृदयको विशेष रूपसे जला डालता है तथा नाना प्रकारकी वेदना उत्पन्न करता है ॥२१७॥ २०

२५

नरकभूमिके दुख-वर्णन

उन नरकभूमियोंमे कृमियोंसे भरे हुए खून एवं पीबके आलय, दुःस्वादु जलके परिपूर्ण एवं प्राणोंको तत्काल हर लेनेवाले अति सुविशाल कुण्ड बने हुए है। उन कुण्डोंमे स्नान कर निकले हुए एवं महान् भयसे भरे हुए नारकियोंके साथ वे (अन्य नारकी) अपने-अपने प्रचण्ड भुजदण्डोंसे युद्ध करके शरीरोंको त्रस्त कर देते हैं। फिर वे रणातुर होकर परस्परमे ही एक दूसरेको काट-काटकर वस्त्र-विहीन कर देते हैं और अग्निसे तपाये हुए लौहमय आभूषणोंको पहना देते हैं। जहाँ-जहाॅ अनेक दुखोंसे भरे हुए उत्तम सुखोको देखते है, उन्हीकी इच्छा करने लगते है। किन्तु वहाँ-वहाँ पापप्रकाशक यमराजका शासन रहता है। जहाँ-जहाँ देखकर वे (नारकी) निष्ठुर आसन लेकर बैठते है, वही-वही प्रतिकूल एवं तीक्ष्ण त्रिशूल वन जाते हैं। ५

जहाँ-जहाॅ वे शरीरके आधारके लिए जरा-सा भी आहारका ग्रास लेते है, वही-वही वे अति दुर्गन्धिपूर्ण स्पर्श-विरुद्ध (विषैली मिट्टी अर्थात् विष्ठा) वन जाते है, ऐसा जिनेन्द्र कहते है। इस १०

हिंसा असुहत्तें पीडिय-गत्तें णउ चवहिँ ।
15 जहिँ जहिँ परि फंसइँ अणरइ धंसइ णिय मणहो ।
तहिँ तहिँ खर सयणइँ णं दुव्वयणइँ दुज्जणहो ।
जं जं आचक्खइँ केवलि अक्खइ णय खयरु ।
तं तं विरसिल्लउ किं पि ण भल्लउ असुहयरु ।
जं जं अग्घायए घोणइँ घायइँ चत्तमइँ ।
20 तं तं कुणि संगउ णिहिलु ण चंगउ तेत्थुलइँ ।
जहिँ जहिँ अरवण्णहिँ निसुणहिं कन्नहिं थिर रयणु ।
तहिँ तहिँ पयणिय-दुहु चंकावइ मुहु दुव्वयणु ।
जं जं मणि चिंतइ पुणु-पुणु मंतइ इक्कमणु ।
तं तं मण-तवणु वेयण-दावणु दलिय-तणु ।

25 घत्ता—जरु-अच्छि-कुच्छि-सिर-वेयण उद्धसासु अणिवारिउ ।
सव्वउ वाहिउ परि संभवहिँ नारयदेहि निरारिउ ॥२१८॥

२६

सुहँ अणुमीलिय कालु वि जित्थु न लब्भइ किंपि वि कोसिय तित्थु ।
कहिज्जइ काइँ अहोगइ तिक्खु णिरंतरु ताणउँ दूसहु दुक्खु ।
अराइ पयावइ रोहउ कन्हु निओहउँ आसि पुरा पडिकन्हु ।
भणंतउ एम कुणंतु दुहेण सया परितप्पइ माणसिएण ।
5 भिडंतउ सो सहुँ नारइएहिँ[1] कयंतु व भूरि-रुसा लइएहिँ ।
न भिज्जइ दाणव-देव-गणेहिँ रणंगणि कीलहिँ मत्त मणेहिँ ।
अहो तुहुँ[2] कुंजरु पंचमुहेण वियारिवि छल्लिउ एण दुहेण ।
अहो तुहु एण इओ सि सिरेण मही-महिलाहि निमित्तु खरेण ।
विसी तुहुँ भक्खिउ वासयरेण[3] विसंतु विले छुह-खीणुयरेण ।
10 हओ तुहुँ णिद्दलिओ महिसेण महंत-विसाणहिँ सास-वसेण ।
इमं हणु सारि पयंपिउ एम घयाहउ पज्जलिओसिहि जेम ।
पयंपइ नारउ नारय मन्ने पडंत-महादुह-जाल असन्ने ।
गयाऽसि-खुरुप्प-छुरी-मुसलेहिँ रहंग-सुसव्वल सिल्ल-हलेहिँ ।
वियारइ वेरि न वारइ को वि सदेहु वि ताहँ महाउहु होइ ।

15 घत्ता—अण्णेण अण्णु वाणहिँ वणिउँ अण्णि अन्नु निवाइउ ।
अण्णेण अन्नु निदारियउ अन्ने अन्नु विघाइउ ॥२१९॥

---

२६. १. J. V. नरइ° । २. D. °ह । ३. D. J. V. वो° ।

प्रकार समस्त पुद्गलोंका आहार कर वे निरर्गल परिणमन किया करते हैं। हिंसाकी अशुभतासे उनके शरीरोंमें पीड़ा तो होती है, किन्तु वे मरते नहीं। अपने मनसे जहाँ-जहाँ स्पर्श करते है वे वही वेदनापूर्वक धँस जाते हैं तथा वहाँ-वहाँ (उनके लिए) तीक्ष्ण शयन (काँटेदार पलंग) बन जाते है, वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो दुर्जनोंके दुर्वचन ही हों।

उन नरकोंके विषयमें जो कुछ कहा गया है, उसे परम नीतिज्ञ केवलीने देखा है। वहाँ सब कुछ विरस ही विरस है, भला लगने लायक कुछ भी नहीं, सब कुछ अशुभतर है। त्यक्तमति उसके द्वारा जो-जो कुछ नासिकासे सूँघा जाता है, वही घातक हो जाता है। उन नरकोंमे सब लूले-लँगड़े अंगवाले ही रहते है, कोई भी अंग चंगा नही रहता। जहाँ-जहाँ कानों द्वारा स्थिरतापूर्वक जो कुछ सुना जाता है, वह-वह प्रकट रूपसे दुख देनेवाला एवं कुटिल दुर्वचन ही मुखसे निकलता है। जो-जो मनमें विचारते है तथा एकाग्र मनसे बार-बार सोचते हैं वह-वह मदनसे तप्त करनेवाला, वेदनाको उत्पन्न करनेवाला तथा शरीरका दलन करनेवाला होता है।

घत्ता—बुढ़ापेकी वेदना, अक्षिनेत्रोंकी वेदना, कुक्षिकी वेदना एवं सिरकी वेदना तथा अनिवारित ऊर्ध्व श्वाँस आदि सभी व्याधियाँ नारकियोंके शरीरमें उत्पन्न होती रहती हैं। इसमे कोई सन्देह नही ॥२१८॥

२६

नरकोंके घोर दुखोंका वर्णन

जहाँ अणुमात्र भी किसी प्रकारके सुखके अनुभव करनेका अवसर नही मिलता, जहाँ विक्रोश-आक्रोश ही बना रहता है, वहाँकी तीक्ष्ण अधोगतिको कहाँ तक कहें, जहाँ नारकियोंको निरन्तर दुस्सह दुख ही प्राप्त होते रहते है। 'शत्रुओंके प्रतापका हरण करनेवाला मै (पूर्व भवमे) कृष्ण था, मैने ही पूर्वकालमें प्रतिकृष्णका वध किया था।' इस प्रकार कहते हुए वे सब मानसिक दुखसे सदा परितप्त रहते है।

वे अत्यन्त क्रोधी नारकियोंके साथ कृतान्तके समान भिड़ जाते हैं। रणांगणमें प्रमत्त मनपूर्वक क्रीड़ाएँ करते हुए वे दानवों अथवा देवोंके द्वारा भी अलग-अलग नही किये जा सकते। 'अरे जब तू पूर्वभवमें कुंजर था, तब पंचमुख—सिंह द्वारा विदारित किया जाकर दुख-सागरमे धकेल दिया गया था। अरे इस दुष्टने पृथ्वी एवं महिलाके निमित्त तीखी तलवार तेरे सिरमे मारकर तेरा वध कर दिया था। हे विषधर, तू सुधासे क्षीण उदरवाले गरुड़से बिलोमे प्रवेश करते हुए खा डाला गया था। अथवा आज्ञाके वशीभूत होकर महिषके विशाल सीगों द्वारा तू रौंदा गया था। अतः 'इसे मारो' 'इसे मारो' इस प्रकार स्मरण दिला-दिला करके वहाँ वे परस्पर में लड़ाया करते हैं। जिस प्रकार अग्नि प्रज्वलित होती है उसी प्रकार घावोंसे आहत वे नारकी प्राणी भी क्रोधसे प्रज्वलित होते रहते हैं।' इस प्रकार नारकी प्राणी एक दूसरेसे कहते रहते हैं और महादुखरूपी अग्निकी ज्वालामे पड़े रहते है। गदा, असि, खुरपा, छुरी, मूसल, रथांग (चक्र), सब्बल, शिला, हल आदि शस्त्रोसे उन वैरियोंको विदारते रहते हैं, कोई उन्हे रोकता नहीं। वहाँ तो उनका शरीर स्वयं ही महाआयुध बन जाता है।

घत्ता—वहाँ एकको दूसरेके बाण द्वारा घायल कराया जाता है, एक दूसरेको मारते रहते हैं। एक दूसरेको विदीर्ण करते रहते है और परस्परमें एक दूसरेको घातते रहते हैं ॥२१९॥

२७

अन्नेण अन्नु विरएवि मन्तु ।
चक्केण छिन्नु वच्छयलु भिन्नु ।
अन्नेण अन्नु अंगार-वन्नु ।
घित्तउ हुवासे[1] जालावभासि ।
5 अन्नेण अन्नु अइअप्पसन्नु ।
तिलु-तिलु करेवि दारिउ धरेवि ।
तहु तणउ मंसु परिगय पसंसु ।
अल्लविउ तासु दुक्किय मयासु ।
लइ-लइ निहीण किं नियहि दीण ।
10 एवहिँ हयासे[2] कहि गय पियास ।
किं कायराई वणे वणयराई ।
मणि अहिलसेहि मारिवि गसेहि ।
तावेवि णाउ करि कूर भाउ ।
अन्नहु जि मज्जु भजि दिन्नु सज्जु ।
15 पिउ-पिउ जिणिंदु पय णय फणिंदु ।
जाणइ नवंगु[3] कय सुह पसंगु ।
फुडु कहइ गुज्झु परकउलु तुज्झु ।
उम्मग्गि जंति पर-तिय रमंति ।
निद्धम्म बुद्धि अप्पत्त सुद्धि ।
20 वारिय परत्त अमुणिय परत्त ।
पइँ[4] रमिय जेम एम्वहि[5] जि तेम ।
आलिंगिएह लोह मय देह ।
सिहि वन्न रत्त णं तुज्झु रत्त ।
मन्निवि मणोज्जु वित्थरिय चोज्जु ।
25 परकीय-वाल कोइल-रवाल ।
सेंवलि विसाल कंटय कराल ।
अवरुंडि काइँ न सरहि नियाइँ ।
चिर विरइयाइँ चरियहँ सयाइँ ।

घत्ता—खित्तुब्भउ ताणउँ[6] माणसिउ अवरुवि असुराईरिउ ।
30 अन्नोन्नाइउ इय पंचविहु दुहु नारइयहँ ईरिउ ॥२२०॥

२८

तहि न नारि न पुरिसु अविणिंदिउ नग्गु नउ स सव्वु विनिंदिउ ।
पढम पुहइ नारइय सरीरहँ कहि पमाणु जिणेण अवीरहँ ।
सत्त सरासण तहय तिहत्थइँ छंगुल परियाणहिँ णिग्गंथइँ ।

२७. १. D. °सु । २. D. °सु । ३. V. °चं° । ४. D. वइ । ५. J. V. एम्वहिं । ६. D. J. °ता° ।

२७

नारकी जीवोंके दुखोंका वर्णन

कोई किसीको क्रोध उत्पन्न कर देता है, तो कोई चक्र द्वारा उसके वक्षस्थलको छिन्न-भिन्न कर देता है। कोई किसीको अंगार वर्णका बना देता है तो कोई किसीको प्रज्वलित अग्निमें झोंक देता है। कोई किसीपर अत्यधिक अप्रसन्न होकर उसे पकड़कर विदारण कर उसका तिल-तिल समान खण्ड कर डालता है। एक कोई उसके निन्दित मांसको लेकर चिल्लाकर (दूसरे नारकीसे) कहता है—हे मांसाशी, दुष्ट, हे घातक, हे दरिद्र, इसे ले ले, देखता क्या है ? ५

'हे हताश, हे पिशाच, तू कहाँ चला गया ? वनमें कातर वनचरोंको मारकर अपने मनमे तूने उन्हे खानेकी अभिलाषा क्यों की थी ? हे नाग, (पूर्वभवमे) क्रूर भाव धारण कर तूने लोगोंको सन्तप्त क्यों किया था ? तूने दूसरोंको मदिरा कहकर विष क्यों दिया था ? हे प्रिय, उस निन्दित मदिराको तूने पिया क्यों था ? हे फणीन्द्र, तू इसके चरणोंमें नमस्कार कर।' इस प्रकार नारकी-जन परस्परमें चिल्ला-चिल्लाकर कहा करते हैं। "नवरसोंको जानकर तूने खूब सुख-प्रसंग किये। १० तूने परस्त्रियोंकी गुप्त बातोंको स्पष्ट कहा, परस्त्रियोंके साथ रमता हुआ उन्मार्गमे गया, बुद्धिको धर्मरहित किया, आत्मशुद्धिको प्राप्त नहीं किया, परलोकका वारण किया तथा परलोकपर विचार भी कभी नही किया था, पहले तू जिस प्रकार रमा था, उसी प्रकार अब तू अग्निके समान लाल वर्णवाली इस लौहमय देहसे आलिंगन कर और ऐसा मान कि वह तुझमें आसक्त है। स्वर-कोकिला परकीया बालाओंको मनोज्ञ मानकर उनके प्रति प्रेम प्रकट करता था। कराल कॉटो- १५ वाली ये ही वे बालाएँ हैं क्या अब तुझे अपने उन दुष्कार्योका स्मरण नही है ? इनका आलिंगन कर। चिरकालसे तेरा ऐसा ही चरित्र रहा है।

घत्ता—क्षेत्रोद्भव दुख, मानसिक दुख और असुरों द्वारा प्रेरित दुख परस्पर कृत दुख तथा नारकियों द्वारा प्रेरित दुख इस प्रकार नारकियोके ५ प्रकारके दुख कहे गये हैं ॥२२०॥

२८

नारकियोंके शरीरकी ऊँचाई तथा उत्कृष्ट एवं जघन्य आयुका प्रमाण

वहॉ न तो अविनिन्दित—प्रशंसनीय स्त्रियाँ ही है, और न पुरुष ही। वे नग्न भी नहो रहते। सभी विशेष रूपसे निन्दित नारकी रहते है।

प्रथम नरकके नारकियोंके शरीरका प्रमाण वीर जिनने सात धनुष, तीन हाथ और छह

अवरहँ पुहविहु पुणु जाणिव्वउ दूणु-दूणु एउ जि विरएव्वउ।
5 एमु करंतहो नारयर मियहो धणु पंच सय होंति सत्तमियहो।
एक्क-ति-सत्त-दह जि सत्तारह अणुकमेण दुगुणिय एयारह।
तेतीस जि सायरइँ जिणिंदें आउ माणु वज्जरिउ जिणिंदें।
उक्किट्ठेण जहन्ने जाणहिँ दह वरिस-सहस पढमइँ माणहिँ।
जं पढमहिँ उत्तमु तं वीयहिँ होइ जहन्नाउसु अवणीयहिँ।
10 जं वीयहिँ उत्तमु तं तइयहे होइ जहन्नु पावसंछइयहे।
एण पयारेँ मुणि सक्कंदण अवरहँ वि संका णिक्कंदण।

घत्ता—विक्किरिया तणु महीहाउसइँ होंति अहोहो विवरइँ।
विछिन्नइँ वित्थारिय-रणइँ दुप्पिक्खइँ घण-तिमिरइँ ॥२२१॥

२९

नरयनिवासु कहिउ एवहिँ पुणु एक्कचित्तु होइवि सुरवइ सुणु।
सुर दहट्ठ पण-सोलह-वे-न्नव पंचपयार पुरो-विरइय-तव।
एयहिँ पढम रयणपह-नामहे महिहि जि णायरि सत्थि सणामहे।
जे खरवहुल-पंकवहुलक्खइँ दो खंडइँ णानिहु पच्चक्खइँ।
5 सुणिहुँ तइँ उवरि[माइंतहिँ]असुर णिवासइँ चउगुण सोलह सहस सुवासइँ।
चउरासी नायहँ सुरवन्नहँ सत्तरि दोहिमि मीसि सुवन्नहँ।
आसाणल मयरहरकुमारहँ दीव-थणिय-विज्जुलिय-कुमारहँ।
छाहत्तरि लक्खइँ एक्किक्कहो एउ भावण-घरु-माणु पउत्तइं।
एक्किहिँ मिलियइँ हुंति समक्खइँ सत्तकोडि वाहत्तरि लक्खइँ।
10 तित्तिय होंति जिणिंदहो गेहइँ कुसुम-गंध-वस मिलिय-दुरेहइँ।
चउदह सहस निवासइँ भूयहँ रक्खसाहँ सोलह गुणभूयहँ।

---

२८. १. J. V. एम्व। २. D. विर°। ३. J. V. °दि। ४. J. सका°।
२९. १. D. J. V. °हो। २. J. V. °हो। ३. D. J. V. प्रतियोमे यह पंक्ति एक समान है। इसमें 'माइंतहिं' पाठके कारण छन्दोभंग होता है। इस पंक्तिके प्रथमचरणका पाठ इस प्रकार भी हो सकता है—सुणि तहोवरि असुरणिवासइं। ४. D. सा°।

अंगुल प्रमाण बताया है। निर्ग्रन्थों द्वारा यह स्वयं ही जाना हुआ है। अन्य दूसरी-तीसरी नरक पृथिवियोंके नारकियोंके शरीरके प्रमाण दूने-दूने (अर्थात् दूसरी पृथिवीमें पन्द्रह धनुष, दो हाथ और बारह अंगुल, तीसरी पृथिवीमें एकतीस धनुष, एक हाथ, चौथी पृथिवीमे बासठ धनुप, दो हाथ, पाँचवीं पृथिवीमें एक सौ पचीस धनुष, छठवी पृथिवीमे दो सौ पचास धनुप. प्रमाण शरीर हैं। इसी प्रकार सातवी पृथिवीके नारकियोके शरीर का प्रमाण पांच सौ धनुष है। (इन्हें) जानो और विरक्त बनो।

प्रथम नरकमे एक सागर, दूसरे नरकमें तीन सागर, तीसरे नरकमें सात सागर, चौथे नरकमें दस सागर, पाँचवें नरकमें सत्रह सागर, छठवें नरकमें बाईस सागर और सातवें नरकमें तेंतीस सागरकी उत्कृष्ट आयु जिनेन्द्र द्वारा कही गयी है।

जघन्य आयु इस प्रकार जानो—प्रथम नरकमे १० सहस्र वर्षकी जघन्य आयु मानो तथा प्रथम नरककी जो उत्कृष्ट आयु है, वही दूसरे नरककी जघन्यायु समझो। जो दूसरे नरककी उत्कृष्ट आयु है, वही पापोसे आच्छन्न तीसरे नरककी जघन्य आयु है।

हे शक्रेन्द्र, इसी प्रकार अन्य नारकोंकी भी जघन्य आयु समझो और दूसरोंकी शंकाका निवारण करो।

घत्ता—उन नारकी जीवोंका वैक्रियक शरीर होता है जिनकी आयु महादीर्घ होती है। वहाँ दुष्प्रेक्ष्य घन तिमिरवाले अधोमुखी विस्तीर्ण विवर होते हैं। जहाँ वे रमण किया करते हैं ॥२२१॥

२९

देवोंके भेद एवं उनके निवासोंकी संख्या

इस प्रकार मैंने हे सुरपति, नरकवालोंको कह दिया है। अब तुम पुनः एकाग्र-चित्त होकर (देवोंके विषयमें भी) सुनो।

भवनवासी देव दस प्रकारके है, व्यन्तर देव आठ प्रकारके, ज्योतिषी देव पाँच प्रकारके, वैमानिक देवोंमे कल्पोपपन्न देव सोलह प्रकारके, कल्पातीतोंमें नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पाँच अनुत्तर भेदवाले विमान है। इनकी रचना तुम्हें बताते है—

प्रथम रत्नप्रभा नामकी पृथिवीमें नारकीय शक्तिके नामानुरूप जो खरबहुल एवं पंखबहुल नामसे प्रसिद्ध दो खण्ड ज्ञानियोंने प्रत्यक्षरूपसे देखे है, सो सुनो, उनके ऊपर असुरकुमार जातिके भवनवासी देवोंके चार गुने सोलह अर्थात् चौसठ सहस्र (चौसठ लाख ?) सुवासित निवास भवन हैं। नागकुमारोके चौरासी लाख, सुवर्ण वर्णवाले सुपर्ण (गरुड़) कुमारोके बहत्तर लाख, आशा (दिक्) कुमार, अनल (अग्नि) कुमार, मकरघर (उदधि) कुमार, द्वीपकुमार, स्तनित-कुमार (मेघकुमार) एवं विद्युत्कुमारों, इन छहोमे प्रत्येकके छिहत्तर-छिहत्तर लाख मनोहर गृह कहे गये है, उन्हे मानो। (इस प्रकार वातकुमारोंके भी छानबे लाख भवन जानो) इन सभी कहे हुए भवनोंको एक साथ मिला देनेसे वे कुल सात करोड़ बहत्तर लाख भवन होते हैं।

उक्त भवनोमें सात करोड़ बहत्तर लाख ही कुसुम सुगन्धिके वशीभूत भ्रमरोंसे युक्त जिनेन्द्र गृह कहे गये है (क्योंकि प्रत्येक निवासमे एक-एक जिनेन्द्र गृह बने हुए हैं)।

भूतोंके चौदह हजार निवास गृह है, तथा राक्षसोंके निवासस्थान भूतोंकी अपेक्षा सोलह गुने अर्थात् दो लाख चौबीस हजार हैं।

घत्ता—और भी—कि वनोंमे, गगनतलमें, सरोवरोंमे, समुद्री तटोंपर लक्ष्मीगृह—कमलोमें (अथवा कोपागारोंमें) संघात रहित एवं मनोहर विपुल मात्रामे व्यन्तरोंके नगर होते हैं ॥२२२॥

३०

स्वर्गमें देव विमानोंकी संख्या

पृथिवी-तलसे ७९० योजन (ऊपर) आकाश लाँघकर मनुष्य-लोकसे ऊपर-ऊपर ज्योतिपी देवोंके महान् आवास परिस्थित हैं। वे अर्ध कपित्थके आकारवाले हैं, जो असंख्यात द्वीपोमे विस्तृत है। वे विशाल विमान भी असंख्यात हैं, जो विविध मणियोंसे युक्त तथा आनन्दरूपी रस प्रदान करनेवाले हैं। द्युतिसे दीप्त समस्त ज्योतिपी देवोंके पिण्डका कुल क्षेत्र ११० योजन (आकाश क्षेत्रमे) है। वह पिण्ड मनुष्य लोकसे वाहर स्थित है, (स्वभावसे) स्थिर है तथा उसमे घण्टे ५ लटकते रहते है, जो बड़े ही सरस, रुचिर एवं ध्वनिवाले होते है।

इन्द्रनील मणिकी किरणोसे स्फुरायमान वह स्वर्गलोक सुमेरु पर्वतकी चूलिकाके ऊपर स्थित है। उन दोनों (सुमेरुचूलिका एवं स्वर्गलोक) का अन्तर मात्र एक वाल (केश) वरावर है, ऐसा जिनेन्द्रने अपने केवलज्ञानसे देखकर कहा है।

उस स्वर्गलोकमें सर्वप्रथम सौधर्म स्वर्गके विमान हैं, जिनकी संख्या आठ गुने चार लाख १० अर्थात् वत्तीस प्रमाण है। निर्मल सुखके स्थान दूसरे ईशान स्वर्गमे अट्ठाईस लाख विमान हैं। जिस प्रकार तीसरे सनत्कुमारके वारह लाख विमान कहे गये हैं, उसी प्रकार चौथे माहेन्द्र स्वर्गमे आठ लाख विमान कहे गये हैं। पाँचवें ब्रह्म स्वर्ग एवं छठे ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें दो-दो अर्थात् चार लाख विमान है। पुनः सातवें लान्तव स्वर्ग एवं आठवें कापिष्ठ स्वर्गमे पचास हजार, नौवे शुक्र स्वर्ग एवं दसवें महाशुक्र स्वर्गमे चालीस हजार विमान जानो। पुनः ग्यारहवें शतार स्वर्ग एवं वारहवें १५ सहस्रार स्वर्गमें छह हजार विमान जानो और अपनी भ्रान्ति छोड़ो। पुनः तेरहवे आनत स्वर्ग, चौदहवें प्राणत स्वर्ग, पन्द्रहवे आरण स्वर्ग एवं सोलहवें अच्युत इन चार स्वर्गोमे सात सौ विमान जिनवरने अपने केवलज्ञानसे देखकर कहे है।

हे शतमख—इन्द्र, प्रथम तीन ग्रैवेयकोमे ११ युक्त १०० अर्थात् १११ विमान कहे गये हैं। दूसरे तीन ग्रैवेयकोंमे १०७ विमान तथा तीसरे तीन ग्रैवेयकमे ९१ विमान जानो। नव-नवोत्तर २० अनुदिशोंमे ९ विमान निर्दिष्ट किये गये हैं तथा ५ अनुत्तरोंमें ५ विमान कहे गये है।

घत्ता—पचासी लाखमें-से तीन हजार घटाकर तेईस जोड़ दीजिए। ये जितने होते हैं उतने ही उन देव विमानोमें जिन-मन्दिर हैं। अर्थात् ८५००००० − ३००० + २३ = ८४९७०२३ जिन मन्दिर ॥२२३॥

३१

देव विमानोंकी ऊँचाई

मुनीश्वरोंने प्रथम दो कल्पोंमें उन विमानोंकी ऊँचाई छह सौ योजन कही है। उसके ऊपर-वाले दो कल्पोंमे विमानोंकी ऊँचाई पाँच सौ योजन कही गयी है। उसके वादके दो कल्पोंमे विमानोंकी ऊँचाई चार सौ पचास योजन प्रकाशित की गयी है। उसके अगले दो कल्पोंमे चार सौ योजनकी ऊँचाई जानो, इसमे महाभ्रान्ति मत करो। तत्पश्चात् अगले दो कल्पोमे तीन सौ पचास योजन तथा उसके वाद पुनः दो कल्पोमे तीन सौ योजनकी ऊँचाई कही गयी है। पुनः अगले चार ५ स्वर्गोमें उत्तम विमानोंकी ऊँचाई दो सौ पचास योजनकी कही गयी है।

पुणु वेसयइँ पढम गेवज्जए तहिँ दिवड्ढु मज्झिमहिँ मणुज्जहिं ।
पुणु सउ उवरिल्लहिँ पण्णासहिँ मुणहि णवाणोत्तरे जिण वरिसइं ।
पुणु तुंगत्तेँ उवरि ससोहइँ पंचवीस जोयण सुर गेहइँ ।
पुणु सव्वत्थसिद्धि मिल्लेविणु वारह जोयण नहु लंघेविणु ।
10 तहिँ तइ लोय सिहिरि विणिविट्ठी केवलेण अरुहेण गविट्ठी ।
उच्छल्लिय सिय-छत्त-समाणी सुद्ध सिद्ध संदोहेँ माणी ।
मह जोयणइँअट्ठ पिंडत्तेँ पणयालीस लक्ख पिहुलत्तेँ ।
सविमाणंतरे भिण्ण मुहुत्तेँ सयणोयरे समय मय णिउत्तेँ ।
लिंति देहु आवाध-सहाएँ पुव्वज्जिय वर धम्म पहाएँ ।
15 घत्ता—उप्पज्जहिँ सुरचउरंसतणु वेउव्वियहिँ सरीरहिँ ।
मणुयायारहिँ सहु भूसणहिँ कडय-हार-केऊरहिँ ।।२२४।।

३२

आयासुव मल-पडल-विवज्जिय सुर-तिय-कर-धुव चामर विज्जिय ।
सयलामल लक्खणहिँ समासिय सहजाहरण विहूसण भूसिय ।
अणिमिस-लोयण अवियल-ससिमुह मुह-परिमल-परिवासिय-दिम्मुह ।
चम्म-रोम-सिर-णहर-पुरीसइँ रत्त-पित्त मुत्तामय मासइँ ।
5 सुक्क-वोक्क-मत्थिक्क वलासइँ अत्थि-पूव-रस-मीसिय-केसइँ ।
एयइँ होंति ण देह-सहावेँ पीडिज्जंति कयावि-ण तावेँ ।
उग्घडंति परिमल सुह सयडइँ उवगह सत्ति हवंति सुपयडइँ ।
तियस-जोणि-संपुडहो-मणोरम रूव-परज्जिय-रइवर णिरुवम ।
णीसरंति हरिसाऊरिय-मण जय-जय-सद्द-पघोसहिँ सुरयण ।
10 मणि आणंदेँ मंति ण परियण जीव-णंद पभणहिँ वंदीयण ।
पंचवीस चावइँ असुरहँ तणु सेस भवण विंतरहंमि दस भणु ।
सत्त सरासण जोइसियामर सत्तहत्थ मुणि दो कप्पामर ।
घत्ता—उप्परे पुणु वुड्ढिए विवुह वइ अद्ध-अद्ध तोडिज्जइ ।
सव्वत्थसिद्धि जायहँ सुरहँ एक्करयणि तणु गिज्जइ ।।२२५।।

---

२. J. V. °रि° । ३. J. V. °दे° ।
३२, १. J. V. स° । २. J. V. °प्प° ।

प्रथम तीन ग्रैवेयकोंके विमानोंकी ऊँचाई दो सौ योजन तथा मनोज्ञ मध्यम तीन ग्रैवेयकोंमें एक सौ पचास योजनकी ऊँचाई मानो। उपरिम ग्रैवेयकोंमे एक सौ योजन तथा नव-नवोत्तर अनुदिशोंमें पचास योजनकी विमानोंकी ऊँचाई जिनवरने कही है। पुनः ऊपरके पाँच अनुत्तर विमानोंकी पचीस योजनकी ऊँचाई शोभित रहती है। उसके आगे सर्वार्थसिद्धिको छोड़कर बारह योजन आकाशको लाँघकर वहाँ तीनों लोकोंके शिखरपर स्थित केवली अरहन्त द्वारा जानी हुई झिलमिल-झिलमिल करती हुई श्वेत छत्रके समान शुद्ध सिद्ध-समूहोंसे युक्त सिद्धशिला है, जो कि पिण्ड (मध्य) में आठ महायोजन प्रमाण मोटी एवं पैंतालीस लाख योजन चौड़ी है। १०

(देवोंकी उत्पत्तिका वर्णन—) देव अपने विमानोके भीतर शय्याके मध्यमें भिन्न मुहूर्तमे समयके नियोगसे पूर्वोपार्जित श्रेष्ठ धर्मके प्रभाव तथा अबाध पुण्यकी सहायतासे शरीरको धारण करते हैं। १५

घत्ता—तथा वे समचतुरस्र शरीरके साथ उत्पन्न होते हैं। वैक्रियक शरीरोसे युक्त वे मनुष्योंकी आकृति धारण कर कटक, हार, केयूर आदि भूषणोसे सुशोभित रहते हैं ॥२२४॥

३२

देवोंकी शारीरिक स्थिति

आकाशकी तरह ही देव मल-पटलसे रहित होते हैं। देवांगनाओंके हाथों द्वारा निश्चय ही चामरोंसे वीजित रहते हैं। उन देवोंकी देह निर्मल एवं समस्त (शारीरिक) लक्षणोसे समाश्रित तथा सहज आभरणोंकी शोभासे शोभित रहती है। उनके नेत्र निर्निमेष एवं अविचल तथा मुख चन्द्रमाके समान सुन्दर होता है। उनके मुखकी सुगन्धिसे दिशामुख सुगन्धित रहते है। चर्म, रोम, शिरा, नख, पुरीष (मल), रक्त, पित्त, मूत्र, मज्जा, मांस, शुक्र, कफ, हड्डी, कवलाहार, अस्थि, पूय (पीप) एवं रसमिश्रित केश ये सब दोष स्वभावसे ही उनके शरीरमे नही होते। ताप-ज्वर आदि रोगोंसे भी वे कभी पीड़ित नही होते। ५

परिमल-सुख स्वयं ही प्रकट होते है, उपकार करनेकी शक्ति भी उनमे स्पष्ट रूपसे रहती है।

देवयोनि-सम्पुट अत्यन्त अनुपम एवं मनोरम है तथा अपने रूपसे वह रतिवर—कामदेवको भी पराजित करता है। वे हर्षसे परिपूर्ण मन होकर निकलते हैं, (उन्हे देखकर) देवगण जय-जय शब्दका घोष करते हैं। मन्त्रिजन एवं परिजन (उन्हें देखकर) मनमें आनन्दित रहते है। वन्दीजन उन्हें 'जिओ' 'आनन्दित रहो' कहा करते हैं। १०

असुरकुमारोंका शरीर पचीस धनुष ऊँचा होता है। शेष भवनवासी और व्यन्तरोंका शरीर दस धनुष ऊँचा होता है। ज्योतिषी देवोंका शरीर सात धनुष ऊँचा तथा सौधर्म एवं ईशान कल्पके देवोंका शरीर सात हाथ ऊँचा मानो। १५

घत्ता—पुनः ऊपर-ऊपरके देवोंके शरीरका उत्सेध वृद्धिपूर्वक आधा-आधा तोड़ना चाहिए। सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न देवोका शरीर एक रत्नि प्रमाण ऊँचा कहा गया है। ॥२२५॥

३३

अणिमाइय गुणेहिँ पविराइय अणुदिणु काम कील अणुराइय।
णारि-पुरिस सोहग्ग समण्णिय दह पयार णिय परियणे मण्णिय।
पढम सग्गे संजाय पवर तिय जंति पंच दहमइ कप्पइ णिय।
ईसाणुब्भव अच्चुव कप्पए मण वित्तिए माणिय कंदप्पए।
5 भावणाई वहु विग्गह धारा दो कप्पामर तणु-पडियारा
उवरिम दो कप्पामर फासें फुडु पडिचारु करंति सहासें।
तह चउ कप्पुब्भव सुर रूवें चउ कप्पामर सद्द सरूवें।
पुणु चउ कप्प जाय डिब्भासण मण पडिचारहि तियस-रसायण।
आयहँ उवरि हुंति सुर सारा अहमिंदामर णिप्पडियारा।
10 जं सुहु अहमिंदामर रायहँ तं न कप्प-जायहँ सुच्छायहँ।
जं सुंदरु सुहु परम जिणिंदहँ तं सुहु णोपज्जइ अहमिंदहँ।
णिसुणि आउ अमरहँ अमराहिव एवहिँ संथुव-सयल-जिणाहिव।
अहिउ उवहि असुरहँ वर-कायहँ पल्लइँ तीणि णिरुत्तउ णायहँ।
सड्ढइँ दुण्णि सुवण्णकुमारहँ दुण्णि वियाणहिँ दीवकुमारहँ।
15 घत्ता—सेसहँ भावण विंतर सुरहँ एक्केक्कहिँ जाणिज्जहिँ।
अद्धहि उपल्लु मा भंति कुरु हिययंतरे माणिज्जहि ॥२२६॥

३४

जियइ वरिस-लक्खेँ सहु णिसियरु एक्कु पल्लु सहसेँ सहुँ दिणयरु।
एकु[1] पलिउ सयँ[2] वरिस-समेयउ जियइ सुक्कु संगामे अजेयउ।
भणइँ मोह तरु दारण धूणउँ जिणवर तारा रिक्खह ऊणउँ।
पढम सग्गे णिय-परियण सेविउ होंति पंच पल्लाउसु देविउ।
5 उवरि पल्ल-जुवलेण चडिज्जइ ताम जाम सहसारु मुणिज्जइ।
सत्त सत्त जइ पुणुवि चडावहिँ पंचावण्ण अंति ता पावहि।

---

३४. १ D. °क्कु। २. J V सयल।

३३
देवोंमें प्रवीचार (मैथुन) भावना

वे देव अणिमादिक गुणोंसे विशेष रूपसे सुशोभित रहते है। प्रतिदिन काम-क्रीड़ामे अनुरक्त रहते है। नारी (देवी) एवं पुरुष (देव) दोनों ही सौभाग्यसे समन्वित रहते हैं। वे दस प्रकारके परिजनो द्वारा मान्य रहते हैं। प्रथम स्वर्गमें जो श्रेष्ठ देवियाँ उत्पन्न होती है, वे अपने नियोगसे पन्द्रहवें स्वर्ग तक जाती है। ईशान स्वर्गमे उत्पन्न देवियाँ अपने मनमे ही कामवृत्तिका चिन्तन कर अच्युत कल्पमे उत्पन्न होती हैं। ५

भवनवासी आदि देव अनेक विग्रह—शरीरोंको धारण करके तथा दो कल्पवाले देव अपने शरीरसे ही प्रवीचार (मैथुन) करते है। उनके ऊपरके दो कल्पोंके देव स्पर्शसे हर्षपूर्वक तथा प्रकट होकर प्रवीचार करते है। तथा उसके ऊपरवाले चार कल्पोंमें उत्पन्न देव रूप देखकर ही प्रवीचार करते है। पुनः उनसे ऊपरके चार कल्पोमें देव शब्दस्वरूप सुनकर ही प्रसन्न हो जाते है। पुनः चार कल्पोंके देव त्रिदशरूपी रसायनका अपने मनमे विचार करके ही सन्तुष्ट हो जाते है। १० इसके आगे ऊपरके देव श्रेष्ठ अहमिन्द्र होते है। अतः वे देव प्रवीचार (मैथुन) रहित होते है।

जो सुख अहमिन्द्र देवराजोंको है, वह सुख सुन्दर कान्तिवाले कल्पजात देवोंको भी नही है। जो परम जिनेन्द्रोंको सुन्दर सुख मिलता है वह अहमिन्द्रोंको भी नही मिलता। जिन अमराधिप अमरोंने जिनाधिपकी संस्तुति की है, उनकी आयु सुनो, वह इस प्रकार है—

उत्तम कायवाले असुरकुमारोकी उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक एक सागर है। नागकुमारोंकी १५ उत्कृष्ट आयु तीन पल्यकी कही गयी है। सुपर्णकुमारोकी उत्कृष्ट आयु २½ पल्यकी कही गयी है तथा द्वीपकुमारोकी उत्कृष्ट आयु दो पल्यकी जानो।

घत्ता—शेष भवनवासी देवोंमे प्रत्येककी उत्कृष्ट आयु १½-१½ पल्य तथा व्यन्तरोंकी उत्कृष्ट आयु एक-एक पल्यकी जानो। इसमे भ्रान्ति मत करो तथा उसे हृदयमे ठीक मानना चाहिए॥२२६॥

३४
ज्योतिषी तथा कल्पदेवों और देवियोंको आयु, उनके अवधिज्ञान द्वारा जानकारीके क्षेत्र

निशिचर—चन्द्रमा एक लाख वर्ष तक जीते है। दिनकर एक पल्य अधिक एक सहस्र वर्ष तक जीते है। संग्राममे अजेय शुक्र सौ वर्ष अधिक एक पल्य तक जीवित रहते है। मोहरूपी वृक्षका दारण कर उसे ध्वस्त कर देनेवाले जिनवर कहते हैं कि अन्य ताराओं व नक्षत्रोकी आयु कुछ कम एक-एक पल्यकी होती है।

स्वर्गमे निज परिजनों द्वारा सेवित देवियाँ पाँच पल्यकी आयुवाली होती हैं। उसके ऊपर ५ दो-दो पल्यकी आयु चढ़ती जाती है। यह स्थिति सहस्रार स्वर्गतक जानना चाहिए। उसके आगे सात-सात पल्यकी आयु चढ़ाना चाहिए। अन्तिम सर्वार्थसिद्धि स्वर्गमे पंचावन पल्यकी आयु होती है। (अर्थात् प्रथम स्वर्गमे देवियोकी आयु पाँच पल्य, दूसरेमे सात पल्य, तीसरेमे नव पल्य, चौथेमे ग्यारह पल्य, पाँचवेमे तेरह पल्य, छठवेमे पन्द्रह पल्य, सातवेमे सतरह पल्य, आठवेंमे उन्नीस पल्य, नौवेंमें इक्कीस पल्य, दसवेमे तेईस पल्य, ग्यारहवेमे पचीस पल्य, बारहवेमे सत्ताईस पल्य, तेरहवेमे १० चौंतीस पल्य, चौदहवेमे एकतालीस पल्य, पन्द्रहवेमे अड़तालीस पल्य और सोलहवेमें पंचावन पल्य-की आयु जानना चाहिए। इस प्रकार अनुक्रमसे सोलह स्वर्गोको समस्त देवियोंकी उत्कृष्ट आयु जानना चाहिए।

अणुकमेण इउ सोलह सग्गहँ आउ भणिउँ सुर तियहँ समग्गहँ ।
वे-सत्त-दह-चउदह-सोलहँ अट्ठारह-कमेण मणि जो लह ।
वीस तहय वावीसोवरि सुणु एक्कु-एक्कु वड्ढारिज्जइ पुणु ।
10 ताम जाम तेत्तीस सरीसर अंतिम सुरहरे हुंति सुरेसर[3] ।
दो-दो-चउ-चउ दो-दो सग्गहँ संभूवामर सग्ग विलग्गहँ ।
अणुकमेण ओही परियाणहि छह णारय[4]-पुहविउ वक्खाणहिं ।
जिह सत्तमियहे तलु उवलक्खहिँ णव-गेवज्ज-सुहासि णिरिक्खहिँ ।
तिजय-णाडि तिह पेक्खहि अणुदिस पंचाणुत्तर उज्जोविय-दिस ।
15 णिय-विमाणि ते गच्छहिँ जावहिँ उप्परि देव णियच्छहिँ तावहिँ ।
पंच-पंच हय जोयण विंतर संख समण्णिय जोइग्गियामर ।
चंद-सूर-गुरु-तारंगारहँ जोयण कोडिउ गणियउँ असुरहँ ।
संखाहिउ मइँ सुक्कहो अक्खिउ अहिणाणा गुणु तुज्झु ण रक्खिउ ।

घत्ता—फुडु जोयणेक्कु णारय मुणहिँ रयणप्पहहो धरित्तिहे ।
20 अद्धद्ध-हाणि कोसहो हवइ सेस महिहि अपवित्तिहे ॥२२७॥

३५

सयलहँ जीवहँ कम्माहारो भव भावहँ णोकम्माहारो ।
दीसइ रुक्खह लेप्पाहारो मणुव तिरिक्खहँ कमलाहारो ।
पक्खि समूहहँ ओज्जाहारो चउविह देवहँ चित्ताहारो ।
कप्पह कप्पाईय सुराणं निरुवम रूव धराणं जाणं ।
5 जित्तिय सायर आउ पमाणं तित्तिएहिं पयणिय-हरिसाणं ।
परिगएहिँ वरिसेहिँ सहसाणं होइ भुत्ति मण वित्तिए ताणं ।
तित्तिएहिँ पक्खेहिँ सुराणं परिगएहिँ णिस्सासो ताणं ।
पल्लाउस भिन्न-मुहुत्तेणं णीससंति ताह पहुत्तेणं ।
ऊससंति केइवि पक्खेणं भणिउ जिणिंदें णिप्पक्खेणं ।
10 असुर असहिँ एक्केण गएणं चच्छर सहणेणं अहिएणं ।
सुरसं सुहुमं सुद्धं मिट्ठं सुरहि सिणिद्धं णिय मणे इट्ठं ।
आहारं चिंतिय चित्तेणं परिणावइ रवणे देहत्थेणं ।
संसारिय असुहर चउ भेया चउगइ भिण्णा भणिय अमेया ।

---

३. J. V. सुरसर । ४. D. °रा° ।

प्रथम युगलमें देवोंकी उत्कृष्ट आयु (कुछ अधिक) दो सागर, दूसरे युगलमें सात सागर, तीसरे युगलमें दस सागर, चौथे युगलमें चौदह सागर, पाँचवें युगलमे सोलह सागर, छठे युगलमें अठारह सागर, सातवें युगलमें बीस सागर, आठवें युगलमें बाईस सागर जानना चाहिए और सुनो, इसके ऊपर पुनः एक-एक सागर उस समय तक बढ़ाते जाना चाहिए, जबतक उसकी संख्या हे सुरेश्वर, अन्तिम सुरगृहमें तैंतीस सागर तक न हो जाये (अर्थात् प्रथम ग्रैवेयकमे तेईस सागर, दूसरे ग्रैवेयकमें चौबीस सागर, तीसरेमे पचीस सागर, चौथेमे छब्बीस सागर, पाँचवेमे सत्ताईस सागर, छठवेमें अट्ठाईस सागर, सातवेमें उनतीस सागर, आठवें ग्रैवेयकमें तीस सागर, नौवें ग्रैवेयक-में एकतीस सागर, नौ अनुदिशोंमें बत्तीस सागर और पाँच अनुत्तर विमानोंमें तैंतीस सागर)।

प्रथम दो स्वर्गवाले देव प्रथम नरक तक, अगले दो स्वर्ग वाले देव दूसरे नरक तक, फिर अगले चार स्वर्गवाले देव तीसरे नरक तक, फिर अगले चार स्वर्गवाले देव चौथे नरक तक, पुनः अगले चार स्वर्गवाले देव पाँचवें नरक तक और पुनः अगले चार स्वर्गवाले छठे नरक तक अनुक्रमसे अवधिज्ञान द्वारा नीचे-नीचेकी ओर जानते हैं। जिस प्रकार नौ ग्रैवेयक सुधाशीदेव सातवें नरकके तल तक अपने अवधिज्ञानसे निरीक्षण करते है, उसी प्रकार अनुदिशवासी देव तथा समस्त दिशाओंको उद्योतित करनेवाले पाँच अनुत्तरवासी देव अपने अवधिज्ञानसे जानते हैं। वे देव अपने-अपने विमानोंसे ऊपरकी ओर जहाँ तक जा सकते हैं वही तकके विषय अपने अवधिज्ञानसे जानते हैं। व्यन्तर देव पाँच-पाँच सौ योजन तक अपने अवधिज्ञानसे जानते है। ज्योतिषी देव संख्यात योजन तक जान सकते है। चन्द्र, सूर्य, गुरु, तारे एवं मंगल एक कोटि योजन तक जानते है। इसी प्रकार शुक्र देव संख्यातसे कुछ अधिक योजन दूर तकके विषयको जानते हैं। इस प्रकार हे शुक्र, मैने देवोंके अवधिज्ञानके गुणोंको कहा। तुझसे छिपाया नही है।

घत्ता—अपवित्र रत्नप्रभा नामक प्रथम नरकके नारकी अपने कुअवधिज्ञानसे एक योजन तक जानते हैं। दूसरे नरकवाले ३½ कोश, तीसरे नरकवाले तीन कोश, चौथे नरकवाले २½ कोश, पाँचवें नरकवाले दो कोश, छठे नरकवाले १½ कोश तथा सातवें नरकवाले एक कोश योजन, इस प्रकार क्रमशः आधा-आधा कोश कम-कम जानते हैं ॥२२७॥

३६

आहारकी अपेक्षा संसारी प्राणियोंके भेद

समस्त जीवोंके कर्माहार होता है। भव एवं भाववाले शरीरधारियोंके नोकर्माहार होता है। वृक्षोंका लेप्याहार देखा जाता है तथा मनुष्यों एवं तिर्यंचोंका कवलाहार होता है। पक्षी-समूहोंका ऊर्जा अथवा ओजका आहार होता है। चतुर्निकाय देवोंका चित्त (मानसिक) आहार होता है। अनुपम रूपधारी एवं ज्ञानी कल्पोपपन्न और कल्पातीत देवोका हर्ष प्रकट करनेवाला जितने सागरका आयुष्य है, उतने ही हजार वर्ष बीत जानेपर उन देवोंका मन-चिन्तित आहार होता है। उनकी आयुके उतने ही पक्ष बीत जानेपर उनकी एक ओरकी श्वास होती है। जिन-जिन देवोंकी एक पल्यकी आयु होती है वे समर्थ देव भिन्न मुहूर्तके बाद श्वास लेते है। कोई-कोई देव एक-एक पक्षके बाद श्वास लेते हैं, जिनेन्द्रने ऐसा निष्पक्ष भावसे कहा है।

असुरकुमार जातिके देव एक हजार वर्षसे कुछ अधिक बीत जानेपर आहार ग्रहण करते हैं। उनका वह आहार सुरस, सूक्ष्म, शुद्ध, मिष्ट, सुरभित, स्निग्ध एवं अपने मनके अनुकूल इष्ट होता है। मन-चिन्तित वह आहार देहमें स्थिर रूपसे क्षण-भरमें परिणमाता है। संसारी असुधर

इंदिय भेएँ पंच पयारा भणमि वप्प सइ-रमणि पियारा ।
15 छह पयार जाणहिँ काएणं दह विहपाण सुणहिँ जोएणं ।
तिप्पयार पयडिय वेएणं जिणधीरेण पडिंत्ति रएणं ।
सोलह भणिय कसाय जिणेणं अट्ठपयार मुणहिँ णाणेणं ।
संजमेण पुणु सत्त ति भेया दंसणेण दरिसिअ चउभेया ।
छव्विह लेसा परिणामेणं दो विह मुणि भव्वत्त-गुणेणं ।
20 छव्विह विवरिय सम्मत्तेणं सत्त तच्च दव्वह छह तेणं ।

घत्ता—जे जे आहारेँ आहरिया भणिउ जिणिंद भडारेँ ।
ते ते सुपरिय चउगइहे किं वहुणा वित्थारेँ ॥२२८॥

३६

जे विहुणिय-तम केवलि समुहय अवरवि जाणहि विग्गह-गइ गय ।
अरुह अजोइ विणट्ठ-वियप्पय सुद्ध-पवुद्ध-सिद्ध-परमप्पय ।
ते गिण्हहिं णाहारु णिरिक्खिय सेसाहारिय जीव समक्खिय ।
रयण-संख-विह मग्गण-ठाणइँ भणियइँ एवहिँ सुणु गुणु ठाणइँ ।
5 तित्तिय परिमाणाइँ पयत्तेँ पोलोमी-पिय णिच्चल-चित्तेँ ।
मिच्छा सासण मिस्स समासिउ अविरयदिट्ठि चउत्थउ एसिउ ।
देसविरउ पमत्तु छट्ठुत्तउ अप्पमत्तु सत्तम मुणि खुत्तउ ।
पुणु अउव्वु अणियट्टि भणिज्जइ सुहमराउ दहमउ जाणिज्जइ ।
उवसंतु जे पुणु खीण कसायउ पुणु सजोइजिण मइ विक्खायउ ।
10 पुणु अजोइ संजणियाणंदउ उपरिमु परम सोक्खलय कंदउ ।
चारि गइहिँ णारय अमियासण फुडु धरंति रइ भाव पयासण ।
तिरिय पंच माणुस णीसेसइँ वज्जरियइँ गुण ठाण विसेसइँ ।
कम्म महिय सरीर अप्पावण अणिहण करण विहाण पहावण ।
दंसण-णाण णिदीण महुत्तम हुंति जीव अइ-सामण्णुत्तम ।
15 ताहँ समास महा तियरण मइ ताए विहव कम्म धारण लइ ।
जिह सिहि सिह परिणामहो गच्छइ तेल्लु तिलोयाहीसु णियच्छइ ।
तिह कम्म वि पुग्गल-परिमाणहो जीवहँ जाइ णिरुत्तु अकामहो ।
जीवेँ संगहियउ कयभावहो परि गच्छइ णिरु चेयणभावहो ।
इंधणु सिहि भावह गच्छइ जिह कम्मिंधण भावहो कम्मुचि तिह ।

---

३५. १. J V. °ण° ।
३६ १. D. J. V. स° ।

(प्राणी) चार प्रकारके हैं। चतुर्गतिके भेदसे वे पृथक्-पृथक् कहे गये है। वे अनन्तानन्त है। इन्द्रियोंकी अपेक्षा वे पाँच प्रकारके हैं जो स्वयंमे रमण करनेवाले व प्यारे हैं।

कायकी अपेक्षासे संसारी प्राणी छह प्रकारके जानो तथा सुनो कि प्राणोंकी अपेक्षासे संसारी जीव दस प्रकारके होते हैं। वेदोंकी अपेक्षा संसारी जीव स्त्रीलिंग आदिके भेदसे तीन प्रकारके १५ होते हैं, जो कि अधीरतापूर्वक रतिमें पड़े रहते हैं।

जिनेन्द्रके द्वारा कथित सोलह प्रकारकी कषायोंकी अपेक्षा संसारी जीव सोलह प्रकारके तथा ज्ञानकी अपेक्षासे आठ प्रकारके जानो। संयमकी अपेक्षा संसारी जीव सात प्रकारके तथा दर्शनकी अपेक्षा चार प्रकारके जानो। लेश्याओंकी अपेक्षा संसारी जीव छह प्रकार तथा भव्यत्व-गुणकी अपेक्षा दो प्रकार मानो। सम्यक्त्वकी अपेक्षा छह प्रकार तथा सप्ततत्त्वोंकी अपेक्षा सात २० प्रकार और द्रव्योकी अपेक्षा छह प्रकारके जानो।

घत्ता—जिनेन्द्र भट्टारकने आहारसे जिस-जिस प्रकारके आहारक कहे हैं, वे-वे प्रकार संसारी जीवोंके जानो। वे समस्त संसारी जीव चार गतियोमे व्याप्त हैं। अधिक विस्तार करनेसे क्या प्रयोजन ? ॥२२८॥

३६

जीवोंके गुणस्थानोंका वर्णन

जो केवली, केवली-समुद्घातके द्वारा कर्मरूपी अन्धकारका नाश करते हैं तथा अन्य जो विग्रहगति (जन्म-समय मोड़ा लेनेवाली गति) को प्राप्त तथा परमात्म पदको प्राप्त, नष्ट विकल्पवाले अरहन्त, अयोगी जिन तथा शुद्ध, प्रबुद्ध एवं सिद्ध है, वे आहार ग्रहण करते नही देखे गये। शेष समस्त संसारी जीवोंको आहारक कहा गया है। इस प्रकार रत्नोंकी संख्या—(१४) विधिसे चौदह मार्गणास्थानोंका वर्णन किया गया। अब गुणस्थानोंका वर्णन सुनो—उनकी संख्या भी उतनी ही ५ अर्थात् १४ (चौदह) है। हे पौलोमीप्रिय इन्द्र, निश्चल चित्तसे प्रयत्न पूर्वक यह सुनो।

पहला मिथ्यात्व गुणस्थान, दूसरा सासादन गुणस्थान तथा तीसरा मिश्र (सम्यग्मिथ्यात्व) गुणस्थान कहा गया है। चौथा अविरत सम्यग्दृष्टि, पाँचवाँ देशविरत, छठा प्रमत्तविरत, सातवाँ अप्रमत्तविरत गुणस्थान निश्चयपूर्वक जानो। पुन: आठवाँ अपूर्वकरण एवं नौवाँ अनिवृत्तिकरण गुणस्थान कहा गया है। दसवाँ सूक्ष्मराग (सूक्ष्मसाम्पराय) जानना चाहिए। ग्यारहवाँ उपशान्त १० मोह तथा बारहवाँ क्षीणकषाय और उसके बाद तेरहवाँ आगममें विख्यात सयोगीजिन तथा चौदहवाँ आनन्दजनक परमसुखके आलयस्वरूप अयोगी जिन होते हैं। नारकी एवं रतिभावको प्रकाशित करनेवाले देव चार गुणस्थानोके धारी होते है। तिर्यंचोंके पाँच गुणस्थान होते हैं। किन्तु मनुष्य समस्त गुणस्थानोंको प्राप्त करते है। इस प्रकार गुणस्थानोंकी विशेषता कही गयी।

कर्मसे मथित होकर ही यह जीव अपावन शरीर धारण करता है। कर्म-फलसे ही वह १५ अहिंसा-विधान द्वारा प्रभावशाली बनता है। कर्मफल द्वारा ही वह दर्शन-ज्ञानसे युक्त होकर महान् बनता है अथवा अतिमहान् या सामान्य-उत्तम बनता है। यह जीव मन-वचन-काय रूप त्रिकरण वृद्धिके कारण कर्म-वैभवको धारण करता है। जिस प्रकार अग्निके साथ अग्नि-ज्वाला परिणमनको प्राप्त होती है, त्रिलोक त्रिलोकाधिप द्वारा जाना जाता है, उसी प्रकार कर्म भी पुद्गल परिणमन-को प्राप्त होते है। जीवका स्वभाव निरुक्त अकाम रूप रागादि रहित है। जीवके द्वारा संग्रहीत २० किये गये भाव चेतन भावों द्वारा निश्चय ही परिणमनको प्राप्त होते है, जिस प्रकार ईन्धन अग्नि भावसे परिणमनको प्राप्त होता है वैसे ही कर्मरूपी ईन्धन कर्मभावसे परिणम जाता है।

20 घत्ता—असुहेण वि असुहु सुहेण सुहु सिद्धु ण किंपि वि वण्णइँ ।
गय भव जिय एक्कुणवे वि वहु वीयराउ जिणु मण्णइँ ॥२२९॥

३७

पढम तीणि गुण ठाण मुएविणु अविरयगुणे तुरियम्मि चडेविणु ।
सत्त पयडि तहिं णिण्णासेविणु कम छट्ठउ मउ गुणु मेल्लेविणु ।
अणुकमेण सत्तमु पावेविणु तत्थवि तिण्णि पयडि [1]तोडेविणु ।
पुणु अउव्वु अट्ठमु वज्जेविणु णवमउँ णिरु अणिविट्टि लहेविणु ।
5 तहिँ छत्तीस खवेवि णिरारिउ सुहमराएँ पुणु चडिउ अवारिउ ।
तेत्थु वि एक्क पयडि णिहणेविणु पुणु उवसंतए झत्ति चडेविणु ।
खीणकसाय-गुणम्मि हवेविणु तत्थवि सोलह पयडि खवेविणु ।
पुणु सजोइ गुणठाणे चडेविणु णिम्मलु केवलु उप्पाएविणु ।
लोयालोउ असेसु णिएविणु पुणु अजोइ ठाणउँ पावेविणु ।
10 तहिँ दुचरमि वाहत्तरि णिहणइँ तेरह चरमे जिणाहिउ पभणइँ ।
इय अडयाल सउ वि विहुणेप्पिणु पयडिहु मणुव सरीरु मुएप्पिणु ।
परमप्पय सहाउ पावेप्पिणु तिहुवण भवेण-सिहरु लंघेविणु ।
[2]जे णिव्वाण ठाणु संपत्ता भव संभूव दुक्ख परिचत्ता ।
घत्ता—ते जीव दव्व वण णाणमय सोयरोय सुविओइय ।
15 अट्ठम महि वट्टिणिविट्ठु णिरु जिण [3]णाणें अवलोइय ॥२३०॥

३८

साइ अणाइ दुविह ते भासिय तहय अणंताणंत गुणासिय ।
अंतिम तणु परिमा-किं चूणा सम्मत्ताइय गुण अहिणूणा ।
पुणु ण मरेवि-दुह-मयर-रउद्दए परिवडंति संसार-समुद्दए ।
कोह-लोह-मय-मोह-विवज्जिय मयरद्धय वाणालिण णिज्जिय ।
5 वाल वुड्ढ-तारुण्ण-सहावहिँ णउ कयावि छिप्पहिँ संतावहिँ ।
णिक्कसाय-णिविसाय णिक्कम्मय णिव्भय-णिरह-णिराउह-णिम्मय ।
ण भड ण कायर ण जड [2]णं कुच्छर ण पहु ण सेवय ण विहियमच्छर ।
सुहुम ण थूल ण चवल ण थावर ण दया भाव रहिय ण दयावर ।
णारिस न कुडिल णिग्गय डंवर णिरुवमे [3] णिरहंकार णिरंवर ।

---

३७. १. D. तोविणु । २. D. जे । ३. D. णाम्मेँ ।
३८. १. °म्मँ° । २. J. V. जड कुछर । ३. D. °मा ।

घत्ता—अशुभ भावोसे अशुभ होता है और शुभभावोसे शुभ। सिद्धपद किसी भी प्रकार वर्णित नही किया जा सकता। गतभव—मुक्त जीव एक (अर्थात् कर्ममुक्त) होता है, उसे वीतराग जिन मानकर अनेक बार नमस्कार करो ॥२२९॥

३७

गुणस्थानारोहण क्रम

प्रथम तीन गुणस्थानोंको छोड़कर चौथे अविरति-गुणस्थानपर चढ़कर वहाँ वह जीव सात प्रकृतियों (चार अनन्तानुबन्धी एवं तीन मिथ्यात्वादि) का नाश करता है। फिर पाँचवाँ एवं छठवाँ गुणस्थान छोड़कर अनुक्रमसे सातवे गुणस्थानको प्राप्त करता है। वहाँ भी वह तीन प्रकृतियोंको तोड़कर पुनः आठवाँ अपूर्वकरण गुणस्थान प्राप्त कर नौवाँ अनिवृत्तिकरण गुणस्थान निश्चय ही प्राप्त कर वहाँ छत्तीस प्रकृतियोंका नाश करता है। पुनः वह बिना रुके सूक्ष्मराग ५ नामक दसवें गुणस्थानमे पहुँचता है। वहाँ वह एक प्रकृतिका नाश कर तत्काल ही अशान्त मोह नामक ग्यारहवें गुणस्थानमें चढ़कर बारहवें क्षीणमोहमें पहुँचता है। वहाँ वह सोलह कर्म-प्रकृतियोंका क्षय करता है तव वह तेरहवें सयोगी जिन गुणस्थानमें आरूढ़ होता है और निर्मल केवलज्ञान उत्पन्न कर समस्त लोकालोकको देखकर पुनः चौदहवाँ अयोगिजिन नामक गुणस्थानको प्राप्त करता है। १०

वहाँ द्विचरम समयमें वह बहत्तर प्रकृतियोंको और चरम समयमे तेरह प्रकृतियोंको नाश करता है ऐसा जिनाधिपने कहा है। इस प्रकार इन एक सौ अड़तालीस कर्म प्रकृतियोंको जीतकर तथा मनुष्य शरीरका त्याग कर वह परमात्म स्वभावको पाता है और इन तीनों लोकोंके शिखरको लाँघकर निर्वाण स्थानको प्राप्त करता है। वह जीव संसारमे होनेवाले दुखसे छूट जाता है।

घत्ता—वे जीव द्रव्य ज्ञान घनमय होते है, शोक एवं रोगसे रहित होते हैं, तथा अष्टमभूमि- १५ मे स्थित रहते हैं, ऐसा जिनेन्द्रने अपने ज्ञानसे देखा है ॥२३०॥

३८

सिद्ध जीवोंका वर्णन

सिद्ध जीव सादि और अनादिके भेदसे दो प्रकारके कहे गये हैं (जो वर्तमान सिद्ध है वे सादि और जो परम्परासे, चिरकालसे चले आये हैं वे अनादि सिद्ध हैं) तथा वे अनन्तानन्त गुणोंके आश्रित होते हैं, अन्तिम शरीरके प्रमाणसे वे किंचिद् ऊन रहते है तथा सम्यक्त्वादि अष्टगुणोंसे अन्यून—पूर्ण रहते हैं। पुनः मरकर वे दुखरूपी मगरमच्छोंसे रौद्र संसार रूपी समुद्रमे नहीं गिरते। वे क्रोध, लोभ, मद और मोहरूपी अन्तरंग शत्रुओंसे रहित तथा कामकी ५ वाणाग्निको जीत लेनेवाले होते है। बचपन, बुढ़ापा, तारुण्यता तथा स्वाभाविक सन्तापसे वे कभी भी स्पर्शित नही होते। वे कषाय रहित, विपाद रहित, निष्कर्म, निर्भय, निरीह, निरायुध तथा निर्मद रहते है। वे न तो भट होते हैं और न कायर ही। वे न जड़ होते है न कुक्षर होते है, न प्रभु होते हैं, न सेवक होते हैं और न मत्सर-द्वेष करनेवाले होते है। वे न सूक्ष्म है, न स्थूल, न चंचल और न स्थावर ही। वे न तो दयाभाव रहित है और न दयापर ही। वे न ऋजु होते हैं १० और न कुटिल ही। वे आडम्बर रहित, निरुपम, निरहंकार एवं निरम्बर—वस्त्र रहित होते है।

वे न गुरु होते हैं और न लघु, न विरूप और न सुन्दर ही तथा न नर होते हैं और न नारी। न पाण्डव और न द्रोही ही। क्षुधा एवं तृष्णाके दुखोंसे वे नहीं छुए जाते। दुस्सह मल-पटलोंसे वे लीपे नही जाते। लोचन रहित होनेपर भी वे सब कुछ देखते है, मन रहित होनेपर भी वे सब कुछ जानते हैं, पूछते नही। समस्त् लोकालोकमे वे सुन्दर है। हे पुरन्दर, इससे और अधिक कहनेसे क्या लाभ ? १५

घत्ता—सिद्धोंको जो शाश्वत सुख प्राप्त है, उसे कौन कहाँ तक कहनेमे समर्थ हो सकता है? उस त्रिलोकपति सिद्धको इस लोकालोकमे अरहन्तको छोड़कर और कौन देख सकता है? ॥२३१॥

३९

अजीव पुद्‌गल बन्ध संवर निर्जरा और मोक्ष तत्त्वोंपर प्रवचन

इस प्रकार दो प्रकारके (संसारी एवं मुक्त) जीवोंका वर्णन तुम्हारे सम्मुख विशेष रूपसे किया गया है। अब हे सुरपति सुनो, मै अजीव द्रव्यका कथन करता हूँ और तुम्हारी भ्रान्तिका निवारण करता हूँ। धर्म, अधर्म एवं गगनके साथ कालको गतकाल—जिन भगवान्‌ने रूप रहित—अमूर्तिक कहा है। जो गति लक्षण स्वरूप है उसे धर्म द्रव्य जानो, स्थिति लक्षणसे युक्त अधर्म द्रव्य कहा गया है। अवगाहना लक्षणवालेको आकाश मानो तथा परिवर्तना लक्षणवालेको काल द्रव्य ५ समझो। वीर जिनने कालके तीन भेद कहे है—अतीत, वर्तमान एवं आगामी। उस काल द्रव्यका स्थान तीन लोक प्रमाण है। धर्म एवं अधर्म द्रव्य भी तीन लोक प्रमाण तथा इन दोनोंका मान लोकाकाश समझो। आकाश अनन्त है। अब शून्य आकाशको सुनो।

उस शून्यको जिनेन्द्रने अलोक बताया है। उस भुवन कमलको सूर्यने छिपाया नही है।

पुद्‌गल रूपादि ५ गुणोंसे युक्त रहता है, ऐसा ज्ञानियोने विचार किया है। वह पुद्‌गल १० स्कन्ध, देश, प्रदेश एवं अविभागी रूपसे जिनेशने ४ प्रकारका कहा है। सम्पूर्ण प्रदेशोका नाम स्कन्ध है, उससे आधेको देश कहते है। आधेके आधेको प्रदेश कहते है। तथा अखण्ड १ प्रदेशको अविभागी परमाणु कहते है। पुनरपि उस पुरन्दरके लिए जिनेन्द्रने सूचित किया कि वह पुद्‌गल द्रव्य मेरे द्वारा ६ प्रकारका ज्ञात है। पहला स्थूल-स्थूल कहा गया है, दूसरा स्थूल, अन्य तीसरा स्थूल-सूक्ष्म, चौथा सूक्ष्म-स्थूल, पाँचवाँ सूक्ष्म एवं छठवाँ सूक्ष्म-सूक्ष्म। इनमे-से पर्वत, पृथिवी आदि १५ स्थूल-स्थूल स्कन्ध है, जलको जिनेन्द्रने स्थूल-स्कन्ध कहा है। छाया आदिको स्थूल-सूक्ष्म स्कन्ध कहा है। चार इन्द्रियोंके जो विषय है, उन्हें सूक्ष्म-स्थूल स्कन्ध कहते है। कर्म नामकी वर्गणाओं-को सूक्ष्म कहते है तथा परमाणुको सूक्ष्म-सूक्ष्म कहा गया है।

पूरण, गलन आदि गुणोके कारण पुद्‌गलको अनेक भेदवाला कहा गया है।

शुभ-अशुभके भेदसे आश्रव दो प्रकारका है ऐसा मदनसे अजेय जिनेन्द्रने कहा है। २०

बन्ध ४ प्रकारका है (—प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभाग बन्ध, एवं प्रदेश बन्ध)

जिस प्रकार संवर दो प्रकारकी है (—द्रव्य संवर, और भाव सवर) उसी प्रकार निर्जरा

४०

एयारह गणहर तहो जायइं इंदभूइ धुरि धरि तणु कायइं ।
पुव्वहरहँ तिसयइं हय हरिसइं सिक्खइं णवसयाइं णव सहसइं ।
अवहिणाणि तेरहसय मुणिवर तुरिय णाणि पंचसय दियंवर ।
केवलणाणि तच्चसंखासय विक्किरिया रिद्धिहरहँ णवसय ।
5 चारि सयाइं वाइ दह कालइं सयलइं चउदह सहसइं मिलियइं ।
चंदण पमुहऽज्जिय गयहासइं परिगणियइं छत्तीस सहासइं ।
एक्कु लक्खु सावय परि भणियउं लक्खत्तउ सावयहँ वि गणियउं ।
संखा रहिय देव देवंगण संखा सहिय तिरिय सुंदर मण ।
एयहँ सहिउ जिणाहिउ विहरिवि तीस वरिस भवियण तमु पहरेवि ।
10 पावापुर वर वणे संपत्तउ सत्त भेय मुणि गण संजुत्तउ ।
तहिं तणु सग्गेविहाणें ठाइवि सेसाइं वि कम्मइं विग्घाइवि ।
कत्तिय मासि चउत्थइ जामइं कसण चउद्दसि रयणि विरामइं ।
गउ णिव्वाण ठाणे परमेसरु तिल्लोकाहिउ वीरु जिणेसरु ।
तहिं अवसरे पुणु आणंदिय मण मुणि आसण कंपेणामर गण ।
15 आइवि पुज्जेविणु गुरु भत्तिए थुइ विरएविणु णियमइ सत्तिए ।
अग्गि कुमार सिरग्गिहिं जालेवि जिण सरीरु कुसुमहिं उमालिवि ।

घत्ता—गउ सुर समूहु णिय-णिय णिलए जंपमागु जिणवर तिह ।
कुरु सोमिचंद जस सिरिहरण इह वलेवि सामिय जिह ॥२३३॥

४१

इय वोदाउव णयरे[1] मणोहर विप्फुरंत णाणाविह सुरवरे ।
जायस वंस सरोय दिणेसहो अणुदिणु चित्त णिहित्त जिणेसहो ।
णरवर सोमइँ तणु संभूवहो साहु णेमिचंदहो गुण भूव हो ।
वयणें विरइउ सिरिहर णामें तियरण रक्खिय असुहर गामें ।
5 वील्हा गब्भ समुब्भव देहें[2] सव्वयणहि सहुं पयडिय णेहें ।
एउ चिरज्जिय पाव खयंकरु वड्ढमाणजिणचरिउ सुहंकरु ।
णिवइ विक्कमाइच्चहो कालए णिच्चुच्छव वर तूर खालइं ।
एयारह सएहिँ परिविगयहिं संवच्छर सएणवहिं समेयहि ।
जेट्ठ पढम पक्खइँ पंचमि दिणे सूरुवारे गयणंगणि ठिइ इणे ।

---

४१. १. D. वणहरे । २. D. J. V. दो° ।

४०

भगवान् महावीरका कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीकी रात्रिके अन्तिम पहरमें पावापुरीमें परिनिर्वाण

उन वीर प्रभुके (संघमें) ग्यारह सुप्रसिद्ध गणधर हुए। उन सबमे इन्द्रभूति गौतम सर्वं प्रथम धुरन्धर थे। हर्ष राग रहित—गम्भीर तीन सौ पूर्वधर थे। नौ हजार नौ सौ शिक्षक (—चारित्रकी शिक्षा देनेवाले) थे, तेरह सौ अवधिज्ञानी मुनिवर तथा पाँच सौ मनःपर्ययज्ञानी दिगम्बर मुनि थे। केवलज्ञानी मुनि तत्त्वशत संख्या अर्थात् सात सौ थे। विक्रिया ऋद्धिधारी मुनि नौ सौ तथा वादि गजेन्द्र (वाद ऋद्धिके धारक) मुनियोंकी संख्या चार सौ थी। इस प्रकार कुल चौदह सहस्र (एवं ग्यारह) मुनि वीर प्रभुके संघमें थे। ५

हर्ष राग रहित चन्दना प्रमुख छत्तीस सहस्र आर्यिकाओकी संख्या थी। एक लाख श्रावक कहे गये है तथा तीन लाख श्राविकाओंकी गणना थी। देव-देवांगनाएँ असंख्यात थी। सुन्दर मनवाले (परस्पर विरोध रहित गाय, सिंह आदि) तिर्यंच संख्यात थे। इन सभीके साथ जिनाधिपने बिहार किया तथा ३० वर्षों तक अपने उपदेशोसे भव्यजनोंके अज्ञानरूपी अन्धकारको १० दूर करते हुए वे वीरप्रभु अपने सात प्रकारके संघ सहित पावापुरीके श्रेष्ठ उद्यान मे पहुँचे।

पावापुरीके उस उद्यानमे कायोत्सर्ग विधानसे ठहरकर शेष अघातिया कर्मोको घातकर कार्तिक मासके कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीकी रात्रिके चौथे पहरके अन्तमे वे त्रिलोकाधिप परमेश्वर वीर-जिनेश्वर निर्वाण स्थलको पहुँचे।

उस अवसरपर आनन्दित मनवाले देवगण अपने आसनके काँपनेसे वीर प्रभुका निर्वाण १५ जानकर वहाँ आये। उन्होंने गुरुभक्ति पूर्वक पूजा की, मति-शक्ति पूर्वक स्तुति की। पुनः उन्होने उन जिनेन्द्रके पार्थिव शरीरको पुष्पोंसे सुसज्जित किया और अग्निकुमार जातिके देवोने अपने सिरके अग्रभागमे स्थित अग्निसे उनका दाह-संस्कार किया।

घत्ता—सभी देवगण अपने-अपने आवासोंको यह कहते हुए लौट गये कि जिस प्रकार द्वितीयाके चन्द्रमाके समान वर्धमान यशवाले तथा श्री-मोक्ष लक्ष्मीके गृहस्वरूप महावीर स्वामी- २० को निर्वाण प्राप्त हुआ है, उसी प्रकार हम लोगों (एक पक्षमें देवगणों तथा दूसरे पक्षमें आश्रय-दाता नेमिचन्द्र एवं कवि श्रीधर) को भी उसकी प्राप्ति हो, जिससे इस संसारमे लौटकर न आना पड़े ॥२३३॥

४१

कवि और आश्रयदाताका परिचय एवं भरत-वाक्य

10 होउ संति संघहो चउ-भेय हो वड्ढउ वुद्धि सुयण संघायहो ।
रामचंदु णिय कुलहर दीवउ अगणिय वरिस सहासइँ जीवउ ।
सिरिचंदुव चंदुव परिवड्ढउ सम्मत्तामल सिरि आयड्ढउ ।
विमलचंदु चंदु व जणवल्लहु होउ असुक्कउ लच्छिए दुल्लहु ।
एयहिँ णिय पुत्तहिँ परियँरियउ[३] जिणवर धम्माणंदेँ भरियउ ।
15 णेमिचंदु महियले चिरु णंदउ जिण पायारविंद अहिवंदउ ।
एयहो गंथहो संख मुणिज्जहो वेसहास सय पंच भणिज्जहो ।

घत्ता—इय चरिउ वीरणाहहो तणउँ साहु णेमिचंदहो मलु ।
अवहरउ देउ णिव्वाणसिरि वुह सिरिहरहो वि णिम्मलु ॥२३४॥

इय सिरि-वड्ढमाण-तित्थयर-देव-चरिए पवर-गुण-रयण-णियर-भरिए विवुह-सिरि-सुकइ-सिरिहर विरइए साहु सिरि-णेमिचंद अणुमण्णिए वीरणाह णिव्वाण गमण-वण्णणो नाम दसमो परिच्छेद्धो समत्तो ॥ संधि १० ॥

३. D. J. V. परियारियउ ।

यह वर्धमान काव्य चतुर्विध संघके लिए शान्ति प्रदान करनेवाला हो तथा सुजन-समूहकी बुद्धि वर्धन करनेवाला हो। १०

अपने कुलरूपी गृहके लिए दीपकके समान श्री रामचन्द्र अगणित सहस्र वर्षों तक जीवित रहें। निर्दोष सम्यक्त्वरूपी लक्ष्मीसे आच्छन्न तथा चन्द्रमाके समान सुन्दर श्रीचन्द्र भी परिवर्धित होते रहें, विमलचन्द्र भी चन्द्रमाके समान ही जनवल्लभ तथा दुर्लभ लक्ष्मीसे युक्त रहें। इन अपने पुत्रोंसे घिरे हुए तथा जिनवरधर्मके आनन्दसे भरे हुए श्री नेमिचन्द्र पृथिवी मण्डलपर चिरकाल तक आनन्दित रहें तथा जिन-चरणारविन्दोंकी वन्दना करते रहें। १५

इस ग्रन्थकी संख्या दो हजार, पाँच सौ (अर्थात् २५०० गाथा प्रमाण) जानो।

घत्ता—श्री वीरनाथका यह चरित साधु श्री नेमिचन्द्रके पापमलका अपहरण करे तथा बुध श्रीधरके लिए निर्मल निर्वाण-श्री प्रदान करे ॥२३४॥

दसवीं सन्धिकी समाप्ति

इस प्रकार प्रवर गुण-रत्न-समूहसे भरे हुए विबुध श्री सुकवि श्रीधर द्वारा विरचित साधु श्री नेमिचन्द्र द्वारा अनुमोदित श्री वर्धमान तीर्थंकर देव चरितमें श्री वीरनाथके 'निर्वाण-गम [न'] का वर्णन करनेवाला दसवाँ परिच्छेद समाप्त हुआ ॥ सन्धि १० ॥

परिशिष्ट–१ (क)

पासणाहचरिउ (की ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण) प्रशस्ति

कइवर सिरिहर गुंफिय पासणाहचरिउ

[रचनाकाल—वि. सं. ११८९ मार्गशीर्ष कृष्णा ८ रविवार]
रचनास्थल—दिल्ली

१।१

पूरिय भुअणासहो पाव-पणासहो णिरुवम-गुण-मणि-गण-भरिउ ।
तोडिय-भव-पासहो पणवेवि पासहो पुणु पयडमि तासु जि चरिउ ॥

जय रिसह परीसह सहणसील — जय अजिय परज्जिय-पर-दुसील ।
जय संभव भव-भंजण-समत्थ — जय संवर-णिव-णंदण समत्थ ।
जय सुमइ समज्जिय सुमइ पोम — जय पउमप्पह पह पहय पोम । 5
जय जय सुपास पसु पास णास — जय चंदप्पह पहणिय सणास ।
जय सुविहि सुविहि पयडण पवीण — जय सीयल परमय सप्पवीण ।
जय सेय सेय लच्छी णिवास — जय वासुपुज्ज परिहरिय वास ।
जय विमल विमल केवल-पयास — जय जय अणंत पूरिय पयास ।
जय धम्म धम्म मग्गाणुवट्टि — जय संति पाव महि मइय वट्टि । 10
जय कुंथु परिक्खिय कुंथु सत्त — जय अरि अरिहंत महंत-सत्त ।
जय मल्लि मल्लि पुज्जिय पहाण — जय मुणिसुव्वय सुव्वय णिहाण ।
जय णमि णमियामर खयरविंद — जय णेमि णयण-णिहयारविंद ।
जय पास जसाहय हीर हास — जय जयहि वीर परिहरिय हास ।

घत्ता—इय णाण-दिवायर गुण-रयणायर वित्थरंतु मह मइ पवर । 15
जिण कव्वु कुणंतहो दुरिउ हणंतहो सर कुरंग-मारण सवर ॥—पास० १।१

१।२

विरएवि चंदप्पहचरिउ चारु — चिर चरियकम्म दुक्खावहारु ।
विहरंतें कोउहलवसेण — परिहच्छिय वाएसरि रसेण ।
सिरि **अयरवालकुल संभवेण** — जणणी वील्हा गब्भु[ब्भ]वेण ।
अणवरय विणय **पणयारुहेण** — कइणा बुह 'गोल्ह' तणुरुहेण ।

5 पयडिय तिहुअणवइ गुणभरेण मण्णिय सुहि सुअणें सिरिहरेण ।
जउणासरि सुरणरहियहार णं वार विलासिणि-पउरहार ।
डिंडीर पिंड उप्परिय णिल्ल कीलिर-रहंग थो०वड थणिल्ल ।
सेवाल-जाल रोमावलिल्ल वुहयण मण परिरंजण छइल्ल ।
भमरावलि वेणी वलय लच्छि पफुल्ल-पोम-दल-दीहरच्छि ।
10 पवणाहय सलिलावत्तणाहिं विणिहय जणवय तणु ताव वाहि ।
वण मयगल मय जल घुसिण लित्त दर फुडिय सिप्पिउड दसण दित्त ।
वियसंत सरोरुह पवर वत्त रयणायर पवर पियाणुरत्त ।
विउलामल पुलिण णियंव जाम उत्तिण्णी णयणहिं दिट्ठु ताम ।
हरियाणए देसे असंख गामे गामियिण जणिय अणवरय कामे ।
15 घत्ता—परचक्क विहट्टणु सिरिसंघट्टणु जो सुरवइणा परिगणिउं ।
रिउ रुहिरावट्टणु पविउलु पट्टणु ढिल्ली णामेण जि भणिउं ॥२॥

१।३

जहिँ गयण मंडलालग्गु सालु रण-मंडव परिमंडिउ विसालु ।
गोउर-सिरि कलसा-हय-पयंगु जलपूरिय-परिहा-लिंगियंगु ।
जहिँ जण-मण-णयणाणंदि राइँ मणियर-गण-मंडिय-मंदिराइँ ।
जहिँ चउदिसु सोहहिँ घणवणाइँ णायर-णर-खयर सुहावणाइँ ।
5 जहिँ समय करडि घड-घडहडंति पडिसद्दें दिसि-विदिसि विप्फुडंति
जहि पवण-गमण धाविर तुरंग णं वारि-रासि भंगुर-तरंग ।
पविउलु अणंगसरु जहिँ विहाइ रयणायरु सइँ अवयरिउ णाइँ ।
जहिँ तिय-पय-णेउर रउ सुणेवि हरिसेँ सिहि णच्चइ तणु धुणेवि ।
जहि मणहरु रेहइ हट्ट-मग्गु णीसेस-वत्थु-संचिय समग्गु ।
10 कातंतं पिव पंजी समिद्धु णव कामिणि जो०वणमिव सणिद्धु ।
सुर रमणिग्रणु व वरणेत्तवंतु पेक्खणयर मिव वहु वेसवंतु ।
वायरणु व साहिय वर-सुवण्णु णाडय पेक्खणयं पिव सपण्णु ।
चक्कवइ व वर पूअप्फलिल्लु सच्चुण्णु णाइँ सद्दंसणिल्लु ।
दप्पुब्भड भड-तोणु व कणिल्लु सविणय सीसुव वहु गोरसिल्लु ।
15 पारावारु व वित्थरिय-संखु तिहुअणवइ गुण-णियरु व असंखु ।
घत्ता—णयणमिव सतारउ, सरु व सहारउ पउर माणु कामिणियणु व ।
संगरु व सणायउ ण हुव सरायउ णिहय कंसु णारायणु व ॥३॥

१।४

जहिँ असिवर तोडिय रिउकवालु णरणाहु पसिद्धु अणंगवालु ।
णिरु दल वट्टिय हम्मीर-वीरु वंदियण-विंद पविइण्ण चीरु ।
दुज्जण हिययावणि दलण सीरु दुण्णय णीरयणिरसण समीरु ॥

वलभर कंपाविय णाय राउ माणिणियण-मण संजणिय राउ।
तहिँ कुल-गयणंगणे सिय पयंगु समत्त-विहूसण-भूसियंगु। 5
गुरु-भत्ति णविय तेल्लोकणाहु दिट्ठउ अल्हणु णामेण साहु।
तेणवि णिज्जिय चंदप्पहासु णिसुणेवि चरिउ चंदप्पहासु।
जंपिउ सिरिहरु ते धण्णवंत कुलवुद्धि-विहवमाण सिरिवंत।
अणवरउ भमइ जगे जाँह कित्ति धवलंती गिरि सायर धरित्ति।
सा पुणु हवेइ सुकइत्तणेण चाएण सुएण सुकित्तणेण। 10

घत्ता—जा अविरल धारहि जणमणहारहिँ, दिज्जइ धणु वंदीयणहँ।
ता जीव णिरंतरे, भुअणब्भंतरि, भमइ कित्ति सुंदर जणहँ ॥४॥

१।५

पुत्तेण वि लच्छि समिद्धएण णय-वियण-सुसील-सिणिद्धएण।
कित्तणु विहाइ धरणियलि जाम सिसिरयर सरिसु जसु ठाइ ताम।
सुकइत्तें पुणु जा सलिल-रासि ससि-सूरु-मेरु णक्खत्त-रासि।
सुकइत्तु वि पसरइ भवियणाहँ संसग्गें रंजिय जणमणाहँ।
इह जेजा णामें साहु आसि अइणिम्मलयर गुण-रयण-रासि। 5
सिरि अयरवाल-कुल-कमल-मित्तु सुह-धम्म-कम्म-पविइण्ण वित्तु।
मेमडिय णाम तहो जाय भज्ज सीलाहरणालंकिय सलज्ज।
बंधव-जण-मण-संजणिय सोक्ख हंसीव उहय सुविसुद्ध पक्ख।
तहो पढम पुत्तु जण-णयण-रामु हुउ आरक्खिय तस जीव गामु।
कामिणि-माणस-विद्दवण कामु राहउ सव्वत्थ पसिद्ध णामु। 10
पुणु वीयउ विवुहाणंद हेउ गुरु-भत्तिए संथुअ अरुहदेउ।
विणयाहरणालंकिय सरीरु सोढलु णामेण सुबुद्धि धीरु।

घत्ता—पुणु तिज्जउ णंदणु, णयणाणंदणु, जणे पट्टलु णामें भणिउ।
जिण मइ णीसंकिउ पुण्णालंकिउ, जसु वुहेहिँ गुण-गणु-गणिउ ॥५॥

१।६

जो सुंदरु वीया इंदु जेम जणवल्लहु दुल्लहु लोए तेम।
जो कुल-कमलायर रायहंसु विहुणिय चिर विरइय पाव-पंसु।
तित्थयरु पइट्ठावियउ जेण पढमउ को भणियइँ सरिसु तेण।
जो देइ दाणु वंदीयणाहँ विरएवि माणु सहरिस मणाहँ।
परदोस-पयासण विहि विउत्तु जो तिरय-णरयणाहरणजुत्तु। 5
जो दिंतु चउव्विहु दाणु भाइ अहिणउ वंधू अवयरिउ णाइँ।
जसु तणिय कित्ति गय दस-दिसासु जो दिंतु ण जाणइ सउ सहासु।
जसु गुण-कित्तणु कइयण कुणंति अणवरउ वंदियण णिरु थुणंति।

जो गुण-दोसहँ जाणइँ वियारु जो परणारी-रइ णिव्वियारु।
10 जो रूव विणिज्जय मार वीरु पडिवण्ण वयण धुर धरण धीरु।

घत्ता—सो महु उवरोहेँ णिहय विरोहेँ, णट्टलु साहु गुणोह-णिहि।
दीसइ जाएप्पिणु पणउ करेप्पिणु उप्पाइय भव्वयण दिहि ॥६॥

१।७

तं सुणिवि पयंपिउ सिरिहरेण जिण-कव्व करण विहियायरेण।
सच्चउ जं जंपिउ पुरउ मज्झु पइ सब्भावेँ वुह मइ असज्झु।
पर संति एत्थु विवुहहँ विवक्ख वहु कवड-कूड-पोसिय-सवक्ख।
अमरिस धरणीधर सिर विलग्ग णर-सरुव तिक्ख मुह कण्ण लग्ग।
5 असहिय पर-णर-गुण-गरुअरिद्धि दुव्वयण हणिय पर कज्ज सिद्धि।
कय णासा-मोडण मत्थरिल्ल भूभिउडि-भंगि णिंदिय गुणिल्ल।
को सक्कइ रंजण ताहँ चित्तु सज्जण पयडिय सुअणत्तरित्तु।
तहिँ लइ महु किं गमणेण भव्व भव्वयण वंधु परिहरिय गव्व।
तं सुणिवि भणइ गुण-रयण-धामु अल्हण णामेण मणोहिरामु।
10 एउ भणिउं काइँ पइँ अरुह भत्तु किं मुणहि ण णट्टलु भूरि सत्तु।

घत्ता—जो धम्म धुरंधरु उण्णय कंधरु सुअण सहावालंकरिउ।
अणु दिणु णिच्चल मणु जसु वंधव यणु करइ वयणु णेहावरिउ ॥७॥

१।८

जो भव्व भाव पयडण समत्थु ण कयावि जासु भासिउ णिरत्थु।
णायण्णइँ वयणइँ दुज्जणाहँ सम्माणु करइ पर सज्जणाहँ।
संसग्गु समीहइ उत्तमाहँ जिण धम्म विहाणेँ णित्तमाहँ।
णिरु करइ गोट्ठि सहुँ वुहयणेहिँ सत्थत्थ-वियारण हियमणेहिँ।
5 किं वहुणा तुज्झु समासिएण अप्पउ अप्पेण पसंसिएण।
महु वयणु ण चालइ सो कयावि जं भणमि करइ लहु तं सयावि।
तं णिसुणिवि सिरिहरु चलिउ तेत्थु उवविट्ठउ णट्टलु ठाइँ जेत्थु।
तेणवि तहो आयहो विहिउ माणु सपणय तंवोलासण समाणु।
जं पुव्व जम्मि पविरइउ किंपि इह विहि-वसेण परिणवइ तंपि।
10 खणु एक्क सिणेहेँ गलिउ जाम अल्हण णामेण पउत्तु ताम।

घत्ता—भो णट्टल णिरुवम धरिय कुलक्कम भणमि किंपि पइँ परम सुहि।
पर-समय-परम्मुह अगणिय दुम्मह परियाणिय जिण-समय-विहि ॥८॥

१।९

कारावेवि णाहेयहो णिकेउ पविइण्णु पंचवण्णं सुकेउ।
पइँ पुणु पइट्ठ पविरइय जेम पासहो चरित्तु जइ पुणु वि तेम।
विरयावहि ता संभवइ सोक्खु कालंतरेण पुणु कम्म-मोक्खु।
सिसिरयर-बिंबे णिय-जणण णामु पइँ होइ चडाविउ चंद-धामु।
तुज्झु वि पसरइ जय जसु रसंतु दस-दिसहि सयल असहण हसंतु। 5
तं णिसुणिवि णट्टलु भणइ साहु सइवाली पियमय तणउँ णाहु।
भणु खंड-रसायणु सुह-पयासु रुच्चइ ण कासु हय तणु पयासु।
एत्थंतरि सिरिहरु वुत्तु तेण णट्टल णामेण मणोहरेण।
भो तुहु महु पयडिय णेहभाउ तुहुं पर महु परियाणिय सहाउ।
तुहुँ महु जस-सरसीरुह-सुभाणु तुहुँ महु भावहि णं गुण-णिहाणु। 10
पइँ होंतएण पासहो चरित्तु आयण्णमि पयडमिह पाव-रित्तु।
तं णिसुणिवि पिसुणिउँ कविवरेण अणवरउ लद्ध-सरसइ-वरेण।

घत्ता—विरयमि गय गावें पविमल भावें तुह वयणें पासहो चरिउ।
पर दुज्जण णियरहिँ हयगुण पयरहिँ, घरु-पुरु-णयरायरु भरिउ॥९॥

१।१०

तेण जि ण पयट्टइ कव्व सत्ति जं जोडमि तं तुट्टइ टसत्ति।
पुणु-पुणु वि भणिउँ सो तेण वप्प घरि घरि ण होंति जइ खल सदप्प।
ता लइवि दोस णिम्मल-मणाहँ को वित्थरंतु जसु सज्जणाहँ।
जइ होंतु ण तमु महि मलिणवंतु ता किं सहंतु ससि उग्गमंतु।
जइ होंति णं दह संपत्त खोह ता किं लहंति मयरहर सोह। 5
तं सुणिवि हणिवि दुज्जण पहुत्तु मण्णिवि णट्टल भासिउ वहुत्तु।
पुणु समणें वियप्पेवि सद्दधामु सच्छंदु वि सालंकारु णामु।
णउ मुणसि किंपि कह करमि कव्वु पडिहासइ महु संसउ जि सव्वु।
लइ किं अणेण महु चिंत्तणेण अहणिसु संताविय णिय मणेण।
जइ वाएसरि पय-पंकयाहँ महु अत्थि भत्ति णिप्पंकयाहँ। 10
ता देउ देवि महु दिव्ववाणि सद्दत्थ-जुत्त पय-रयण-खाणि।
ता पत्त-सरासइ वरु णेइ को पासचरित्तहो गुणु गणेइ।

घत्ता—णिय तमु णिण्णासमि तह वि पयासमि जह जाणिउ गुण-सेणियहो।
भासिउ जिणवीरहो जिय सरवीरहो गोत्तम गणिणा सेणियहो॥१०॥

अन्त्य प्रशस्ति

णट्टल आराहिउ कइयण साहिउ तव सिरिहर मुणि वंदिउ ॥१७॥

१२।१७।१

१२।१८

संसारुत्तारणु पासणाहु धरणिंद सुरिंद णरिंद णाहु ।
णट्टलहो देउ सुंदर समाहि पुव्वुत्त-कम्म णित्थरणु वोहि ।
मज्झु वि पुणु पउ जो देउ णण्णु गुण-रयण सरंतहो पास सण्णु ।
राहव साहुहें सम्मत्त-लाहु संभवउ सामिय संसार-डाहु ।
5 सोढल णामहो सयलचि धरित्ति धवलंति भमउ अणवरउ कित्ति ।
तिण्णिव भाइय सम्मत्त-जुत्त जिण भणिय धम्म विहिकरण धुत्त ।
महि मेरु जलहि ससि-सूरु जाम सहुँ तणुरुहेहिं णंदंतु ताम ।
चउविह वित्थरउ जिणिंद संघु पर-समय-खुद्द वाइहिं दुलंघु ।
वित्थरउ सुयण जसु भुअणि पिल्लि तुट्टउ तडत्ति संसार-वेल्लि ।
10 विक्कम णरिंद सुपसिद्ध कालि दिल्ली पट्टणि धण कण विसालि ।
स-णवासी एयारह-सएहिं परिवाडिए परिसहँ परिगएहिं ।
कसणट्ठमीहिं आगहण मासि रविवारि समाणिउँ सिसिर भासि ।
सिरिपासणाह-णिम्मलु-चरित्तु सयलामल-गुण-रयणोह-दित्तु ।
पणवीस-सयइँ गंथहो पमाणु जाणिज्जहिं पणवीसहिं समाणु ।

15 घत्ता—जा चंद-दिवायर-महिहर-सायर ता वुहयणहिं पढिज्जउ ।
भवियहिं भाविज्जउ गुणिहिं थुणिज्जउ वर लेहयहिं लिहिज्जउ ॥१८॥

इय सिरिपासचरित्तं रइयं वुह सिरिहरेण गुणभरियं
अणुमण्णिय मणुज्जं णट्टल णामेण भव्वेण ॥छ॥

पुव्व-भवंतर कहणो पासजिणिंदस्स चारु णिव्वाणो ।
20 जिग-पियर-दिक्ख गहणो वारहमो संधि परिसम्मत्तो ॥छ॥ संधि ॥१२॥छ॥

आसीदत्र पुरा प्रसन्न-वदनो विख्यात-दत्त-श्रुतिः,
शुश्रूपादिगुणैरलंकृतमना देवे गुरौ भाक्तिकः ।
सर्वज्ञ-क्रम-कंज-युग्म-निरतो न्यायान्वितो नित्यशो,
जेजाख्योऽखिलचन्द्ररोचिरमलस्फूर्ज्जद्यशो भूपितः ॥१॥

25 यस्यांगजोऽजनि सुधीरिह राघवाख्यो, ज्यायानमन्दमति रुज्झित-सर्व्व-दोषः ।
अग्रोतकान्वय नभोङ्गण-पार्व्वणेन्दुः, श्रीमाननेक-गुण-रञ्जित-चारु-चेताः ॥२॥

ततोऽभवत्सोढलनामधेयः सुतो द्वितीयो द्विषतामजेयः ।
धर्मार्थकामत्रितये विदग्धो जिनाधिप-प्रोक्त-वृषेण मुग्धः ॥३॥

पश्चाद् बभूव शशिमण्डल-भासमानः, ख्यातः क्षितीश्वरजनादपि लब्धमानः।
सद्दर्शनामृत-रसायन-पानपुष्टः, श्रीनट्टलः शुभमना क्षपितारिदुष्टः ॥४॥ 30
तेनेदमुत्तमधिया प्रविचिन्त्य चित्ते, स्वप्नोपमं जलदशेपमसारभूतम्।
श्रीपार्श्वनाथचरितं दुरितापनोदि, मोक्षाय कारितमितेन मुदं व्यलेखि ॥५॥

अहो जण णिच्चलु चित्तु करेवि भिसं विसएसु भमंतु धरेवि।
खणेक्क पयंपिउ मज्झु सुणेहु कु भावइँ सव्वइँ होंतह णेहु।
इहत्थि पसिद्धउ ढिल्लिहिँ इक्क णरुत्तमुणं अवइण्णउं सक्कु। 35
समक्खमि तुम्हहँ तासु गुणाइँ सुरासुर-राय मणोहरणाइँ।
ससंक सुहा समकित्तिहे धामु सुरायले किण्णर गाइय णामु।
मणोहर-माणिणि-रंजण कामु महामहिमालउ लोयहँ वामु।
जिणेसर-पाय-सरोय-दुरेहु विसुद्ध मणोगइ जित्तइ सुरेहु।
सया गुरु भत्तु गिरिंदु व धीरु सुही-सुहओ जलहिव्व गहीरु। 40
अदुज्जणु सज्जण सुक्ख-पयासु वियाणिय मागह लोय पयासु।
असेसहँ सज्जण मज्झि मणुज्ज णरिंदहँ चित्ति पयासिय चोज्जु।
महामइवंतहँ भावइ तेम सरोयणराहँ रसायणु जेम।
सवंस णहंगण भासण-सूरु सवंधव-वग्ग मणिच्छिय पूरु।
सुहोह पयासणु धम्मुय मुत्तु वियाणिय जिणवर आयमसुत्तु। 45
दयालय वट्टण जीवण वाहु खलाणण चंद पयासण राहु।
पिया अइ वल्लह वालिहे णाहु

घत्ता—बहुगुणगणजुत्तहो जिणपयभत्तहो जो भासइ गुण नट्टलहो।
सो पयहिँ णहंगणु रमिय वरंगणु लंघइ सिरिहर हय खलहो ॥१॥छ॥

पंचाणुव्वय धरणु स सयल सुअणहं सुहकारणु। 50
जिणमय पह संचरणु विसम विसयासा वारणु॥
मूढ-भाव परिहरणु मोह-महिहर-णिद्दारणु।
पाव-विल्लि णिद्दलणु असम सल्लइँ ओसारणु॥
वच्छल्ल विहाण पविहाणय वित्थरणु जिण-मुणि-पय-पुज्जाकरणु।
अहिणंदउ णट्टल साहु चिरु विवुहयणहँ मण-धण-हरणु ॥१॥ 55

दाणवंतु तकिं दंति धरिय तिरयणि त किं सेणिउं।
रूववंतु त किं मयणु तिजय तावणु रइ भाणिउ॥
अइगहीरु त किं जलहि गरुय लहरिहिँ हय सुखहु।
अइ थिरयरु त किं मेरु वप्प चय रहियउ त किं नहु॥
60
णउ दंतिं न सेणिउं नउ मयणु ण जलहि मेरु ण पुणु न नहु।
सिखिंतु साहु जेजा तणउं जगि नट्टलु सुपसिद्ध इहु ॥२॥

अंग-वंग-कालिंग-गउड़-केरल-कण्णाडहं ।
चोड-दविड-पंचाल-सिंधु-खस-मालव-लाडहं ॥
जट्ट-भोट्ट-णेवाल-टक्क-कुंकण-मरहट्ठहं ।
65 भायाणय-हरियाण-मगह-गुज्जर-सोरट्ठहं ॥
इय एवमाइ देसेसु णिरु जो जाणियइ णरिंदहिं ।
सो णट्टलु साहु न वण्णियइ कहि सिरिहर कइ विंदहिं ॥३॥

दहलक्खण जिण-भणिय-धम्मु धुर धरणु वियक्खणु ।
लक्खण उवलक्खिय सरीरु परचित्तु व लक्खणु ॥
70 सुहि सज्जण वुहयण विणीउ सीसालंकरियउ ।
कोह-लोह-मायाहि-माण-भय-मय-परिरहियउ ॥
गुरुदेव-पियर-पय-भत्तियरु अयरवाल-कुल-सिरि-तिलउ ।
णंदउ सिरि णट्टलु साहु चिरु कइ सिरिहर गुण-गण-निलउ ॥४॥

गहिर-घोसु नवजलहरुव्व सुर-सेलु व धीरउ ।
75 मलभर रहियउ नहयलुव्व जलणिहि व गहीरउ ॥
चिंतिययरु चिंतामणिव्व तरणि व तेइल्लउ ।
माणिणि-मणहर रइवरुव्व भव्वयण पियल्लउ ॥
गंडीउ व गुणगणमडियउ परिनिम्महिय अलक्खणु ।
जो सो वण्णियइँ न केउ ण भणु नट्टलु साहु सलक्खणु ॥५॥
80 इति श्री पार्श्वनाथ चरित्रं परिसमाप्तं ॥
शुभं भवतु ॥श्री॥छ॥श्री॥छ॥श्री॥छ॥श्री॥छ॥श्री॥छ॥

पुष्पिका लेख—

संवत् १५७७ वर्षे आषाढ़ सुदि ३ श्री मूलसंघे नन्द्याम्नाये बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्री कुंदकुंदाचार्यान्वये। भट्टारक श्री पद्मनंदीदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्रीशुभचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भ. 85 श्रीजिनचंद्रदेवास्तत्पट्टे। भ. श्रीप्रभाचन्द्रदेवास्तत्शिष्य मुनि धर्मचन्द्रस्तदाम्नाये खंडेलवालान्वये डिहवास्तव्ये। पहाड्या गोत्रे सा. ऊधा तद्भार्या लाडी तत्पुत्र सा. फलहू द्विती (य) गूजर पलहू भार्या सफलादे सा. गूजर भार्या गुणसिरि तत्पुत्र पंचाइण एतैः इदं शास्त्रं नागपुर मध्ये लिखाप्य मुनिध(र्म) चंद्राय दत्तं ॥

ज्ञानवान्ज्ञानदानेन निर्भयोऽभयदानतः ।
90 अन्नदानात्सुखीनित्यं निर्व्याधिर्भेषजाद्भवेत् ॥
॥ शुभं भवतु ॥

—श्री आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर

प्रति नं. ७३४, पत्र ९९, पंक्ति ११, प्रतिपंक्ति अक्षर ३७-३९, प्रथम पत्र १ ओर रिक्त। अन्तिम पत्रमे ९ पंक्ति ग्रन्थकी तथा पंक्ति ५ पुष्पिकाकी हैं।

95 प्रशस्ति-भाग समाप्त।

पासणाहचरिउके इतिहास, संस्कृति एवं साहित्यकी दृष्टिसे कुछ महत्त्वपूर्ण अंशोंका संकलन

पोदनपुरका आलंकारिक वर्णन

तहिँ वसइ सुर-खयर-णरणाह मणहारि णामेण सिरि पोयणाउरु रमा हारि।
जिहिँ कोवि ण कयावि अहिलसइ परणारि जहिँ चोर ण मुसंति पहवंति जहिँ णारि।
जहिँ मुणिहुँ दाणाइँ अणवरउ दीयंति जहिँ महिस-सारंगच्छेलइँ न दीयंति।
जहिँ पवर तूराण रावा समुट्ठंति जहिँ रयण संजडिय जिणहर णेणिट्ठंति।
जहिँ कणय-कलसाह घर-सिहरि सोहंति जहिँ धयवडाडोय वियरइँ रोहंति। 5
जहिँ चंद-रविकंत-मणि तिमिरु णासंति जहिँ भत्त विरसंत वारण विहासंति।
जहिँ विविह देसागयालोय दीसंति जहिँ तुरय तुंगंगहिँ संति सीसंति।
जहिँ भविय जिण पाय पंकय समच्चंति जहिँ पंगणे पंगणे णारि णच्चंति।
जहिँ चार णाणेय मुणिणाह विंदाइँ संवोहियासेस-भवियारविंदाइँ।
विरयंति धम्मोवएसं गहीराइँ वाणीए सिसिरत्तणिज्जिय समीराइँ। 10

घत्ता—जहिँ साम पसाहिय असय रसाहिय जणवय-णयण-सुहावण।
वहुविह वेसायण सुर कप्पायण वहु वाणिय णाणा वण॥—पास.—१।१४

१२वीं सदीके विविध देश एवं वहाँके शस्त्रास्त्रोंकी विशेषताएँ

धाविया तार णेवाल-जालंधरा कीरट्ट-हम्मीर गज्जंत णं कंधरा।
सेधवा-सोण-पंचाल-भीमाणणा णइओरालि मेल्लंत पंचाणणा।
मालवीया-सटक्का खसा-दुद्दमा णं दिणेसास भाणच्छ भीकद्दमा।
सामिणो भूरि दाणं सरंता मणे वज्जिऊणं पिया-पुत्त-मोहं रणे।
साउहं देवि जुज्झंति संकुज्झिया झत्ति कुंतग्ग भिण्णंगणो मुज्झिया। 5
केवि संधेवि बाणालि बाणासणे कुंभि-कुंभ वियारंति संतासणे।
केवि चक्केणि छिंदंति सूरा सिरं कुंडला लग्ग माणिक्क-भा-भासिरं।
केवि सत्तीहिँ भिंदंति वच्छत्थलं माणियाणेय णारीथणोरुत्थलं।
केवि मेल्लंति सेल्लं समुल्लाविया वीर लच्छी विलासेण संभाविया।
जंति उम्मग्ग लग्गा हयाणं थडा तुट्ट सीसा वि जुज्झंति सूरा भडा। 10

घत्ता—जुज्झंतिहिँ रविकित्तिहिँ भडहिँ भग्गु असेसु वि जउणहो साहणु।
गेण्हंतु पाण मेलंतु मउ × × णाणाविह संगहिय पसाहणु—पास.—४।११

कुमार-पार्श्व पिता हयसेनको अपनी शक्तिका परिचय देते हुए कहते हैं

णहयलु तलि करेमि महि उप्परि वाउ वि वंधमि जाइ ण चप्परि।
पाय-पहारें गिरि संचालमि णीरहि णीरु णिहिलु पच्चालमि।
इंदहो इंद-धणुहु उट्टालमि फणिरायहो सिर-सेहरु टालमि।
कालहो कालत्तणु दरिसावमि धणवइ धण-धारहिँ वरिसावमि।
अग्गिकुमारहो तेउ [illegible] वारुणु सुरु वरिसंतउ धारमि। 5
तेल्लोक्कुवि लील[illegible] [illegible]रयल-जुअलें रवि-ससिच्छायमि।

तारा-णियरइँ गयणहो पाडमि कूरग्गह-मंडलु णिद्धाडमि।
णहयर-रायहो गमणु णिरुंभमि दिक्करडिहिँ कुंभयलु णिसुंभमि।
णीसेसुवि णहयलु आसंघमि जायरूव धरणीहरु लंघमि।
विज्जाहर-पय-पूरु वहावमि सूलालंकिय करु संतावमि।
10 मयणहो माण भडप्फरु भंजमि भूअ-पिसाय सहासइँ गंजमि।
दीसउ मज्झु परक्कमु बालहो उअरोहेण समुण्णय-भालहो।

घत्ता—तं सुणेवि वयणु पासहो तणउँ हयसेणेण समुल्लविउ।
हउँ मुणमि देव तह बाहुबलु परमइँ णेहेँ पल्लविउ॥ पास.—३।१५

यवन-नरेन्द्रकी ओरसे युद्धमें भाग लेनेवाले कर्नाटक, कोंकण, वराट, द्रविड़, भृगुकच्छ, सौराष्ट्र आदि देशोंके नरेशोंके पार्श्वकुमारने छक्के छुड़ा दिये

छुडु पहरण पहार परिपीडिउ परबलु जंतु दिट्ठओ।
ता कलयलु सुरेहिँ किउ णहयले रविकित्ति वि पहिट्ठओ॥छ॥

एत्थंतरेण णिविसंतरेण।
जउणेसभत्ते वियसंतवत्ते।
बहु मच्छरिल्ल संगरि रसिल्ल।
पकर करिवि सत्ति पयडिय ससत्ति।
धाविय तुरंत रुइ विप्फुरंत।
5 पहुरिणु सरंत जयसिरि वरंत।
मरु-मरु भणंत विंभउ जणंत।
ओरालि लिंत रक्कारु दिंत।
कण्णाड लाड कोंकण-वराड।
तावियड दिविड भूभाय पयड।
10 भरुहच्छु-कच्छ अइवियड वच्छ।
डिडीर-विझ अहियहिँ दुसज्झ।
कोसल-मरट्ठ सोरट्ठ-धिट्ठ।
इयहि असेस परबल णरेस।
णिज्जिणिय केम करि हरिहिँ जेम।
15 केवि छिण्णु केम तरुराइ जेम।
को वि धरेवि पाए खित्तउ विहाए।
को वि हियए विद्धु वाणहिँ विरुद्धु।
कासु वि कपालु तोडिउ खालु।
चूरिय रहाइँ दिढ पग्गहाइँ।
20 तासिय तुरंग सरु-चंचलंग।
दारिय करिंद दूसिय णरिंद।
फाडिय धयाइँ चामर चयाइँ।
खंडिय भडाइँ वयगुभडाइँ।

घत्ता—हय-गय-रह-भडयण-सय दलहिँ सहइ रणावणि झत्ति समायहो ।
णाणा रसोइणं वित्थरिय रणसिरियए णिमित्तु जमरायहो ॥—पास.—४।१२

कुमार-पार्श्वकी बाल-लीलाएँ

सक्काणइँ पेरिउ देउ को वि   णायर-णर-मणहरु पीलु होवि ।
चवलंगु तुरंगमु तंव चूलु   सेरिहु सुमेसु विसु साणुकूलु ।
कीलइ सहुँ हयसेणहो सुएण   जय-लच्छि परिलंछिय भुएण ।
सह जाय केस-जड-जूड़वंतु   कडि-रसणा-किंकिणि-सद्दवंतु ।
अविरल धूली-धूसरिय देहु   सिसु कीलामल सिरि-रमण गेहु । 5
णिव णारिहिं लिज्जइ झत्ति केम   तिहुअण जण मोहणु इयणु जेम ।
जो तं णिएइ वियसंत वयणु   चणियायणु वुहयणु अहव सयणु ।
सो अमरुव अणिमिस णयणु ठाइ   णव-कमल-लीणु भमरुअ विहाइ ।
जं किं पि धरइ लीलए करेण   तं णेव हरिज्जइ पविहरेण ।
हो हल्लरु जो जोयइ भणेवि   परियं दिज्जइ सामिउं गणेवि । 10
चलहार रमणि रमणीयणेहिं   ....ला संचालिय लोयणेहि ।
तुह सेवए लब्भइ सोक्ख रासि   तुट्टइ दवट्टि संसार पासि ।

घत्ता—कीलंतहो तासु णिहय सरासु च्छुडु परिगलिउ सिसुत्तु ।
इय लीलए जाम दिट्ठउ ताम हयसेणें णिय पुत्तु ॥ पास.—२।१५

भयानक अटवीमें रहनेवाले विविध क्रूर पशु एवं उनकी क्रियाएँ

वस्तु

जाण वोलिउ वाहिणी सेण-जिणणाहु असुराहिवेग ता विमुक्क सावय-सहासइँ ।
दिढ-दाढ-तिक्खाणणहिँ तिविह लोयमह भय पयासइँ ॥
गय-गंडोरय-गयणयर-महिस-वियय-सद्दूल ।
वाणर-विरिय-वराह-हरि सिर लोलिर-लंगूल ॥छ॥

केवि कूरु घुरुहुरहिं   दूरत्थ फुरहुरहि ।
केवि करहिँ ओरालि   ण मुवंति पउरालि ।
केवि दाढ दरिसंति   अइ विरसु विरसंति ।
कवि भूरि किलिकिलहिँ   उल्ललेवि वलि मिलहिँ ।
केवि णिहय पडिकूल   महि हणिय लंगूल । 5
केवि करु पसारंति   हिंसण ण पारंति ।
केवि गयणयले कमहिँ   अणवरउ परिभमहिँ ।
केवि अरुण णयणेहि   भंगुरिय वयणेहिँ ।
केवि लोय तासंति   अक्कयत्थ रुसंति ।
केवि धुणहिँ सविसाण   कंपविय परिपाण । 10
केवि वुट्ठ कुप्पंति   परिकहि झडप्पंति ।

भीसावणाइँ	असुहावणाइँ।
चुअचामराइँ	हसियामराइँ।
गालिय जसाइँ	पूरिय रसाइँ।
विहडिय दयाइँ	अवगय सियाइँ। 10
णिवडिय सिराइँ	खंडिय कराइँ।
पहराउ राइँ	ताडियउ राइँ।
भिंदिय-णसाइँ	किंदिय वसाइँ।
सोसिय रसाइँ	हय-साहसाइँ।
पयडिय मुहाइँ	पाविय दुहाइँ। 15
णिरसिय सिवाइँ	पोसिय सिवाइँ।
तह वायसाइँ	मह रक्खसाइँ।
तज्जिय भयाइँ	महियलें गयाइँ।
अइ संकुलाइँ	करिवर कुलाइँ।

घत्ता—पेक्खेवि रोसारुण लोयणहिँ जउण-णराहिवेण परिभाविउ। 20
को महियलें महुं मयगलहि जो ण महा णरवइ संताविउ ॥—पास.—५।७

पार्श्वनाथकी तपस्थली—अटवीका आलंकारिक वर्णन

घत्ता—जहिँ णउ लोरय संगरु करहिँ वणवासिय-वितर मुणेहरहिँ।
गिरिवर समाण गंडय चलहिँ अवरोप्परु वाणर किलिकिलहिँ ॥—पास.—७।१

वस्तु

जहिँ गयाहिव भमहिँ मच्चंत जहिँ हरिण फालइँ करहिँ।
जहिँ मयारि मारंति कुंजर जहिँ तरणि किरणे सरहिँ।
जहिँ सरोस घुरुहुरहिं मंजर।
जहिं सरि तीरुब्भव वहल कद्दम-रस लोलेहि।
जुज्झिज्जइ सिसु ससि-सरिस दिढ दाढहिँ कोलेहिं ॥छ॥ 5

जइ हिंताल-ताल-तालूरइँ	साल-सरल-तमाल-मालूरइँ।
अंब-कयंब-णिंब-जंबीरइँ	चंपइ-कंचणार-कणवीरइँ।
टउह-कउह-वव्वूल-लवंगइँ	जंवू-माहुलिंग-णारंगइँ।
अरलू-पूजप्फल विरिहिल्लइँ	सल्लइ-कोरंटय-अंकोल्लइँ। 10
जा सवण्ण-धव-धम्मण-फणिसइँ	वंस-सिरीस-पियंगु-पलासइँ।
केयइ-कुरव-खइर-खज्जूरइँ	मज्झणिय मुणि मणिरुह कंदइँ।
पीलू-मयण-पक्ख रुद्दक्खइ	कंथारी-कणियारि-सुदक्खइं।
उंवरि-कटठुंवरि-वरणायइँ	चिंचिणि चंदणक्क पुण्णायइँ।
णालिएरि-गंगेरि-वडारइँ	सेंबलि-वाण वोर-महुवारइँ।

घत्ता—तहिँ मंडिय सयल धारायलए फासुअ सुविसाल सिलायलए। 11
थिउ तणु विसग्गु विरएवि मुणि णं गिरिवरिंदु वारिहरज्झुणि ॥—पास.—७।२

णाही गंभीरत्तणु मणोज्ज इयरह कह जण मणि जणइं चोज्जु।
पत्तलु वि पोट्टु पयडिय गो णोहु इयरह कह सुर-णर फणि मणोहु।
मुणिहु विमण वलहरु तिवलिभंगु इयरह कह अइ वग्गइ अणंगु। 10
तुंगत्तु होउ थोरत्थणाहँ इयरह कह सिरचालणु जणाहँ।
भुव जुउ मण्णमि पंच-सर पासु इयरह कह वद्धउ जण सहासु।
रेहाहि पवरु कंधरु विहाइ इयरह कह कंवु रसंतु ठाइ।
मुह-कमलु पदरिसिय राय-रंगु इयरह कह छण ससहर सवंगु।
विंवा-सरिसाहरु हरिय चक्खु इयरह कह मोहिउ दह-सयक्खु। 15
दिय-सोह धरंति सुदित्तियाइँ इयरह पियाइ कह मोत्तियाइँ।
मयरद्धय धणु भू-विब्भमिल्ल इयरह कह रइ समख रसिल्ल।

घत्ता—जुत्तउ ललियंगिहि णिरु णिव्वंगिहि अइ दीहत्तणु लोयणहं।
इयरह कह दारहिं जण-मणु-भारहिं कामिय मयणुक्कोवणहं ॥—पास. १।१३॥

अनुप्रासात्मक एवं ध्वन्यात्मक पदावलियाँ

णव-पाउस-घणोव्व उच्छरियउ छायंतउ णहंगणं।
णिसियाणण विसाल वखाणहिँ कीलिर सुरवरंगणं ॥

चूरइ लूरइ रह-धयवडाइँ फाडइ पाडइं गुड-मुह-वडाइँ।
दावइ णच्चावइ रिउ-थडाइँ धावइ पावइ उब्भड़-भडाइँ।
कोकइ रोकइ कड्ढेवि किवाणु पच्चारइ मारइ मुएवि वाणु। 5
हक्कइ थक्कइ रिउ पुरउ झत्ति णिहणइ विहुणइ तोलइ ससत्ति।
वंचइ संचइ सर-चामराइँ पोसइ तोसइ खयरामराइँ।
आसंघइं लंघइ गयवराइँ दारइ संहारइ हयवराइँ।
उद्दालइ लालइ पहरणाइँ धीरहँ वीरहँ दप्पहरणाइँ।
वग्गइ मग्गइ संगरु रउद्दु डोहइ खोहइ णरवर समुद्दु। 10
पेल्लइ मेल्लइ ण किवाण-लट्ठि गज्जइ जज्जइ दरिसइ णरट्ठि।
अवहेरइ पेरइ भीरु सूर पासइ संसासइ वाण कूर ॥—पास. ४।१४

खडहडियइँ देउल-धवलहरइँ झलझलियइँ तीरिणि-मयरहरइँ।
वणकरिवरहिँ विमुक्कइँ दाणइँ रुलुघुलियइँ सूवर संताणइँ।
किलि-किलियइँ साहामय णियरइँ थरहरियइँ पट्टण पुर-णयरइँ ॥—पास ८।२।६-८ 15

पार्श्वनाथ पर व्यन्तरों पिशाचों आदि द्वारा किये गये विविध उपसर्ग

वस्तु

ता सुरेसेण भीमवयणेण थिरय वियणिय लोयणिणा।
कुविय मणि वेयाल झाइय दरिसंत माया विविह तहि।
असेस तक्खणे पराइय डाइणि रक्खस-पण्णय-गरुड-गह-साइणि भूआ।

परिशिष्ट १ (ख)

भविसयत्तकहा प्रशस्ति

आदि भाग—

१।१

ससिपह जिण चरणइँ सिव सुह करणइँ पणविवि णिम्मल-गुण भरिउ।
आहासमि पविमलु सुअ-पंचमि-फलु भविसयत्तकुमरहो चरिउ ॥
× × × ×

१।२

सिरि चंदवार-णयर-ट्ठिएण जिण धम्मकरण उक्कट्ठिएण।
माहुर-कुल-गयण तमीहरेण विबुहयण सुयण-मण-धण हरेण।
णारायण-देह समुब्भवेण मण-वयण-काय-णिंदिय भवेण।
सिरि वासुएव गुरु-भायरेण भवजलणिहि णिवडण कायरेण।
णीसेसें सविलक्ख गुणालएण मइवर सुपट्ट णामालएण। 5
विणएण भणिउ जोडेवि पाणि भत्तिए कइ सिरिहरु भव्वपाणि।
इह दुल्लहु होइ जीवहँ णरत्तु णीसेसहँ संसाहिय परत्तु।
जइ कहव लहइ दइयहो वसेण चउगइ भमंतु जिउ सहरसेण।
ता विलउ जाइ गब्भे वि तेमु वायाहउ णहे सरयब्भु जेमु।
अह लहइ जम्मु ता वहु विहेहिँ रोयहिँ पीडिज्जइ दुह गिहेहिँ। 10

घत्ता—जइ णिंदिय मायरि अय खामोयरि अवहरेइ णियमणि अणसु।
पय पाण-विहीणउ जायइ दीणउ तासो णवि जीवेइ सिसु ॥२॥

१।३

हउँ आयइ मायइ मह मइए सइँ परिपालिउ मंथर-गइए।
कप्पयरूव विउलासए सयावि दुल्लहु रयणु व पुण्णेण पावि।
जइ एयहिँ विरयमि णोवयारु उग्घाडिय सिव-सउ हलय वारु।
ता किं भणु कइ मइ आयएण जम्मण-मह पीडा-कारएण।
पउ आणि वि सुललिय पयहिँ सत्थु विरयहि बुहयण मणहरु पसत्थु। 5
महु तणिय माय णामेण जुत्त पायडिय जिणेसर भणिय सुत्त।

वणिवइ भविसयत्तहो चरित्तु पंचमि उववासहे फलु पवित्तु ।
महु पुरउ समक्खिय वप्प तेम पुव्वायरियहिँ भासियउ जेम ।
तं णिसुणेविणु कइणा पउत्तु भो सुप्पढ पइँ वज्जरिउ जुत्तु ।
10 जइ मुज्झ समत्थि णउ करेमि हउँ अज्जु कहव णिरु परिहरेमि ।
ता किं आयइ महु बुद्धियाइ कीरइ विउलाए स-बुद्धियाइ ।

घत्ता—किं वहुणा पुणु-पुणु भणिएँ सावहाणु विरएवि मणु ।
भो सुप्पढ महमइ जाणिय भवगइ ण गणमि हउँ मणे पिसुणयणु ।

× × × ×

इय सिरि भविसयत्तचरिए विबुह-सिरि-सुकइ-सिरिहर-विरइए साहु णारायण-भज्ज रुप्पिणि णामंकिए भविसयत्त-उप्पत्तिवण्णणो णाम पढमो परिच्छेओ समत्तो ॥संधि १॥

अन्तिम भाग—

णरणाह विक्कमाइच्चकाले पवहंतए सुहयारए विसाले ।
वारह-सय वरिसहिं परिगएहिँ दुगुणिय पणरह वच्छर-जुएहिँ ।
फागुण मासम्मि वलक्ख पक्खे दसमिहि दिणे तिमिरुक्करविवक्खे ।
रविवार समाणिउ एउ सत्थे जिह मइँ परियाणिउ सुप्पसत्थु ।
भासिउ भविस्सयत्तहो चरित्तु पंचम उववासहो फलु पवित्तु ।

[आमेर भण्डार, लिपि सं. १५३०]

परिशिष्ट–१ (ग)

सुकुमालचरिउ प्रशस्ति [रचनाकाल : वि. सं. १२०८]

१।१

सिरि पंच गुरुहँ पय पंकयइ पणविवि रंजिय समणहँ ।
सुकमाल-सामि कुमरहो चरिउ आहासमि भव्वयणहँ ॥
× × × ×

१।२

एक्कहिं दिणे भव्वयण-पियारए — बलडइ णामें गामे मणहारए।
सिरि **गोविंदचंद णिव** पालिए — जणवइ सुहयारयकर लालिए।
दुगणिय वारह जिणवर मंडिए — पवणुद्ध धयवड अवरुंडिए।
जिणमंदिरे वक्खाणु करंतें — भव्वयणहँ चिरु दुरिउ हरंतें।
कलवाणीए बुहेण अणिंदें — **पोमसेण** णामेण मुणिंदें। 5
भासिउ संति अणेयइँ सत्थइँ — जिणसासणे अवराइँ पसत्थइँ।
पर **सुकमाल-सामिणा** मालहो — कररुह मुह विवरिय वरवालहो।
चारु-चरिउ महुँ पडिहासइ तह — **गोवरु** बुहयण मणहरणु वि जह।
तं णिसुणेवि महियले विक्खाएँ — पयड साहु पीथे तणु जाएँ।
सलखण जणणी गब्भुप्पण्णें — **पउमा** भत्तारेण रवण्णें। 10
सहरसेण **कुबरेण** पउत्तउ — भो मुणिवर पइँ पभणिउ जुत्तउ।
तं महु अग्गइ किण्ण समासहि — विवरेविणु माणसु उल्लासहि।
ता मुणि भणइ बप्प जइ णिसुणहि — पुव्व-जम्म-कय दुरियइँ विहुणहि।

घत्ता—अब्भत्थिवि णिरु **सिरुहरु** — सुकइ तच्चरित्तु विरयावहि।
इह रत्ति वि कित्तिणु तव तणउ सुहु परत्थेँ धुउ पावहि ॥२॥ 15

ता अण्णहि दिणि तेण छइल्लें — जिणभणियागम सत्थ रसल्लें।
कइ **सिरिहरु** विणएण पउत्तउ — तहु परियाणिय जुत्ताजुत्तउ।
तुहुँ बुहु हियय सोक्ख-वित्थारणु — भवियण मण-चिंतिय सुहकारणु।
जइ **सुकमालसामि-कह** अक्खहि — विरएविणु महु पुरउ ण रक्खहि।
ता महु भणहु सुक्खु जाइय लइ — तं णिसुणेवि भासइ सिरिहरु कइ। 20
× × × ×

भो पुखाड़-वंस सिरिभूसण धरिय-विमल-पम्मत्त विहूसण ।
एक्कचित्तु होएवि आयण्णहि जंपइ पुच्छिउ मा अवगण्णहि ।

इय सिरिसुकुमालसामि-मणोहर चरिए सुंदरयर गुण-रयण-णियरस भरिए विबुह सिरिसुकइ-सिरिहर विरइए साहु पीथे पुत्त कुमर णामंकिए अग्गिभूइ वाउभूइ-सूरमित्त मेलावयण वण्णणो णाम पढमो परिच्छेओ समत्तो ॥१॥

अन्त्य प्रशस्ति

६।१२

आसि पुरा परमेट्ठिहि भत्तउ चउविह चारु दाण अणुरत्तउ ।
सिरिपुरवाड-वंस मंडण चंधउ णियगुण णियराणंदिय बंधउ ।
गुरु भत्तिय परणमिय मुणीसर णामें साहु जग्गु वणीसर ।
तहो गल्हा णामेण पियारी गेहिणि मण-इच्छिय सुहयारी ।
5 पविमल सीलाहरण विहूसिय सुह-सज्जण बुहयणह पसंसिय ।
ताहें तणुरुहु पीथे जायउ जण-सुहयरु महियले विक्खायउ ।
अवरु महिंदे वुच्चइ बीयउ बुहयणु मणहरु तिक्कउ तइयउ ।
जल्हणु णामें भणिउ चउत्थउ पुण वि सलक्खणु दाण समत्थउ ।
छट्ठउ सुउ संपुण्णु हुअउ जह समुदपाल सत्तमउ भणउ तह ।
10 अट्ठमु सुउ णयपालु समासिउ विणयाइय गुण गणहिं विहूसिउ ।
पढमहो पिय णामेण सलक्खण लक्खण कलिय सरीर वियक्खण ।
ताहे कुमरु णामेण तणूरुहु जायउ सुह पह पहय सरोरुह ।
विणय-विहूसण भूसिउ कायउ मय-मिच्छत्त-माण-परिचत्तउ ।

घत्ता—णाणू अवरु वीयउ पवरु कुमरहो हुअ वर गेहिणि ।
15 पउमा भणिया सुअणहिं गणिय जिण-मय-यर बहु गेहिणि ॥

६।१३

तहे पाल्हणु णामेण पहूयउ पढम पुत्तु णं मयण-सरूवउ ।
वीयउ साल्हणु जो जिणु पुज्जइ जसुरूवेण ण मणहरु पुज्जइ ।
तइयउ वले भणिवि जाणिज्जइ वंधव-सुयणहिँ सम्माणिज्जइ ।
तुरियउ जयउ सुपट्टु णामें णावइ णियसरु दरसिउ कामें ।
5 एयहँ णीसेसहँ कम्मक्खउ जिणमयर महँ होउ दुक्खक्खउ ।
मज्झु वि एजि कज्ज ण अण्णें × × × ×
चउविहु संघु महीयलि णंदउ जिणवर पय-पंकयए वंदउ ।
खहु जाउ पिसुणु खलु दुज्जणु दुट्ठ दुरासउ णिंदिय सज्जणु ।
एउ सत्थु मुणिवरहँ पढिज्जउ भत्तिए भविण्णेहिं णिसुणिज्जउ ।
10 जाम णहंगणि चंद-दिवायर कुलगिरि-मेरु महीयलि सायर ।
पीथे वंसु ताम अहिणंदउ सज्जण सुहि मणाइँ अणिंदउ ।

बारह-सयइँ गयइँ कयहरिसइँ अट्ठोत्तरं महीयले वरिसइँ।
कसण-पक्खे अग्गहणे जायए तिज्ज दिवसे ससिवार समायए।

घत्ता—बारह सयइँ गंथह कयइँ पद्धडिएहि रयण्णउ।
जण-मण-हरणु-सुहु-वित्थरणु एउ सत्थु संपुण्णउ ॥१३॥ 15

इय सिरिसुकमालसामि मणोहर चरिए सुंदरयर गुण-रयण णियरस-भरिए
विवुहसिरि सुकइ सिरिहर विरइए साहु पीथे पुत्त कुमार णामंकिए
सुकुमालसामि सव्वत्थ-सिद्धि गमणो णाम छट्ठो
परिच्छेओ समत्तो ॥ संधि ६ ॥

शब्दानुक्रमणिका

अणिट्ठि–अनिष्ट (कारी) ४।१२।५
अणिट्ठिय–अनिष्ठित, अकृत्रिम १०।१३।१३
अणिट्ठु–अनिष्टकारी ३।१७।९
अणिवड्ढिवंत–अऋद्धिवन्त १०।१९।७
अणिमाइय–अणिमादिक गुण २।११।३, १०।३३।१
अणिमिस–अनिमिष (मत्स्य) १०।१०।६
अणियट्टि–अनिवृत्तिकरण (गुणस्थान) १०।३६।८
अणिवार–अनिर्वार ४।२।११, ५।२२।७
अणिहण–अनिधन १०।३६।१३
अणीइ–अनीति ३।११।३
अणु–अन्य १५।११
अणुकूल–अनुकूल १।११।१०
अणुणय–अनुनय (विनयपूर्वक) ४।१५।१२
अणुदिणु–अनुदिन (दिन-प्रति-दिन) १।११।१०, २।२।७
अणुदिस–अनुदिश (देव) १०।३४।१४
अणुरत्त–अनुरक्त २।१६।७
अणुरञ्ज–अनुरञ्जन २।१।७
अणुव–अनुज ३।५।२
अणुवम–अनुपमरूप २।१६।३
अणुवय–अणुव्रत ६।१६।९
अणुवेक्ख–अनुप्रेक्षा १।१४।१
अणुसर–अनुसरण २।९।१०
अणंगदाह–अनंगदाह १।१।१४
अणंत–अनन्तनाथ १।१।१९
अणंतणाण–अनन्तज्ञान १।१।१०
अणंतवीरिउ–अनन्तवीर्य ९।१४।१३
अणंतु–अनन्ते १०।३९।८
अणिंद–अनिन्द्य २।९।१३
अत्थइरि–अस्ताचल ९।२०।४
अत्थि–अस्थि १०।३२।५
अत्थिकाय–अस्तिकाय ८।१०।२
अतित्तु–अतृप्त ५।४।१२
अतीउ–अतीत १०।३६।९
अद्धु-अद्धु–आधा-आधा १०।३२।१३
अद्ध इंदु–अर्धचन्द्र ३।६।१०
अद्धचक्कि–अर्द्धचक्री ३।१९।७
अद्धमियंक–अर्द्धमृगांक (वाण) ५।१७।१७
अद्धविमीसिय–अर्धविमिश्रित १०।४।१२
अद्धि–अद्रि, पर्वत ८।१०।४, ३।५।११
अधम्मु–अधर्म १०।३९।३
अदूसिउ–अदूषित २।११।७
अप्प–अपना ३।५।११
अप्पज्जत्ता–अपर्याप्तिक (जीव) १०।५।१२
अप्पमत्तु–अप्रमत्तविरत (गुणस्थान) १०।३६।७
अप्पसण्णु–अप्रसन्न ३।१६।२
अप्पसत्तु–आत्मसत्त्व, आत्माभिमानी ५।११।४
अप्पसमाण–आत्मसदृश २।११।१
अप्पाइत्तउ–आत्माधिकृत, अपने पर अधिकार ४।२४।१३
अप्पाणउ–अपने १।१०।१०
अप्पिवि–अर्पित १।१२।१
अपास–अस्पृष्ट १।१।१४
अप्पेवि–अर्पित कर १।१६।१
अब्भ–अभ्र ९।१०।१६
अब्भंतर–आभ्यन्तर ६।१५।८
अभय–अभय ९।१५।४
अभयदाणु–अभयदान ३।१६।१
अभवियवि–अभव्य १०।२०।१६
अभिज्ज–अभेद्य ५।१५।५
अभीओ–निर्भीक ४।५।१
अभीरु–अभीर, शूरवीर ९।६।१४
अभीस–निर्भय ४।३।२
अम्हहँ–हमारे २।१।८
अम्हेत्थ–हमारे लिए ६।१७।८
अमयासण–अमृताशन १०।२२।५
अमरगिरि–सुमेरु पर्वत ७।१।३, १०।१६।५
अमल–अ + मल = यथार्थरूपमे १०।३।३
अमरालय–स्वर्ग-लोक १०।३०।७
अमरालय–सुमेरुपर्वत ७।९।२
अमरिष–अमर्ष ३।१५।३
अमरु–देव २।१९।१२
अमलकित्ति–अ + मल कीर्ति ४।१२।१३
अमियकित्ति–अमितकीर्ति (मुनिराज) २।८।३, २।८।११

असणिघोष–अशनिघोष (विद्याधर योद्धा) ५।१८।९
असमाहि–असमाधि ८।१४।८
असमंजसु–असमंजस ४।११।१
असराल–कष्टपूर्वक २।१६।१०
असरासइँ–दुष्टाशय ५।२१।१३
असारु–असार ३।२५।८
असि–खड्ग २।५।१३
असि-पंजरु–लोहेका पिंजरा १।१४।७
असिफरु–असिफल (शस्त्र) १।१२।१३
असिलय–असिलता ५।१४।४
असु–प्राण १०।२५।२
असुद्ध–अशुद्ध २।१०।१३
असुहर–असुधर (प्राणी) १०।३५।१३
असुहर–असुहर ग्राम (आश्रयदाता नेमिचन्द्रका निवास-स्थल) १०।४१।४
असुहासिया–अशुभाश्रित ३।८।७
असुहु–अशुभ, दुख ६।१८।२
असेस–अशेष, समस्त १।५।१०
असोय–अशोक (वृक्ष) १।८।१, २।६।८, ७।५।५
असंख–असंख्य ४।१०।१३
असंतु–असन्त ५।३।११
अहणिसि–अहर्निश ३।१।७
अहमिंदामर–अहमिन्द्र देव १०।३३।९
अहर–अधर, ओष्ठ १०।४।१
अहरत्त–अहोरात्र १०।७।१४
अहरु–अधर ४।५।९
अहवा–अथवा १।४।१४
अहि–सर्प १।१६।५
अहिणाण–अभिज्ञान (अवधिज्ञान) १०।३४।१८
अहिणव–अभिनव (नवीन) १।६।३, २।१२।८
अहिणूण–अन्यून १०।३८।२
अहिमुख–अहिमुख ७।१२।१०
अहिमुख–सम्मुख ५।१७।५
अहिय–अरहनाथ १।१।११
अहिय–शत्रु ९।३।३
अहिय-णिरोहिणि–अहितनिरोधिनी (नामकी विद्या) ४।१८।११
अहिययर–अनेकविध हितकारी १।१।११
अहिल–अखिल ८।८।८
अहिसिंचिउ–अभिसिञ्चित २।१३।७, ६।१।१
अहिसेउ–अभिषेक १।१०।८
अहीणु–अ + हीन (पराक्रमी) ३।१३।६
अहोगइ–अधोगति १०।२६।१
अहोमुहुँ–अधोमुख ४।२१।४
अहंगइ–अधमगति १०।७।१२

[आ]

आइजिणु–आदिजिन २।१५।१
आउ–अप (कायिक जीव) १०।६।४
आउरा–आतुर ९।४।९
आउलमणु–आकुलमन ३।१२।८
आउलिय–आकुलित ५।१३।१५
आकंदु–आक्रन्दन ७।१४।८
आकंपिउ–अकम्पित २।१२।२
आगच्छमाणु–आ + गम ३।४।३
आगम–आगम (ग्रन्थ) १०।४।१०
आगहणमास–अगहनमास ९।२०।४
आगामि–आगामी १०।३९।६
आण–आज्ञा १।७।११
आणा–आयु (प्राण) १०।७।११
आणंदण–आनन्दत्त १।२।१
आणंदु–आनन्द १।९।१२, २।१२।३
आमभायण–मिट्टीका बर्तन ४।१५।१
आयइँ–पूर्वमें ५।२।५
आयड्ढिय–आकर्षित ५।८।४, ५।१२।१२
आयण्ण–आकर्णय २।१३।५
आयहे–अस्याः, इसके ६।५।१२
आयहं–आगममें १०।७।३
आयासु–आकाश १०।३९।८
आरासरु–आसक्त होकर २।२१।१३
आराह–आराध (धातुः) ८।१६।९
आरडिय–आरटित ७।१४।११
आरुह–आ + रुह (धातुः) २।५।११
आलइ–आलय १०।२५।२
आवइ–आपत्ति ५।१३।६
आवज्जिय–आवर्जित १।१५।३

उण्ह–उष्ण १०।१२।५, १०।२४।५
उण्ह–उष्ण (योनि) १०।१२।११
उणइँ–उन्नति ५।१।२
उण्णमियाणणु–उन्नमितानन ४।१५।८
उण्णय–उन्नत १।१५।१३
उण्णामिय–उन्नामित, उन्नत २।७।१०, ४।२१।४
उण्णामियभाल–उन्नामित अथवा उन्नतभाल २।३।१९
उट्ठद्धु–अवष्टब्ध ६।१४।१२
उट्ठासव–दुष्टाशय ५।२२।१८
उट्ठिउ–उत् + स्था + तुमुन्–उत्थातुम् ३।२५।१३
उट्ठंत–उत्तिष्ठत् ३।१।५
उड्ढंग–ऊर्ध्वांग ९।२।६
उत्तम–उत्तम, शुभ २।३।१
उत्तरकुरु–उत्तरकुरु (क्षेत्र) १०।१४।१५
उत्तरुत्तरु–उत्तरोत्तर ४।३।७
उत्तरतड–उत्तरतट २।७।६
उत्तरफग्गुण–उत्तराफाल्गुनी (नक्षत्र) ९।८।१,९।९।९
उतरयल–उत्तरतल २।१०।३
उत्तरसेणि–उत्तरश्रेणी ४।४।१२
उत्तरसेढ्ढि–उत्तरश्रेणी ३।३।१६
उत्तरिय–उत्तरित, उत्तीर्ण २।६।४
उत्तुंग–उत्तुंग, उन्नत (ऊँचा) १।१३।७,२।५।१७, ३।१७।२
उत्थट्ठि–उच्चस्थित ९।९।८
उद्धत्तणु–उद्धतता ८।७।३
उद्धसुंडु–ऊर्ध्वशुण्डा ९।१०।१४
उप्पण्ण–उत्पन्न २।१२।३
उप्परि–ऊपर ३।१४।२
उप्पाइय–उत्पादित ३।४।१३
उप्पाडिय–उत्पादित ३।१५।१०
उप्फड–उत् + स्फिट् (हवामे उड़ना) ४।२१।२
उब्भासिय–उद्भाषित ३।३।१
उब्भिवि–√उब्भि–उत् + धृ १।१२।१३
उम्मग्ग–उन्मार्ग ५।१६।२०
उम्मूलिउ–उन्मूलित ३।१७।७
उमालिवि–उन्मालय १०।४०।१६
उरयल–हृदयतल ८।१३।४
उरयारि–उरगारि (गरुड़) ५।९।३
उरसप्प–उरसर्प १०।८।१५
उरु–उरु ५।६।७, १०।२८।२
उल्लस–उद् + लस्–उल्लास ५।१३।४
उल्लंघिय–उल्लंघित १।०।९
उल्लंघिवि–उल्लंघ्य २।७।७
उवएसु–उपदेश २।९।१३
उवगह–उपग्रह १०।३२।७
उवभोय–उपभोग १।१४।६
उवमिज्जइ–उपमा २।१६।३, ३।२२।५
उवमिय–उपमित १।३।१४
उवयद्दि–उदयाद्रि १।५।४
उवयायल–उदयाचल ९।८।८
उवरि–ऊपर ३।१।८, ३।७।२
उवरोह–उपरोध १।११।७
उवलक्ख–उप् + लक्ष–उपलक्ष्य १०।४।४
उववण–उपवन २।१३।७
उववाय–उपपाद (जन्म) १०।१२।४
उवविस–उपविश्य १।९।७
उवसग्ग–उपसर्ग ९।२१।७
उवसग्ग–उपसर्ग–(व्याकरण सम्बन्धी) ९।१।१४
उवसम–उपशम ६।१६।६
उवसम-सिरि–उपशमश्री २।१०।१७
उवसमिय–उपशमित २।१०।१०
उवसन्तु–उपशान्त (मोह) (गुणस्थान) १०।३६।९
उवाउ–उपाय ३।१३।५
उविंदु–उपेन्द्र (नारायण) ३।२६।१
उंदरं–(देशी) मूषक ९।११।११
उंदुरु–(देशी) १०।८।१६

[ऊ]

ऊसस–उच्छ्वास ९।९।४,१०।३५।९

[ए]

एइंदिय–एकेन्द्रिय (जीव) १०।५।९
एउ–एतत् ११।६।१२
एक्कमण–एकाग्रमन २।७।३
एक्कया–एकदा ३।६।४
एक्करयणि–एक अरत्नि (प्रमाण) १०।२०।६
एक्क–एक १।१३।७

कन्ह–कृष्ण (त्रिपृष्ठ) ५।१६।२४, १०।२१।१९
कन्हु–कृष्ण (त्रिपृष्ठ) ६।११-१२, ६।७।३
कप्पजाय–कल्पजात (देव) १०।३३।१०
कप्पद्दुमु–कल्पद्रुम २।१२।८
कप्परुक्खु–कल्पवृक्ष १५।११
कप्पवास–कल्पवास (स्वर्गवास) ९।१।११
कप्पामर–कल्पामर (देव) १०।१।२
कम्म–कर्म २।९।११, ८।१०।५, १०।६।२
कम्मक्खउ–कर्मक्षय ६।१६।१
कम्मभूमि–कर्मभूमि १०।१५।२, १०।१६।१०
कम्मावणि–कर्मभूमि १०।६।१०
कम्माहार–कर्माहार १०।३५।१
कम्मिंधण–कर्मेन्धन १०।३६।१९
कमल–कमलपुष्प १।२।३, १।४।१४
कमलायरु–कमलाकर १।१०।४
कमलायर–कमलाकर (मुनिराज) ६।१७।६
कमलाहारो–कवलाहार १०।३५।२
कय–कृत १।१२।५, १०।५।३
कय-उज्जम–कृतोद्यम ४।३।८
कयंत–कृतान्त (यमराज) २।१६।५, ३।१५।७, ५।२१।४
कर–चुंगी, टैक्स ६।३।९
कर–√कृ १।४।१७
करडि–करटिन्–हस्ति ४।२४।५
करण–करण १०।५।३
करयल–करतल २।१।३
करवत्त–करपत्र (अस्त्र) ६।१३।५
करवय–कतकफल ४।१४।३
करवालु–करवाल–तलवार ५।७।५
करहु–ऊँट ४।२१।९
कराइय–करापित २।१३।१०
कराफोड़ि–अंगुलिस्फोट ९।११।७
कराल–कराल २।७।१०
करि–हाथ ५।२।१३
करि–हाथी २।५।१८
करि–हाथी (रत्न) ८।४।४
करिदंत–गजदन्त ४।६।२
करिंद–करीन्द्र ४।१२।११
करीस–करीश ४।२२।१
करु–कर (टैक्स) ३।१३।४
करुणा–करुणा १।६।२
करुणावयरियउ–करुणावतरित १।६।२
करुणु–करुण २।२।३
करोहु–करौघ, किरण-समूह १।१२।८, १।४।११
कलकंठ–मनोज्ञ कण्ठ २।८।६
कलत्तु–कलत्र ३।८।४
कलयल–कलकल (ध्वन्यात्मक शब्द) ३।१५।६
कलयलंत–कल-कल (ध्वन्यात्मक शब्द) १।८।१०
कलरव–मधुर वाणी ३।१०।५
कलस–कलश १।७।६, ४।४।१, ९।६।२
कलसद्द–मधुर वाणी १।१६।१४
कलस–कलश ९।१४।१२
कलहु–कलभ ४।१७।८
कलहंसि–कलहंसिनी ८।१।८
कलाव–कलाप १०।६।७
कलाहरु–कलाधर (चन्द्रमा) ८।२।६
कलिउ–कलित, सहित २।५।१३
कलिय–सहित २।५।१३
कवए–कवच ५।७।१५
कवणु–कौनु–कौन २।६।५
कवलास–कवलाहार १०।३२।५
कवसी–कपिश ९।६।२६
कवाड–कपाट १।४।७
कवालु–कपाल ३।२२।१
कविलहो भूदेव–कपिल भूदेव (ब्राह्मण) २।१६।६
कविलाइय–कपिल आदि २।१५।१०
कवित्थ–कपित्थ (कैंथका वृक्ष) १।१५।९, ३।१७।७
कसण–कृष्ण (काला) १।५।१०, १०।७।२
कसणाणण–कृष्णानन, कृष्णमुख २।२।१२
कसणोरयालि–कृष्णोरगालि १।४।१२
कसाय–कषाय ८।१०।४
कहार–कहार (ढीमर) ४।२१।१४
कहिय–कथित १।१।११
कहा–कस्य १।५।१०
काउ–√कृ + तुमुन् कर्तुम् १।१२।१
कागणीएमणि–काकणीमणि ८।४।१

[ख]

[घ]

[च]

चउसय–चार सौ ३।५।६
चक्कपाणि–चक्रपाणि ४।१२।५; ६।११।३
चक्कवइ–चक्रवर्ती २।१२।१२
चक्कवट्टि–चक्रवर्ती (हयग्रीव) ५।२।१;८।७।१
चक्कवाय–चक्रवाक ७।१४।८
चक्कहरा–चक्रधारी २।१५।३
चक्काउह–चक्रायुध १०।१९।८
चक्कालंकियकरु–चक्रालंकितकर २।१२।११
चक्कि–चक्री (त्रिपृष्ठ) ६।७।११
चच्चरी–भ्रमरी २।३।१४
चच्चिय–त्यक्त १।१२।१३
चडइ–(देशी-) आ + रुह २।१३।३
चडाविवि–आ + रुह + इवि (चढाकर) ४।१०।६
चडुलंगो–चपलाग ४।२२।२
चणय–चणकः (चना) ८।५।१०
चत्तारि–चत्वारि ६।१५।८
चप्पिउ–चप्प + आ ५।६।६
चम्म–चर्म १०।३२।४
चम्म-पडलि–चर्म पटल ६।१५।१
चम्मरयणु–चर्मरत्न ८।४।१
चरइ–√चर + इ ८।७।३
चरण–चरण १।२।२
चरिउ–चरित १।१।२
चरिय–चरित १।१।१५
चरुव–चरु + क (नैवेद्य) ७।१३।३
चरुव–चरुवा ४।२१।१३
चलण–चरण १।१।१
चलंता–चल् + शतृ ३।११।१
चलयर–चंचलतर १।१४।३
चललोयण–चंचल लोचन ५।२।१०
चल-वाहु–चंचल-वाहु ३।२।४
चलिय–चलित १।१२।१०
चवइ–वच् धात्वर्थे देशी १।१६।४; २।७।२
चवल–चपल २।१४।४; २।१६।६;१०।३८।८
चवलच्छी–चपलाक्षी ४।११।१५
चाउ–चाप (धनुष) ५।१०।१
चारणरिसि–चारण-ऋषि १०।१९।९
चामरु–चामर १।१२।१०; २।१३।१२
चारु–चारु (सुन्दर) १।१७।७
चारु चक्खु–चारु चक्षु (सुन्दर नेत्र) ३।३।२
चित्तगय–चित्रगत ३।२५।८
चित्तल–चित्तल (जरत्र विशेष) ४।५।८
चित्तयर–चित्रकार ५।१२।४
चित्ता–चित्रा (नामकी प्रथमा पृथिवी) १०।२२।७
चित्तावहारि–चित्तापहारी ३।२९।३
चित्ताहार–चित्राहार १०।३५।३
चित्ताहिलासु–चित्ताभिलाषा ५।५।३
चित्तु–चित्र १।११।३
चित्तंगउ–चित्रांगद (योद्धा) ४।५।८
चित्तंगय–चित्रांगद (विद्याधर) ५।२०।३
चिरु–चिरकाल २।१६।२, २।२२।३
चिरज्जिउ पाउ–चिरार्जित पाप (चिर-संचित पाप) ६।९।६
चुक्क–(देशी) त्यक्त १।१।७
चुव-संग–च्युत संग (त्यक्त संग) २।१०।१५
चुव–च्युत (स्रवित) ५।१३।९
चूउ–चूत, आम्र ८।१७।२
चूड़ामणि–चूड़ामणि (रत्न) १।११।६, २।४।१०, २।८।३
चूरण–चूर्ण ३।२२।२
चूल–(तत्सम) चूला, चोटी ९।५।६
चूला–(तत्सम) शिखा, जटा २।१९।२
चूलावइ–चूलावती (इस नामकी दिक्कुमारी) ९।५।७
चूलिय–चूलिका १०।३०।७
चूव-द्दुमु–चूत-द्रुम (आम्र वृक्ष) १।६।३
चूव-मंजरी–चूत-मंजरी (आम्र मंजरी) २।३।१३
चूवसाह–चूत-शाखा (आम्रवृक्षकी शाखा) ३।६।३
चेईहरी–चैत्यगृह ३।२०।५
चोइउ–चोदित, प्रेरित २।५।२१
चोज्ज–(देशी) आश्चर्य १।५।७
चोर–चोर २।१०।८
चक्कहर–चक्रधर ४।९।३
चंचरी–भ्रमरी १।६।७
चंचल–चंचल २।२।५
चंचलयरु–चञ्चलतर १।१३।१०
चंडु–चण्ड (वायु) १०।२४।५

णिकाय–निकाय, समूह २।१४।७
णिग्गउ–निर्गत (निकल गया) १।१७।१२
णिग्गम–निर्गम १।३।१३
णिग्गय–निर्गत २।५।४, १०।२।११
णिगोय–निगोद १०।१०।१६
णिच्च–नित्य (निगोद) १०।४।३
णिच्चल–निश्चल २।२।५, ३।१।१०
णिच्चुच्छव–नित्योत्सव ३।२।७
णिच्चितिउ–निश्चिन्त १।१२।२
णिच्छउ–निश्चय (पूर्वक) १।१५।४, १।१७।२
णिच्छव–निश्चय ५।८।१३
णिज्जरा–निर्जरा १०।३९।२१
णिज्जरु–निर्जर (देव) २।११।३
णिज्जिय–निर्जित १।१।१५, १।६।८, १।८।९, २।२०।१०
णिज्जंतु–निर्जन्तुक ८।१४।८
णिज्झाइय–निर्ध्यात (ध्यान करता था) १।५।२
णिड्डहेवि–√ णिड्डह (निर्दह) + इवि (जलाकर) ९।२२।१
णिण्णासिय–निर्नाशित (नष्ट कर दिया) ३।४।८
णित्तुल–निस्तुल १०।५।१३
णित्तुलउ–निस्तुल (अनुपम) २।९।१७, ५।२३।१९, ८।८।५
णिद्दावस–निद्रावश ८।१।१०
णिद्दंदु–निर्द्वन्द्व ३।१।१४
णिप्पहु–निस्पृह ६।१७।९
णिब्भय–निर्भय १०।३८।६
णिब्भासण–भाषा रहित (गूँगा) १०।१७।१४
णिब्भंत–निर्भ्रान्ति २।१०।७
णिम्मलयर–निर्मलतर १।२।२, ३।३।२
णिम्मलयरु–निर्मलतर २।१३।६
णिम्महिउ–निर् + मथित (उन्मूलित) १।१७।५
णिम्मिय–निर्मित २।२१।८
णिम्मिवि–निर्मित १।१३।१
णिय–निज (अपना) १।३।६
णियकुल–निजकुल (अपना कुल) १।१७।२
णियड–निकट ४।११।१३
णियबुद्धि–निज-बुद्धि २।२।३
णियहिउ–निजहित २।९।११
णियाणु–निदान ३।१७।१०
णियंत–√ दृश् + शतृ (देखता हुआ) २।२।१४
णिरग्गल–निरर्गल १०।२५।१३
णिरवज्ज–निरवद्य, निर्दोष ६।७।१
णिरसिवि–निरसित ६।१६।३
णिरसिय–निरसित (नष्ट कर दिया) १।१०।३, २।९।१५
णिरह–निर् + अघ १।१।१३
णिराउल–निराकुल २।११।५
णिराउह–निरायुध १०।३८।६
णिरारिउ–नितराम् २।२।७
णिरिक्खणत्थु–निरीक्षणार्थ २।७।७
णिरु–नितराम् १।१६।१
णिरुत्तु–निरुक्त, नितराम् १।१४।६
णिरुद्ध–णिरुद्ध (नामक मन्त्री) ३।१२।९
णिरुद्ध-दिट्ठि–निरुद्ध-दृष्टि ३।४।१०
णिरुवद्दउ–निरुपद्रव (विना किसी उपद्रवके) ३।२।१२
णिरंतर–निरन्तर, सदैव २।११।८
णिलउ–निलय (गृह) १।८।११
णिव्वाण-ठाण–निर्वाण स्थान १०।१४।१३
णिव्वाणु-ठाणु–निर्वाण स्थान १।९।१०
णिव्वाहण–निर्वहण ४।२०।१३
णिव्वूढ–निर्व्यूढ २।५।१३
णिवइपुत्त–नृपतिपुत्र १।१०।६
णिव-चिंधहु–नृप-चिह्न २।६।१
णिव वयणु–नृपवचन २।५।५
णिवसइ–√ निवस् इ (रहता है) १।४।१
णिवसिरि–नृपश्री २।२।१०
णिवसेविणु–√ निवस् + एविणु (निवास कर) २।२२।३
णिवसंत–√ निवस् + शतृ २।७।१२
णिवारिवि–निवारित २।१९।१
णिविट्ठ–निविष्ट १।१२।३
णिविट्ठु–निविष्ट २।८।१
णिवित्ति–निवृत्ति ३।२।११
णिविसाय–निर्विषाद (विषाद रहित) १०।३८।६

[त]

तियालजोउ–त्रिकाल-योग ८।१४।९
तिरयणु–तिर्यंच (त्रीन्द्रिय) १०।९।१३
तिरयहु–तिर्यंच (पंचेन्द्रिय) १०।४।५
तिल्लोकणाहु–त्रैलोक्यनाथ ९।१४।४
तिल्लोकाहिउ–त्रिलोकाधिप १०।४०।१३
तिल–तिल ८।५।१०
तिवग्ग–त्रिवर्ग ११।३।५
तिविट्ठु–त्रिपृष्ठ (नारायण) ३।२३।१०, ३।२५।११, ३।२८।६, ३।३०।११, ३।३१।४, ४।२।४, ७, ४।११।१३, ५।२१।८, ५।२२।९, १४, ६।२।११
तिसा–तृषा ६।१६।३
तिसूल–त्रिशूल १०।२५।१०
तिहुयण–त्रिभुवन २।९।२
तिहुवणु–त्रिभुवन २।१२।२
तुज्झु–तुझे ११।६।१
तुप्प–(दे.) घी ४।१६।४
तुरयगलु–चक्रवर्ती अश्वग्रीव (हयग्रीव) ४।१०।६, ४।१७।९, ५।९।१०, ५।२३।१२
तुरयगीउ–हयग्रीव (अश्वग्रीव) ५।४।४, ५।१८।१४, ५।२०।२
तुरयणाणि–चतुर्थज्ञानी (मनःपर्ययज्ञानी) १०।४०।३
तुरं–तुरही (वाद्य) २।१४।१
तुरंगकन्धर—चक्रवर्ती अश्वग्रीव ४।११।५
तुरंगु–तुरंग (निधि-रत्न) ८।४।४
तुरंतउ–तुरन्त २।४।३
तुसारु–तुषार १०।२०।४
तूर–तूर्य (वाद्य) ११।०।८, २।१४।१
तूल–तूल, रूई ८।५।८
तूस–तुष्ट ४।४।११
तेइल्लउ–तेजस्वी २।१८।१३, ३।२९।४, ५।११।१३
तेउ–तेज १।५।१
तेउ–तेज, तैजस १०।६।२
तेउ–तेजोकाय (अग्निकाय) १०।२०।९
तेण–तेन (उसने) ११।७।१३
तेत्तहे–तत्र (वहाँ) २।४।३
तेयवंत–तेजवन्त तेजस्वी ११।०।११; २।३।५; ५।८।८
तेय–अग्नि (कायिक जीव) १०।४।३
तोडि–√ त्रुट (तोड़ना) १।९।६, १०।३२।१३
तोस–तोष २।९।१५
तुंगउ–तुंग (ऊँचा) ११।२।१२, २।८।६
तंतु–तन्तु, तागा ११।४।८
तंदुल–तन्दुल ८।५।१०
तंबोल–ताम्बूल ५।८।१

[थ]

थक्क–स्तब्ध, स्थित, थका हुआ ५।४।१
थट्ट–(देशी) समूह ४।३।५
थड्ढत्तणु–स्तब्धत्व, धृष्टत्व (काठिन्ये गर्वे वा) ९।१।१२
थण–स्तन १०।१।२
थणिय–स्तनितकुमार (नामक देव) १०।२९।७
थल-गब्भ–स्थल गर्भ (गर्भसे उत्पन्न थलचर जीव) १०।१०।१३
थलयर–स्थलचर (जीव) १०।८।१४
थव √ स्थाप्य ३।५।३
थवइ–स्थपति (शिल्पीरत्न) ८।४।४
थविर–स्थविर (वयोवृद्ध अनुभवी एवं कुशल मन्त्री) ६।१०।३
थावर–स्थावर (जीव) १०।६।३
थावर जोणि–स्थावर योनि २।२२।३
थावरु–स्थावर (नामक विप्र पुत्र) २।२२।१०
थिउ–स्थित २।७।७
थिरमणु–स्थिर मन ११।३।११
थिरयर–स्थिरतर २।२।६
थिरयरु–स्थिरतर ८।१७।४
थिरलंगूल्लु–स्थिर पूँछ २।८।१०
थिरु ठाइवि–स्थिर-स्थित होकर २।७।३
थिरो–स्थिर ९।११।६
थुणंतु–√ स्तु + शतृ २।१३।४
थुव–स्तुत ११।१।८, ३।२७।१०
थूल-निवित्ति–स्थूलनिर्वृत्ति ७।६।१२
थूह–स्तूप ९।२३।८
थोउ–स्तोत्र, प्रशंसा ५।२।८
थोत्तु–स्तोत्र, स्तुति १०।२।१२

[ध]

नम्मु–नम्र २।३।१३
नमिय–नमित १।९।३
नयमग्गें–न्याय-मार्ग ४।१२।२
नयाणणु–नतानन, (नतमुख) २।८।१०
नरजम्मु–नरजन्म १।१४।९
नरवर–नरवर (आश्रयदाताके पिता) १।२।१
नरहिउ–नराधिप २।१३।५
नराहिव–नराधिप (नन्दिवर्धन) १।१०।८
नरिंद–नरेन्द्र (राजा) १।७।१०
नव-नलिणी–नव-नलिनी (नवीन-कमलिनी) ३।२१।४
नवेप्पिणु–√नम् + एप्पिणु (नमस्कार कर) १।१।१,१।१०।६
नह–नभ ३।२३।५
नहयल–नभस्तल १।१३।१२
नाइँ–ननु, इवके अर्थमें १।८।६
नाणुक्करिस–ज्ञानोत्कर्ष (ज्ञानका उत्कर्ष) १०।१९।११
नाय–नाग ४।७।७
नाय–नागकुमार १०।२९।६
नारइय–नारकीय (जीव) १०।४।५
नाहल–नाहल (म्लेच्छ, वनचर) १०।१९।६
निए–(अवलोकनार्थे, देशी) देखकर १।५।१०
निच्छउ–निश्चय ४।१५।६
निच्चिंत–निश्चिन्त १।४।१७
निज्झाइय–निर्ध्यात २।१९।७
निज्जिय–निर्जित २।२।६
निट्ठुरंग–निष्ठुर अंग ५।८।४
निण्णासिय–निर्नाशित (नष्ट कर देनेवाले) २।८।३
नित्तेइ–निस्तेजस् ५।६।६
निब्भंत–निर्भ्रान्त २।२१।८
निम्मल सीलु–निर्मल शील १।६।१०
नियमणु–निजमन १।१७।१५
निय-मण–निजमन १।१४।१
नियराणंदिय–नितरामानन्दित (अत्यन्त आनन्दित) २।१८।३
नियसत्ति–अपनी शक्ति १।१७।१६
नियाण–निदान ३।९।१४
नियंबावणि–नितम्बावणि ३।२१।७
निरंतर–निरन्तर १।८।१२
निरवज्ज–निर् + अवद्य (निर्दोष) ३।२३।१३
निरविक्ख–निरपेक्ष ४।१३।१२
निरसिय–निरसित ३।२२।१
निरहंकार–निरहंकार २।८।१२
निराउहु–निरायुध २।८।११
निरारिउ–नितराम् १।१३।४
निरु–नितराम् (निरन्तर) १।८।११
निरुवम–निरुपम १।१३।१
निरंग–कामदेव २।१०।१५
निरंधु–नीरन्ध्र ५।१६।१७
निरंबर–निरम्बर (निर्वस्त्र) १०।१९।५
निलउ–निलय (भवन) २।१७।७
निव्वत्तणु–निवर्तना १०।५।४
निव–नृप १।१३।६
निवडिय–निपतित (पतित) २।१७।१२
निव-विज्ज–नृप-विद्या २।२३।१४
निवसइ–√निवस् °इ १।४।९; २।१०।४
निविट्ठु–निविष्ट २।८।५
निसण्ण–निषण्ण (बैठे हुए) १।३।१५
निसुणेवि–√निः + श्रु + इवि (सुनकर) २।५।२
निसुणंतु–√निः + श्रु + शतृ + उ १।११।५
निहणिय–निहनित १।९।११
निहम्मइ–√नि + हन् °इ ४।१७।८
नील-रुवि–नीलरुचि ३।२१।२१
नेसर–दिनेश्वर (सूर्य) २।३।१
नंदण–सुपुत्र १।२।१

[प]

पइसमि–√प्र + विश् + मि (प्रवेश करूँ) २।२१।९
पइसेप्पिणु–प्रविश् + एप्पिणु २।४।४
पइसंतें–प्रविश् + शतृ २।६।७
पइँ–त्वम्, आप १।१७।१; ३।१३।२
पईव–प्रदीप २।२१।५
पउप–पद १।१०।१०
पउमणील–पद्मनील १।८।२
पउमप्पह–पद्मप्रभु (छठवें तीर्थंकर) १।१।५

[म]

महामइ–महामति　११।१।६, २।१८।७
महालया–महालता　२।३।३
महासइ–महान् आशयवाले　२।८।६
महासमु–महाशम　४।२२।९
महाहिमवंत–महाहिमवन्त (पर्वत)　१०।१४।४, १०।१५।१२
महि–मही, पृथिवी (कायिक जीव)　१०।४।३
महिणाहु–पृथिवीनाथ　२।५।८
महिताडिय–महीताडित, पृथिवीको ठोकना　४।६।४
महिमंडलु–महीमण्डल　२।४।१०
महिय–महित, पूजित　८।२।१२
महियले–महीतल　१।४।१३, ३।१।१२
महिराएँ–महीराज (नन्दिवर्धन)　१।६।११
महिरुहतलि–वृक्ष के नीचे　१।९।२
महिला–महिला, नारी　३।८।६, १०।२६।८
महिवइ–महीपति　२।४।४
महिवलइ–पृथिवीतल　१।५।३
महिवीढु–पृथिवीमण्डलपर　१।७।१
महिस–महिप, भैसा　६।१३।७
महिहर–महीधर, महाराजा　२।५।१४, ४।२०।१४
महिहर–पृथिवी　४।२०।१४
महिहर–पर्वत　१।४।६
महीयल–पृथिवीतल　२।२।६
महीवीढु–महि + पीठ, पृथिवीमण्डल　२।५।१७
महीसु–महि + ईश = महीश (नृपति)　१।१२।६
महु–मेरी, मुझे　१।१।१६, १।९।१०
महु–मधु　१।४।१४, १०।७।५
महुमासे–मधुमास　९।९।८
महुर–मधुर　१।१७।९
महुर–मथुरा (नगरी)　३।१७।२
महुवर–मधुकर　३।५।१२, ४।३।१४
महुसरु–मधुर स्वर　२।१०।५
महु सुक्कि–महाशुक्र (स्वर्ग)　७।१७।९
महे–महि (आधारभूमि)　१।११।११
महोरय–महोरग　१०।८।१५
महंत–मह + शतृ—महान्　१।१५।५, २।११।३
महिंद–माहेन्द्र (स्वर्ग)　६।५।९
माइउ–मात, समाया हुआ, अटा हुआ　२।१२।१
माऊर–मयूर, मोर　८।७।२
मागणु–माँगना, याचना　५।४।३
मागहु–मागध (देव)　२।१३।४, ६।१।५
माणथंभु–मानस्तम्भ　९।२२।८, १०।२।४
माणउ–माणव (नामक निधि)　८।५।७
माणव–माणव (नामक निधि)　८।६।१०
माणि–मानो, समझो　१।१४।३
माणिणि–मानिनी　२।३।९
माणंतु–माण + अन्त (मानना)　१।४।१८, २।१।३
माय–माया　१।४।९
मार–कामदेव　१।१०।१३, २।३।४
मारण–मारण　८।१६।४
मारिवि–√मृ + इवि—मारकर　२।८।१
मारी–मारी (रोग)　३।१।१३
मालिया–मालिका　१।८।१
मास–उडद　८।५।१०
मास–महीना　८।१७।३
मासोपवास–मासोपवास (व्रत)　३।१७।१
मासंसउ–मांसभक्षण　१०।१७।१४
माहिंद–माहेन्द्र (स्वर्ग) २।१९।४, १२, १०।३०।११
मिच्चु–मृत्यु　२।२१।१०, ५।१४।८
मिच्छत्त–मिथ्यात्व　१।१०।३
मिच्छत्तमेण चुओ–मिथ्यात्वसे च्युत　२।१५।९
मिच्छत्ताणल-जाल–मिथ्यात्वकी अग्नि ज्वाला　२।२२।२
मिच्छत्तारि–मिथ्यात्वारि　२।६।६
मिच्छत्तासत्तु–मिथ्यात्वमे आसक्त　१।१५।१
मिच्छा–मिथ्या (गुणस्थान)　१०।३६।६
मिच्छादिट्ठि–मिथ्यादृष्टि　२।१६।९
मिच्छाहिउ–म्लेच्छाधिप　२।१३।८
मिदुमहि–मृदुभूमि (पृथिवीकायिक)　१०।७।१३
मिस्स–मिश्र (पृथिवी)　१०।७।१
मिस–मिष्—बहाना　३।१५।३
मिहिर–सूर्य　१।३।४
मीण–मत्स्य　१०।१०।१
मीलियक्खु–मीलिताक्षि, नेत्र निमीलन　५।१४।४
मुक्क–मुक्त　१।१।७, २।२२।१
मुक्कु–मुक्त, छोड़ना　२।१३।६

रयणगुणाल–रत्नोका समूह २।२०।८
रयणत्तउ–रत्नत्रय १।१५।३
रयणप्पहा–रत्नप्रभा (नरकभूमि) १०।२३।१
रयणसंख–रत्नोंकी संख्या १०।३६।४
रयणायर–रत्नाकर १।३।८
रयणायरु–रत्नाकर १।५।५
रयणीसरु–रजनीश्वर (चन्द्रमा) २।४।९
रवण्ण–रमणीय, रमणीक २।१२।७
रवा–ध्वनि १।८।१०
रवालु–मधुर ध्वनि २।३।१०
रवि–सूर्य ७।१।२, १०।७।६
रविकित्ति–अर्ककीर्ति (विद्याधर) ६।२।७, ६।७।९
रविवोहियसरे–सूर्य बोधित स्वर २।१४।१३
रविवंदिउ–रविवन्दित १।१७।१५
रविंविवु–रवि-विम्ब ५।९।६
रस–रस-रस १।५।९
रसणावस–जिह्वाके वशीभूत ५।५।९
रसायणु–रसायन ३।९।५
रसु–रसना (इन्द्रिय) १०।८।५
रसुल्ल–रसार्द्र ४।१३।११
रसोल्ल–रसार्द्र, रसीले २।२०।१०
रहणेउर–रथनूपुर नगर ३।२९।१३, ६।४।७
रहवर–श्रेष्ठरथ २।५।१७
रहावत्ता–रथावर्त (पर्वत) ४।२३।११
रहंगलच्छी–रथाग-लक्ष्मी ४।९।१२
रहंगाइ–रथागादि ५।७।१३
राई–रागी २।९।११
रामचंदु–रामचन्द्र (आश्रयदाता नेमिचन्द्र-का पुत्र) १०।४१।११
रामा–रम्य २।५।६
रामारम–रम्यारम्य (सुन्दर वाटिका) १।३।१०
रामु–रम्य १।१०।५
राय–राजा १।५।१३
रायकुमार–राजकुमार १।१०।१२
रायगिहु–राजगृह (नगर) ३।१।१४
रायलच्छि–राजलक्ष्मी १।१४।४, १।१६।५
रायहरदारि–राजगृहके द्वारपर ३।२।६
रायहरे–राजगृह (नगर) २।२२।७
रायहो-धुर–राज्यका भार १।१२।१
रायाइय–रागादिक २।९।१९
राहु–राहु (ग्रह) २।३।४
रिउ–रिपु १।१५।१२, ४।७।९
रिउगल–रिपु-गल, शत्रुका गला ३।२२।२
रिउ-णर–रिपुजन १।१७।८
रिउ-वहु–रिपुवधु १।५।१०
रिक्कंदविंद–ऋक्षसमूह १०।२४।११
रिक्ख–ऋक्ष, नक्षत्र १०।३४।३
रिजुकूल–ऋजुकूल (नदी) ९।२१।११
रिणु–ऋण ९।१९।१३
रिस–ऋजु १०।३८।९
रिसहणाहु–ऋषभनाथ २।११।११
रिसहु–ऋषभदेव ४।३।४
रुइ–रुचि २।१३।१२
रुउज्झिय–रूपोज्झित (रूपरहित अमूर्तिक) १०।३९।३
रुक्खराइ–वृक्ष-राजि (वृक्ष पंक्तियाँ) २।३।१२
रुजग–रुचकवर (द्वीप) १०।९।७
रुणझुणंति–रुणझुण (ध्वन्यात्मक) १।८।१
रुण-रुणंत–रुणझुण-रुणझुण (ध्वन्यात्मक) ६।९।५
रुढ–आरुढ ८।१२।५
रुद्दत्तण–रौद्रत्व ३।२६।५
रुद्धु–रुद्ध, रोकना २।३।१२
रुप्प–रौप्यवर्ण ३।१८।७
रुप्पकूल–रूप्यकूला (नदी) १०।१६।४
रुप्पय–रौप्य (चाँदी वर्णका) १०।७।४
रुप्पयगिरीन्द्र–रौप्यगिरीन्द्र (विन्ध्याचल) ५।९।४
रुम्मिगिर–रुक्मि (गिरि) १०।१५।८
रुम्मिगिरि–रुक्मिगिरि १०।१५।८
रुम्मिगिरिंदु–रुक्मिगिरीन्द्र १०।१४।६
रूव–सौन्दर्य १।४।१५, २।२।४
रूवरहिउ–रूपरहित (कुरूप) २।१०।१२
रूवंतउ–रुदन करता हुआ २।२१।३
रुसांकुर दिट्ठीए–रोष और क्रूर दृष्टिसे ३।११।१०
रुहिर–रुधिर ६।१५।२, ८।९।८
रुहिरासव–रुधिरासव (रुधिररूपी आसव) ५।१५।१३
रेहति–(राज् धातोः) सुशोभित १।५।८

वइराय–वैराग्य २।१४।६
वइरायभाव–वैराग्यभाव ३।४।४
वइरायल्ल–वैराग्ययुक्त ३।५।१
वइरि–वैरी, शत्रु १।११।२, १।१२।६, २।४।१३
वइरियण–वैरीजन २।२।३
वइवसु–वैवस्वत (यमराज) ६।११।४
वइसमि √ वइस–उप् + विश् (बैठूँ) १।१५।८, २।६।११, २।२।१९
वउ–वपु १।१४।२
वक्खारगिरि–वक्षारगिरि १०।१६।५
वच्चइ–√ व्रज + इ = पहुँचना २।२०।८
वच्छत्थलु–वक्षस्थल ३।२२।३
वच्छर–वत्सर १।१३।६
वच्छा–वत्सा (देश) ७।१।४
वज्ज–वाजा २।२०।१६
वज्जदाढ–वज्रदाढ़ (नामक योद्धा) ४।६।७
वज्जपाणि–वज्रपाणि (इन्द्र) ७।१०।९
वज्जर–कथ् इत्यर्थे देशी (धातु) ५।३।५
वज्जसेणु–वज्रसेन (उज्जयिनीका राजा) ७।१०।९
वज्जिउ–वर्जित (छोड़कर) २।६।६
वज्जंग–वावांग (कल्पवृक्ष) १०।१८।११
वट्टणु–वरतन १०।३९।६
वट्टलगिरि–वहुलागिरि १०।१६।८
वड्ढइ–√ वृध + इ २।२।१०
वड्ढए–√ वृध + इ २।३।७
वड्ढमाण–वर्धमान (१ पुष्पिका) (२ पुष्पिका) (३ पुष्पिका) (४ पुष्पिका) (५ पुष्पिका) (६ पुष्पिका) (७ पुष्पिका) (८ पुष्पिका) ९।१६।१०, (९ पुष्पिका) १०।४१।६ (१० पुष्पिका)
वड्ढारिउ–वर्धापयित ४।२।१२
वडमूल–वट-मूल ९।१७।६
वडवाणलु–वडवानल ४।१७।३
वडव–वटुक १०।२।२
वण–वन १।१२।८
वणगयंद–वन्यगजेन्द्र २।८।१
वणमज्झ–वनके मध्यमें २।१०।१०
वण-मयंग–वनमतंग १।६।८
वणयर–वनचर ४।१३।७
वणवाल–वनपाल ३।१२।१
वणसइकाय–वनस्पतिकाय १०।७।९
वणि–वन २।३।१९
वणिउ–वणिक् २।१।६
वणियण–वणिक्जन १।४।९, ४।२४।३
वणिवाल–वनपाल २।३।१७
वणीसरु–वणीश्वर, वणिक् श्रेष्ठ २।१०।५
वणमयंगु–वन्यमतंग ५।२०।५
वणंतरे–वनके मध्यमें २।६।७
वत्थ–वस्त १०।१७।१०
वत्थु–वस्तु १।१४।३
वप्प–बाप रे (ध्वन्यात्मक) ५।४।१४
वमंत–वम + शतृ, वमन, कै ५।१३।१५
वय–वचन १०।५।३
वय–व्रत १।११।९, २।११।१
वयण–वचन १।९।११, २।१।६
वयणा–वदन, मुख २।५।८
वयाहरण–व्रताभरण १।१०।५
वर–उत्तम २।१४।१
वरइ–वरण (करना) ५।३।८
वरतणु–वरतनु (देव) ६।१।५
वरय–श्रेष्ठ १।१।९
वरलक्खण–उत्तम लक्षण १।१७।१३
वरविवेउ–वरविवेक १।५।३
वराउ–वराक, बेचारा ३।१६।१२
वराह–वराह (पर्वत) २।७।६
वरिसिय–वर्षित २।१०।१
वरु–वर (पति) ५।३।८
वेल्लरी–वल्लरी, लता २।३।१४
वल्लहु–वल्लभ २।२२।५, ५।३।६
वल्ली–वल्ली, लता १।१५।६
वलक्ख–वलाक्ष (धवल) १०।१८।९
वलहद्द–वलभद्र (विजय) ५।९।१५
वलित्तए–वलित्रय, त्रिवलि ९।९।२
वल–वलदेव ५।२०।१०
वव्वर–वर्वर १०।१९।५
वस–वसा ६।१५।२

विससिहि–विषशिक्षा ५।४।१३
विसहणाह–वृषभनाथ (तीर्थंकर) १।१।१३
विसहर–विपधर १०।३।६
विसाउ–विपाद २।१।८, २।२१।४
विसाण–सींग ५।४।२, १०।१७।१३
विसालए–विशाल २।१०।२
विसाले–विशाल १।४।४, १।८।३
विसाहणंदि–विशाखनन्दि (राजपुत्र) ३।४।२, ३।६।१२, ३।१८।१, ४।४।१५
विसाहभूइ–विशाखभूति (राजा) ३।३।६, ३।५।९, ३।७।१, ३।१६।१
विसाहाइणंदी–विशाखनन्दि ३।११।१२
विसी–गरुड़ १०।२६।९
विशुद्धसील–विशुद्ध शीलवाला १।४।१०
विसेस–विशेष २।५।१९
विहडइ–वि + घट् (धातु) इ २।२१।१२
विहरिउ–विहरित १०।३९।२४
विहरेविणु–विहर + एविणु (विचरण करना) १।८।१४
विहरंत–विहर + शतृ (विहरते हुए) २।३।९
विहलंघलु–विह्वल इत्यर्थे देशी (विह्वल होकर) २।२१।४
विहवत्तणु–विभव १।७।७
विहाण–विधान २।११।१
विहि–विधि १।२।३, ३।१३।५
विहीसणु–विभीषण, भयानक ४।५।३
विहुणिय–विधुनित, नष्ट, ध्वंसित १।९।१२, ३।११।१४, ६।१०।२
विहूसण–विभूषण १०।३।१०
विहूसिय–विभूषित १।३।५, २।११।७
विहेय–विधेय ३।३।१
विहंगक्खु–विभंगावधिज्ञान १०।२३।१०
विहंगसरि–विभंग नदियाँ १०।१६।६
विहंडण–विखण्डन ४।७।४
विहंसणु–विध्वंस ११।४।१३
विहंसिय–विध्वंसित, शान्तकर २।६।३
वीयउ–द्वितीय १।५।२
वीयराउजिन–वीतराग जिन १०।३६।२१
वीयरायदेव–वीतराग देव ९।१०।७, १०।६।४
वीर–भगवान् महावीर १।१।१, १।२।७
वीर–वीर, विजेता १।१।२
वीर–वीर्य ३।५।१०
वीरणाह–वीरनाथ (महावीर) १।१।१४, ९ पुष्पिका १०।१।१, १०।४।७
वीरणाहु–वीरनाथ ९।१६।१
वीरवइ–वीरवती (नन्दिवर्धनकी पत्नी) १।५।१३, १।१४।४
वीरु–वीर (भगवान्) १।७।७, ९।१४।२, १०।१।१
वीवा–वीवा (नेमिचन्द्रकी पत्नी) १।३।३
वीहि–व्रीहि (धान्य) १।३।५
वीहि–वीथी ९।२३।२
वुड्ढ–वृद्ध ३।४।९, १०।३८।५
वुत्तउ–उक्त + क (स्वार्थे) १।२।११
वुत्तु–कहा १।२।४
वुहयण–बुधजन (हंस) १।२।१०, ५।१।५
वूढ–व्यूढ, जटित, घटित १।१२।३
वूहु–व्यूह ८।६।९
वेइय–वेदिका ९।२२।१०
वेउ–वेग १।४।१४
वेणतेउ–वैनतेय, गरुड़ १।५।१
वेयड्ढ–वैताढ्य (पर्वत) २।१३।८, ६।२।१
वेयड्ढगिरि–विजयार्ध पर्वत १०।१६।७
वेयवंत–वेगवान् ४।१३।७
वेयवई–वेगवती (विद्या) ४।१९।३
वेय–वेद ४।१६।९
वेरि–वैरी २।३।६
वेल–लता १।६।१
वेस–वेशभूषा २।५।१९
वेसहास–दो सहस्र, दो हजार १०।४१।१६
वेसासउहयले–वेश्याके सौधतलमें ३।१७।४
वोक्क–कफ, वृक्क १०।३२।५
वोदाउव–बदायूँ नगर १०।४१।१
वोमयरा–व्योमचर २।१५।३
वोमसिंगु–व्योम शृंग, व्योम शिखर ९।१०।१७
वोहण–बोधन, सम्बोधन ६।१७।८
वंचइ–$\sqrt{}$ वञ्च + इ (ठगना) २।२०।१४

सुत्ति–शुक्ति (द्वीन्द्रिय जीव) १०।८।१
सुत्तु–सूत्र ५।२३।१६
सुतार–सुतारा (अर्ककीर्तिकी पुत्री) ६।७।८, ६।८।१०
सुद्ध–निर्मल २।८।५
सुद्धलेसु–शुद्ध लेश्या ६।१८।५
सुदेउ–सुदेव २।११।११
सुधम्म–सुधर्म १।१।१०
सुनयणि–सुनयनी १।१३।८
सुप्पइट्ठु–सुप्रतिष्ठ (मुनिराज) ७।१७।४
सुपसत्थहि–सुप्रशस्त २।५।२२
सुपास–सुपार्श्वनाथ (तीर्थंकर) १।१।६
सुपास–पार्श्वभाग १।१।६
सुपियल्लु–सुप्रिय ३।२३।३
सुपुरिसु–सुपुरुष २।११।१०
सुभीसं–अत्यन्त भीषण ४।२२।१
सुमइ–सुमतिनाथ (तीर्थंकर) १।१।५
सुमइ–सुमति (मुनि) ७।४।८
सुमग्ग–सुमार्ग १।१।१०
सुमण–ज्ञानीजन १।१।८
सुमण–देव १।१।८
सुमणालंकिउ–विद्वानोसे अलंकृत १।१२।६
सुमहोच्छव–सुन्दर महोत्सव ३।५।३
सुयणवग्गु–सज्जन वर्ग ३।२।७
सुयत्थ–श्रुतार्थ २।१।६, ४।२।५
सुयपय–श्रुतपद १०।२।११
सुयरंधि–श्रोत्ररन्ध्र ३।१।६
सुयसायर–श्रुतसागर (मुनि) ७।११।११
सुर–सुर (नामक देश) ३।२२।८
सुरकरि–ऐरावत हाथी ५।१९।५
सुरकरिवर–श्रेष्ठ ऐरावत हाथी ३।५।१०
सुरगिरि–सुमेरु पर्वत १।३।५
सुरणारि–देवियाँ २।२०।१
सुरतरु–कल्पवृक्ष १।१२।६, २।१२।७, २।२०।९
सुरतिय–देवांगना २।१३।१२
सुर-दिसि–पूर्व-दिशा १।६।१२
सुर-धणु–इन्द्रधनुष ८।६।१२, ९।१८।१०
सुरपुर–स्वर्गपुरी १।४।२, ३।१।१४
सुरमण–देव-मन १।४।१८
सुरयगइ–सुरतगति २।१८।७
सुरराय–इन्द्रराज २।११।५
सुरवइ–सुरपति १।४।१७, १०।१।१४, १०।९।११
सुरवन्न–सुपर्ण (गरुड़कुमार) १०।२९।६, १०।३३।१४
सुरसरि–गंगा २।१३।७, २।१९।१०
सुरसामि–इन्द्र ९।८।२
सुर-सोक्ख–देवोंके सुख १।४।१८
सुरसुंदरी–सुरसुन्दरी १।६।७
सुरहर–सुरगृह, सुमेरु पर्वत १०।६।९
सुरालइ–सुरालय, स्वर्ग २।२०।७
सुराहीस–सुराधीश ९।७।१२
सुरूरउ–सुरौरव (देव) २।११।१२
सुरूव–स्वरूप १।६।९
सुरेस–इन्द्र ५।२०।९
सुरेसर-पुर–इन्द्रपुरी ९।१६।२
सुरेसरा–सुरेश्वर १।६।२, ९।१०।३
सुरंगणा–देवागना १।८।६
सुरिंदपिया–सुरेन्द्र-प्रिया—नीलांजना २।१४।३
सुवन्न–सुपर्ण (देव) १०।२९।६
सुव्वय–मुनिसुव्रत (तीर्थंकर) १।१।१२
सुव्वय–सुव्रत (मुनिराज) ७।५।६
सुव्वयवंत–महान् व्रतधारी १।१।१२
सुवण्ण–स्वर्ण ३।५।७
सुवण–सुन्दर वर्ण ३।१।१२
सुवसायरु–श्रुतसागर (मुनि) १।९।६
सुविहि–सुविधिनाथ (पुष्पदन्त तीर्थंकरका अपर नाम) १।१।७
सुविहि–न्याय १।१।७
सुविसिट्ठ–सुविशिष्ट २।८।५
सुस्सरु–सु-स्वर, मधुरभाषी १।१२।१४
सुस्सुउ–सुश्रुत (मन्त्री) ४।१२।८
सुसीस–सुशीर्षक (टोप) ८।१२।६
सुहणिलउ–सुखका निलय २।९।१८
सुहदिणि–शुभ दिन १।१०।७
सुहधणु–शुभ धन २।१३।५
सुहम-राउ–सूक्ष्मराग (गुणस्थान) १०।३६।८
सुहमाणस–शुभ मन, सुखी मन २।१।१२
सुहय–सुभग, सुन्दर तनु १।१।३

संखुहिय–संक्षुब्ध ४।५।७
संखोहण–संक्षोभण २।१८।११
संगम–संगम (देव) ९।१७।५
संगमु–संगम २।४।५
संगया–संगता १।८।७
संगर–संग्राम ३।१३।२, ४।९।११, ५।१७।१६
संगह–संग्रह ३।१९।१०
संघाउ–संघात २।२२।४
संघाय–संघात १०।२३।११
संचइ–संचय २।९।१२
संछइय–संच्छन्न १०।२८।१०
संजणिय–संजनित २।५।७, ३।२।५
संजम–संयम ८।१२।५
संजय–संजय (यति) २।८।६
संजाउ–संजात १।१२।४
संजायउ–संजात + क २।१२।१, २।१७।१०
संजायवि–संजात + इवि (उत्पन्न हुआ) २।२१।११
संजोएँ–संयोग २।२२।५
संजुत्तउ–संयुक्त + क ३।१८।३
संजोय–संयोग ८।१६।६
संझराउ–सन्ध्या राग (सन्ध्याकी लालिमा) १।१४।२
संझा–सन्ध्या ३।७।३, ५।८।३
संठिउ–संस्थित २।४।७, २।२०।१५
संठिय–संस्थित १।८।८
संडिल्लायणु–शाण्डिल्यायन (नामक विप्र) २।२२।८
संण्णि–संज्ञी १०।८।७
संत–सन्त (साधु) १।९।८
संत–सत् (अस् धातोः) १।१।९
संतइ–सन्तति १।१४।३
संतावण–सन्तापन ५।१२।९
संतावहारि–सन्तापहारी १।२।५
संतविय–सन्तप्त ३।५।७
संताविय–सन्तापित २।२१।५
संतासिय–सन्त्रासित १।१०।९
संति–शान्तिनाथ (तीर्थंकर) १।१।१०, १।२।६
संतोसु–सन्तोष १।१२।१२
संथुय–संस्तुत १०।३।८
संदणभड–स्यन्दन-भट २।१३।२
संदाण–संदान २।८।१०
संधंतु–√सन्ध + शतृ (सन्धान) ५।१६।९
संधाणु–सन्धाण ५।११।१०
संधि–सन्धि (व्याकरण सम्बन्धी) ९।१।१४
संधिय–सन्धित, सन्धान करना १।८।७
संपय–सम्प्रति २।१।९
संपयरूउ–सम्पदा-रूप १।१४।२
संपयाणु–सम्प्रदान (समर्पण) ४।४।१६
संपहिट्ठु–संप्रहृष्ट (सन्तुष्ट) ९।७।१
संपाविय–सम्पादित ३।१२।३
संपुड–संवृत्त (योनि) १०।१२।६
संपुड-वियउ–सवृत्त-विवृत्त (योनि) १०।१२।६
संपेसिउ–सम्प्रेषित ३।१०।११
संबंध–सम्बन्ध ४।१५।९
संबोहिय–सम्बोधित १।३।२
संभरेइ–संस्मृत, स्मरण कर १।३।१
संभव–सम्भवनाथ (तीर्थंकर) १।१।४
संभवहर–संसारके नाश करनेवाले १।१।४
संभाल–सम्हाल २।१।९
संभासिउ–सम्भाषित १।१७।९
संभिण्ण–सम्भिन्न (नामक ज्योतिषी) ४।४।६
संभिण्णु–सम्भिन्न (ज्योतिषी) ३।३०।८
संभिन्न–नामक दैवज्ञ या ज्योतिषी ३।३१।७
संभूय–सम्भूति (नामक मुनीश्वर) ३।१६।७
संभूवउ–सम्भूत + क (उत्पन्न) २।१९।९
संवच्छर–संवत्सर १०।४१।८
संवंधिय–समधी ४।११।५
संवरु–संवरण २।७।२, १०।३९।२१
संसग्गु–संसर्ग ४।२।८, ५।३।१४
संसारिय–संसारी जीव १०।४।२
संसारोरय–संसारोरग (संसाररूपी सर्प) १।९।८
संसारुब्भव–संसारसे उत्पन्न १।२।५
संसाहिय–संसाधित ८।१४।३
संसूय–संसूचना २।२१।२
संसेइए–संसेवित ९।१।१०
संहरिया–संहृत, संकुचित ७।१४।२
सिंगग्ग–शिखरके अग्रभाग ३।२।२
सिंचइ–√सिञ्च + इ (सींचना) २।२०।१४

१६

तहो अभयदाणु देविणु सचित्ति चिंतिवि जिणवर सुमरणे पवित्ति ।
हउँ अप्पसण्णु मुहुँ एत्थु जेण अवलोइज्जंतउ पुर यणेण ।
किह ठाएसमि इच्छिय सिवासु अग्गइ विसाहभूइहे णिवासु ।
इय कलिवि चित्त-संगहिय-लज्जु जरतणु व दूरि परिहरिवि रज्जु ।
5 णिग्गउ णिय-गेहहो तव-णिमित्तु लोया पवाय-भय-डरिय-चित्तु ।
णरवइ विरज्जु निय-सुयहो देवि तहो पच्छइ लग्गइ मणु जिणेवि ।
सिरि सिहरि चडाविवि पाणिवेवि 'संभूय'-मुणीसर-पय णवेवि ।
दोहिमि जणेहिं संगहिय दिक्ख सहुँ राय-सहासेँ मुणिय सिक्ख ।
एत्थंतरि मुणिवि मणोरमेहिं परिचत्तु दइय-विक्कम-कमेहिं ।
10 लक्खण-तणूउ उद्धाइएहिँ जिणि लइय राय सिरि दाइएहिँ ।

घत्ता—दूरत्तणु तासु करइ हयासु दरिसिज्जंतु जणेहिं ।
अंगुलियइँ राउ एउ वराउ चिरु वियसिय-वणेहिँ ॥ ५५ ॥

१७

एत्थंतरे उग्ग-तवेण तत्तु मासोपवास-विहि-खीण-गत्तु ।
उत्तुंग-हम्म-महुरहि पइट्ठ भिक्खा-णिमित्तु लोएहि दिट्ठु ।
सो विस्सणंदि-मुणि पहे पयंतु[1] णंदिणि-विसाण-हउ तणु धुणंतु ।
पिक्खेवि उवहासु कुणंतएण वेसा-सउह-यले परिट्ठिएण ।
5 अहिमाण-कुलक्कम-णय-चुएण जंपिउ विसाहभूइहे सुएण ।
कहिँ गउ तं वलु तुह-तणउ जेण जिणि सिण्णु सदुग्गु महाजवेण ।
उम्मूलिउ सिलमउ थंभु जेम गयणंगणे लग्गु कवित्थु तेम ।
तहो वयणु सुणेविणु तं णिएवि तत्थवि जाएवि खमे[2] चएवि ।
जइ अत्थि किंपि तव-हलु विसिट्ठु तो समरंगणे विरइवि अणिट्ठु ।
10 एहु वइरिउ मारेसमि णिरुत्तु इउ करि णियाणु णिय-मणे णिरुत्तु ।

घत्ता—मगहे सरजुत्तु देह-विउत्तु सोलहि जलहि समाउ ।
महसुक्कि सतेउ जायउ देउ सो सुंदरयर-काउ ॥ ५६ ॥

---

१७. १. D. J. V. पयंडु । २. D. J. V. खमा ।